अमर बेल

वृंदावनलाल वर्मा



अमर
बेल



वृंदावनलाल वर्मा ग्रंथमाला ७

अमर बेल

वृंदावनलाल वर्मा

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक • प्रभात प्रकाशन
४/१९ आसफ अली रोड,
नई दिल्ली–११०००२

संस्करण • १९९८
मूल्य • दो सौ पचास रुपए
मुद्रक • प्रिंट परफैक्ट, दिल्ली

AMARBEL *novel* by Vrindavan Lal Verma Rs. 250.00
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
ISBN 81-7315-050-8

परिचय

अमरबेल का परिचय कुछ तो उन पेड़ों पर लिखा रहता है जिन पर छाई रहकर यह पेड़ के रस, टहनी और हरियाली को नष्ट करती रहती है और कुछ उस कहावत में व्यक्त है जो लगभग सब कहीं प्रचलित है—'आँखों के अंधे नाम नैनसुख।' बाकी परिचय हमारे मन की शक्ति को ग्रसे हुए अंधाग्रह, दुराग्रह और पूर्वाग्रह दे सकते हैं यदि हम उन्हें देख पाएँ तो।

हम चाहे देखें या न देखें, नगर और गाँव में इनकी कहानियाँ नित्य बनती और बिगड़ी रहती हैं। उपन्यास की घटनाएँ इन्हीं से ली गई हैं। अधिकांश को गाँवों के जीवन से जुटाया गया है। सब सच्ची हैं और पात्र भी सच्चे हैं। उनके और तत्संबंधी स्थानों के नाम अवश्य बदल दिए गए हैं। इस पर भी यदि किसी चरित्र का नाम और ब्योरा किसी के नाम से मेल खा जाए तो इसको आकस्मिक ही समझना चाहिए। मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया है।

अनीति से रुपया कमाने की धुन गाँवों तक में व्यापक रूप में फैली हुई है। साहूकारी, खेती-किसानी सबमें। समाज में यह घुन की तरह लगी हुई है। जैसे हरे-भरे पेड़ पर अमरबेल।

ईमानदारी का श्रम किए बिना दुस्साहसपूर्ण प्रयत्नों से रात-भर में लखपती बन जाने की प्रवृत्ति थोड़े से असाधारण मनुष्यों तक सीमित नहीं है, जो नगरों में रहते हैं। अफीम के अवैध 'रोजगार' के समाचार और मुकद्‌दमे बहुधा पत्रों में छपते रहते हैं। इनके नायक उसी प्रवृत्ति के जंतु हैं जो गाँवों में भी पाए जाते हैं। इनकी एक घटना मुझे मध्य भारत के मंत्री, मेरे मित्र, श्री श्यामलाल पांडवीय ने विस्तार के साथ सुनाई थी। उपन्यास में मैंने उसका उपयोग किया है। इसके लिए मैं पांडवीयजी का कृतज्ञ हूँ।

कुछ घटनाएँ ऐसी हैं जो हाल ही में भिन्न-भिन्न समय और स्थानों पर घटी हैं। मैंने उन्हें दो-ढाई बरसों के भीतर अपने कल्पित स्थानों में रख दिया है। सहकारी अधिकारी 'राघवन' का नाम-भर बदल दिया है। कारण, एक तो राघवन की अनिच्छा, दूसरे पात्रों और स्थानों के सबके सब बनावटी नाम, सारी घटनाओं के साथ उघड़ जाते और 'अमरबेल' उपन्यास न रहकर, शायद, कचहरी की मिसिल बन जाती।

—वृंदावनलाल वर्मा

अमरबेल

: १ :

ऊपर से कलक्टर (जिलाधीश!) के नाम आदेश आया—

जिमींदारी उन्मूलन में कोई संदेह नहीं। इसके बाद गाँवों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में बड़ा भारी परिवर्तन होगा। बढ़ती हुई जनसंख्या, अन्नकष्ट और व्यापक बेकारी की समस्याओं का सामना करने के लिए सहकारी कृषि और सहकारी कुटीर उद्योगों को विकसित और उन्नत करना बहुत ही जरूरी है। अपने जिले में अभी से इनको आरंभ कर दो। सरकार नदियों के बंध बाँध रही है, जिनसे नहरें निकलेंगी, सस्ती बिजली सुलभ होगी। जहाँ नहरों द्वारा पानी नहीं पहुँच सकता, वहाँ ताल-तलैयों का बाँधना, नल-कूप लगाना इत्यादि की योजना है। हमारा किसान परंपरागामी है और परिस्थितियों की भी माँग है कि हम पुरातन और नूतन का समन्वय समझदारी के साथ करें। हमारा व्यक्ति भूमिस्वामित्व का घोर प्रेमी है, इसलिए किसान को कानून भूमिस्वामी बनाएगा। कार्यक्रम में इस बात का ध्यान रखना।

कलक्टर ने अपने अधीन पदाधिकारियों को समझा दिया। उन्होंने कानूनगो और पटवारी को बताया। इन्होंने रोजनामचे में लिख लिया और दूसरे कार्यों में लग गए।

दो-तीन महीने पीछे कलक्टर ने दौरा किया। नीचे के कर्मचारियों को मालूम था कि ऊपर के आदेश को कार्य का रूप देने के संबंध में सवाल उठेगा। उन्होंने खास-खास गाँवों के कुछ छोटे-छोटे जिमींदार और जोता कलक्टर के सामने पेश कर दिए। बड़े जिमींदार और बड़े किसान न बुलाए गए थे, न आए।

कलक्टर आई०सी०एस० का आदमी था। उत्साही और कर्तव्यपरायण; परंतु सहकारी कृषि का उसने अध्ययन नहीं किया था और न उस संबंध में उसका अनुभव था। परंतु अपनी कमी को सँभालना जानता था।

'मिल-जुलकर खेती करना शुरू करो।' किसानों से उसने कहा।

एक बोला, 'जिनके पास भूमि है पर हल-बैल नहीं, वे सोंझ या बटिया पर खेती करते तो हैं।'

[illegible] 'हमारे गाँ[illegible] जिमींदार नहीं, हम लोग मिल-जुलकर सब काम

करते हैं, कोई लड़ाई-झगड़ा अलवा-बलवा नहीं होता, तहसीलदार साहब, कानूनगो, पटवारी सब मदद करते रहते हैं।'

कानूनगो और पटवारी सुनकर प्रसन्न हुए।

कलक्टर मुसकराया—

'यह तो अच्छी बात है, पर हम कुछ और कह रहे हैं। एक कमेटी बनाओ। वह सहकारी समिति कहलाएगी। उसकी रजिस्ट्री होगी। जो कोई उसके मेंबर होंगे, उनके खेत उसमें शामिलाती रहेंगे। सब मिलकर काम करेंगे। जिला बैंक से रुपया कर्ज पर मिलेगा। खर्चा काटकर पैदावार या मुनाफा बाँट लिया जाया करेगा।'

'और जो कोई इसमें भरती न हो तो क्या उसके साथ जबरदस्ती की जावेगी?' एक ने पूछा।

'अरे नहीं। जबरदस्ती नहीं की जावेगी; जिसकी मर्जी हो, वह उसमें नाम लिखावे।'

उन लोगों के बीच-बीच में पटवारी भी थे। किसी पटवारी ने कान में फूँका, 'कह दो, ठीक है।' पटवारी की सलाह को उसने सुधारकर पेश किया, 'ठीक है, देखेंगे। सरकार कौन-कौन-सी मदद करेगी?'

'हमें बंदूक का लैसंस चाहिए। जंगली जानवर बहुत तंग करते हैं। इनसे पीछा छूटे तो मिल-जुलकर काम करना ही बाकी रह जाएगा।'

कलक्टर बोला, 'यह दूसरी बात है। ध्यान देकर सुनो—तुम्हारी तहसील की ललिता नदी पर बाँध बँध रहा है, उससे नहर निकलेगी। नहर की खुदाई शुरू हो गई है। नहर आने पर अन्न की उपज बढ़ेगी। गरीबी दूर होगी। घरेलू धंधे पनपेंगे, बेकारी चली जावेगी।'

'हमारे गाँव के मजदूर बौखला उठे हैं। बड़ी मुश्किल से काम पर आते हैं।'

'सुनो जी, एक दिन सस्ती बिजली भी मिलेगी।'

'मिट्टी का तेल तो मिलता नहीं, सरकार।'

फिर शिकायतों का शोरगुल उमड़ पड़ा।

कलक्टर ने तुरंत शांत किया। कहा, 'हम जिला सहकारी अफसर को भेजेंगे। वे तुम लोगों को मिल-जुलकर खेती करने के कायदे और तरीके समझावेंगे। एक बात अभी गाँठ में बाँध लो कि बिना सहकारी खेती के आगे गाँवों की उन्नति होनी बहुत ही कठिन है।'

कलक्टर तहसीलदार से कह गया, 'इस विषय के प्रति इनके मन में लहर पैदा करना अपना कर्तव्य समझना। इखरी-बिखरी जोतों के एकीकरण की तरफ भी ध्यान देना। और देखो, बड़े जिमींदारों को भी संग लगाने की कोशिश करना। जैसे, सुहानी-बागुदन गाँवों के जिमींदार देशराज को।' कलक्टर ने और

'एक कर्तव्य है जिस पर जान कुरबान कर दूँ? जितना बन पड़ेगा, कर दूँगा। आखिर जिला सहकारी अफसर किस वास्ते हैं?' तहसीलदार सोच रहा था।

: २ :

मोटे, नक्काशीदार पायोंवाले लंबे-चौड़े पलँग पर, जो ऊँचे पक्के चबूतरे पर लगा था, देशराज कुछ लेटा हुआ, हथेली के बल गरदन कुछ उठाए ढेर से तकिए के सहारे टिकाए, जागता-ऊँघता पड़ा था। दोपहर के भोजन के उपरांत, अथाई जैसे चबूतरे के ऊपर फैले हुए वटवृक्ष की छाया और उतरते कुआर की सहलानेवाली मंद पवन के मंथर झोंके, ऊँघ को गहरी नींद में पलटनेवाले ही थे कि अधेड़ अवस्थावाला विक्रम आया और देशराज को सोया समझकर ठिठका; फिर जरा-सी साँस भरकर चबूतरे पर पैताने की तरफ बैठ गया। सिरहाने की ओर आँख गई—बढ़िया मेज पर खुश्क बैटरीवाला रेडियो सैट, सैट पर कीमती सिगरिट का डिब्बा और सिगरिट जलाने के लिए छोटी-सी पैट्रोल-बत्तीवाली डिब्बी, सिरहाने की बगल में चाँदी के हुक्के पर तवेदार बड़ी चिलम। चिलम में कुछ जान तो अब भी होगी, यह अनुमान करके विक्रम ने गरदन उझकाकर देखा। चिलम की आग पर राख की पपड़ी जम गई थी। तो भी उसने बढ़कर हाथ में ले ली। खुशबूदार तंबाकू की थोड़ी-सी महक अब भी थी।

देशराज जाग पड़ा। तकिए का सहारा छोड़कर बैठ गया। चौबीस-पच्चीस के लगभग अवस्था, गोरा रंग, बड़ी आँखें जिनकी काली पुतलियाँ, रस में डूबी-सी, आकृति की रेखाएँ सुडौल और आकर्षक, भरी-छरहरी देह, छोटी नुकीली मूँछ—मूर्तिकार या चित्रकार के लिए सुंदर देहधारी पुरुष का नमूना। विक्रम की बड़ी आँखें और मोटी फैली मूँछें उसके सामने मानो लजा रही हों। चिलमवाला हाथ जरा-सा काँपा।

विक्रम ने पूछा, 'मालिक, सुल्फा बना लाऊँ या तवा चढ़ा लाऊँ?'

देशराज की अलसाई-सी रस-भीगी आँखें तकिए पर गईं। तकिया तेल की चीकट से सावन-भादों के बादल जैसा हो गया था, धूमरा और कहीं-कहीं गई-गुजरी सफेदी की कुछ शिकनें। देशराज ने अँगड़ाई लेकर एक क्षण पलँग की सफेद चादर पर निगाह डाली—बीच में कई छोटे-बड़े मैले छपके। फिर मेज की ओर हाथ बढ़ाकर बोला, 'मैं तो सिगरिट पिऊँगा।' और सिगरिट उठाकर पैट्रोल-बत्ती से सुलगाकर पीने लगा। विक्रम की दृष्टि ऊँचे पलँग के नीचे गई। उसकी निवाड़ के कई टुकड़ों से छूँछने लटक गए थे। विक्रम ने चिलम जहाँ-की-तहाँ रख दी।

सिगरिट के कुछ कश लेकर देशराज ने कहा, 'तवा भर लो, कोई और आ गया तो उसका

विक्रम मुसकराया। घनी मूँछों से ढँके होंठों में से उत्साह के साथ निकला, 'मालिक जो खमीरा लखनऊ से लाए थे, वह भरूँगा मैं तो।'

'जगनुआ भीतर होगा। उससे माँग लेना।' देशराज ने लखनऊ का खमीरा पीने की राह बताई।

विक्रम चिलम लेकर देशराज के घर चला गया, जिसकी ड्योढ़ी का बड़ा दरवाजा चबूतरे से थोड़ी दूर एक ओर था।

देशराज तकिए से टिक गया। सिगरिट के कश लेते-देते ऊपर की ओर देखने लगा। सघन वटवृक्ष पर अमरबेल छाने लगी थी। पिता के जीवन-काल में उस वृक्ष के एक सिरे पर आ गई थी। पिता का देहावसान हुए दो वर्ष से कुछ ऊपर का समय हो गया था। जब देशराज लखनऊ में वकालत की प्रथमा में पढ़ता था और फेल हो गया था, तब पिता नहीं रहा था। अपने जीवन में पिता जो अंग्रेजी युग में ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट रह चुका था, इसी चबूतरे पर, इसी वटवृक्ष की छाया तले कचहरी करता, लेटता और उठता-बैठता, इसलिए वह अमरबेल वहीं-की-वहीं छोड़ दी गई, जो अब अधिक फैल गई थी। पिता के गौरव काल का स्मारक और भी गोचर हो गया। परंतु देशराज उस बेल को नहीं लख रहा था। सिगरिट के झीने धुएँ में से देख रहा था कि सूर्य अब कहाँ है। तीसरा पहर चल रहा था, किरणें झर-झरकर भी नहीं आ रही थीं। सोने के लिए समय मिलेगा। सामने कोई खास काम नहीं। जब तक चिलम आए और हुक्का तैयार हो, सिगरिट समाप्त हो जाएगी। फिर खमीरे के कशों में से नींद का आवाहन।

चबूतरा और उसके ऊपर छाया हुआ बरगद एक बड़े आँगन में था। आँगन ऊँची-मोटी दीवारों से घिरा हुआ था। चबूतरे के सामने मेहराबदार दरवाजा, अस्त-व्यस्त दलदार फाटक और सामने गाँव की सड़क। फाटक से हटकर आँगन के कोट से लगा हुआ छोटा-सा सुडौल अतिथि-सदन और मोटरखाना था, जिसमें मोटर रखी हुई थी। दूसरी दिशा में पक्के पायोंवाली चौपालें, घास, लकड़ी और पशुओं के लिए थीं।

फाटक के सामने, चौड़ी गली के उस ओर एक पक्का मकान था। उस मकान से एक व्यक्ति निकला। घुटनों तक फिसलता हुआ जाँघिया, पैर में देशी जूते, आधी बाँहवाली कमीज, बिना तेल के ऊँचे-नीचे बालों पर गाँव के बुनकर की रंग-बिरंगी तौलिया। तौलिया के एक छोर की आड़ से उसने आँगन के भीतर चबूतरे पर आँख पसारी। देशराज बैठा हुआ उसी दिशा में देख रहा था। शायद आँख से आँख मिल गई हो। उस व्यक्ति ने गरदन मोड़ी, घर के किवाड़ भेड़े। सोच रहा था, अथाई पर जाऊँ या रास्ता पकड़ूँ; शायद देशराज ने न देखा हो। देशराज [illegible] लगाई, 'अरे भाई बनमाली, कहाँ जा रहे हो इतनी धूप में?'

बनमाली को निर्णय करना पड़ा—बिना कोई उत्तर दिए देशराज के पास जा पहुँचा। चबूतरे पर नहीं चढ़ा। देशराज बैठे-ही-बैठे आगे की ओर झुका। उसके होंठों पर बरबस-सी एक रीनी-झीनी मुसकान आई।

'घर से हुक्का मँगवा लो। विक्रम तवा भरकर ला रहा है,' देशराज ने कहा। स्वर में कोई अनुराग न था।

बनमाली बैठता तो उस लंबे-चौड़े पलँग पर, पर बिना कहे साहस न हुआ। चबूतरे पर देशराज के पलँग के नीचे बैठने में स्वाभिमान की दाल किरकिरी पड़ जाती। खड़े-खड़े बातें करके चला जाना सहज। उसने एक पैर चबूतरे पर रख लिया, मानो अपमान का मार्जन ब्याज समेत कर लिया हो। तौलिया सिर से खिसकाकर कंधे पर डाल ली। गोरा रंग, चिपटी नाक, आँखें सँकरी और तेज, कंठ प्रखर। बोला, 'काम से जा रहा था। काम करनेवालों को धूप, ठंड, पानी की बाधा ही क्या! वैसे भी सूरज अब नरम पड़ गया है—'

कुछ और भी कहता, क्योंकि भाषण देने का अभ्यास बरसों से था, परंतु देशराज के घर से विक्रम भरी हुई चिलम लिए आता दिखाई पड़ा। देशराज ने कश खींचकर अधजली सिगरिट फेंक दी। बनमाली को सिगरिट मिलनी न थी। लखनऊ की बढ़िया खमीरा का तवा सामने। बनमाली उसकी महक से परिचित था। विक्रम के सामने देशराज से कुछ कहना भी था।

बनमाली ने विक्रम को पुचकारा, 'विक्रम दादा, जरा हमारा हुक्का ले आना।'

विक्रम ने हुक्के पर चिलम रख दी और चुपचाप बनमाली के घर चला गया। 'दादा' इसलिए कि विक्रम उससे आयु में कुछ बड़ा था। पुचकार में आदेश लिपटा हुआ, क्योंकि वह बनमाली की भी कुछ जिमीन जोते हुए था और बनमाली गाँव के नेताओं में भी तो था।

'पीढ़ा मँगवाए देता हूँ,' देशराज ने बनमाली को पलँग पर न बिठलाने का प्रायश्चित किया, 'कब तक खड़े रहोगे ऐसे?'

कुरसी भी नहीं! क्योंकि देशराज के घर में कुरसियों की कमी न थी। यह प्रार्थना भी करे तो पलँग पर न बैठूँगा, बनमाली ने सोचा।

कहा, 'खड़े-खड़े ही पीऊँगा। सभाओं में बोलने के समय तो घंटों खड़ा रहना पड़ता है।' एक क्षण चुप रहा। भाँपने लगा कि बात का कुछ प्रभाव पड़ा या नहीं।

'चार-पाँच दिन से गाँव में कोई समाचार-पत्र नहीं आया है। पता नहीं, कहाँ क्या हो रहा है,' बनमाली ने अपने प्रसंग पर पहुँचने की कोशिश की।

देशराज को मालम [illegible] उन्मूलन कानून पास होनेवाला है। परंतु उसके [illegible] उसे विश्वास था कि युगों से आया हुआ

चलन एकदम नहीं मिट सकता और यदि उसकी काया मिट भी जाए तो उसका तत्त्व किसी-न-किसी मिलते-जुलते रूप में प्रकट होकर ही रहेगा; दूसरे, उसको अपनी प्रतिभा का भरोसा था, जिसके बूते वह अपना एक व्यवसाय चला रहा था जिसे उसके पड़ोसी तक नहीं जानते थे। देशराज की आँख तेजी के साथ वटवृक्ष की अनेक छोटी-बड़ी डालों, हरे-भरे गुच्छों में छाई अमरबेल पर गई और वट के उन पत्तों पर भी जो अमरबेल की लपेटों में मुरझा गए थे। एक क्षण उपेक्षा की मुसकान होंठों पर नाची।

बोला, 'जो होता आया है, वही होता रहता है और होता रहेगा; सिर्फ रूप बदलता रहता है। तय है कि जिमींदारी जाएगी—कानून पास हुए बिना न रहेगा। मैं तो उस दिन का स्वागत करूँगा।' स्वागतवाली बात में कोई उमंग न थी। बनमाली को देशराज की मुसकान गड़ी। वह उसे थोड़ी-सी कुढ़न देना चाहता था।

'पास तो होगा ही कानून। लेकिन जो होता आया है उसका केवल रूप ही नहीं बदलेगा, बल्कि कुछ ऐसा हो जाएगा जो हाथ से काम न करनेवालों को साफ कर देगा। किसान-मजदूर के राज्य कायम होने की नींव उस दिन पंद्रह अगस्त को पड़ चुकी है।' बनमाली ने कहा। उसके स्वर में गंभीरता थी, पर आँखों में दब्बूपन और लालच।

बनमाली स्वयं हाथ से बहुत कम काम करता था। 'किसान-मजदूर राज्य' में उसका निज का भी काफी हाथ रहेगा, यह भावना उस वाक्य में बसी थी।

'अरे भाई कैसा भी राज्य रहे, खेती-पाती करने के लिए शहर से तो लोग यहाँ आवेंगे नहीं। मैंने राजनीति शास्त्र पर बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी हैं। किसी तरह का भी राजतंत्र हो, बागडोर तो उसकी रहती है पढ़े-लिखे और संपन्न शक्तिशाली जनों के ही हाथ में, जैसे तुम हो। विक्रम या हमारा नौकर जगनुआ तो राज्य करेगा नहीं।' देशराज ने बनमाली को थपथपाया।

बनमाली ने एक युग पहले हिंदी मिडिल पास किया था। हाल के पास अंग्रेजी पढ़े युवकों को वह अधकचरा और बेडौल समझता था, अपनी गिनती संपत्तिशाली संपन्नों में पाकर तबीयत गुदगुदा गई।

'हाँ, सो तो है ही। सो तो है ही—पर—'

'पर-वर कुछ नहीं। तुम भी तो आखिर जिमींदार ही हो। तुम जब हकूमत में शामिल हो जाओगे तो हम सरीखों का भी मन भर जाएगा—मानो हमी शामिल हुए।' फिर वही मुसकान।

'जो मौज-मजा बड़े जिमींदार अभी तक अपने रोब-दाब और धोंस-धमक के जरिए करते थे, वह आगे दुर्लभ हो जाएगा।'

'हाँ—आँ—' देशराज चुप रह गया।

जिस गाँव में ये ... रहते थे उसका ...

मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और विंध्य प्रदेश की सीमाएँ एक-दूसरे को छूती हैं, वहाँ इन्हीं में से एक प्रदेश में वह गाँव था। सुहाने के पंद्रह आने हिस्से का वह जिमींदार था और निकटवर्ती बाँगुर्दन के पूरे सोलह आने हिस्से का। दोनों गाँवों की आबादी के बीच में केवल एक सँकरा गहरा नाला था, जिसके दोनों किनारों पर खजूर के पेड़ लगे चले गए थे। दोनों गाँवों की भूमि का रकबा लगभग दस हजार एकड़ था। इतने बड़े रकबे में खेती थोड़ी-सी ही होती थी; बाकी कृषि-योग्य भूमि बरसों से काँस ने ढँक ली थी। नाला दो मील चलकर ललिता नाम की नदी में मिल गया था; मिलने से पहले उसने एक बड़ा रकबा कपट-कतरकर छोटे-छोटे भरकों में पलट दिया था। दोनों गाँवों के एक खासे रकबे में पहाड़ और घना जंगल था, जो एक विस्तृत सरकारी वन में समा गया था।

सुहाना के बाकी एक आने हिस्से में छोटे-छोटे-से दो-तीन जिमींदार थे। इनमें बनमाली अपेक्षाकृत बड़ा था। जोतवाली भूमि में देशराज की सीर सबसे अधिक थी जिसको उसके हल-बैल, शिकमी और अधिया बटिया जोतते थे। मौरूसी किसान अधिक न थे—अधिकांश छोटे-छोटे खातोंवाले, जिनकी जोतें इखरी-बिखरी और फैल-फुट्ट थीं। दोनों गाँवों की जनसंख्या पाँच हजार से कम न होगी। रेल, तार, डाकघर, सबसे कुछ दूर; परंतु एक प्रदेश के बड़े नगरों से आनेवाली पक्की सड़क दूसरे प्रदेश के बड़े नगरों के लिए दोनों के छोरों के पास से गई थी। दोनों गाँव की जनता, जब और जहाँ मिल जाए, मजदूरी करती थी। देशराज अधिकांश किसानों और सुहाना के कुछ जिमींदारों को बीज और खाना-खवाई के लिए गल्ला सवाई पर देता था—यानी उसका कारिंदा दिया करता था। गाँव का बहुत-सा काम उसके यहाँ से सरता था; जैसे—ब्याह-शादियों के अवसर पर बरतन, पाल, घोड़ा, मोटर नहीं, गैस के हंडे, यथायोग्य को दरी, कालीन इत्यादि। नेता, व्याख्यान, समाचार-पत्र, स्वाधीनता आंदोलन और सुहाना में एक साहूकार के होते हुए भी, उसके दबदबे में बहुत कसर नहीं लगी थी; परंतु बनमाली ने उस दबदबे को अपने पर से बहुत कुछ झटकार दिया था। वह स्वाधीनता की हलचल में दो बार जेल जा चुका था। यह ठीक है कि इसके पहले वह एक बार चोरी के मुकद्दमे और दूसरी बार डकैती का माल बिसाने के अपराधों में भी सजा भोग आया था; परंतु उसका विश्वास था कि स्वाधीनता के लिए दो बार जेल जाने से पिछली सारी कालोंच धुल-पुँछ गई है, और फिर वह यह भी कहा करता था कि निकटवर्ती पुलिस थाने के दरोगा की 'धोलधप्प' करने के कारण मैं उन दोनों मामलों में फँसाया गया था। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसने दो-एक बार पुलिस के सिपाहियों की ठोक-पीट की थीं। निडर और मुँहफट होने के कारण लोगों पर उसका कुछ प्रभाव था। पर देशराज के सामने अपने गुणों की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करने में जरा हिचकता था।

देशराज की 'हाँ...आँ' और चुप्पी को उसने सकारा, 'आप-हम, सबको अब

साधारण जनता के ढर्रे पर आ जाना चाहिए। हम-आप उस कानून का स्वागत करें तो जनता हमारा-आपका स्वागत करेगी।' उसके चेहरे पर देशराज को अपने निकट आने का आग्रह था।

विक्रम बनमाली का हुक्का उठा लाया। देशराज का इशारा पाकर विक्रम ने चिलम बनमाली के हुक्के पर रख दी। वह खड़े-खड़े पीने लगा।

देशराज ने उसके लिए पीढ़ा नहीं मँगवाया। जब बनमाली पी चुका, उसने चिलम विक्रम को बढ़ा दी। उसने देशराज के हुक्के पर रख दी। बनमाली चलने को हुआ। परंतु उसने न तो विक्रम से हुक्का घर रख आने के लिए कहा, और न विक्रम ने ही कोई चाव प्रकट किया। बनमाली ने भौंहें सिकोड़कर हुक्का उठा लिया और कहता चला गया, 'जनता का राज्य होगा और जो कुछ होगा, वह अजीब होगा—' बाकी सुनाई नहीं पड़ा।

अब देशराज के स्वर में अनुरोध का नुकीलापन आया, 'अरे वाह! वैसे ही चल दिए!! चिलम तो अपने जोबन पर अब आई है!!!'

बनमाली लौट पड़ा और चबूतरे पर चढ़कर पलँग पर जा बैठा। देशराज ने चिलम उसके हुक्के पर रख दी। वह पीने लगा।

'जनता का राज्य तो होगा ही, हो ही गया है। मगर हाँकोगे तो भाई तुम्हीं उसको, यानी तुम, धरनीधर सेठ, डॉक्टर सनेहीलाल वगैरह।' देशराज ने कहा तो उसे तेल लगाने के लिए, पर गाँव के साहूकार और डॉक्टर का नाम मालिश में शामिल करके कुरेद भी दिया—जिससे वह प्रतिवाद न कर सके। बनमाली जरा-सा हँसकर हुक्का पीता रहा। उस हँसी में साहूकार और डॉक्टर दोनों की अवहेलना थी।

सामने से डाकिया आया। चबूतरे के नीचे से ही उसने डाक के साथ, जो सप्ताह में दो बार गाँव में आया करती थी, तार का एक लिफाफा रख दिया। डाकिया तार की रसीद लिखवाकर चला गया। देशराज ने पहले तार खोला। पढ़कर प्रसन्नता के साथ बतलाया, 'कुमारी अंजना आ रही हैं कल। सांस्कृतिक हलचल मच उठेगी।'

बनमाली ने विक्रम को चिलम देते हुए अपनी जानकारी प्रकट की, 'जरूर। उनकी कला एक ऊँचे दर्जे की है। लेकिन जनता के नजदीक पहुँचने के लिए उनको अपनी कला कुछ अधिक सीधी, सुथरी और चुटीली बनानी पड़ेगी। पिछली बार भी मैंने कहा था। क्यों विक्रम दादा?'

विक्रम ने कश लेकर चिलम देशराज के हुक्के पर रख दी। हँसकर बोला, 'हम लोग क्या जानें! ढोर चराते और खेती करते हैं। ये बातें तो बड़े लोगों के लिए हैं।'

देशराज ने जगनुआ को पुकारा। जैसे कहीं कान लगाए खड़ा हो, जगनुआ तुरंत आ गया। अवस्था अधेड़ से आगे; परंतु खाई-सी [illegible]। पुराना [illegible]। नीचे गरदन

किए सब कुछ देखने-परखनेवाला। देशराज ने जगनुआ से—नाम उसका जगन्नाथ, जगनू था—मोटर को ठीक कर रखने के लिए कहा। जगनुआ आदेशपालन का सिर हिलाकर चला गया।

देशराज तार को एक तरफ रखकर अन्य डाक खोलते, देखते बोला, 'ठीक कहते हो भाई बनमाली। अब की बार अंजनाजी से लोक-गीत और लोक-नृत्य के लिए ही कहूँगा; लेकिन ऊँचे दर्जे के संगीत को भी तो जनप्रिय बनाना है। अपनी स्वाधीनता कलाओं के फूलने-फलने से ही तो रसीली बनेगी।'

देशराज अपनी डाक में तल्लीन होने को हुआ और बनमाली चलने के लिए उद्यत। बनमाली अपना हुक्का उठानेवाला ही था कि विक्रम ने ले लिया और पहुँचाकर लौट आया।

विक्रम तंबाकू पीता रहा। देशराज डाक देखकर बोला, 'बनमाली के दिमाग में सनक कुछ ज्यादा बढ़ गई है।'

'उँह, यों ही बरबराते रहते हैं।' विक्रम ने मुँह बिराया।

'तुम तो हमारे ही हो। घर के ही हो—'

'हाँ मालिक!' विक्रम ने उत्सुकता को आश्वासन का रूप दिया।

'क्या बतलाऊँ। जानते हो इनकी जिमींदारी की कहानी?'

विक्रम देशराज का मुँह ताकने लगा। चिलम हुक्के पर रख दी। वह गुड़गुड़ाने लगा।

विक्रम चाहता था, देशराज तुरंत उस कहानी को शुरू कर दे, मनोरंजक होगी और 'मालिक' के मन के भीतर और भी गहरी जगह मिल जाएगी। देशराज को सहलाया, 'थोड़ा-सा सो न लो, इतना सब पढ़ के थक गए होंगे।'

देशराज बात करने के लिए व्यग्र था। 'इनकी जिमींदारी है तो थोड़ी-सी ही, सो तुम जानते ही हो; पर उसकी कहानी के जाननेवाले न रहे होंगे अब। आज से अस्सी-पचासी बरस हुए, गदर के बाद जब पहला बंदोबस्त हुआ, इनके पुरखे ने अपने अनाथ नाबालिग भांजे की जगह अपने को मालिक लिखवा दिया। उन्हीं दिनों वह नाबालिग मर गया, न जाने अपनी मौत या कैसे…'

'तो मालिक, क्या उस जमाने में कोई ऐसा न था कि सरकार को अँधेरे की बात साफ-साफ बतला देता?'

देशराज के पुरखे उस जमाने में थे। उन्होंने भी नहीं बताया! देशराज को बात जरा गड़ी। सोचा, क्यों गड़ा मुरदा उखाड़ा। आँख पेड़ पर छाई अमरबेल पर यों ही चली गई, फिर विक्रम के चेहरे पर। वहाँ भर्त्सना का कोई लक्षण न था।

'मालूम नहीं विक्रम। लोग अपनी-अपनी अड़चनों, उलझनों में बीधे होंगे, और

भाई, इनका वह पुरखा बड़ा मक्कार भी तो था। पिताजी से इतना ही सुना मैंने तो। बनमाली से कुछ मत कहना। नकटे से नकटा कह देने से यों ही बुराई खड़ी हो जाती है—वैसे कर तो वे कुछ नहीं सकते।'

उसने उत्साह के साथ भरोसा बिठाया, 'अरे नहीं मालिक।' और अपनी उत्सुकता का प्रदर्शन किया, 'अपने भांजे की मिल्कियत डकार गया और उसे मार भी डाला इनके पुरखे ने!'

देशराज के जी को खुटका हुआ—

'अरे नहीं भाई, असल बात क्या थी, कोई नहीं कह सकता। सब सुनी-सुनाई है। हमारे पिताजी ने भी कहीं सुना ही होगा।'

जो काँटा गड़ गया था उसके निकालने की देशराज ने कोशिश की। व्यर्थ इतना सब कह गया। यदि इसने चर्चा की तो बनमाली टंटा खड़ा कर देगा, क्योंकि बेहूदा है; परंतु यह कहेगा नहीं, मुझको मानता है; अपना ही आदमी है। बात को पाटने के लिए देशराज कुछ और कहता पर उसे भासा, अधिक पाटा-पूटी में झूठा पड़ जाऊँगा, शायद विक्रम सोचे, मैं बनमाली से डरता हूँ। चुप रहा। विषयांतर करना चाहता था। विक्रम ने पहले किया।

'अखबार के कागद में अब की बार क्या आया है?'

'अरे सब वे ही इधर-उधर की बातें हैं। विलायतवालों में आपसी तनातनी गाली-गलौज चल रहा है। एक खबर मजेदार भी है—एक साहूकार ने मरे आदमी का अँगूठा रुक्के पर लगवा लिया और वारिस पर नालिश कर दी। भेद पकड़ा गया। अब साहूकार जेल में बंद है!'

'अपने गाँव में तो इससे भी बढ़कर हुआ था—इन धरनीधर सेठ के बाप ने मरे आसामी का अँगूठा पक्के कागज पर लगवाकर चार बीघा जिमीन और कुएँ का बैनामा रजिस्ट्री करवा लिया, जो अब अधिया-बटिया पर चलकर साल-भर का अनाज उन्हें देता है। सेठ के बाप को किसी ने न पकड़ा!'

देशराज प्रसन्न हो गया। हँस पड़ा। दबाने के लिए उसकी भी एक कोर मिल गई।

'जाने भी दो। यह सब होता आया है। सबको करना पड़ता है। कहने से क्या फायदा। क्यों बैर बिसाओ?'

'सो मैं नहीं डरता। मूसल नहीं बदलना है। मुँह पर कह दूँगा। पर हाँ, करना [illegible]ा है।'

गाँव का साधारण-सा साहूकार धरनीधर भी जिमींदारी प्रथा के विरुद्ध खुलकर आंदोलन करता आया था। देशराज को उसकी निंदा अच्छी लगी; परंतु वह उस पर अपनी मुहर नहीं लगाना चाहता था। तो [illegible] 'भाई, परखों के

लक्षण, सब नहीं तो कई-एक जरूरी ही, कई पीढ़ियों तक दिखलाई पड़ते हैं। जैसे तुमने बतलाया—धरनीधर के बाप ने कुछ किया था; ये आजकल के साँचेवाले दंद-फंद रचते रहते हैं।'

विक्रम ने एक नई किस्म के 'दंद-फंद' की चर्चा उठाई।

'यह कापटी सोसटी क्या है जिसके पसारे की बात चल रही है?'

'कोऑपरेटिव सोसायटी नाम है उसका अंग्रेजी, हिंदी में सहकारी समिति कहते हैं। बुरी नहीं है, अगर हमारे-तुम्हारे सरीखे लोग उसे चलावें तो।'

जगनू ने आकर कहा, 'सरकार, मोटर बिलकुल ठीक हालत में है। कब चाहिए है?'

'बड़े सवेरे कल। स्टेशन जाना है।'

जगनू चला गया।

'राजकुमारीजी आ रही हैं? बड़ी भली हैं। बहुत मीठी जबान है।' विक्रम ने कहा।

'हाँ, बहुत। हम दोनों लखनऊ में साथ पढ़ते थे।'

: ३ :

रेल-स्टेशन के बाहर मोटर खड़ी करके देशराज भीतर आया।

स्टेशन बड़ा न था, पर महत्त्व का होने के कारण सभी गाड़ियाँ इस पर रुकती थीं। सुहाना-बाँगुर्दन से स्टेशन बहुत दूर न था।

भीतर जाते ही मालूम हुआ कि गाड़ी आधा घंटा लेट है। स्टेशन के बाबू, पुलिस के सिपाही और उनके चीफ, स्टेशन के मजदूर, चाय-पान-सिगरिट इत्यादि बेचनेवाले, सभी से उसका परिचय था। भीनी मुसकान, रसीली बानी और फिर दो गाँव का जिमींदार, उस पर भी ग्रेजुएट। जान पड़ता था, सभी के साथ उसने कोई-न-कोई अहसान किया है। उसके सामने विनयशीलता दिखाने में किसी को भी संकोच नहीं हो रहा था। स्टेशन मास्टर के कमरे में चला गया। आवभगत हुई। स्टेशन मास्टर से बेतकुल्लफी थी।

'देशबाबू आज कहाँ? क्या बंबई की सैर के लिए निकल पड़े?'

'नहीं तो। प्रसिद्ध संगीत-सरस्वती कुमारी अंजना इसी गाड़ी से आ रही हैं। उन्हें लेने आया हूँ।'

'पिछली बार आपने कृपा करके अपने गाँव में उनका प्रदर्शन हम लोगों को भी दिखलाया था। कितने दिन रहेंगी?'

'कह नहीं सकता। उनकी इच्छा पर निर्भर है। भारत-भर में घूम-घूमकर कला का रस बरसाती-जगाती [illegible] हैं।'

'अ[illegible]ा कीजिएगा न?'

'हाँ, हाँ। यानी जब वे अपना संगीत समारोह करेंगी, तब। अब की बार जंगल-पहाड़ों में घूमने-फिरने और शिकार खेलने की योजना ज्यादा है।'

'खैर, देखा जाएगा। चाय पीजिए।'

'चायवाला नहीं माना। स्टेशन के भीतर उसने तब आने दिया जब एक प्याला पिला चुका।'

'तो मैं यहाँ से तब तक न निकलने दूँगा जब तक कि एक प्याला और नहीं पी लेंगे। फिर एक प्याला उन सरस्वती—कुमारीजी के साथ।'

'खैर, आपका हुकुम बजाना ही पड़ेगा।' देशराज हँस पड़ा।

चाय आ गई। देशराज ने पी ली। गाड़ी के आने का भर्राटा सुनाई पड़ा। स्टेशन के लोग अपने-अपने काम पर लग गए। देशराज प्लेटफॉर्म पर आकर आती हुई गाड़ी की प्रतीक्षा करने लगा।

पुलिस का चीफ निकट आकर बोला, 'राजा साहब, क्या ये सरसुती बाई लखनऊ से पधार रही हैं?'

'हूँ।' बिना मुँह खोले हुए कुछ उपेक्षा के साथ देशराज ने उत्तर दिया।

चीफ चलने लगा। देशराज जैसे चौंका। जेब से बढ़िया सिगरिट की डिबिया पेश करते हुए तपाक से बोला, 'अरे वाह चीफ साहब, आपने बहुत दिन से हमारा सिगरिट तो पिया ही नहीं है!'

चीफ ने कृतज्ञता के साथ सिगरिट लेकर जेब में रख ली।

'गाड़ी के चले जाने के बाद आराम के साथ पीऊँगा।' कहता हुआ चीफ चला गया। गाड़ी आकर प्लेटफॉर्म पर खड़ी हो गई। सबसे ऊँचे दर्जे के एक जनाने डिब्बे से एक बहुत सुंदर युवती निकली। उसने आँख उठाते ही देख लिया कि देशराज उसकी ओर तेजी के साथ लपका आ रहा है। परस्पर नमस्ते हुई। फिर—

'हल्लो! सब ठीक है?'

'हल्लो! सब ठीक है। देखते नहीं हो, कितनी स्वस्थ हूँ!'

यह अंजना थी।

इधर-उधर के निठल्लों ने देखा—युवती गोरी, अनारी, परम रूपवती है। बाल बेपरवाही के साथ बिखरे हुए भी अपने एक अलग ढंग के कलाप में जैसे, होंठ लिपस्टिक से पुते न होने पर भी भरी हुई लाली में। साड़ी बहुमूल्य रेशमी, वेशभूषा चटकदार रंगों से सजी हुई। छोटे छपकोंदार लाल जिमीनवाली चोली पर बुँदकियोंवाली हरी चमचम साड़ी।

कुलियों ने आकर सामान उठाया। इसमें [illegible] छेददार पेटी थी। बढ़िया [illegible]

एक-दूसरे से मिली, उस पेटी पर गई और अलग हो गई।

मजदूरों ने सामान मोटर में रख दिया। पर टिकिट बाबू ने उन दोनों को अभ्यर्थना की मुसकान से रोक दिया, 'अभी नहीं राजा साहब। बड़े बाबू कह गए हैं कि बिना चाय पिए न जा सकेंगे आप लोग।'

अंजना टिकिट बाबू पर मदीली चितवन के साथ मुसकाई। देशराज ने हामी भरी, 'नहीं जाएँगे बाबा। सामान देखकर अभी लौटते हैं। देवीजी का कुछ कीमती असवाब और इनके ये सेब, जो अपने लिए लाईं, जरा ठिकाने से रखवा दूँ।'

अंजना और देशराज हँसते हुए चले गए। दोनों के दाँतों ने जैसे मोतियों को हराने की होड़ लगाई हो। टिकिट बाबू भी हँसता रहा।

देशराज ने हरी छेददार पेटी मोटर के पीछे सामानदान में रख दी और ताला लगा दिया। मजदूरों को बँधी हुई मजदूरी से दुगुनी दी। भीड़ छँटने की बाट में दोनों खड़े-खड़े आँखों-ही-आँखों में कुछ कहते-सुनते रहे। गाड़ी चली गई। पुलिस का चीफ सिगरिट पीता हुआ आया।

'ऐसा बढ़िया सिगरेट तो सरकार, आज ही पीया,' चीफ ने कहा। निगाह लजा रही थी अंजना के चकचौंधियानेवाले रूप पर—

'बड़े बाबू चाय के लिए बुला रहे हैं। सामान के लिए चिंता न कीजिए। मैं पहरा दूँगा।'

'आप भी तो चाय पीजिए। किसी सिपाही को खड़ा कर दीजिए यहाँ। वैसे सिवाय देवीजी के कपड़ों-वपड़ों के और कुछ नहीं है।' देशराज बोला।

'मैं तो एक बार सवेरे पीता हूँ, बस।' फिर मोटर में झाँककर उसने कहा, 'फलोंवाला बक्स नहीं है यहाँ।'

'क्या फलों पर नीयत गई है?'

'सेब ही ऐसे हैं। सारा इस्टीशन महक गया है।'

'भाई, देवीजी अपने लिए लाई हैं। अब की बार मैं जाकर लाऊँगा, तब ब्याज समेत, चीफ साहब।'

'सब पा गया, मैं सब पा गया, राजा साहब। चलते वक्त एक सिगरिट जरूर लूँगा।'

'एक सिगरिट नहीं, पूरी डिब्बी।'

चीफ चौकसी के साथ मोटर के आस-पास बना रहा। वे दोनों चाय पीने स्टेशन के बाबू लोगों के कमरे में चले गए।

कमरे में बिजली-सी कौंधने लगी! पुरुषों की लाज को अंजना ने जल्दी कम कर दिया। वे सोचते थे, [illegible] मिली। यदि चुपचुप ब्याह नहीं हो गया है तो आगे [illegible] किन शब्दों में अ[illegible] का [illegible] इतिहास सुनने को मिले, उसी के मुँह से सुनें

तो बढ़िया रहेगा। पर पूछे कौन? और चाय की मेज पर बैठे रहने में समय ही कितना मिलता है?

एक ने किनारा समेटते हुए प्रश्न कर ही डाला, 'आप देवीजी, क्या अब भी पढ़ती हैं? शायद किसी कॉलेज में प्रोफेसर हो?'

प्रोफेसरी के उपयुक्त उसकी आयु न थी।

'नहीं तो। न पढ़ती हूँ और न पढ़ाती हूँ। जिस साल इन्होंने वकालत की परीक्षा से मुँह मोड़ा, उसी साल मैंने एम०ए० का पढ़ना छोड़ा। संगीत में छुटपन से ही रुचि रही है, उसके विस्तार के लिए पागल बनी फिरती हूँ। इसी का इन्हें भी खब्त है। नदी-नाव का संयोग। इनके गाँव बाँगुर्दन में और आसपास जंगलों में प्राचीन काल की मूर्तियाँ, मंदिर, शिलालेख बिखरे पड़े हैं। पुरातत्व में इनकी रुचि है और मेरी भी। इसीलिए कहा कि मेरा-इनका नदी-नाव का संयोग है।' कहकर मुसकराई।

उन लोगों की समझ में जो कुछ और जितना आया हो, पर वे इस उलझन को न सुलझा सके कि दोनों में से कौन नदी है और कौन नाव। मधुरिमा में वार्तालाप समाप्त करके दोनों चल दिए।

देशराज ने पुलिस चीफ को सिगरिटों की भरी डिब्बी दी। चीफ प्रणाम करके इधर हुआ और ये मोटर लेकर उधर। चीफ सोचता था, पेटीवाले सेबों की अपेक्षा अंजना का रंग ज्यादा चोखा है। चाय-पान दूकानवाले और मजदूर सोचते थे, कुआर के महीने की तितली है।

: ४ :

सुहाना-बाँगुर्दन के लिए पक्की सड़क पर मोटर चली जा रही थी। दिन चढ़ आया था परंतु धूप तेज नहीं हुई थी। सड़क के दोनों ओर खेत थे। जिनमें बँधियाँ पड़ी थीं उनके ढालों में पानी भरा था। जो जिमीन पानी से उभर आई थी उस पर किसान कहीं हल, कहीं बखर चला रहे थे। छोटे-छोटे बैल, दुबले-पतले हलवाहे। दोनों थोड़े से श्रम से पसीने में लथपथ हुए जा रहे थे। दोपहर के पहले छुट्टी नहीं। क्योंकि बीज डालने की घड़ी जल्दी-जल्दी निकट आ रही थी।

सुहाना पहुँचने से पूर्व ललिता नाम की नदी मिलती थी। पाट चौड़ा न था, परंतु गहरी बहुत थी। गरमियों में भी उसकी धार नहीं टूटती थी, इस समय तो नीली जलराशि को ढकेलती-समेटती-सी चली जा रही थी। पुल मिला, पुल के उस पार, नदी किनारे घने पेड़ों की छाया। देशराज ने गाड़ी पटरी पर रोक दी।

'जरा देर के लिए इस छाया में रुक जाओ न। कैसा निराला मनोरम स्थान है।' देशराज ने चाव के साथ अनुरोध किया।

अंजना प्रसन्नता के साथ सहमत हुई, 'हाँ, हाँ, तुम्हें क्या; कोई भी रमणीक एकांत ठौर मिला नहीं कि रिपट पड़े।'

'शर्त यह है कि तुम साथ में हो, तो। नहीं तो पड़े रहने के लिए अपनी हवेली का चबूतरा ही ठीक।' देशराज अपने मकान को हवेली कहता था—गाँव के किसान-मजदूर भी कहते थे।

दोनों उतर पड़े। देशराज ने मोटर में पड़े हुए कालीन को बिछा दिया। दोनों बैठकर इधर-उधर देखने लगे। पेड़ों के हरे घने पत्तों में होकर धूप झर-झरकर चू-सी रही थी; बाहर जैसे बरस रही हो; नदी की धार पर जैसे रिपट-रिपटकर जम रही हो। आस-पास कोई नहीं था।

'सेब बहुत बढ़िया लाई हो। पेटी मन भर की तो होगी ही?' देशराज ने आँख गड़ाकर कहा।

'खालिस बीस सेर। हाँ, सब वजन मिलाकर तीस-पेंतीस सेर होगा। तुम्हारा अनुमान ठीक है। बड़ी मुश्किलों से माल इकट्ठा कर पाया—'

'और जोखिम भी क्या कम! पर वाह! अपनी करामात में तुम शेरनी हो, मेरी अमरबेल।'

वह हँस पड़ी।

'और तुम अपनी में शेर। बाकी चर्चा हवेली में। यहाँ केवल प्रेम की बात, पर वह उपनाम यहाँ और अभी नहीं।'

'तो एकाध सेब तो खिलाओ।'

'यहाँ पर! उस पेटी को खोलो!! गनीमत हुई कि स्टेशन पर नहीं माँग बैठे।' वह हँस पड़ी।

'अरे भई, कैसे माँगता! वे खूँखार बाबू सब गप कर जाते। बचे-खुचे उस चीफ के पेट में पहुँचते। माँगता था। सिगरिट की फूँक पर हवा कर दिया चीफ को।'

'तभी तो कहती हूँ कि शेर हो! मुझसे माँगते वे लोग तो इनकार न कर पाती।'

'तो अब प्रेम की बात।'

'जब तुम साथ में नहीं होते तो सेब वगैरह फलों के बाद केवल तुम्हारी ही मूरत—'

'और जब साथ में होता हूँ तब?'

'तब जो कुछ मन में होता है, कह नहीं पाती।'

'बहुत दिनों बाद मिली हो इसलिए दिल और दिमाग में ऐसा तूफान उठ रहा है कि तय नहीं कर पा रहा हूँ कि पहले क्या कहूँ।'

[illegible] जिस दिशा में उसकी गाड़ी मुँह किए थी, [illegible] में अ[illegible] का [illegible] [illegible]ी। देशराज जहाँ का तहाँ बैठ गया।

अंजना हँस पड़ी।

'जहाँ तुम्हें तूफान उठता है, वहीं मुझे भी; लेकिन यह भी तो सोचो कि कहाँ बैठे हो।' अंजना ने तिरछी चितवन और सिमटती हुई हँसी में कहा।

देशराज ने लंबी साँस ली, 'दो-दो लाख रुपए हमारे-तुम्हारे पास हो जाएँ तो बस फिर बिना किसी मिहनत के दुनिया हमारे-तुम्हारे निहोरे करती फिरे, और–और तुम्हारी लखनऊ छूटे और हमारी हवेली बस जाय। सूनापन प्राण खाने लगता है कभी-कभी।'

उस दिशा से आनेवाली मोटर देशराज की मोटर के पास खड़ी हो गई। अंजना सतर्क हुई। देशराज अपने आसन पर तुल-सा गया। मोटर से उतरकर विलायती सज्जा में एक साफ-सुथरा युवक इनके पास आया। देशराज खड़ा हो गया। अंजना बैठी रही।

'मैंने मोटर पहचान ली और आपको देख लिया। उस ओर से आपके गाँव होता आया हूँ।' आगंतुक ने देशराज से हाथ मिलाते हुए कहा और अंजना की ओर देखकर सकुच गया।

देशराज ने परिचय दिया, 'ये संगीत-सरस्वती कुमारी अंजना हैं। लखनऊ में हम साथ पढ़ते थे। अब जन्म-संगिनी होनेवाली हैं।'

आगंतुक ने आदर के साथ अंजना से नमस्ते की। अंजना ने सौष्ठव के साथ प्रति नमस्कार किया। वह पतलून की शिकन बचाता हुआ बैठ गया।

देशराज ने अंजना को बताया, 'ये मेरे परम मित्र श्री राघवनजी जिला कोऑपरेटिव अफसर हैं। अमेरिका में कृषि की शिक्षा पाई है। यूरोप घूमे हैं। बड़ी लगनवाले। हैं तो मदरासी, पर हिंदीवालों को, बोलने और लिखने, दोनों में मात देते हैं।'

'यह लीजिए! अब लगे आप!! देवीजी, मैं तो समाज का एक छोटा-सा सेवक हूँ। आप कृपा करके राजा साहब को समझाइए कि अपने गाँव में सहकारी खेती और घरेलू धंधों, कुटीर उद्योगों की स्थापना करके इधर के देहाती जीवन की बागडोर अपने हाथ में लें।' राघवन ने उत्साह प्रकट किया।

अंजना मदभरी आँखों से एक बार देशराज की ओर देखकर बहती हुई ललिता को परखने लगी। मुसकरा भी रही थी।

देशराज हँसा, 'अजी राघवन साहब, इस समय आपका आना अच्छा ही हुआ, क्योंकि देवीजी कुछ रिस मान गई थीं।'

अंजना ने होंठ सिकोड़े। जरा तेज आँखों देशराज की तरफ मुड़ी।

देशराज ने कहा, 'बात कुछ नहीं थी। लखनऊ की हैं। वहीं से आ रही हैं। इस नदी की सुंदर ठवन को देखकर लखनऊ की [illegible] हम दोनों निरखन-परखन के लिए यहाँ उतर प[illegible]

की और रंग मटमैला। कहाँ गोमती और कहाँ यह हमारी ललिता! पत्थरों को काट-तराशकर सपने की मूर्तियाँ बनाती, नीलिमा बाँटती-बिखेरती चलती है।'

अंजना के होंठों पर फिर वही मुसकान।

'ये बड़े बातूनी हैं, राघवन साहब।'

'आप दोनों कवि हैं। भगवान् आप दोनों को चिरसुखी करें।'

देशराज ने राघवन को सिगरिट दिया। वह उठ खड़ा हुआ। बोला, 'मार्ग में पीता जाऊँगा। आपके दर्शन करने थे। गाँवों में सहकारी कार्य आरंभ करने के लिए गया था। मेरी सहायता कीजिए।'

देशराज भी खड़ा हो गया। आश्वासन दिया, 'मुझसे जो कुछ भी सेवा हो सकेगी, अवश्य करूँगा। देवीजी भी सहायता करेंगी।'

'बहुत अहसान मानूँगा। देवीजी स्त्रियों में बहुत काम कर सकती हैं। मदरास की तरफ महिलाएँ बहुत कुछ कर रही हैं।'

'जरूर,' अंजना ने कहा।

'अवश्य ही। देवीजी ने अध्ययन एम०ए० से छोड़ा है। संगीत की आचार्य हैं। इनका संगीत का साथ सहकारी कार्य को गति देगा।'

'वाह! वाह!! क्या कहना है!!! सोने में सुगंध। काम शुरू करने के लिए मैं जल्दी आऊँगा। तब तक कागज-पत्र तैयार हो लेंगे।' नमस्ते करके राघवन चला गया। उधर उसकी मोटर ने हुर्र-हुर्र की, इधर देशराज ने धीरे से कहा, 'कहाँ से आ टपका यह नालायक।'

'कोऑपरेटिव का बावला मालूम होता है।'

'कुछ न पूछो, बिकट भूत है। मैं तो परेशान हो जाता हूँ और इस वक्त तो गधे ने सारा गुड़ गोबर कर दिया।'

अंजना खिलखिला पड़ी। राघवन ने मोटर बढ़ा दी।

अंजना खड़ी हो गई। बोली, 'यहाँ बैठना बेकार है। घर चलो, मजे की बातें वहीं। यहाँ शायद कोई और न आ धमके।'

'कुछ ठीक नहीं। अच्छा हुआ सेब की पेटी नहीं निकाली—नहीं तो चर जाता।'

'हूँ।' अंजना ने एक आँख का पैना संकेत किया।

'अभी खाने की इच्छा न थी, सेब के रंग को तुम्हारे कपोलों से मिलाता, बस।'

अंजना ने देखा, सामने कुछ दूर सड़क की मोड़ पर एक और मोटर आ रही है।

'वह देखो, आ न गया एक और। बड़ा चलतू मार्ग है जी।'

'आवे, मैं यह चला [illegible]।'

[illegible] देशराज ने अविलंब गाड़ी चला दी।

सामनेवाली गाड़ी जैसे ही उसके सामने दाएँ आई, देशराज ने देखा कि पुलिस की गाड़ी है जिसमें आगे पुलिस का अफसर बैठा है। एक ने दूसरे को पहचान लिया। परस्पर अभिवादन हुआ। पुलिस अफसर ने गाड़ी यकायक रोक ली। देशराज की भौंह तन गईं, पर उसे भी जरा-सा आगे चलकर अपनी गाड़ी रोकनी पड़ी। देशराज उतर पड़ा। पुलिस अफसर भी उतरकर आ गया। उसने अंजना को जरा-सा घूरकर देखा। नमस्ते हुई।

देशराज ने बेतकल्लुफी के साथ पूछा, 'आज फौज-फाँटे के साथ कहाँ जा रही है सवारी?'

अंजना पर से दृष्टि रिपटाते हुए उसने बतलाया, 'यहाँ कई प्रांतों की सीमाएँ क्या आकर मिली हैं हम लोगों के लिए मुसीबतों का संगम-सा हो गया है। उधर का वह नामी डाकू कालीसिंह नाहरगढ़ के डाँगडूँगर में रमता सुना गया था। हम लोग काफी मारे-मारे फिरे, राजा साहब नाहरगढ़ ने भी मदद दी, लेकिन कोई पता-निशान नहीं मिला।'

'भारी जंगल है साहब, एक पूरी पल्टन वहाँ बसेरा डाले तब कहीं ठीक पड़े। कौन ठीक है, शायद किसी पहाड़ी खोह में हो।'

'आया तो जरूर था, मगर रमा नहीं। लोग-बाग भी तो पंख का परेवा बना डालते हैं।'

'हमें भी सावधानी के साथ रहना पड़ेगा। अब कहाँ जा रहे हैं?'

'सदर में कुछ काम है।'

'सिगरिट लीजिए।'

पुलिस अफसर ने सूँघकर सिगरिट जलाया। बोला, 'इसकी खुशबू के ऊपर यहाँ सेबों की महक सवार हो रही है।'

देशराज ने अंजना की ओर संकेत करके कहा, 'आप अपने लिए लखनऊ से थोड़े-से लाई हैं।'

अंजना को अफसर का परिचय दिया, 'ये मेरे परम मित्र पुलिस इंसपैक्टर साहब हैं; इस इलाके में आए इन्हें कुछ ही महीने हुए हैं, लेकिन थोड़े से ही समय में हम दोनों बरसों के से हिले-मिले हो गए हैं।'

अंजना ने गौरव के साथ थोड़ा-सा सिर झुकाया।

'अच्छा राजा साहब, अब चलें। आप खूब मिल गए। हवेली पर गए तो आपके कारिंदों ने जब तक चाय-पानी नहीं कराया, आने नहीं दिया। कोऑपरेटिव का राघवन भी आपके गाँव में मिल गया था। वह आगे [illegible]

नमस्ते करके सिगरिट मुँह में दाबे [illegible]

हुआ चला गया। देशराज ने तुरंत गाड़ी चलती की।

अंजना ने कहा, 'ये सब और आ जाते वहाँ, तो बस सेब-पेटी का बंटाढार ही था।'

'इसको देखते ही मुझे तो लगा, कहाँ से कमबख्त आन मरा। तुम्हें बहुत घूर रहा था। क्या कहीं मिला है पहले कभी?'

'हो सकता है। कुछ-कुछ याद आ रहा है। किसी यात्रा में इसको भी कला का थोड़ा-सा सेंक देना पड़ा हो।'

'तभी!' दोनों हँस पड़े।

सड़क पर कहीं गाय, कहीं भैंस और कहीं छोटे-छोटे बछड़े मिलने लगे। उनमें शायद ही कोई दर्शनीय हो। बरसात के चरे-पिये होने पर भी अपने लिए संकट और मोटरवाले के लिए तो पूरी विपद् ही। चरवाहे छोकरे कहीं गुल्ली-डंडा खेल रहे थे और उनके जानवर सड़क पर आवारा घूम रहे थे। देशराज खिसियाहट-भरी सावधानी के साथ मोटर चलाने लग गया और अंजना जानवरों पर से अपनी ग्लानियुक्त दृष्टि हटाकर कुछ दूरी के घने बिखरे जंगल को देखने लगी, जो खेतों की हद से लगे हुए थे। जंगल के पीछे ऊँचे भरे-पूरे पहाड़—आनेवाली शरद् ऋतु की प्रतीक्षा में धूप की मार से सन्न-से खड़े थे।

थोड़ी देर में वे सुहाना पहुँच गए।

गाँव के बच्चे हा-हा हू-हू करते हुए मोटर के पीछे दौड़ पड़े, जो वयस्क खेतों पर नहीं गए थे वे भीतर हो गए—कौन राम-राम करके किसी बेगार को सिर ले!

हवेली के आँगन में पहुँचते ही जगनू आ गया। अंजना को झुककर जुहार की।

'अच्छे हो जगनू?' अंजना ने दुलार-सा किया।

'सरकार की दया से।' कहकर जगनू सामान की सँभाल में लग गया।

'देवीजी का सामान अतिथि-सदन में,' देशराज ने आदेश दिया और चबूतरे पर चला गया।

अंजना सामान रखवाने लगी। मोटर के पीछे से हरे रंग की सेब-पिटारी विशेष सावधानी के साथ अतिथि-सदन में रखवाकर अंजना भी चबूतरे पर आ गई। गाँव के बालक मोटर के आगे, पीछे, पायदानों पर से उसका निरीक्षण-परीक्षण करने लगे, जैसे पहले कभी न देखी हो।

देशराज चिल्लाया, 'अबे जगनुआ, निकाल इन भूतों को! लगे कस के दो-दो धप्पे!!'

जगनुआ दौड़ा। बालक भाग गए। एक जो जरा बड़ा था, कहता गया, 'ऐसे तो पुलिसवाले भी नहीं [illegible] कुड़की कर ले गए।'

चबूतरे पर रेडियो सेटवाली मेज तो थी, परंतु वह पलँग और मैला-कुचैला तकिया-चादर न था। उसकी जगह एक बढ़िया पलँग, जिस पर रंग-बिरंगा कीमती मुलायम कालीन स्वच्छ सफेद चादर से ढका हुआ और सिरहाने आबदार रेशमी नरम तकिया। एक ओर कायदे से लगी हुई नए वार्निश की कुरसियाँ।

वे दोनों कुरसियों पर बैठ गए।

जगनू चबूतरे के नीचे चुपचाप आ खड़ा हुआ।

'खाना जरा देर में,' कहकर देशराज ने उसे वहाँ से बिदा किया।

'अब तो, मेरी अमरबेल,' देशराज ने हँसते हुए ऊपर की ओर देखकर अंजना से कहा।

वह भी हँसी।

'तुमने भी मेरा क्या उपनाम रखा। कहाँ तो वह पत्तों पर छाई हुई बेल, न जिसकी जड़, न कुछ; और कहाँ मैं धरती में गड़ी हुई-सी!'

'जिस पर छा जाती हो, बिचारा तड़पता ही रह जाता है; पर पाता कुछ नहीं। और एक मैं, जिसके लिए यह उपनाम बिलकुल सार्थक है—मेरी सदा लहलहाने-लहरानेवाली बेल। है न?'

'तुम्हारे वे खब्ती मित्र तुम्हें कवि कह गए हैं न।'

'हम दोनों को, भूलो मत, रानी।'

'अगर कहना ही है तो अंग्रेजी में डार्लिंग कहो।'

'यहाँ अपना राज्य है, कोई सुननेवाला नहीं बैठा है। और फिर मेरा मन बाँसों उछल रहा है न।'

'अच्छा, यह सब फिर, मेरे सरकार! पहले काम की बातें। याद रखना चाहिए कि दो-दो लाख गाँठ में किए बिना मन का दो-चार इंच भी उछलना कुछ यों ही-सा है।'

देशराज ने हामी का सिर हिलाया।

अंजना ने काम की बात शुरू की, 'उस झील का क्या नाम है, जहाँ बरसात के पहले गए थे?'

'धवलसागर।'

'हाँ, धवलसागर झील पर कल संध्या के लिए पिकनिक* तय करो। रात भी वहीं रहेंगे। शिकार होगी। राजा बाघराज को भी नाहरगढ़ से बुला लो। यदि वे किसी कारण से वहाँ कल न पहुँच सकते हों, तो जब आ सकें तक के लिए वहाँ का कार्यक्रम रख दो। डेरा-तंबू उन्हीं का आना चाहिए।'

---

*पिकनिक – गोट

'बेशक। अभी तारघर से जरूरी तार देता हूँ। नाहरगढ़ में तारघर है।'

'थोड़े दिन पहले तक रियासत थी। आज हाथ में बिचारों के केवल किला है!' अंजना ने साँस भरी।

देशराज ने तार का आयोजन कर दिया। थोड़ी देर बाद नाहरगढ़ से स्वीकृति का उत्तर आ गया।

: ५ :

दूसरे दिन संध्या के पहले वे दोनों जगनू को साथ लेकर धवलसागर झील पर गोट करने के लिए चल दिए। आठ-दस कोस की दूरी थी। मार्ग जंगल और पहाड़ों में होकर गया था। छोटे-बड़े नाले भी पड़ते थे, पर जंगल विभाग ने रास्ता बना-सुधार लिया था और ढाल के नीचे नालों की तली को लक्कड़ों से पाटकर समतल करने के लिए मिट्टी बिछा दी थी। मोटर पचास मील प्रति घंटे की गति से चलाई जा सकती थी, परंतु देशराज धीमी लिये जा रहा था।

ऊँचे पेड़ों की लंबी छाया के झरोखों में होकर खरी सुनहरी किरणें पेड़ों के पल्लव-दलों को चुमकारती-चमकाती, झूमती हुई अधपकी घास के साथ इठला-सी रही थीं। कहीं एक ओर भारी-भरकम पेड़ों से लदा हुआ, जगमगाता हुआ पहाड़, तो दूसरी ओर खड्ड और घाटी। सूर्य की किरणें मानो उन खड्डों और चौड़ी-सँकरी घाटियों में चुपचाप कोई रस सींच रही हों। घाटी में सड़क यकायक उतार पर आती तो लगता जैसे मोटर अब गई, अब गई; जब मार्ग सीधे चढ़ाव पर आता तो लगता मोटर को धकेला किसी ने नीचे। मोटर की भड़भड़ाहट के मारे पक्षी चाँय-चाँय करके इधर-से-उधर भर्रा जाते थे। अंजना सोचती थी, शायद कोई जंगली जानवर सड़क पर या दाएँ या बाएँ दिखाई पड़े; पर ऐसा नहीं हुआ। आगे एक छोटा-सा गाँव मिला। गाँव क्या था, सहरियों की पर्ण-कुटीरों का समूह, जिसमें नंगे बालक और अधनंगे नर-नारी दुर्बल, श्यामकाय। केवल युवकों की आँखों में तेज। गाँव के आसपास विस्तृत खुली हुई भूमि जंगल को काटकर कोयला बनाने के कारण विदेह-सी हो गई थी। थोड़े से खेत खेती के योग्य, बहुत से काँस से ढँके हुए। काँस फूल गया था। उसके फूल सूर्य की किरणों से ठिठोली-सी करते हुए मानव की मूढ़ता पर मानो हँस रहे थे।

जब मोटर गाँव से आगे निकली, अंजना ने गाँव की गरीबी को देखकर एक कराह छोड़ी, शायद फूस और पत्तों से ढँके मकानों से कोई बदबू आई हो। देशराज से कहा, 'ये बिचारे इन जंगली घाटियों में मरते-सड़ते रहते हैं। यदि शहरों में पहुँच जाएँ तो पेट-भ[illegible] शहर में मजदूरों-नौकरों का अकाल

[illegible]

'ये लोग ईमानदार भी बहुत होते हैं। बड़े बहादुर और कट्टर।' देशराज बोला।

'शहरों में क्यों नहीं चले जाते? यहाँ कंद, मूल, फलों और कभी-कभी मिल जानेवाले अनाज से तो कुछ ज्यादा ही पा जावेंगे वहाँ।'

'कमबख्त हैं। मूर्ख हैं। जिद्दी नंबर एक। यहीं गड़ना-सड़ना पसंद करते हैं।'

दोनों के लिए सहरियों की समस्या यहीं समाप्त हो गई।

फिर जंगल और पहाड़ और वैसा ही एक गाँव। सूर्य की किरणों का तीखापन कम होता जा रहा था और सुनहलापन बढ़ता जा रहा था, वनराशि और भी अधिक ठाठदार—जैसे उन्हें उन झोंपड़ीवालों या इन मोटरवालों से कोई भी सरोकार न हो।

दो पहाड़ों की दून में प्रवेश करते ही देशराज बोला, 'आ गए, आगे धवलसागर झील है।'

'मुझे भी याद है। झील की शान यहीं से शुरू हो गई है।' अंजना ने हर्ष प्रकट किया।

दो पहाड़ों के बीच में चौरस था। पेड़ भी कम, क्योंकि धरातल चट्टानी था। मिट्टी कभी की बहकर झील में सरक चुकी थी। मार्ग एक ओर से पहाड़ के नीचे-नीचे मोटे-तगड़े हरे-भरे पेड़ों में होकर मुड़ता हुआ गया था। जैसे ही मोड़ समाप्त हुई, सामने विस्तृत धवलसागर झील। जहाँ से यह लोग आए थे वहाँ से दून का ढाल, फिर तीनों ओर पहाड़, दूसरी दिशा में दो पहाड़ों का जोड़ कुछ नीचा पड़ गया था। ढाल उसका झील की ओर था। झील के एक किनारे धवलसागर नामक गाँव भी था। गाँव में एक पक्का मकान, कुछ खपरैल, बाकी वे ही पर्ण-कुटियाँ। पक्का मकान एक ठाकुर का था जो पहले गाँव का मालिक था। अब उसकी केवल थोड़ी-सी सीर थी। गाँव, दूर रहनेवाले एक महाजन के घर चल दिया था!

बाईं ओर झील के जल का विस्तार। किरण उसमें रमी जा रही थीं। दाईं ओर पेड़ों की सघन झुरपुट। मोटर बहुत धीमी हुई।

अंजना को अचरज हुआ—'राजा साहब का तो यहाँ कोई चिह्न-चाक नहीं!'

'वह देखो, मेरी दाईं तरफ उन पेड़ों के पीछे तंबू खड़ा है और राजा साहब बढ़े चले आ रहे हैं। मैंने रास्ते में मोटर की लीकें देखी थीं।' देशराज ने कहा।

दोनों उतर पड़े।

जवानी से कुछ आगे निकला, लंबे छरहरे शरीरवाला, रीढ़ थोड़ी झुकी हुई, लंबी सीधी नाक, उमेठी हुई मूँछें, लाल बड़ी आँखें, खाकी बुशशर्ट और कत्थई मखमल की पतलून—यह था नाहरगढ़ का राजा बाघराज। कुछ क्षण अभिवादन और स्वागत की गूँजें उस घने जंगल और निश्शब्द धवलसागर के किनारे को गुँजाती रहीं।

जगनू ने सामान उतारा। सुर्ख सेबों [illegible] देशराज

ने [illegible] 'यह लीजिए, [illegible]'

बाघराज हँसा, 'हाँ, इनके चमत्कार का फल।'

अंजना ने अपने चमत्कार को और भी दमक दी, 'बड़ी मुश्किलों और जोखिमों में होकर आए हैं ये। इनके बचाने में भी बुद्धि लड़ानी पड़ी।'

उसकी चितवन में मद छलका।

राजा ने जगनू को आदेश दिया, 'सामान उस रावटी में रख दो। मोटर को उन पेड़ों के पीछे ले जाओ। वहीं हमारी लारी और सिपाही, नौकर हैं। तुम उन्हीं की छोलदारी में ठहरना।'

जगनू ने चुपचाप आदेश का पालन किया। सामान पास की रावटी में रख दिया गया। रावटी में चार खंड थे—एक बीच में, दो बगल में, एक पीछे। बीचवाले में टूटदार मेज-कुरसियाँ थीं, एक पलँग। एक बगलवाले में, एक और दूसरे में, तीसरा चौथे में।

चाय आ गई। चाय लानेवाले दरबारी सेवकाचार के साथ बाहर चले गए।

'चाय के साथ सेब।' बाघराज ने अर्थपूर्ण कटाक्ष करके कहा।

'हाँ-हाँ, अभी लीजिए। लाए भी तो हम लोग आपके ही लिए हैं।'

अंजना विजयिनी मुसकान के साथ बोलकर तुरंत खड़ी हो गई। तंबू के द्वार की ओर मुँह करके एक आँख की त्योरी का इशारा किया और तंबू के उस खंड में चली गई जहाँ उसका और देशराज का सामान रखा गया था।

देशराज ने बाहर खड़े नौकर के लिए सहानुभूति पेश की, 'ये बिचारे काहे को खड़े रहें। जरूरत पड़ी तो बुला लेंगे।'

'हाँ-हाँ, वैसे वे निजी स्टाफ के लोग हैं।' राजा ने उस सहानुभूति का साथ न देकर उन पर अपना विश्वास प्रकट किया।

निजी स्टाफ के लोगों ने एक-दूसरे से बाहर के उजाले में मर्म की निगाहें बदलीं।

राजा ने उनसे कहा, 'जब जरूरत पड़ेगी, बुला लेंगे।'

वे लोग चले गए। अनुमान लगाया कि यह अप्सरा इन दोनों के जोड़ की कड़ी है, कुछ दाल में काले के लिए आई है।

अंजना थोड़े से सेब ले आई। सामने रखते ही महक फैलने लगी।

'जैसी आप स्वयं वैसे सेब,' बाघराज मुसकराया।

अंजना ने रावटी के द्वार की ओर ताका।

देशराज ने बताया, 'वे लोग चले गए हैं।'

अंजना स्वयं द्वार तक जाकर देख आई। नौकर चले गए थे। पहरेदार थोड़ी दूर था।

सेब खाए जाने लगे। उनकी प्रशंसा हुई।

अंजना ने कहा, 'अनेक कठोर परिस्थितियों से गुजरकर इन्हें ला पाई हूँ।'

'सुनने में किन शब्दों में [illegible]

'यहाँ नहीं। झील किनारे चलें, तब वहीं। सूर्यास्त के समय अच्छा लगेगा।' अंजना ने मद-भरी चितवन में सावधान किया।

चाय से निबटकर वे तीनों थोड़ी दूर झील-किनारे एक चट्टान पर जा बैठे। पीछे घना जंगल था।

अस्ताचल जानेवाले सूर्य की रश्मियाँ झील की लहरों पर रंग-बिरंगी रेखाएँ रचे जा रही थीं। चिड़ियाँ अपने नीड़ों को और मछलियाँ साँस लेने के लिए पानी के ऊपर बार-बार आकर धीमी-सी डुब्ब कर रही थीं। भुनगे आँखों पर और मच्छर खुले अंगों पर भनभनाकर आ रहे थे।

'खालिस माल कितना है पेटी में?' बाघराज ने पूछा।

देशराज ने तुरंत उत्तर दिया, 'बीस सेर।'

अंजना ने आँखें फिराकर पूर्ति की, 'बीस हजार रुपए का।'

'असल खरीद यानी असल पड़ता?' दूसरा प्रश्न।

अंजना ने ब्योरा दिया, 'इकट्ठा करने का खर्च, कीमत, छोटी-मोटी रिश्वतें, मार्ग-व्यय छः सौ रुपए सेर बैठा है, वैसे भाव तो हजार का है।'

जिस समय अंजना ब्योरा दे रही थी, सूर्य की किरणें उसके रूप पर जिस कोण से पड़ रही थीं, उनसे वह अनाकर्षक, असुंदर और उच्चाटन करनेवाली प्रतीत हो रही थी। बाघराज को ऐसा ही लगा।

'माल साफ है या उसमें मिलावट है?' तीसरा प्रश्न।

उत्तर मिला, 'बिलकुल स्वच्छ। बर्मा, मलाया, सिंगापुर, इंडोचाइना, कहीं के लिए भी, अपने बंदरगाहवाले मित्र हजार के भाव ले लेंगे।'

'बहुत प्रयत्न करना पड़ेगा,' राजा को कुछ अखर-सा रहा था।

'यहाँ तक जो कुछ और जैसे मैंने कर पाया है उससे अब अधिक कुछ नहीं करना पड़ेगा,' अंजना ने कहा।

अंजना के चेहरे पर कोई मिठास न थी, पर कोकिल-कंठी थी; स्वर में प्रखरता नहीं आने दे रही थी।

राजा को घुलना पड़ा, 'ठीक कहती हो। डेरे पर चलकर माल ले लूँगा। रुपए ले आया हूँ।'

देशराज ने हँसकर कहा, 'और सेब अपने राजा की नजर भेंट।'

वह भी हँसा, 'बीच में जिन्हें कोई भी नहीं पा सका।'

बाघराज ने उन परिस्थितियों की कहानी पूछी जिनमें से निकलकर आने का अंजना ने संकेत किया था। अंजना ने बताया [illegible] रूप, नखरे और संगीत के करिश्मों से भिन्न-भिन्न विभ[illegible]

सूर्यास्त हो गया। पहाड़ों के पीछे से और तलहटी में अँधियारा सिमटता चला आ रहा था। भुनगे कहीं जा चिपके थे और मच्छर कहर-सा बरसा रहे थे। पहाड़ की चोटियों पर धीरे-धीरे मंद पड़नेवाला उजियाला ऊँघ-सा रहा था।

वे तीनों चलने को हुए कि सघन पेड़ों के पीछे से बंदूक लिये, कारतूस कसे एक नाटा, तगड़ा, साँवला व्यक्ति इनके सामने आकर जुहार करके खड़ा हो गया। उन तीनों का पूर्वपरिचित था। बाघराज ने साधारण संरक्षकता के भाव से, देशराज ने हँसकर और अंजना ने भीतर-भीतर सिकुड़कर उसका स्वागत किया। अंजना की आँखें ऐसी हो गईं जैसे गुलाब के फूल में से कोई काला कीड़ा निकल पड़ा हो।

बाघराज ने कहा, 'माल आ गया है, कालीसिंहजी। बंदरगाह के पड़ोस तक पहुँचाने का काम तुम्हारा। वहाँ अपना आदमी रहेगा। दाम वसूल करके दे देगा।'

यह कालीसिंह था। कुख्यात डाकू। कई कत्ल और डाके के अपराध उसके सिर थे। बड़े-बड़े उससे थर्राते थे। पुलिस उसके पकड़ने या मारने के लिए बहुत सचेष्ट थी, परंतु अब तक सफल नहीं हो पाई थी। बाघराज का नातेदार होता था। ऊपर-ऊपर देखनेवाले को उसके चेहरे पर पाशविकता नहीं दरस सकती थी। कुरूप भी नहीं था। आँखें छोटी और पैनी। नथुनों से भीतर की निर्दयता और ठोड़ी से अदम्य निश्चय परख में आ सकता था।

'माल कब मिलेगा?' कालीसिंह बोला। उसका स्वर मुलायम था।

'कल। शिकार में मिलूँगा,' बाघराज ने स्थान और समय बताया।

कालीसिंह ने जुहार किया और अंजना के गले पर आँख फेरता हुआ अदृश्य हो गया।

डेरे की ओर आते हुए देशराज ने कालीसिंह का यश बखाना, 'छोटा-सा कद, साँचे में ढली देह, मीठी वाणी, संगीत का प्रेमी, कितना अदम्य और वीर!'

'हूँ, हूँ।' अंजना के मुँह से निकला। वह सोच कुछ और रही थी।

'गजब का फुर्तीला और बहुत थोड़ा बोलनेवाला,' बाघराज ने बात समाप्त करनी चाही।

'जी?' अंजना जैसे चौंक पड़ी हो।

बाघराज ने कहा, 'भोजन-ब्यालू के बाद कुछ गायन होगा न?'

हँसकर बोली, 'थकी हुई हूँ, मन नहीं चाहता। फिर कभी सही।'

डेरे पर लालटेनों और मोमबत्तियों का प्रकाश कर दिया गया था। जब वहाँ पहुँचे तो आज्ञापालन के लिए नौकरों को डेरे के बाहर पाया।

बाघराज ने आदेश दिया, 'आध घंटे बाद। अभी अपने तंबू में जाओ।'

वे लोग चले गए।

'मैं किन शब्दों में अ[illegible] की[illegible] [illegible]शराज ने सुझाया।

अंजना प्रसन्न, 'हाँ, हाँ।'

वे तीनों रावटी के उस खंड में गए जहाँ देशराज और अंजना का सामान रखा था। अंजना ने सेबों की हरी पेटी खोली, सेब बाहर निकालकर रख दिए। पेटी के बीचोंबीच एक पेटी उसमें जड़ी थी। उसको खोलकर चिकने कागजों में लिपटे हुए बीस पिंड निकाले गए।

यह अफीम थी।

तौल-काँटा वहाँ था। बाघराज ने तौली। ठीक बीस सेर—'खालिस माल।' सेबों की महक उस समय शायद किसी को भी परेशान नहीं कर रही थी!

बाघराज अपने एक बड़े बक्से में से चमड़े की एक नुमायशी संदूकची लाया और बारह हजार के नोट उन दोनों को गिना दिए।

मद-भरी, तिरछी चितवन, उकसानेवाली मुसकान और पंचम के स्वर में अंजना ने बाघराज से कहा, 'और यह अटैची? सेबवाली हरी पेटी आप ले जाइए। माल उसी में रहे तो ठीक रहेगा।'

बाघराज सहमत था ही, 'आपके लिए ही अटैची लाया हूँ। हरी पेटी तो वैसे भी ले जाता। फल तो आप मेरे ही लिए लाई हैं न?'

'निःसंदेह,' अंजना की चितवन में और भी मद। देशराज भी बहुत प्रसन्न था। अंजना ने रुपए अटैची में रख लिए। बाघराज ने अफीम के पिंड अपने बक्स में।

थोड़ी देर बाद ब्यालू हुई और फिर एकांत में बातचीत—नौकर खाने-पीने में लग गए। अंजना प्रेम का अभिनय कर रही थी। जैसे बाघराज कोई पशु हो और प्यार के साथ बलिभूमि पर ले जाना चाहती हो। बाघराज की हँसी और मुसकान किसी मशीन की तरह चलती और बंद होती। देशराज जानता था कि कोरा अभिनय है, जैसे किसी फिल्म स्टूडियो में चलचित्र के निर्माण में होता है। बाघराज का मन भविष्य की उलझनों और समस्याओं की ओर खिच-खिच जा रहा था—पुलिस उसके यहाँ से हाल ही में लौटी थी, कालीसिंह नाक के नीचे जैसे था; बारह हजार खजाने में से करवट ले गए थे और अब उस 'माल' को अधिक-से-अधिक दामों में खपाने की समस्या सामने थी।

'कालीसिंह को शायद आपकी जरूरत किसी समय पड़ जाए।' बाघराज ने अपनी एक समस्या के सुलझाव की बात अंजना से कही।

अंजना का भाव एकदम ठंडा पड़ने को हुआ। तो भी उसका कुछ अवशिष्ट बाँधे हुए बोली, 'कैसे?'

'आबकारी पुलिस इत्यादि के अफसरों को [illegible] माल निकाल ले जाने के लिए।'

'पर पहले तो कभी जरूरत नहीं पड़ी।'

'शायद आगे भी न पड़े, पर पुलिस अब कालीसिंह के पीछे पड़ गई है; वह अत्यंत निडर और सावधान है। फिर भी आपका सहारा मिलता रहेगा तो उसकी छाया के साथ आपकी छाया मिलकर हमारे और उसके कारिंदों को बहुत सहारा देती रहेगी।'

'मैं भी नहीं डरती। माल इकट्ठा करके इतनी बार मैं और देशराज यहाँ तक आए जो अधिक संकट की बात है। अब तो बंदरगाह तक पहुँचाना-भर ही रह गया है।'

'हाँ-आँ, मुझे कोई हठ नहीं, परंतु अटक-भीर के समय के लिए आप यहीं कहीं पास-पड़ोस में बनी रहें तो बहुत अच्छा होगा।'

अंजना का लुभावनापन लौट पड़ा—तिरछी मदीली चितवन, मुसकान गड़नेवाली। बोली, 'जब तक हमारे कारिंदे उधर उत्तर-पूर्व और उत्तर-पश्चिम में माल का संग्रह करेंगे। मैं देशराज के साथ रहूँगी, कभी-कभी आपके पास हो जाया करूँगी।'

बाघराज ने कहा, 'मेरा अहोभाग्य।' परंतु शब्दों का भाव भीतर की तली से नहीं निकला था।

देशराज चुपचाप सिगरिट पी रहा था जैसे फिल्म निर्माण के समय कोई निर्देशक अपने किसी प्रिय पात्र के रंग-ढंग की परख कर रहा हो। सोचा, अब मुझे कहना चाहिए।

'राजा साहब, हम तीनों दो-दो लाख रुपए कर लें तो फिर कोई खुला व्यवसाय ढूँढ़ें। आप कोई मिल खोलने जा रहे थे न?'

'हाँ, परंतु दो लाख रुपए से क्या बनता है? उसके लिए तो दस-बीस लाख भी कम बैठेंगे।'

'आपके पास पहले का जो बहुत-सा होगा?'

'जेवर और जवाहरों में है—पुरखों के पराक्रम की निशानियाँ हैं। फिर बेचने में बदनामी। आप लोग क्या दो-दो लाख पर ही संतोष करके बैठ जाएँगे?'

'नहीं तो,' अंजना हँस पड़ी, 'यह तो कम-से-कम है।'

देशराज बोला, 'मतलब यह कि संकट के काम जितनी जल्दी कम कर दिए जाएँ, उतना ही अच्छा।'

राजा को अफीम के अवैध व्यवसाय के संकटों की चर्चा स्थगित करनी पड़ी। दूसरे मजेदार संकट की बात उठाई।

'यहाँ पड़ोस में शेर, भालू, जंगली भैंसे, बड़े खिसारे सुअर बहुतायत से हैं। कल हाँके में चलो न।'

'कल हम लोग चले [illegible] हैं।'

[illegible] पहले ही से सब तैयार कर रखे हैं।

बगलवाली खाँदी से जानवर निकलते हैं। बिजली की बैटरी और बत्तियों का प्रबंध है। एक मचान पर आप दोनों और एक पर मैं। सवेरे लौट पड़ेंगे।' बाघराज के स्वर में आग्रह था।

अंजना प्रयोजन-भरी अँगड़ाई लेकर हँसी। उसकी इस क्रिया पर बाघराज की दृष्टि गई। बोली, 'दिन-भर की थकी, मेरे लिए तो मेरे पलँग का मचान भला। आप लोगों की इच्छा हो तो खेल आइए शिकार।' उन दोनों ने अपनी हिलती-डुलती इच्छा प्रकट की, अंजना ने उसे अपने प्रति शिष्टाचार माना। कहा, 'पहरेदार तो हैं ही डेरे की रखवाली के लिए। आप लोग जरूर जावें। आपका स्टाफ भी जान जावे कि हम लोग यहाँ सेब खाने-खिलाने मात्र के लिए जमा नहीं हुए हैं।'

उसको बड़ी सतर्कता के साथ बारह हजार की उस पेटी की रखवाली की पड़ रही थी—और वह शिकार के मचान पर कालीसिंह से मिलना भी नहीं चाहती थी; कौन ठीक 'शायद आ जावे, यद्यपि बाघराज ने 'काम के लिए' उसे दूसरे दिन बुला रखा था। फिर, गाँठ की नकद रकम और वह 'माल' जिसके बिकने पर हिस्से का मुनाफा भी मिलना था। पहरेदारों के भरोसे कौन छोड़े! कहीं ऊँघ गए तो—?

बाघराज और देशराज शिकार के लिए चले गए। अंजना सावधानी के साथ रात-भर सोती-जागती रही। प्रातःकाल के उपरांत वे दोनों मुँह डाले आ गए। जानवर मचानों के पास से नहीं निकले थे।

चाय पीकर अंजना और देशराज सुहाना के लिए चलने को हुए। एक दूसरे से हँसते हुए बिदा ली। अंजना ने बाघराज की आँखों में अपनी नुकीली चितवन और सजीली मुसकान बिठाई; शायद देशराज की निगाह बचाकर। पहले भी उसकी चितवन और मुसकान को देखा था—कदाचित् उतनी मात्रा में नहीं।

वे चल पड़े।

धूप तेज थी। जंगल-पहाड़ की हवा ठंडी। सागौन के वृक्ष फूलों से लद रहे थे जैसे आनेवाली शरद् को, पाँवड़े डालकर आकाश-मार्ग से बुला रहे हों।

अंजना और देशराज एक बड़ी विजय के हर्ष में भविष्य के कार्यक्रम का ताना-बाना तैयार करते जा रहे थे।

ठंडी हवा में धूप की तेजी को डुबोकर बाघराज ने हाँके का प्रबंध किया। उसके संगी सोचते थे कि अंजना और देशराज हाँके की शिकार में सहयोगी नहीं बने तो आए ही काहे के लिए थे? कालीसिंह ने भी बाघराज से यही पूछा था, जब वह जंगल में माल के भुगतान के लिए उससे अकेले में मिला। किसी को संतोषजनक उत्तर मिला और किसी को नहीं।

: ६ :

थोड़ा-सा पानी बरस गया। धरती की छाती फूल उठी। जिन किसानों ने बहने के लिए हल-बखर से जिमीन लौट-पौट कर पटेला देके एक-सी कर ली थी उनको भी वह रिमझिम प्यारी लगी। जिनके खेतों का कलेजा कठोर था वे तो उतने से ही पानी में अमृत का-सा घोल पा गए। जैसे ही मिट्टी ताव पर आई, किसान बीज डालने के लिए बेचैन हो उठे। जिनके घर में बीज था उनकी बेचैनी उत्साह का ही एक रूप थी, पर थे ऐसे थोड़े ही। जिनकी गाँठ में कुछ नहीं था, बोहनी का निकट आनेवाला समय काठ-सा मार-मार जाने लगा। बीज तो था ही नहीं, पेट भरने के लिए भी अन्न की कमी डसने लगी। उन दोनों गाँवों में ऐसे किसान अधिकांश थे।

देशराज के भंडार से बीज और खवाई के लिए अन्न बहुत समय से मिलता आया था, परंतु जैसे-जैसे स्वाधीनता-प्राप्ति का आंदोलन बढ़ा, बीज और खवाई के लिए अन्न देने के व्यवसाय की सीमाएँ सिकुड़ती चली गईं। स्वाधीनता-प्राप्ति के दिन से तो वे सीमाएँ बहुत ही संकुचित हो गईं। जिन किसानों पर पूरा विश्वास था केवल उन्हें उस व्यवसाय का क्षेत्र बना लिया गया। अन्य किसानों के लिए थोड़े से ठोस किसान साहूकार बन गए।

हवेली के पिछवाड़े देशराज के गल्ले का भंडार था—टीनवाले टपरों के सामने लंबा-चौड़ा मैदान, जो एक दीवार और फाटक से घिरा था। इस अहाते में उसका अन्न-गोदाम था। सवेरा हो चुका था, मैदान में कुछ बैलगाड़ियाँ थीं और टपरों के नीचे अनाज के ढेरों पर लौ लगाए हुए बहुत से किसान, तौलनेवाला और देशराज का कारिंदा कुंजीलाल—उतरती अवस्था का दुबला-पतला काइयाँ वहाँ बैठा था। कुंजीलाल के सामने बहीखाता था जिसके बंध पर सिंदूर का मोटा स्वास्तिक चिह्न दूर से दिखाई पड़ सकता था। निकट ही दावात-कलम—किसी पुराने युग की स्मारक।

किसान ने अपनी जरूरत बताई। कुंजीलाल कारिंदा ने संक्षेप में यथापात्र, बहस, डाँट-फटकार की, तौलनेवाले ने डाँड़ी मार-मारकर तौल की और कारिंदे ने बही में दर्ज कर ली। एक मन पीछे फिर भी पाँच सेर कम—दो सेर कारिंदे का हक-दस्तूर, एक सेर धर्मादा में, एक सेर उस टैक्स के लिए जो सरकार ने मालगुजारी के ऊपर जिमींदारों पर लगाया था, एक सेर सूखी बैटरीवाले रेडियो के लिए जो देशराज ने खरीदकर हवेली में लगाया था—बस।

दमरू काछी ने लंबी नाक के तुचके नथुने फैलाते हुए प्रतिवाद किया, 'रड्डो की खबरें और चीं-[illegible] कभी सुनता ही नहीं; दूर जो रहता हूँ।'

मैं किन शब्दों में अ[illegible] को [illegible]या है--और [illegible] बहुत मीठा था।

'अरे भाई, सुनता मैं भी नहीं हूँ ससुरे को परंतु और बहुत से सुनते हैं। राजा साहब अपने लिए तो लाए नहीं।'

'और यह धर्मादा क्या? पहले तो नहीं लेते थे।'

'बड़ी मुश्किल है। धर्म पर नाक-भौं बिचकाते हो! साधु, संत, मंदिर, पुजारी, इन सबके लिए धर्मादा है। और जमाने से लिया जा रहा है।'

'उधर डाँड़ी मार ली, इधर तुमने दो सेर हड़प लिया!'

'ओ भगवान्! हक्क-दस्तूर को हड़पना कहते हो!! जान पड़ता है बीज सवाई पर गल्ले का देना बंद कर देना पड़ेगा। इन्हें देखो, विक्रम महते को, जिन बिचारों ने चुपचाप तुलवा लिया और आधी बात भी नहीं की।'

विक्रम मौज के साथ चिलम पी रहा था। कश खींचकर खाँसते-खाँसते बोला, 'अरे क्यों वैसे ही लगे हो, दमरू? धरनीधर साहूकार के यहाँ जाओ तब पता चलेगा कैसे हँसते-हँसाते किसानों की खाल खरोंचता रहता है।'

दमरू के मुँह से कुछ निकलना चाहता था कि उसने होंठ दबोचकर गठरी बाँधी, गाड़ी पर रखी और चुपचाप चला गया।

'कुछ उजबक-सा है,' कारिंदे ने दूसरे आसामी का खाता खोजते हुए कहा, 'पर है खरा। पूरी सवाई समेत दाना-दाना लौटाता है।'

यह टीका अन्य किसानों की आलोचना को चुप करने के लिए हुई।

अनेक किसान तो चुपचाप लेकर चले गए, पर छदामी चमार अपने को न रोक सका। वह सुहाना क़े चमारों का मुखिया था, जिनकी संख्या उस गाँव में प्रचुर थी।

गहरा साँवला रंग, रग-पट्ठे भरे और तने हुए, छितराते नथुने, अधभूरे बाल। जब अनाज ले चुका, बोला, 'इन्होंने डाँड़ी मारी, तुमने अपना हक्क बटोरा, धरम करो तुम, नाज कटे हमारा! रड्डो का गाना सुनें दूसरे, कसर लगाई जाए हमारे पेट को! राजा से फरियाद करेंगे कि मिलता है छः पँसेरी और सवाई समेत लौटाना पड़ता है दस पँसेरी। इस फसल चूके तो दस पँसेरी की साढ़े बारह दूसरी फसल पर!'

'है कैसा!' कारिंदे ने उठते हुए क्रोध का दमन करके कहा, 'कैसा उलटा-पुलटा हिसाब लगाता है रे?'

वह कहता चला गया, 'अंधेर मचा रखा है, अंधेर! राजा से कहे बिना न रहेंगे।'

'बड़ा जड़ मूर्ख है! दस पँसेरी या पंद्रह पँसेरी, जो कुछ भी लौटेगा, मेरे या तौलनेवाले के घर तो जाएगा नहीं। हाय रे जुग! इन जैसों को कोई पँसेरी-भर भी नाज उधार न देगा, सो मैं दे देता हूँ मनों। होम करते हाथ जलता है अब तो।'

कुंजीलाल ने अपना माथा ठोका।

उसी समय हवेली की दूसरी ओर [illegible]

ध्वनि आई। गाना होता रहा। कभी मंद, कभी ऊँचे स्वर में।

कुंजीलाल ने रेडियो की कीमत वसूली का औचित्य बतलाया, 'इस पर जो गाना-बजाना हो रहा है अपने यहाँ कराना चाहो तो गानेवालों को हजारों रुपए देने पड़ें। एक बार के हजारों! और यहाँ, उस रेडियो का कान उमेठा नहीं कि मन चाहा सुन लो। वह भी मन पर एक सेर दे के! उसको यह गधा कहता है अंधेर!!'

गल्ले की नाप-तौल होती रही। कोई फिल्मी गाना रेडियो पर चल रहा था जिसकी लय में खवाई और बीज लेनेवालों के ऊँचे-नीचे स्वर, गाड़ियों के जाने की खड़बड़, कभी समाकर और कभी ऊपर उठकर चिनौती-सी दे रही थी।

जब वहाँ अकेला विक्रम रह गया, तब उसके किसी भाव ने भाषा पाई, 'जब लगान के साथ रेडियो का चंदा ले चुके, तब फिर यह मन पीछे एक सेर और क्यों काटते हो? मालिक सुनेंगे तो बिगड़ेंगे।'

कुंजीलाल ने बहीखाता समेटते हुए फुसलाया, 'अपने यहाँ पया* से तौल नहीं की जाती। जिमींदार या साहूकार पया से बीज खवाई देते हैं, नौ सेरवाले बरतन से देते हैं और दस-साढ़े दस सेरवाले से लेते हैं। अपने यहाँ काम बहुत साफ है। तराजू और बाँट से तौलते हैं। यह बिचारा (तौलनेवाला कुछ दूरी पर जा बैठा था) क्या खाय? थोड़ी-सी कोर-कसर लगा देता है तो कौन-सी बड़ी बात हुई? रेडियो का सालाना टैक्स देना पड़ता है जो गाँव की सेवा के लिए आया है। उसके लिए मन पीछे एक सेर ही तो है। भगवान् किसानों को एक बीज का सौ कर देते हैं। और देखो महते, तुम्हारे गल्ले में से तो एक दाना भी नहीं काटा जाता। हमारा बहीखाता देख लो।'

विक्रम का समाधान हो गया। वह अपना अनाज लेकर चल दिया।

कार्रिंदे ने बहीखाता बाँधा, बचे हुए अनाज में से कुछ तौलनेवाले का अलग कर दिया, बाकी भंडार में रखा, अपने हकवाला गठरी में बँधवाया, तौलनेवाले के हाथों अपनी गाड़ी में रखवाया और चलने को हुआ। तौलनेवाले ने अपना बाँधा और चला गया। कार्रिंदे का गाड़ीवान वहाँ न था। कार्रिंदा क्षुब्ध होकर उसे स्पष्ट और अस्पष्ट गालियाँ देकर ठहर गया।

इतने में अहाते के भीतर एक युवक आया। चेहरा-मोहरा ठीक, देह चुस्त, आँखें छोटी, पर जलती हुई-सी। ढीला पैजामा—पाँवचा जरा फटा और मटमैला—अद्धी कमीज, बिखरे लहराते बाल, पैरों में चप्पल।

उसको देखते ही कुंजीलाल का क्रोध समाप्त हो गया।

'आओ भैया टहल, आओ! बैठोगे—चारपाई निकालूँ?'

---

* [illegible] ...या है--आत [illegible]
में किन शब्दों में अ[illegible] कि[illegible]

टहलराम ने एक हाथ कमर पर रखकर गरदन आगे की और दूसरे हाथ की मुट्ठी तानकर जहर बुझे स्वर में कहा, 'इन गरीबों का खून चूसकर मोटे पड़ने में लाज नहीं आती तुमको!'

झिझक और झेंप को दबाते हुए कुंजीलाल हँसा, 'अरे भाई, मेरे सामने तुम्हारा जन्म हुआ था। कभी मोटापा देखा मेरे शरीर पर?'

'दिया चोंतीस सेर अनाज और लिख मारा बहीखाते में चालीस सेर! हक-दस्तूर!! धर्मादा!!! रेडियो का टैक्स!!!! और न जाने क्या-क्या?'

'तुमने अंग्रेजी पढ़ ली सो तुम्हारे लिए धर्म, कर्म, साधु, संत, मंदिर, पुजारी कुछ नहीं। सबको ही फाँसी पर चढ़ाने को फिरते हो। इन गरीबों को बीज खवाई के लिए हम गल्ला न दें तो ये सब बिना मौत मर जाएँ—'

'अब तो तुम सरीखे मरेंगे बिना मौत, मुनीमजी! वह लाल लहर उठ रही है जो तुम सरीखे सबको समेट ले जाएगी!'

'हः हः, मुनीमजी तो कहा बेटा तुमने—'

'करो अपना बहीखाता सही, नहीं तो जाता हूँ देशराज बाबू के पास—'

'तो पहले अपनी माताजी—घाटीवाली—के पास जाओ जो छोटे पैमाने पर यही काम हलके से बहीखाते में बड़ी सफाई के साथ करती हैं।'

'गलत। झूठ।'

'झूठ नहीं है, भैया टहल बाबू। कभी आऊँगा तो पुछवा दूँगा।'

हवा का रुख इसी ओर होने के कारण रेडियो का गाना स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा। किसी फिल्म में गाए गए गीत की रंगीनी।

कुंजीलाल ने तुरंत उसका ध्यान आकृष्ट किया, 'वाह! क्या भजन है!! कान पवित्र करनेवाला। तुमने भैया उनको देखा ही होगा—वे यहाँ कई बार आई हैं। अरे —देवीजी अंजना। जैसा रूप वैसा ही गुण। क्या कमाल का गाती हैं। हमारे तो पुरखों ने भी वैसा कभी नहीं सुना। जाओ न हवेली। रेडियो सुनो, फिर उनका भी।'

टहल एक क्षण के लिए क्षोभ और ग्लानि के बीच में झूल-सा गया। वह देशराज से शिकायत करने जा रहा था, कारिंदे को धमकी दे चुका था। धमकी का कोई प्रभाव न हुआ—कहता गया, जाओ वहाँ—गाना सुनने! कुंजीलाल के होंठों पर मुसकराहट!

टहल के मुँह से वाक्य फूट पड़ा, 'निर्लज्ज! निर्मम कहीं के!! जाता हूँ देशराज के पास तुम्हारी करतूत सुनाने।'

टहल जल्दी से चला गया।

कुंजीलाल ने मुँह बिदराकर गरदन ऊपर की [illegible] अहाते का फाटक बंद किया और उपेक्षा के साथ घर का [illegible]

: ७ :

बरगद की छाया में चबूतरे के ऊपर नए वार्निशवाली कई कुरसियाँ और एक मेज, जिस पर सूखी बैटरीवाला रेडियो सेट। एक कुरसी पर अंजना बैठी थी, दूसरी पर देशराज। रेडियो से गायन हो रहा था। मेज पर एक ओर बढ़िया सिगरेट का डिब्बा रखा था। चबूतरे के नीचे गाँव के कुछ लोग बैठे थे। गाना तो जितना भी सुन और समझ रहे हों, आपस में बातें कर रहे थे और कभी-कभी अंजना की भँवराली काली बिखरी हुई छोटी केश लटों पर आँख घुमा लेते थे। गाँव की स्त्रियाँ लंबे केश और दीर्घ जूट रखती थीं और अंजना अपने जब-तब कटवा लिया करती थी। वह उसका केश-कलाप था—जैसे चंद्रमा की दो-तिहाई गोलाई को छितराई हुई बदली ने घेर रखा हो।

देशराज ने देखा, फाटक से टहलराम आ रहा है, पीछे-पीछे छदामी। देखते ही भौंह सिकोड़ीं, फिर दृष्टि दूसरी ओर कर ली, जैसे देखा ही न हो, मानो रेडियो-संगीत में मग्न हो। जब टहलराम चबूतरे के निकट आ गया, देशराज यकायक मुड़ा। मुसकान बरसा दी। सारा आचरण आवभगत का।

'आओ भाई, आओ टहलबाबू।'

टहलराम कुरसी पर जा बैठा। देशराज ने रेडियो बंद कर दिया।

टहलराम का परिचय अंजना को दिया, 'स्कूल में साथ-साथ पढ़े हम दोनों, फिर कॉलेज में भी। इन्होंने सदा प्रथम श्रेणी में दर्जे पास किए, बी०ए० भी। फिर बड़े ओहदे के लिए परीक्षा में बैठे तो सरकार ने फेल कर दिया, क्योंकि सरकार को गरीब नहीं सुहाते—'

देशराज ने सरकार की निंदा कर ली और टहलराम की आर्थिक स्थिति भी सूचित कर दी। कुछ और कहता, पर टहल ने बीच में टोक दिया। अंजना की ओर उन्मुख होकर बोला—

'देशराजजी के पिताजी ने मुझे पढ़ने के लिए उत्साहित किया था। ऊँचा पद पाने की परीक्षा के लिए उन्हीं के कहने से बैठा था, लेकिन मैं अपने गाँव में राजनीतिक और सामाजिक काम करना चाहता था, इसलिए बेमन होकर परीक्षा दी और चित्त हो गया।'

टहलराम हँसा। चबूतरे के नीचे खड़ा छदामी जोर के साथ खाँसा। टहल की हँसी तुरंत सिकुड़ गई।

टहलराम ने उससे कहा, 'चबूतरे पर बैठ जाओ।'

छदामी चबूतरे पर [illegible] नीचे बैठ गया।

में किन शब्दों में अ[illegible] को [illegible]या हूँ--आत[illegible]थ कोई बला लाया है। आई बला को

टालने या कम-से-कम हलका करने के लिए उसने परिहास का वातावरण रचने की कोशिश की।

'मैं तो खेल-खिलवाड़ में बहुत मगन रहा, इसलिए कभी तीसरी से दूसरी श्रेणी नहीं पाई और ये तो जब देखो तब पुस्तकों से चिपटे रहते थे। फिर लगा मुझे संगीत का शौक और मिल गईं ये संगीत-सरस्वती अंजना कुमारी—इन्हें जानते हो न टहल बाबू?'

'देखा है, परंतु परस्पर परिचय आज के पहले कभी नहीं हुआ।'

'इन्होंने देश-भर में प्राचीन शुद्ध संगीत के प्रचार का बीड़ा उठाया है।'

'जितना बन पड़ता है, करती हूँ। साथियों की जरूरत है।'

'मैं भी इनके साथ घिसट रहा हूँ। टहल बाबू, आप भी अपने स्कूल में शुद्ध संगीत का आरंभ कराओ भाई।'

'क्या आपका कोई स्कूल है?' अंजना ने मीठे स्वर और शिष्ट ढंग से पूछा।

टहलराम अपने सिद्धांत की बात कहने में रुखाई, पैनेपन, दृढ़ता और कड़वाहट में कभी कसर नहीं लगाता था।

बोला, 'पास के गाँव बाँगुर्दन में, जहाँ मेरा घर है, एक स्कूल खोल रखा है। समाज की सेवा का व्रत लिया है और यही बालक-बालिकाओं को भी सिखलाता हूँ। जिसे आप लोग शुद्ध संगीत कहते हैं, वह केवल धन-संपदावालों के ऐश की चीज है। जनता का उससे कोई संबंध नहीं।'

अंजना को ठेस-सी लगी। ठेस को उसने अपनी मृदुल मुसकान में घोला। मद-भरी चितवन अर्ध-मुकुलित की। मानो यह कहकर विजय पा रही हो, 'सबको अपने-अपने मत के अनुसरण का अधिकार है।'

देशराज ने हँसकर ठेका-सा दिया, 'ये अराजकतावादी हैं। अपने वाद के खरे।'

'मैं अराजक नहीं, समूहवादी हूँ; रूढ़ियों के संहार और वर्ग-संघर्ष में विश्वास करनेवाला, पुनरुत्थानवादियों का घोर विरोधी—'

देशराज हँसा।

'एक ही बात है, कोई अंतर नहीं।'

'कैसे नहीं? संपत्तिवादी अंतर न देख पावें, यह और बात है।'

अब की बार छदामी जोर के साथ खाँसा।

'पर हैं ये भीतर-बाहर एक से साफ,' देशराज ने छदामी की खाँसी को दबाने का प्रयत्न किया, 'टहल बाबू, एक गीत सुनोगे अंजना देवी का? वैसा गीत नहीं जिससे तुम्हारी अनबन है, बल्कि लोक-गीत, जनता का गीत।'

छदामी खड़ा हो गया।

टहलराम ने तीखे कंठ से कहा, 'मैं [illegible]

भूखों को भोजन मिले, तब कहीं उन्हें कुछ और सूझे। यह गायन-वादन सब पलायनवाद है। जनता को अफीम खिलाने जैसा।'

अंजना को लगा जैसे वह कुरसी में धँसी जा रही हो।

'आप अपने सिद्धांत को समय-कुसमय प्रकट करने से नहीं चूकते। एक हम हैं जो सब तरह की बात पी डालने के लिए तैयार रहते हैं,' देशराज ने आहत-मर्मज्ञ की तरह कहा।

टहलराम ने जारी रखा, 'मैं आपके कारिंदे की शिकायत करने आया हूँ। इन गरीब दुखियों को बीज और खवाई के लिए गल्ले की जरूरत पड़ती है। कारिंदा मुश्किल से चोंतीस सेर अनाज देता है, बही में मन भर लिख लेता है और आनेवाली फसल पर, यानी तीन-चार महीने बाद ही, चोंतीस सेर का बावन, चौवन सेर वसूल करता है। अत्याचार की हद हो गई।'

अंजना बोली, 'मैं अपने निवास-स्थान पर जा रही हूँ। कुछ पढूँगी।' टहलराम की रिवाजी नमस्ते लेकर अंजना अतिथि सदन में चली गई।

'मैं कारिंदे से बात करूँगा,' देशराज ने कहा।

देशराज के शांत स्वर से घोर असंतोष बटोरकर टहलराम तड़का, 'क्या आपने यह सब बेकायदा काम करने की अनुमति कारिंदे को दे रखी है? क्या आपको मालूम है कि थोड़ी ही देर पहले इस छदामी से और दमरू इत्यादि गरीबों से कारिंदे ने अपना हक-दस्तूर, आपके रेडियो सैट का टैक्स, धर्मादा और न जाने क्या-क्या काटकर वसूल किया है?'

'क्यों रे छदामी?' देशराज ने पूछा।

'हाँ सरकार।'

'तो तुम हमारे यहाँ से लेने ही क्यों जाते हो? बाबू टहलराम की माताजी भी तो गल्ले का लेन-देन करती हैं, उन्हीं से क्यों नहीं लेते?'

छदामी चुप। टहलराम के आग-सी लग गई। उठ खड़ा हुआ।

बोला, 'लेकिन ऐसी बेईमानी कोई नहीं करता। यदि आप कारिंदे को नहीं रोकेंगे तो जल्दी वह दिन आ रहा है जब आपको बेभाव पछताना पड़ेगा।'

'कारिंदे से बात करूँगा।' देशराज ने बहुत संयम के साथ दुहराया।

'कर लेना बात। चलो छदामी। जितना पाया है, फसल के समय उससे एक दाना भी ज्यादा मत देना।'

टहलराम चल दिया। छदामी जरा-सा ठिठका। वह नहीं चाहता था कि बात इतनी बढ़े। उसने नम्रता के [illegible] ओर देखा। उसे देशराज की आँखें जलती-सी जान [illegible]

देशराज ने चबूतरे के नीचे बैठे ग्रामीणों को संबोधित किया, 'देखा तुमने? कितना इतराते हैं। हमारे पिताजी ने इनके पढ़ाने-लिखाने पर उतना खर्च न किया होता तो आज ये क्या करते होते–' भीतर का क्रोध सब ऊपर आ गया।

ग्रामीणों में से किसी ने कहा, 'अरे ये तो वैसे ही बकते रहते हैं।' कोई बोला, 'आधे सिड़ी हैं।' किसी ने कुछ, किसी ने कुछ मनुहार की।

उसी समय विक्रम आया। देशराज के मन ने लौट खाई। विक्रम का कुछ असाधारण स्वागत किया। विक्रम ने अपने को कुछ अधिक ऊँचाई पर अवगत किया।

'आओ भाई विक्रम, आओ।'

विक्रम चबूतरे पर बैठ गया।

देशराज ने उन ग्रामीणों की ओर मुँह फेरकर कहा, 'एक ये हैं जिन्हें टहलराम अपढ़-कुपढ़ कहते हैं और समझते हैं, पर जो कितने भले और सबके काम में आनेवाले जीव हैं।'

वे विक्रम को पहचानते थे, परंतु यह भी जानते थे कि वह जो करता है, परिस्थितियों में पड़कर, सभी वैसा करते रहते हैं। उसके संबंध में कुछ कहना भी चाहते तो कह नहीं सकते थे, क्योंकि देशराज का पिट्ठू था और ये कहीं-न-कहीं देशराज के दबे थे।

विक्रम को भास गया कि टहलराम से कुछ खटक गई है। उसने अपने अनुमान को साकार किया, 'अभी आए तो थे टहलू।' और देशराज से कुछ सुनने की प्रतीक्षा करने लगा।

देशराज ने टहलराम की बात अपने रोष में सानकर सुनाई और अपनी सफाई दी, 'मुझे नहीं मालूम कुंजीलाल कारिंदा ने क्या किया है। मुझे इतना समय ही नहीं मिलता कि सब बातों की जाँच-पड़ताल करता रहूँ। टहलराम छदमियाँ को लेकर बीज खवाई की तौल के बारे में कारिंदे की शिकायत करने आए थे।'

विक्रम बोला, 'मेरे सामने की बात है। मैंने भी बीज और खवाई के लिए गल्ला लिया था। मेरा तो एक दाना भी नहीं काटा और न कई एकों का। जो न दिहंदे हैं, जैसे छदामी, उन पर तो अंकुश रखना ही पड़ेगा।'

एक खेत की मेड़ को लेकर छदामी और विक्रम में घोर वैमनस्य था।

जगनू तेजी के साथ आकर बोला, 'मालिक, मुड़े सींगवाली भैंस मर गई है। चमारों से लाश उठा ले जाने के लिए कहा तो उन्होंने इनकार कर दिया।'

देशराज ने चिल्लाकर कहा, 'कौन-सी भैंस? कैसे मर गई? कब मर गई?'

'बुड्ढी भैंस, जो चल-फिर नहीं सकती थी।' उसने उत्तर दिया।

देशराज ने अपना पूरा गुस्सा उतारा, 'तेरे बाप का क्या गया? अभी वह एक-दो बिहान और दे सकती थी।'

जगनू का चेहरा नहीं बिगड़ा। वह गाड़ी या हल के बैल की तरह का नौकर था जिसको खाना, पीना, गाली, डाँट-फटकार इत्यादि भरपूर मिलते रहते थे और फिर भी काम करता रहता था।

विक्रम बीच में पड़ा, 'लाश कहाँ पड़ी है, जगनू?'

उसने बताया, 'हवेली के पीछे।'

झल्लाहट में देशराज ने कहा, 'समय पर चारा-पानी नहीं देता था; मरती नहीं तो क्या अमर बनी रहती?'

जगनू नतमस्तक खड़ा था।

विक्रम ने शांति बिखेरी, 'भैंसों पर इस साल किसी रोग या देवता का कोप है। बहुत दिन से घुल-सी रही थी। बुढ़ापे ने आ घेरा था। पर हाँ, खली, हरी घास, दिन में दो-तीन बार पानी पीने को मिलता तो कुछ दिनों और जी लेती, शायद देवता का कोप हो।'

जगनू का काम भैंसों की देखभाल करने का न था, पर देखभाल करनेवाले महींदारों के नियंत्रण का कुछ भार अवश्य उस पर था।

धीमे स्वर में देशराज ने कहा, 'अब खड़ा क्यों है? लाश के हटवाने का बंदोबस्त कर।'

'वही तो मालिक, वही तो कहने आया था। चमारों के मुखिया छदामी ने मना कर दिया है।'

'क्यों?'

'छदामी कहता है कि जात की पंचायत हो गई है। लाश नहीं उठाएँगे, क्योंकि खाल की अधौटी माँगी जाती है।'

'कितने ढीठ हो गए हैं ये लोग। सब ब्राह्मण-ठाकुर बनना चाहते हैं! हजारों-लाखों बरस के रीति-रिवाज एक दिन में मिटा डालना चाहते हैं!!'

चबूतरे के नीचे जो लोग बैठे थे उनमें से एक बोला, 'नहीं मालिक। हम लोग जाकर मिसल लगवाए देते हैं। चलो जगनू हमारे साथ।'

वे सब जगनू को लेकर चले गए। विक्रम भी जाने लगा। देशराज ने रोक लिया। वह विक्रम को अपने और अधिक निकट लाना चाहता था। बोला, 'कालीसिह से इन कमबख्तों को मैं ही बचाए हुए हूँ। एक ये हैं जो जरा-जरा-सी बात पर ऐंठते-अकड़ते हैं।'

'कालीसिह के नाम से तो यमराज भी काँपते हैं। आपके हथियार हम सबको रखाए हैं।'

'हथियारों की वह बिलकु[illegible] नहीं करता।' फिर देशराज ने बहुत धीरे-धीरे उसके [illegible] का रिस्ता-वास्ता, कुछ सलूक।

वे और उसके गिरोहवाले अपने लोगों को कभी नहीं सताते। जरूरत पड़ने पर दीन-दुखियों की मदद करते हैं। ऊँची जाति की कुँआरी कन्याओं के ब्याह में दान-दहेज तक दे आते हैं।'

विक्रम को अपने अनेक शत्रुओं का स्मरण हो आया—छदामी जिससे जिमीन का झगड़ा था विशेषकर आँखों के सामने फिर गया—अटक पड़ने पर कालीसिंह मेरी सहायता कर सकता है। कालीसिंह के रहस्य में देशराज के साथ अपने को पाकर विक्रम को फुरेरू आ गई।

'राजा, एक तो हम आपके थोड़े से कट्टर लोग ही इन सबकी अकल ठिकाने लगाने के लिए बहुत हैं और यदि वैसा ही कोई मौका आया तो देख लेंगे। बदमाशों को ठीक तो जरूर करना है।'

देशराज ने अपना अभ्यासगत संयम फिर पा लिया। विषयांतर करके बोला, 'अधौटी के बारे में हाईकोर्ट के फैसले हैं। कोई बड़ी रकम नहीं पल्ले पड़ती, परंतु रीति-रिवाज तो देवताओं की तरह पूजनीय होते हैं।'

विक्रम ने कहा, 'हाँ मालिक।' परंतु वह सोच कुछ और रहा था—'कहीं कालीसिंह को मैं भी अपना बना लूँ!'

: ८ :

सुहाना गाँव में देशराज की 'हवेली' से दूर, धरनीधर का पक्का मकान था। बाहर उसारा, भीतर चबूतरेवाली लंबी पौर। पौर के ऊपर अटारी और छत।

पौर के चबूतरे पर मैला फर्श बिछा था और उस पर सफेद तकिया था। धरनीधर बहीखाते लिए बैठा था। वह युवावस्था में था। रंग-रूप अच्छा, आँखें जरा बड़ी और पैनी। चबूतरे पर एक आसामी बैठा था। नीचे कई।

चबूतरे पर जो बैठा था उसका नाम बटोले था। उससे धरनीधर ने कहा, 'कह चुका हूँ कि ब्याह-शादी में व्यर्थ व्यय बिलकुल नहीं करना चाहिए। मैं ब्याज दर कम लगाता हूँ तो इसका यह मतलब नहीं कि अपना घर फूँक डालो।'

उसकी ब्याज दर एक पैसा रुपया यही न थी, परंतु अधेला रुपया धर्मादा और अधेला रुपया समाज-सुधार, राजनीतिक आंदोलन इत्यादि के लिए भी लेता था। लोग देते थे, क्योंकि वह खर्च भी तो करता था। और खरी-खोटी सुनाते तो वह हँस देता था।

बटोले कड़वे स्वभाव का था परंतु धरनीधर गाँव के एक दल का नेता भी था और अपने दल के आसामियों को जरूरत पड़ने पर बड़ी रकम तक ऋण पर दे देता था। तो बटोले ने चुटकी काटी, 'हमें तो ब्याज दर तीन [illegible] आना सैकड़ा महीने की पड़ती है।'

'इसमें से मेरे पल्ले कितना पड़ता है? देश, समाज और तुम्हारे ही काम में तो इसका बहुत-सा भाग लग जाता है। देशराज को तो देखो, क्या-क्या करते हैं!'

देशराज के नाम पर वे सब भनभना उठे।

'वहाँ तो लूटमार होती है,' बटोले ने जेब में रुपए सँभालकर रखते हुए समर्थन किया।

चबूतरे के नीचे बैठे लोगों में एक दमरू था। चुप्पा, सक्रिय, मांसल, गठीला।

नीचा सिर किए प्रखर स्वर में बोला, 'डाकू है।'

धरनीधर ने बहीखाता सँभाला। सब आसामियों को रुपए दिए, रुक्के लिखवाए और बीच-बीच में समाज सुधार और राजनीति की चर्चा करता रहा—

'हम सबने इन्हें इतनी मान्यता दे रखी है। उचित से बहुत अधिक। जिमींदारी समाप्त हो रही है, कंधों के ऊपर से लदा हुआ जुआ उतार फेंको और संगठित हो जाओ। किसी की भी हिम्मत अन्याय-अत्याचार करने की न पड़ेगी। जनता मिलकर बड़े-बड़े राज्यों तक को लौट-पौट देती है, ये तो जिमींदार ही हैं जो कारिंदों और नौकरों के बल पर टिके हैं।'

वे सब साहूकार में कुछ अपनापन पा रहे थे और मजे में बातें कर रहे थे। चिलम और बीड़ी का आयोजन था। जिमींदार के यहाँ वाला अंतर धरनीधर के घर नहीं था।

रुपया लेकर वे सब चले गए और धरनीधर बहीखाता एक ओर रखकर तकिया के सहारे लेटकर विश्राम करने लगा। कुछ आनेवालों की आहट बाहर से सुनाई पड़ी। शायद कर्ज लेनेवाले आ रहे हों। पूरा भरना नहीं भरा था। एक फसल के ब्याज-बट्टे का संयोग हो जावे, तभी चैन मिले। दरवाजे के पास जो कंठस्वर सुनाई पड़ा उससे उत्साह नरम पड़ गया।

टहलराम कह रहा था, 'उन्हें न कानून की परवाह है न नीति की।'

वह भीतर आ गया और उसके साथ छदामी, दमरू और बटोले; बनमाली कुछ क्षण पीछे आया।

धरनीधर ने अभिवादन किया। बनमाली, बटोले और टहलराम चबूतरे पर बैठ गए, बाकी नीचे। छदामी ने चिलम सँजोई।

टहलराम ने चर्चा बढ़ाई, 'देशराज बेगार फिर जारी करना चाहते हैं। दोनों गाँवों की जनता के साथ कूड़े-करकट सरीखा व्यवहार किया जा रहा है। उनके अत्याचारों को रोकने के लिए हम सबको एक राय और एक आवाज के साथ कोई कड़ा कदम उठाना पड़ेगा।'

'कहो बटोले दादा, [illegible] अभी थोड़ी देर पहले मैं तुम लोगों को यही समझा [illegible] किन शब्दों में अ[illegible]

दमरू देखता रहा। बटोले ने हामी का सिर हिलाया। टहलराम का जोश गरमी पर था।

'केवल समझने से क्या होना जाना है? काम करने का समय आ गया है।' टहलराम ने जरा उचटकर चबूतरे के नीचे पैर लटका लिए। ढीली मोहरी के पैजामे से भागते हुए-से पैरों को हिलाने लगा।

'क्या?' धरनीधर ने पूछा।

'तो तुम्हें कुछ नहीं मालूम?'

बनमाली को बोलने की आवश्यकता जान पड़ी, 'नहीं तो। क्या कोई दुर्घटना हो गई है?'

टहलराम की आँख छदामी पर गई। वह तमाखू पी रहा था।

टहलराम बोला, 'देशराज की एक भैंस मर गई है। लाश उनके घर के पीछे पड़ी है। उसे उठवाना चाहते हैं। अधौटी लेंगे। बीज और खवाई के गल्ले में अलग लूटते हैं। शिकायत के लिए छदामी के साथ गया। अनसुनी कर दी। मैं इनके साथ लौटा और बिरादरी की पंचायत जुड़वाई। तय कराया कि ऐसे अत्याचारी का कामकाज बंद कर दो। उसी समय उनका नौकर जगनुआ भैंस की लाश उठवाने के लिए आया। कहलवा दिया कि नहीं उठावेंगे।'

बनमाली नेतृत्व की बागडोर अपने हाथ रखना चाहता था, 'लाश पड़ी रही तो सड़ेगी और गाँवों में बीमारियाँ फैलेंगी; पर देशराज को अधौटी नहीं दी जाएगी।'

दमरू को चिलम देते हुए छदामी बोला, 'हम लोग किसी हालत में भी नहीं उठाने के लाश को।'

धरनीधर ने सबसे ऊपर पहुँचने का प्रयास किया, 'बेशक। वे दाम भी दें तो लाश को मत उठाओ।'

पर बनमाली उसके भी ऊपर निकल गया, 'मैं कहता हूँ, यह काम हम लोगों को करना चाहिए। चलो, हम सब मिलकर उसे गाँव से बाहर दूर डाल आवें और अछूतवाद को दफना आवें।'

छदामी ने उन सबके नेतृत्व पर छपके से डाल दिए, 'आप क्यों करो? हम लोग लाश उठा ले जाएँगे, पर अधौटी या बेगार नहीं देंगे।'

'क्योंकि उसका चमड़ा कम-से-कम पंद्रह रुपए में बिकेगा।' डॉक्टर सनेहीलाल ने पौर में पैर देते ही कहा। आयु लगभग तीस वर्ष की। रोबीला चेहरा, आँखों में दर्प। सनेहीलाल को आदर के साथ चबूतरे पर बैठा लिया गया। रहनेवाला जिले के सदर स्थान का था। डॉक्टरी परीक्षा पास कर[illegible] था। देशराज से लखनऊ में [illegible]

से नफे के साथ दवा के दाम और मन लगाकर काम करने के साथ सेवा का भाव। लोकप्रियता के संग्रह की वासना न रखते हुए भी वह जनप्रिय हो गया था।

'लेकिन पंद्रह में से साढ़े सात पर नीयत देशराज की जो है।' टहलराम हँसकर बोला।

'मौजी जीव हैं।' सनेहीलाल ने कहा।

धरनीधर ने परिहास के वातावरण की रचना के साथ अपना सिक्का बैठाने का प्रयत्न किया, 'तो वह जो लखनऊ से आई हैं—अंजना या रंजना, उनको और अपने नौकरों को लेकर एक मौज और कर देखें—लाश को सब मिलकर उठा ले जावें।'

सनेहीलाल गंभीर हो गया।

टहलराम ने बात को दूसरी दिशा दी, 'वह पुनरुत्थानवादिनी है, अधमरे प्राचीन की सिसकती हुई लाश में प्राण फूँकने की कोशिश करती फिरती है।'

सनेहीलाल ने धरनीधर के भद्दे व्यंग्य को दबा देने के लिए यह प्रसंग अच्छा समझा।

'यदि प्राचीन में कुछ अच्छा है तो क्या प्राचीन होने ही के कारण उसे नष्ट कर देना चाहिए?' वह मुसकराया।

'नया जीवन, नई लहर, प्रगति, नया संवेग, उस प्राचीन की श्रद्धा और पूजा के ढकोसलों की जकड़ में ही तो रुँध-रुँध जा रहे हैं।' टहलराम ने किसी पुस्तक या मासिक पत्रिका में पढ़े हुए उद्धरण को ज्यों-का-त्यों पेश किया।

बनमाली ने देखा, पार्टीवाद और सिद्धांत विवाद का बखेड़ा खड़ा होनेवाला है। तुरंत बोला, 'क्षमा कीजिएगा, यह अवसर बहस का नहीं है। क्या करना है, इसे तय करिए।'

'अत्याचार की नाक में नकेल डालनी है,' धरनीधर ने पुट दी।

सनेहीलाल ने प्रतिवाद की मुसकान को बनाए रखने का प्रयास करते हुए कहा, 'तो किसी के व्यक्तिगत जीवन या निजी रहन-सहन पर चोट बिना किए हुए ही बात चलानी चाहिए।'

धरनीधर को क्षोभ हुआ। टहलराम ने अपने भीतर के प्रतिवाद को व्यक्त कर डाला, 'डॉक्टर साहब देशराज के घरू डॉक्टर हैं। ये उनको नाराज नहीं कर सकते। फीस जो मारी जाएगी।'

सनेहीलाल खिलखिला पड़ा।

'यह है आपका प्रगतिवाद!'

फिर यकायक गंभीर होकर बोला, 'उनको डॉक्टर मिल सकते हैं, मुझे मरीज। पेट भी मेरा बड़ा नहीं है, थोड़े [illegible] चला लेता हूँ। खैर, मैं आपकी हर एक विवेकस[illegible] में किन शब्दों में अ[illegible] को [illegible]या है [illegible]-ओत[illegible] करिए। शायद इसी के लिए मुझे

बुलवाया गया है।'

सनेहीलाल बिना बुलाए नहीं आया था।

बनमाली ने चर्चा का सूत्र अपने हाथ में लिया—

'मेरी राय है कि दोनों गाँवों का एक जलूस निकाला जाए। 'अछूतवाद मुर्दाबाद' के नारे लगाए जावें और न केवल आज की समस्या का हल देशराज से तलब किया जावे बल्कि अन्य मामलों और शिकायतों को भी रफा करवा लिया जावे।'

बटोले ने समर्थन किया।

धरनीधर बोला, 'उनके दरवाजे सभा की जाए और धरना दिया जावे। वैसे तो वे मानने के नहीं।'

टहलराम ने धरनीधर का अनुमोदन किया।

सनेहीलाल ने कहा, 'जलूस और धरना, सब अतिशयता के रूप हैं, बातचीत करके मामले को निबटवा लीजिए—जो गुड़ देबे से मरे तो बिस न दीजिए ताहि।'

उसी समय एक आदमी ने आकर संदेशा दिया, 'राजा साहब के महींदार भैंस उठाए लिए जा रहे हैं। वे ही उसकी खाल भी ले लेंगे।'

'ले तो लेंगे?' छदामी चिल्लाया, 'हम लोग उन सबको न केवल गाँव-बिरादरी से बंद कर देंगे बल्कि उनका खोपड़ा भी फोड़ देंगे। हम उठाएँगे लाश और अधौटी के नाम से कानी कौड़ी भी न देंगे।'

छदामी उठ खड़ा हुआ। उसकी जातिवाले उसके साथ।

टहलराम ने टोका, 'कहाँ जाते हो? ठहरो। जलूस निकलेगा, सभा होगी—'

छदामी कड़का, 'पहले उन महींदारों का कचूमर तो निकाल दें जो हमारा हक्क मारने जा रहे हैं।'

बनमाली ने शांत करते हुए कहा, 'ऐसे नहीं। जत्था बाँधकर चलना चाहिए। हम सब साथ रहेंगे। बिना किसी लड़ाई-झगड़े के तुम्हारा काम बन जाएगा। बुलाओ सब लोगों को और निकालो जलूस।'

छदामी को मानना पड़ा।

सनेहीलाल ने कहा, 'मैं जलूस-वलूस व्यर्थ समझता हूँ, इसलिए मैं जत्थे में नहीं जाऊँगा।'

'मैं तो जानता था,' धरनीधर ने छींटा कसा।

सनेहीलाल जाते-जाते बोला, 'फिर भी जब जिस समय मेरी सेवा की जरूरत पड़े, तैयार रहूँगा।'

वे लोग जलूस की तैयारी में जुट गए।

परंतु जलूस नहीं बन पाया क्यो[illegible] के

कारण अकुला उठे। उन्होंने देशराज के उन महींदारों पर हल्ला बोल दिया जो लाश उठाकर गाँव बाहर लिए जा रहे थे। थोड़ी-सी मारपीट हुई, किसी के हाथ-पैर या खोपड़े नहीं टूटे। महींदार भाग गए। छदामी और उसका दल विजयोल्लास में मस्त होकर गाँव बाहर भैंस के छीलने में लग गए। काफी समय निकल गया, इसलिए बनमाली इत्यादि ने जलूस को दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दिया।

देशराज भयभीत नहीं हुआ।

संध्या के बाद ही उसने एक काम पर अपने आदमी जुटा दिए। पिटे हुए महींदारों का उस काम में मन लगा। गाँव से थोड़ी दूर एक छोटा-सा जिमींदारी जंगल था। सरकारी जंगल की लकड़ी तक जिन लोगों की पहुँच नहीं हो पाती थी, उन लोगों का काम इस जंगल से चलता था। इसमें अधिकांश छदामी के मुहल्ले के लोग थे। रात-भर में काट डाला गया और भोर होने के पहले कटी हुई लकड़ी ढुलकर हवेली के चौड़े आँगन के एक कोने में रखवा ली गई। अब देखें, हल-बखर के लिए लकड़ी कहाँ से लाते हैं।

सरकार ने एक आदेश कुछ महीनों पहले निकाला था कि जिमींदारी जंगलों को भी कोई न काटे। परंतु देशराज ने सुन रखा था कि बहुत से जिमींदारों ने जंगल कटवा डाले हैं और उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सका।

कटवाने और ढुलवाने में विक्रम ने भी देशराज की सहायता की। जब उसने सकुचकर सरकार के आदेश का स्मरण कराया था तब देशराज ने कहा था, 'सरकार के बाप का नहीं है, हमारे-तुम्हारे बाप-दादों का है।'

विक्रम जान गया था कि देशराज के साहस के पीछे कौन-सा सहारा है।

देशराज रात में बहुत कम सो पाया था। भोर होने के उपरांत चबूतरे पर जमुहाइयों के साथ सिगरिट फूँक रहा था कि टलहराम आ गया। देशराज विचलित नहीं हुआ। कुरसी पर आसन ग्रहण करने की शिष्टता दिखाई। टहल नहीं बैठा।

खड़े-खड़े ही बोला, 'हद हो गई! हद हो गई!!'

'किस बात की?' देशराज के स्वर में ठंडक थी।

टहलराम ने कटी हुई लकड़ियों की ओर संकेत करते हुए, जिनमें लगी हुई हरे पत्ते की टहनियाँ रो-सी रही थीं, कहा, 'आप नीति की तो परवाह करते ही नहीं हैं, कानून की भी अवहेलना करते हैं!'

'किस कानून की!'

'सरकार के उस कानून की जिसके द्वारा पेड़ों का काटना बंद कर दिया गया है।'

'अच्छा! जो सरकार को दिन-रात गालियाँ देते रहते हैं वे भी आज सरकार की दुहाई देने लगे!'

'[illegible] आया हूँ--अंतिम बार। आपके अत्याचारों के कारण

मैं किन शब्दों में [illegible]

जनता खलबला उठी है।'

'बौखलानेवालों का इलाज मेरे हाथ में तो है नहीं।'

टहलराम की बाँहें फड़क उठीं।

'जनता सत्याग्रह करेगी। आपका बाईकाट होगा।'

उसी समय अंजना आ गई।

देशराज ने एक चोट और की, 'करिए यह सब, जिससे आपका गल्ला, सवाई और धरनीधर का ड्योढ़े-दुगुने का लेन-देन बढ़े।'

टहलराम ने अंजना को नमस्कार नहीं किया। उलटे वह नमस्ते करके बैठ गई।

देशराज ने कहा, 'आज ये मुझसे न मालूम क्यों इतने रुष्ट हैं।'

अंजना को कारण मालूम था। उसने पानी के छींटे डाले, 'आप दोनों एक ही स्कूल और एक ही कॉलेज में पढ़े हैं। अनबन तो नहीं होनी चाहिए। राजनीतिक मतभेद होते हुए भी सांस्कृतिक कार्यों में तो आप लोग एक हो सकते हैं।'

'मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका।'

जितनी आतुरता के साथ टहलराम आया था, उतनी ही व्यग्रता के साथ चला गया।

देशराज उफन उठा, 'ये अभागे संस्कृति को क्या जानें। जानती हो इन लोगों ने धरनीधर की पौर में क्या कहा था? कहते थे, मैं, तुम और हमारे नौकर भैंस की लाश को उठा ले जाएँ! इन्हीं में से एक ने रात में सब बातें आ बतलाई थीं।'

'ऐसा कहते थे!'

: ९ :

सुहाना से अधिक बाँगुर्दन में जलूस की चहल-पहल मच गई। उसका आकर्षण अथाई की गपशप और चिलम तमाखू से भी ज्यादा था। जलूस में भाग लेनेवाले उतने न थे जितने उसका तमाशा देखनेवाले। बहुत से जलूस निकले और देखे थे, पर आज की हलचल का केंद्र दोनों गाँवों का जिमींदार देशराज था।

'अछूतवाद मुरदाबाद! जिमींदारी को मरघट दिखलाओ!!' से लेकर कुछ और भी कहा गया तो देशराज की हवेली के निकट जलूस के आने पर काफी स्पष्ट हुआ। जलूस में कुछ स्त्रियाँ भी थीं। वे पैने स्वर में चिल्ला रही थीं—'देशराज की ठठरी निकले!' 'देशराज का नाश हो!!' जलूस में विद्यार्थी भी थे—टहलराम के स्कूल के अधिक। वे स्त्रियों के इन नारों पर हँसते थे और बीच-बीच में कह देते थे—'देशराज मुरदाबाद!'

देशराज की हवेली के सामने आते ही जलूस के आगे टहलराम आ गया। बनमाली अज्ञातवास में था, धरनीधर सबसे पीछे और छदामी लुका-छिपा।

हवेली के आँगन का सड़ा-गला फाटक भीतर से बंद था। [illegible] ने में

जगनू थरथरा रहा था। हवेली के किवाड़ बंद थे। ऊपर की मंजिल की केवल एक खिड़की खुली हुई थी; वहीं कहीं से देशराज देख-सुन रहा था। फाटक के सामने नारों ने जोर पकड़ा।

टहलराम चिल्लाया, 'तोड़ दो फाटक! सभा की बैठक आँगन में होगी।'

उसके विद्यार्थी झपटे। इनका अगुआ जनकलाल था। सोलह-सत्तरह वर्ष का युवक, टहलराम का प्रिय शिष्य। विद्यार्थी फाटक तोड़ने पर चिपट गए।

बनमाली आगे आया।

बोला, 'यह क्या करते हो? कानून की सीमा के बाहर मत जाओ।'

'क्रांति लकीरों की सीमा नहीं पहचानती,' टहलराम ने आवेश के साथ कहा।

विद्यार्थियों ने फाटक तोड़ डाला। भीड़ आँगन में घुस पड़ी। कुछ लड़के जगनू पर लपके। बनमाली आड़े आ गया। भीड़ का ध्यान हवेली की खुली खिड़की पर जा जमा। नारे बुलंद हुए। स्त्रियों ने कुछ नए सूजे। 'इसके बाप-दादे नरक में जाँय।' 'देशराज नरक का कीड़ा है।'

धरनीधर हवेली के भीतर नहीं आया, किसी ने नहीं जान पाया कब कहाँ खिसक गया। केवल देशराज ने उसको देखा।

कुछ वर्ष पहले खाल की अधौटी वसूल करने के लिए देशराज के पिता ने नालिशें की थीं और इन स्त्रियों के घरों की कुर्कियाँ करवा के डिग्रियाँ वसूल की थीं। देशराज ने खिड़की में से कुछ डाट बतलाई जो किसी की समझ में नहीं आई। लड़कों ने मुँह बिराया-चिढ़ाया।

देशराज ने खिड़की बंद कर ली। लड़कों ने छोटे-छोटे कंकड़ फेंके। जब छोटे हाथ न लगे तो बड़े फेंकने लगे जो दीवारों, खिड़कियों और दरवाजों पर भड़ाभड़ पड़े। कुछ हवेली के भीतर भी जा गिरे।

देशराज ने भीतर से बंदूक के दो-तीन हवाई फायर किए। बनमाली और टहलराम ने भी भीड़ को काबू में लाने का प्रयत्न किया, परंतु वह नियंत्रण के परे हो गई।

'आ हत्यारे! आ!! चला गोली!!!' स्त्रियाँ चिल्लाईं और लड़के ताव पर चढ़े।

छदामी भीड़ के नेताओं के सामने हाँफता हुआ पहुँचा।

घिघियाया, 'भैया, बात थी सो हो चुकी। जलूस हो गया, अब यहाँ से चलो। थाने-तहसील में तुम बँधे फिरोगे और हम घिसट मरेंगे। कहीं उन्होंने गोली दाग दी तो…।'

जनक चीखा, 'गोली हम खाएँगे।'

छदामी ने एक ही क्षण में निश्चय कर लिया। वह अपने जातिवाले नर-नारियों को बटोरकर चल दिया। जो रह गए वे थोड़े-से ही थे। उनमें भी बनमाली और उसके कुछ स' 'मैं किन शब्दों में अ ी के खिलाफ। पर इन सबके विरुद्ध थी निर्ममता के साथ बढ़ती

हुई साँझ। भीड़ को तितर-बितर होना पड़ा—वह ऊँचे नारों के साथ वहाँ से हट गई।

: १० :

रात होने पर देशराज के महींदार आ गए। जगनू बरगद के नीचे था। धीमे स्वर में बातचीत होने लगी।

जगनू बोला, 'आज मरते-मरते बच गए।'

एक बोला, 'मरते-मरते तो हम बचे। पीठ सूज गई है और पैर की पिंडली। ऊपर से बिरादरी की मार। जाति से बंद कर दिया है।'

'सच्ची बात तो यह है कि राजा ने उस सड़ी हुई भैंस के पीछे यह सब विपदा बिसाई।'

'सड़ी! बिलकुल सड़ी हुई। न जाने किस जुग में पैदा हुई थी।'

'तीस-पैंतीस साल की तो रही होगी। भला हुआ मर गई। तर गई! उसके खिलाने-पिलाने उठाने-बैठाने में मेरी तो नाकों दम आ गई थी। इस पर भी कहते थे मालिक, कि मैंने मार डाली!'

हवेली का दरवाजा खुला। देशराज लालटेन लिए हुए बाहर आया।

मीठे स्वर में उन लोगों से पूछा, 'तुम्हें किसी को चोट तो नहीं आई?'

उस मिठास का उन लोगों ने कृतज्ञतापूर्वक उत्तर दिया, 'ऐसी ही कुछ। बच गए।'

जगनू बोला, 'बनमालीजी ने बचा लिया मुझे, नहीं तो वे लोग पीस डालते। कोई कंसर नहीं लगाई उन लोगों ने।'

'सवेरे ही पुलिस में रिपोर्ट कराऊँगा। उन सब पर मुकद्दमा चलवाऊँगा, जेल भिजवाऊँगा।' देशराज का स्वर तीव्र हुआ।

जगनू ने अपने पीछे, फाटक की तरफ किसी के आने की आहट पाई। लौटकर देखा—जैसे अँधेरे को चीरता हुआ कोई लंबा पिंड बढ़ा चला आ रहा हो। डर के मारे बिजका। देशराज के हाथ की लालटेन काँप गई। आँख फाड़कर देखने लगा।

पास आ जाने पर पहचाना कि बनमाली है। वे सब घबराए-से उसके पीछे के अंधकार में कुछ टटोलने लगे। देशराज तय नहीं कर पा रहा था कि क्या कहे और क्या करे। डगमगाती आँखों उसने भी खोजने की चेष्टा की कि फाटक में और कोई घुस आया है। कानों से आहट भी ली। न कुछ दिखाई पड़ा और न सुनाई पड़ा। लालटेन नीचे रख दी।

पहले बनमाली बोला, 'कुछ बात करनी है।'

अब देशराज के भीतर शरम, क्रोध और परिताप का ज्वार-सा आया, पर जबान को शब्द नहीं मिले।

'भीतर की बैठक में चलिए। वहीं बात करूँगा।' बनमाली ने तत्परता के साथ कहा।

देशराज दृष्टि घुमाते हुए, लालटेन लेकर, बनमाली के साथ भीतर की बैठक में चला गया जो पौर के भीतरी दरवाजे की बगल में लगी हुई थी। नौकर किवाड़ बंद करके चबूतरे पर जा बैठे।

'अब ये काहे के लिए आए हैं?' एक ने कहा।

'भगवान् जाने। इनकी लीला कोई नहीं समझ सकता।'

जगनू बोला, 'कुछ भी हो, बचाया मुझे इन्होंने ही।'

'पर जलूस के ऊधम में इनका हाथ क्या कम था? कई बार सजा खाई है—कभी चोरी में, कभी डकैती में, कभी बदमाशी में।'

'दो बार देश के नाम पर भी तो जेल गए।'

'कहते हैं जनता के लिए—हमारे-तुम्हारे लिए जेल गए, इनके भीतर इतना जहर भरा है कि कोई नहीं कह सकता कितना।'

'हाँ, सो तो ठीक ही है। धरनीधरवा की पौर में जलूस निकालने की पाटी इन्होंने पढ़ाई थी। जात-पाँत से बंद करवाने का हथियार इन्हीं ने माजा है।'

भीतर से आवाज आई, 'जगनुआ! ओरे जगनुआ!!'

बिना कोई उत्तर दिए ही जगनू दौड़कर भीतर गया।

बनमाली ने कहा, 'इससे पूछिए कि भीड़ हवेली को नष्ट करने पर तुल गई थी। मैं वहाँ न होता तो न जाने क्या गुजरती।'

'हाँ मालिक,' जगनू ने अनुमोदन किया।

'मैं बंदूक न चलाता तो भीड़ आग लगाए बिना न मानती। पत्थरों की वर्षा तो वह कर ही रही थी।' देशराज बोला।

'बंदूक चलाने से तो भीड़ और भी उत्तेजित हो गई थी। मेरे समझाने-बुझाने पर ही किसी तरह लौटी।' बनमाली ने देशराज के प्रतिवाद को गोल कर दिया।

'जा, इनका हुक्का उठा ला।' देशराज ने जगनू को बाहर कर दिया।

बनमाली को उलहना दिया, 'फिर भीड़ के साथ क्यों आए? धरनीधर और टहलुआ का संग क्यों दिया? क्या यही तुम्हारे मजदूर-किसान राज्य की पेशगी है?'

बनमाली ने बेधड़क उत्तर दिया, 'आप तो यों ही मेरी बात का तीर बनाकर मेरे ही ऊपर छोड़ते हैं। मैं अपने सिद्धांत पर अटल हूँ। न केवल अपने गाँव में बल्कि बाहर भी व्याख्यानों में कहता हूँ। भूखी-नंगी जनता उत्तेजित होने पर आग और तलवार का रूप धारण कर लेती है, फिर वह बंदूकों की परवाह नहीं करती।'

'हाँ, उसको बहकाने-सुलगानेवाले मिलने चाहिए।'

'मैं किन शब्दों में अपनी सफाई दूँ? आपके और मेरे विचारों में अंतर है। जनतंत्र में

होता ही है। परंतु मैं आपकी इज्जत करता हूँ। क्या आपको अब भी विश्वास नहीं कि मैंने ही आपके घर-द्वार को बचाया है?'

देशराज पिघला।

'तो फिर इनके साथ ही क्यों लगे?'

'अब आई ठिकाने पर बात। मैं जनता को सँभाले रहने के लिए साथ में था। आप तो जानते ही हैं कि अपने गाँव में भीतर-भीतर तीन पार्टियाँ हैं। एक धरनीधर की, दूसरी टहलराम की और तीसरी कुछ अपने लोगों की। टहल की पार्टी बड़ी नहीं है। धरनीधर अपना जोर बढ़ाने की फिकर में लगा रहता है। जब इन लोगों ने आँगन का फाटक तोड़ने के लिए भड़काया, तब मैंने ही प्रतिवाद की ललकार ऊँची की थी। आपने शायद सुना होगा।'

'कुछ सुना तो अवश्य था, पर भीड़ के हो-हल्ले में समझ में नहीं आया।'

'और जगनुआ को पीटे जाने से बचाने के लिए मैं ही आड़े आया था—आपने देखा होगा?'

'जगनुआ भी कहता है।' देशराज के मन में विश्वास बैठने लगा। उसकी समझ में नहीं आया कि बनमाली को धरनीधर और टहलराम का नेतृत्व असह्य हो उठा था, या देशराज का कोई विपत्तिमय भविष्य अथवा कानून का कोई संकट।

'आगे क्या होगा?' देशराज ने पूछा। वह बनमाली के आने का प्रयोजन जानना चाहता था।

'उसी की बात करने आया हूँ। यदि आप पुलिस में रिपोर्ट करेंगे तो उलटे आप ही को कष्ट उठाना पड़ेगा,' बनमाली ने कहा, 'यह मान लिया जाएगा कि भीड़ शांत थी और आपने कानून के खिलाफ गोली चलाई।'

'मेरे आँगन में कंकड़-पत्थर जो भरे पड़े हैं। शरीर और संपत्ति की रक्षा में हवाई फायर किए।'

'ढेरों गवाह कहेंगे कि आपने ही कंकड़-पत्थर हवेली में जमा करवा लिए हैं और सड़े-गले फाटक को सबूत घड़ने के लिए तुड़वा लिया। दूसरी पार्टीवालों को मौका न दीजिए कि वे पुलिस को हथियाकर आपको नीचा दिखलावें।'

देशराज सोचने लगा।

बनमाली बोला, 'मैं एक और महत्त्व की बात कहने आया था।'

'क्या?'

'यह कि आप खाल की कीमत मद्दे चमारों से कोई तकाजा न करें, क्योंकि कानून बदल रहा है। बहुत-सा बदल भी चुका है।'

'साल-दो साल हुए जब डिग्री कराई गई थी और कुर्की से वसूली।

'उस साल और इस साल में आकाश-पाताल का अंतर हो गया है। मकान, खेत सब किसानों के हो गए हैं। बंजर, परती, चरागाहें गाँव की पंचायत की। मरे ढोर की खाल, हड्डी जो कोई उठावे उसकी, या, बहुत हुआ तो पंचायत की।'

'जिमींदार लोग मुकद्दमा लड़ेंगे।'

'कुछ नहीं होगा। जनता के गुस्से की आग में जिमींदारों के सारे प्रयत्न भस्म हो जावेंगे। जिमींदार अपनी खुदकाश्त और बाग-बगीचे ही गाँठ में बाँध सकेंगे, बाकी कुछ हाथ नहीं रहेगा।'

देशराज के मन के भीतर की दबी हुई घबराहट ऊपर आ गई, 'बाप-दादों के जमाने से चली आई जायदाद क्या यों ही लूट ली जाएगी?'

बनमाली को मालूम था कि देशराज के बाप-दादों के हाथ में जिमींदारी किस तरह आई थी। उसे अपनों की कहानी भी मालूम थी।

उसने कम-से-कम छेड़छाड़ की, 'सब जिमींदारियों के इतिहास किसी-न-किसी कालोंच से पुते हुए हैं। किसी का इतिहास उज्ज्वल भी हो तो अब कोई पूछने का नहीं। वर्तमान और भविष्य की बात सोचिए।'

देशराज ने आह भरी, 'तो जो कुछ सिर पर टूटेगा, भुगतेंगे।'

'कुछ योजना बनाई जा रही है जो ढाल का काम करने की शक्ति रखेगी।'

'क्या?'

'देखिए आपके पास बंजर, चरागाह वगैरह का बहुत-सा रकबा है।'

'बहुत से मुकद्दमे लड़ने पड़े, कुछ अब भी अदालत में हैं।'

'छोड़िए मुकद्दमों को। उनकी फिकर मत कीजिए।' जगनू बनमाली का हुक्का ले आया। उसे रखकर देशराज का हुक्का उठाने और चिलम भरने के लिए भीतर चला गया।

'आपकी योजना?' देशराज ने उत्सुकता प्रकट की।

'राजनीति में दाँव-पेच हैं। आपने पढ़ा तो बहुत है, पर माफ कीजिएगा, आप सीधे हैं और व्यवहार की राजनीति नहीं जानते।'

देशराज ने अपने भीतर टटोला। उसे अच्छा लगा कि दूसरे लोग मुझे सीधा समझते हैं।

जगनू हुक्का भर लाया और रखकर बाहर चला गया।

बनमाली चिलम पर आँख गड़ाए हुए बोला, 'आप परती, बंजर के पट्टे ऐसे लोगों के नाम कर दीजिए जो आपके भरोसे के हों।'

'जैसे?'

'जैसे डॉक्टर सनेहीलाल, विक्रम और—' बनमाली ने चिलम फूँककर अपने हुक्के

पर रख ली और पीने लगा।

'डॉक्टर से एक बार कहा था। उन्होंने इनकार कर दिया। विक्रम तैयार हो जाएगा। दूसरा कारिंदा कुंजीलाल है।' देशराज ने बतलाया।

'कारिंदे को पट्टा करना तो मानो अपने को ही पट्टा करना होगा। अंजनादेवी?'

'वे इस झंझट में नहीं पड़ेंगी।'

'यदि आप विश्वास करें तो मैं तैयार हूँ,' बनमाली ने आधे क्षण उसकी आँख से अपनी पैनी निगाह मिलाकर हुक्का गुड़गुड़ाते हुए सुझाया।

किसी एक राजनीतिक दल को अपना सहायक बनाने की इच्छा देशराज के मन में उभर चुकी थी। बनमाली को उसने सबसे कम आक्षेपयोग्य समझा। थोड़ा-सा किंतु-परंतु किया।

'परंतु अब तो पट्टे नहीं किए जा सकते।'

बनमाली हँस पड़ा। भीतर हर्षमग्न।

'काम बनाने के लिए थोड़ा-सा इधर-उधर भी करना पड़ता है। दो-तीन सौ एकड़ मेरे नाम कर दीजिए और इतना ही विक्रम के नाम। पट्टों में तारीख और सन् पहले की डाल दीजिए। आपको इससे ज्यादा कुछ नहीं करना है। हम लोग पटवारी, कानूनगो, तहसील, सबको सँभाल लेंगे। हमारे आतंक से ही सब काम बन जाएगा।'

देशराज सोचने लगा। छोटे-बड़े टुकड़ों में बहुत-सा रकबा अनेक लोगों के पास था, कुछ रकबा छदामी के निस्तार में था, कुछ दमरू और बटोले के। और भी परती थी ज़ो बेकार पड़ी थी। उसमें काँस उग आया था और गाँव के ढोर चरते थे। एक पंथ दो काज—ये नेता प्रसन्न रहेंगे, समय-कुसमय काम में आएँगे, और छदामी, दमरू, बटोले की मिट्टी पलीद होगी। बाकी का जो हो।

देशराज हुक्का पीने लगा। हुक्के का धुआँ उसके चेहरे के पास मँडराने लगा जिसको दूर रखी लालटेन का प्रकाश अच्छी तरह नहीं भेद पा रहा था। बनमाली ने इस धुएँ में से उसे कनखियों देखा।

निश्चय पर पहुँचने में उसने देशराज की मदद की, 'ये लोग झगड़ा-झंझट करेंगे। मैं निबट लूँगा। धरनीधर और टहल से भी लोहा ले लूँगा। आप निश्चिंत रहें।'

'और आप कम-से-कम मेरा अहसान तो मानेंगे।'

'खूब कही! गाढ़े समय में हमेशा आप मुझे अपने साथ पावेंगे।'

'और भूमि का बहुत-सा भाग मेरी आड़ में आपका ही तो रहेगा क्योंकि इतनी सारी का मैं करूँगा भी क्या?'

देशराज ने स्वीकार किया, 'अच्छा।'

बनमाली नीची निगाहों अपनी ठोड़ी सहलाने लगा। देशराज भीतर गया और पट्टे

लिख लाया। एक बनमाली के नाम, दूसरा विक्रम के लिए। दोनों के नाम तीन-तीन सौ एकड़। तारीख और सन् पहले के। बनमाली के पट्टे में ज्यादा झगड़ेवाली भूमि, विक्रम के में कम बखेड़ेवाली। एक उसको दे दिया और दूसरा सुनाकर अपने पास रख लिया।

'विक्रम को अभी बुलाकर दे दूँगा।' देशराज ने कहा।

'ठीक है,' बनमाली बोला।

जाते-जाते उसने एक उपदेश दिया, 'वे लोग आपके नौकरों को जात-पाँत से अलग कर रहे हैं और आपका बाईकाट। अभी जाकर उन सबको समझाए देता हूँ। आप भी आगे इन लोगों के साथ सहानुभूति का बरताव करें। भगवान् ने चाहा तो किसी दिक्कत का सामना नहीं करना पड़ेगा।'

देशराज ने लंबी 'हूँ' भरी। बनमाली अपना हुक्का घर भेजने की बात कहकर चला गया।

बाहर नौकर बैठे थे। बनमाली ने मुड़कर देखा कि हवेली के दरवाजे पर कोई नहीं है।

बोला, 'तुम लोग चिंता मत करना। बिरादरी से नहीं निकाले जा सकोगे। कोई और संकट आ जाए तो राजा साहब हैं ही, मुझसे भी कह सकते हो।'

जगनू ने सकारा, 'हमारे जैसे वे मालिक हैं तैसे आप और ऊपर भगवान्।'

'हाँ-आँ—और देखो जगनू, मेरा हुक्का घर रख आना।'

वह चला गया।

एक नौकर ने कहा, 'क्या माया है!'

जगनू बनमाली का हुक्का रखने चला गया।

थोड़ी देर में विक्रम आ गया। उसने संवेदना के आँसू पोंछे। देशराज ने उसको पट्टा दिया।

'यह जिमीन मेरे पास रहे और न रहे। तुम्हारे हाथ में बनी रहेगी तो मानो मेरे ही घर में रही।'

विक्रम बहुत प्रसन्न था।

'मालिक, जब कहो तब चाहे जिसका सिर फोड़ दूँगा। तुम्हारे काम में मेरी जान चली जाए तो मानो बैकुंठ मिल गया।'

'इस जिमीन पर थोड़ा-सा झगड़ा बटोले और दमरू कर सकते हैं।'

'बिना झगड़े के तो घर में रोटी-पानी तक नहीं मिलता। हम झगड़े से नहीं डरते। तुम्हारे निमक की निभाएँगे, राजा। हुकुम भर हो।'

'सो जब जैसी जरूरत पड़ेगी तब कहूँगा। वैसे देखे-अनदेखे बहुत-से लोग अपने साथ हैं।'

विक्रम समझ गया। अपने को ऐसे वर्ग में पाकर वह उत्साह और गर्व से भर गया। बोला, 'मेरी तो लाठी सुरसुरा रही है।'

देशराज ने निवारण करते हुए भी उसे उत्तेजना दी, 'अभी नहीं, अभी नहीं। देखो तो मैं क्या-क्या करता हूँ।'

देशराज ने बनमाली को पट्टा देने की बात बताई। उसे अपना सहयोगी जतलाकर सचेतता के साथ काम करने की सलाह दी और कहा, 'मैं थक गया हूँ। अब सोऊँगा। तुम भी जाओ।'

वह चला गया और जगनू के सिवाय अन्य नौकर-चाकर भी।

देशराज नहीं सोया। काफी रात गए कुछ लोग आए। भीतर की एक अटारी में उनमें से केवल एक—कालीसिंह—देशराज और अंजना की गोष्ठी में शामिल हुआ।

कालीसिंह साधु के वेश में था। उसके चेहरे पर भयानकता नहीं थी। केवल आँखें तीक्ष्ण—अथवा जैसी कुछ अंजना को लगी हों। कुछ बातचीत के बाद देशराज ने जलूसवाली घटना आदि से अंत तक सुनाई।

कालीसिंह ने संक्षेप में कहा, 'टहलराम—हूँ; धनीराम—हूँ; बनमाली हूँ—'

देशराज ने टोका, 'बनमाली नहीं, उसे तो हमने अपनी ओर फोड़ लिया है।'

'खैर वे ही दो सही। जल्दी देखूँगा।'

'अभी नहीं,' अंजना ने समझाया, 'उपयुक्त समय पर आपके पास समाचार भेज देंगे। इसी समय कुछ कर बैठे तो अपने सबके ऊपर पुलिस का संदेह आ जमेगा और अपना वह काम झमेले में पड़ जाएगा।'

'जैसा कि मैंने आते ही बतलाया, अपना सामान बंदरगाह तक पहुँच गया है। आगे की राजा बाघराज का गुमाश्ता जाने।' कालीसिंह ने कहा।

देशराज ने सोचा—जो बात कालीसिंह के ध्यान में अंजना बिठलाना चाहती थी, वह नहीं बैठ पाई है।

बोला, 'मैं सवेरे ही पुलिस में रिपोर्ट करूँगा। अपनी बात सिरे पर रहेगी। आप यदि जल्दी में कुछ कर बैठे तो यह काम तो बिगड़ेगा ही, वह भी गड़बड़ में पड़ जाएगा। मैं नहीं चाहता कि हमारा-आपका संबंध पुलिस की निगाह में कभी भी आवे।'

'आप जब और जैसा कहेंगे, वैसे ही करूँगा।' कालीसिंह ने आश्वासन दिया।

'एक आदमी और अपनी टोली में आ गया है—नाम उसका विक्रम है,' देशराज ने कहा।

कालीसिंह मुसकराया।

'मैं उसे जानता हूँ।'

'हैं!' देशराज को आश्चर्य हुआ।

कालीसिंह जैसे चुपचाप आया था, अपने साथियों को लेकर वैसे ही चला गया।

अंजना ने कहा, 'बनमाली पुलिस में रिपोर्ट करने से रोक गया है।'

देशराज ने उसकी शंका का समाधान किया, 'बनमाली को पुलिस के सामने हमारे पक्ष की बात कहनी पड़ेगी और इस प्रकार वह उन पार्टीबाजों से अलग पड़ जाएगा। उसको पट्टा ज्यादा प्यारा लगेगा, उन लोगों की पार्टी बहुत कम। रिपोर्ट करना ही ठीक होगा।'

और उसने दूसरे दिन पुलिस में रिपोर्ट कर दी। पुलिस आई। तहकीकात हुई। बनमाली को बयान देना पड़ा। वह और उसके अनुगामी, धरनीधर और टहलराम से दूर जा पड़े। जलूस के अगुओं और छदामी को जमानत-मुचलके की धमकी देकर इंसपैक्टर ने मामला समाप्त कर दिया। देशराज को पुलिस की सहानुभूति मिल गई, वह कुछ और चाहता भी न था। अब उसे चिंता थी ही पेटियों के सामान के दाम में अपना हिस्सा पाने की।

यह कार्य अंजना के हवाले किया गया। ललित कलाओं के प्रचार की ओट में वह नाहरगढ़ चली गई।

: ११ :

पानी पहले रिमझिम बरसता रहा फिर एक दिन गर्जन-तर्जन के साथ कुछ अधिक। जब यकायक खुला, किसान मनाने लगा—अब न बरसे और मैं धरती के कलेजे को मुलायम करके उसमें बीज डाल दूँ।

पौ फट गई थी। दीवाली के पहले की ठंडी हवा झोंकों पर थी। कुछ खेतों पर पपड़ी आ गई थी, कुछ पर पानी बिलमा हुआ था।

दूर से पहाड़ धूमरे और जंगल छिपते-भागते अँधेरे में से उभरते हुए दिखाई पड़ने लगे। पास के हरे-भरे ऊँचे पेड़ों को दृष्टि पकड़ उठी। दूर के पेड़ों की चोटियों को प्रकाश की रेखाएँ सहलाने-पुचकारने लगीं।

बाँगुर्दन से दक्षिण की ओर लगभग पाव मील की दूरी पर प्राचीन काल का एक बड़ा तालाब था जो अस्त-व्यस्त हालत में था। इसलिए उसमें पानी नहीं थम पाता था। थोड़ी-सी खेती हो जाती थी, बाकी में काँस और लंबा ऊँचा नागर मोथा घास। तालाब में एक किनारे पर बौद्ध, जैन और वैष्णव मंदिर तथा मूर्तियाँ तालाब की भी अपेक्षा अधिक टूटी-फूटी दशा में इखरी-बिखरी पड़ी थीं, मानो किसी बीते काल की कहानी विषाद् और लोभ के साथ चुपचाप कह रही हों।

टहलराम तालाब के किनारे इन्हीं खंडहरों के बीच-बीच में होकर टहलते-टहलते आया। मोटी खादी का कुर्ता, पैजामा, सिर पर तौलिया, हाथ में मोटा डंडा।

अँधेरे को दूर ढकेल देने के लिए प्रकाश की रेखाएँ बढ़ीं। पर्वत शिखर और उनके ऊपर के वृक्ष मुसकरा उठे। फिर दिशा में अरुणिमा और पीलापन क्षण-क्षण में एक-दूसरे से अपना परिधान बदलने लगे कि मंद किरणें फूटीं। वन-पर्वत जगमगाया। पेड़ों के हरे-भरे धुले पत्ते और शरद् की कोंपलें मंद पवन की लय में थिरकने-नाचने लगीं। धरती की गोदी में छाई दूबा हँस पड़ी। टहलराम कभी उन किरणों और कभी इन किसलयों को देखने लगा।

क्या सोने और हीरे की खानों में यह वैभव अनायास इकट्ठा हो सकता है? पर इनसान के लिए सोना भी जरूरी है जो थोड़ों को बहुत और बहुतों को बहुत कम मिल पाता है। और एक यह प्रकृति की देन है, जो साधारण-जन को भूख और अभाव के कारण न समझ में आती है और न मिल पाती है। उसके मन में उठा।

फिर उसका ध्यान उन मूर्तियों पर गया। रूप और सौंदर्य दोनों का समन्वय। खंडित होने पर भी उनमें ऐसा क्या है जो हमारे भीतर पुलक उत्पन्न करता है। कुछ आवाहन? चिनौती भी देता है लेकिन सब सामंत युग की कृतियाँ! जब मानव को धर्म की अफीम खिलाई जाने लगी थी तब के उत्पादन!! परंतु उन कारीगरों-शिल्पियों की साधना?—वह तो हर एक युग की कामना और संपदा है। ऐसी मूर्तियाँ आजकल कितने बना सकते हैं? क्या भविष्य में बनाई जा सकेंगी। पर उनका उपयोग? भूख और अभाव को दूर करने की क्षमता? टहलराम को उसकी कल्पना ने धक्के पर धक्के दिए। जैसे ही उसका हृदय उन मूर्तियों और खंडहरों पर स्नेह का अर्घ्य चढ़ाने के लिए स्पंदित होता, तड़पा, उसके मानस के भीतर बसा हुआ कोई आग्रह—जिसे वह अपना सिद्धांत समझता था—दीवार खड़ी करके उस स्नेह को जहाँ-का-तहाँ लौटा देता।

नव पल्लवों पर से रिपटती हुई रश्मियों को फिर से देखा, पर्वत शिखरों की ऊँचाई को, किसलयों की मुसकान और दूबा की हँसी को; पर अच्छा न लगा। मूर्तियों के सौंदर्य के परीक्षण और विश्लेषण का प्रयत्न किया; न कर सका। उसको अपने भीतर एक अनिश्चित हार-सी अवगत हुई। सोचा, काफी समय से घूम रहा हूँ, थक गया, इसलिए घर लौट पड़ना चाहिए।

घर आकर कलेवा किया ही था कि बाँगुर्दन का मंटू दौड़ता-हाँफता उसके पास आया। आँखों में ही उसकी जोश और जवानी थी, बाकी देह में सूनापन। जल्दी-जल्दी बोलने का स्वभाव, तिस पर दौड़ने की हाँफ। टहलराम ने उसकी बात में से जो समाचार पाया वह यह था—

दमरू और विक्रम के खेतों के बीच जो चौड़ी मेड़ थी और जिस पर सदा से दमरू का दखल चला आया है, विक्रम उसे तोड़कर अपने खेत में मिला रहा है; बटोले की चरोखर में बनमाली के ढोर चर रहे हैं; छदामी की चरागाह में बनमाली और विक्रम के बखर

जगनुआ डलवाए हुए है; मना करने पर उसको जो बटोले का सोंझिया है, पीट दिया है; और, बटोले पर हल्ला बोल दिया गया है।

टहलराम ने डंडा उठाया और चल दिया। फिर डंडा मंटू के घर में, जो मार्ग में पड़ता था, डालकर खाली हाथ नाले पार सुहाना के फैले हुए खेतों की दिशा में गया, जहाँ से सबसे अधिक शोर सुनाई पड़ रहा था।

दमरू, बटोले और उसके साथी एक तरफ, विक्रम और उसके साथी दूसरी तरफ, कोई हँकनी, कोई परैना, कोई लाठी लिए तन रहे थे; लड़ाई जबान से उचटकर इन हथियारों पर नहीं कूद पाई थी कि टहलराम और मंटू उस ठौर पहुँच गए। एक ओर से छदामी और उसके कुछ साथी, दूसरी ओर से जगनू और देशराज के महींदार आ गए। कुछ दूरी पर पेड़ों की छाया में बनमाली खड़ा था।

इन सबके खेत बहुत दूर-दूर नहीं थे। झगड़ा दमरू और विक्रम के खेतों के बीच की परती पर शुरू हुआ था और वही उसका केंद्र बन गई।

उसके और मंटू के आते ही बटोले इत्यादि तेज हो गए। दोनों ओर से गालियों का आदान-प्रदान बढ़ा। टहलराम ने निवारण की चेष्टा की, परंतु वह विफल हुआ। उसने देखा कि बटोले और दमरू अलग पड़कर घिर गए हैं। बनमाली को जोर से चिल्लाकर बुलाया। वह छाया में से धीरे-धीरे बढ़ा।

बटोले कड़का, 'इन्हीं का कराया हुआ है यह उत्पात।'

दमरू भड़भड़ाया, 'और राजा देशराज का जगनुआ इसीलिए तो भेजा गया है।'

विक्रम ने जोर के साथ कहा, 'इस परती का लगान हम दें और दखल तुम जमाओ! उचक्का कहीं का!'

बटोले के प्रखर कंठ से फूटा, 'हमारी और छदामी की चरोखर दबाए लेते हैं ये हरामी!'

इस पर दूसरी ओर से गालियों की बाढ़ दुगुने पैमाने पर दागी गई।

बनमाली आ गया। तनी हुई लाठियाँ कुछ ढीली पड़ीं। उसने कहा, 'मैंने इन सबसे पहले ही कहा था कि यहाँ झगड़ा मत करो। पटवारी का कागज देखो और अदालत से तय कराओ।'

तब उन लोगों ने पटवारी के बाप-दादों को विशेषण अर्पित किए और बनमाली को 'जालसाज' कहा।

बनमाली बोला, 'तो जैसे अच्छा लगे वैसे निबट लो।' और वह लौट पड़ा।

विक्रम ने टहलराम को चिनौती दी, 'झगड़ा कराने आए हो; तुम्हारा पेशा ही झगड़ा कराने का है, तो आओ दो-दो हाथ हो जाएँ।'

टहलराम ने तीव्रता के साथ प्रतिवाद किया, 'झगड़ा कराने नहीं आया हूँ। वैसे दो-दो

क्या, चार-चार हाथ से भी हम लोग नहीं डरते।'

विक्रम ने टहलराम को गाली दी। उसका क्रोध भड़क उठा। बोला, 'गाली दी तो जबान खींच लूँगा।' वह डंडा गाँव में छोड़ आने पर पछताया।

पर औरों के तैयार थे, और चल पड़े। थोड़ी देर काफी चटाक्-पटाक् होती रही। लाठियों से लाठियाँ और परैनों से परैने भिड़ते रहे। फिर किसी के पैर, किसी के हाथ और किसी की पीठ पर कभी यह और कभी वह पड़ने लगे। बनमाली और भी दूर जा पहुँचा। बटोले और विक्रम और भी निकट आ गए, परंतु चोट किसी को भी अधिक नहीं आई।

टहलराम कुछ करने के लिए छटपटा रहा था। परंतु कॉलेज की शिक्षा और पुस्तकों से अर्जित जिस सिद्धांत ने घर से लाए हुए डंडे को मंटू के घर रखवा दिया था, उसी ने फिर विवश कर दिया।

इतने में बनमाली फिर आता दिखाई पड़ा। अब की बार तेजी के साथ लड़नेवालों ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया। टहलराम ने देख लिया। क्षुब्ध स्वर में बोला, 'फिर आ गया वह!'

बनमाली हाथ उठाकर चिल्लाया, 'ठहरो, ठहरो! पुलिस आ रही है।'

पुलिस का शब्द इन लोगों के कान में पड़ा और वे अपना-अपना बरकाव करते हुए हटने लगे। बनमाली निकट आ गया। कुछ दूरी पर पेड़ों के पीछे से बहुत-से लोग आते हुए दिखाई पड़े।

बनमाली ने शान के साथ कहा, 'अब और लड़ो। सवेरे से समझा रहा हूँ कि लड़ो-झगड़ो मत, कानून के भीतर चलो, पर बटोले, दमरू, मंटू और टहलराम को अपने के सिवाय और कुछ दिखलाई ही नहीं पड़ता।' उसने छदामी का नाम नहीं लिया।

पुलिस इतनी जल्दी कैसे आ गई? वे सब मन में प्रश्न कर रहे थे। टहलराम ने अनुमान लगाया, हो न हो बनमाली या देशराज ने पहले से ही न्योता बुलाया है।

लड़ाई ढीली पड़ते-पड़ते पुलिस के सिपाही, दरोगा और गाँव के कुछ लोगों के साथ देशराज आ गए, पटवारी उनके पीछे बस्ता बगल में दाबे।

दरोगा ने डाँट-फटकार बताई। पटवारी ने बस्ता खोला और बताया कि बटोले, दमरू और विक्रम के खेत इखरे-बिखरे हुए हैं—कहीं विक्रम का कोई खेत बटोले के खेत के सामने, कहीं दमरू के खेत के सामने, उन दोनों के खेतों के बीच चौड़ी परती पर किसी का नाम नहीं—परती जिमींदार की। देशराज ने लिखाया कि विक्रम को बहुत पहले इसका पट्टा दे चुका हूँ। दूसरी परतियों की बात चली तो बटोले, छदामी और दमरू का नाम बड़े-बड़े टुकड़ों पर तो दर्ज, परंतु कैफियत के खाने में लिखा निकला 'बिना तस्फिया लगान'।

उन तीनों ने सौगंध खाकर कहा, 'हमने लगान लगातार दिया है।'

'हमें स्याहा तो कभी नहीं करवाया।' पटवारी ने आक्षेप किया।

'है रसीद जिमींदार या उनके कारिंदे के हाथ की?' दरोगा ने सवाल किया।

'उन्होंने कभी नहीं दी।' उन लोगों ने बयान दिया।

देशराज ने समस्या का हल किया, 'ये सब बिना अधिकार घुसना चाहते हैं। इनका कोई हक नहीं।'

'बेईमान हैं,' टहलराम ने बेधड़क कहा, 'सीधे-सादे गरीब किसानों का खून चूसनेवाले और पटवारी उनका पिट्ठू। लिखिए मेरा बयान—झगड़ेवाली जिमीनों पर मैंने हकदारों का ही दखल देखा है—बटोले, छदामी और दमरू का। मंटू का बयान लिखिए जो बटोला का बरसों से सोंझिया है।'

'यानी जब वह पैदा नहीं हुआ था तभी से,' दरोगा ने व्यंग्य किया, 'मैं तो हक और अधिकार की सरसरी जाँच करूँगा, बाकी का निबटारा सदर की पूड़ी-मिठाई खाकर, वकीलों को थोड़ा-बहुत चाँदी-सोना चढ़ाकर, माल या दीवानी की अदालत से करवाइए।'

दरोगा ने अदालत के निर्णय तक झंझटवाले भूमिखंडों का दखल विक्रम और बनमाली को दिया; बटोले, दमरू, छदामी और मंटू मुँह ताकते रह गए।

टहलराम ने सुझाया, 'नए कानून में बटोले इत्यादि अधिवासी हो जाएँगे, अदालत में जाएँ तो विक्रम आदि जाएँ।'

देशराज ने व्यंग्य कसा, 'पुलिस को इतने गहरे डुबकी लगाने की जरूरत नहीं है। आप तो कानून पास होने के पहले ही बहुत दूर की कौड़ी ढूँढ़ लाए।'

बनमाली हँस पड़ा, 'मुश्किल तो यह है कि समझाने-बुझाने पर भी मानते नहीं हैं।'

टहलराम का रोम-रोम जल उठा। पर मुँह से केवल इतना ही निकला, 'बहुत जल्दी देख लोगे कि सही रास्ते पर हम लोग हैं या तुम लोग। कानून पास होने में विलंब नहीं है।'

बनमाली को अपने बाहुबल की याद आ गई, 'सो तो हम लोग करवा रहे हैं, इसमें आपका तो अंगुल-भर भी हाथ नहीं। एक बात याद रखिए कि सच्चे-झूठे सभी अनधिकारी अधिवासी नहीं हो जाएँगे।'

दरोगा राजनीति या कानून की बहस में नहीं पड़ना चाहता था। लड़नेवालों को उसने धमकी दी, 'तुम्हारे इस फसाद पर मुकद्दमा नहीं चलवाना चाहता हूँ, क्योंकि अस्पताल पहुँचने लायक तुममें से कोई भी नहीं; वैसे बड़े दुष्ट हो। अगर कोई बखेड़ा किया तो अब की बार हथकड़ी ठोके बगैर न रहूँगा।'

उन लोगों पर आतंक छोड़कर, देशराज इत्यादि की कृतज्ञता लेकर पुलिस

चली गई।

परंतु देशराज को अपनी इस विजय पर उतना हर्ष नहीं हुआ जितनी परिधि उस विजय की ऊपर-ऊपर दिखाई पड़ रही थी। उसने देखा कि टहलराम के दल की रेखाएँ और अधिक फैल गई हैं। टहलराम को लगा, पुलिस के सामने उसे देशराज और बनमाली को बेईमान नहीं कहना चाहिए था। फिर भीतर के एक कोने से उसे सांत्वना मिली—बेईमान तो वे दोनों अवश्य हैं। फिर भी—

उसके मन में गड़ रहा था—देशराज कैसा भी हो, अभद्र नहीं है, वाक्पटु और व्यवहार-कुशल है। मैं क्यों इतनी जल्दी आपे से बाहर हो जाता हूँ?

: १२ :

हल चले, बखर चले, अधिकांश खेतों में चैत की फसल के लिए बीज बो दिया गया। जिन खेतों में अभी पानी या गीलापन था, उन पर पपड़ी आने की प्रतीक्षा की जाने लगी। बटोले, दमरू और छदामी की जो भूमि दूसरों के दखल में चली गई थी उसकी बावत माल की अदालत में कार्यवाही चल उठी, परंतु निर्णय होने में काफी विलंब मालूम होता था।

एक सुहावने प्रात:काल की बेला में सुहाना और बाँगुर्दन में जब ऊँचे-नीचे बेतरतीब और रूपहीन घरों पर प्रकाश की रेखाएँ सोना बरसा रही थीं और वृक्षों की चोटियों के पल्लव पुंजों को जैसे नीलम-पुखराज की छोटी-छोटी खानें बना रही थीं और बछड़े दूध पीने तथा गाएँ उन्हें पिलाने के लिए रँभा रही थीं, चौकीदार डुगडुगी पीट रहा था—'कानून पास हो गया है, जिमींदारी समाप्त हो गई!' और प्रभात फेरियाँ इसी बात को सुरीले स्वरों, कविता की भाषा और भविष्य की धड़कन में सुना रही थीं।

टहलराम को पहले ही मालूम हो गया था। बाँगुर्दन की प्रभात फेरी का नायक वही था। उसमें एक टोली स्त्रियों की भी थी जिसका नेतृत्व उसकी माँ घाटीवाली कर रही थी।

सुहाना भी पीछे नहीं था। वहाँ दो फेरियाँ बनीं। एक बनमाली की, दूसरी धरनीधर की। फिर घड़ी-आधी घड़ी पीछे वे दोनों डॉक्टर सनेहीलाल के नेतृत्व में एक हो गईं। इसमें डॉक्टर की पत्नी राजदुलारी और थोड़ी-सी स्त्रियाँ भी सम्मिलित हुईं। राजदुलारी युवती थी, रूपरेखा की अच्छी और बी०ए० पास।

एक घड़ी पहले वे दोनों फेरियाँ जो गीत गा रही थीं उनके बीच-बीच में 'जिमींदारी का नाश हो, किसान और मजदूर समृद्ध हों' के नारे लगाती जाती थीं, सनेही के शामिल होने पर नए जीवन के स्वागत के गान के बीच-बीच में नारे लगे, 'नया प्रभात सबको एक-सा उजाला और सुख दे! जय हिंद!! भारत माता की जय!!!'

बाँगुर्दन में जो गीत गाया जा रहा था वह स्वार्थी संपत्तिवादियों के नाश के साथ उग्र संबंध रखता था और कभी-कभी देशराज तथा बनमाली के विनाश की भी ध्वनि गूँज जाती थी। इस फेरी का नेता टहलराम था जिसमें बटोले, दमरू और मंटू जोर के साथ भाग ले रहे थे। यह फेरी घूम-घामकर टहलराम के घर आ जमी और उसने बातचीत के लिए बैठक का रूप पकड़ा।

सुहानावाली फेरी बनमाली और देशराज के मकानों के सामने पहुँची। राजदुलारी के साथ अन्य स्त्रियाँ वहाँ से लौट गईं। संगीत और नारों की ध्वनियाँ देशराज और अंजना को टूटे हुए फाटक पर ले आईं। अंजना नाहरगढ़ से संध्या के पीछे लौटी थी। वे दोनों बहुत प्रसन्न दिखाई पड़ते थे।

देशराज ने उनको अपने आँगन में आने के लिए निमंत्रित किया। चबूतरे पर फर्श बिछा दिया गया। कोई चबूतरे पर, कोई नीचे बैठ गए, कुछ खड़े रहे, इनमें एक छदामी था।

देशराज ने छदामी को बुलाया, 'आओ जी, चबूतरे पर बैठो। आज का दिन चिरजीवी हो।'

छदामी कुछ लाज में, कुछ ग्लानि में और कुछ अपने मन में नीचे ही बैठ गया।

सनेही को छदामी का उस तरह बुलाया जाना अच्छा नहीं लगा।

मुसकराकर बोला, 'अब आगे की बात पर विचार करिए, गए गुजरे को भुला दीजिए।'

'इसीलिए तो इनसे खासतौर पर यहाँ बैठने के लिए कहा। उस जात के मुखिया हैं जिसकी संख्या अपने यहाँ सबसे ज्यादा है,' देशराज ने बात बनाई।

सनेही ने आगे की बात छेड़ी, 'जिमींदारी उन्मूलन का कानून पास हो गया है। अब हम सब किस रहन-सहन को अपनाएँ जिससे सबको सुख और शांति मिले, इस पर विचार करना चाहिए।'

धरनीधर ऊपर को निगाह उठाकर अमरबेल को देखने लगा, जिसका पीलापन सूर्य की कोमल किरणों में चमक रहा था।

छदामी बोला, 'हम तो सबके साथ हैं, लेकिन बेठ-बेगार नहीं करेंगे।'

सनेही हँस पड़ा। देशराज ने साथ दिया।

बनमाली ने कहा, 'कोई भी नहीं करा सकेगा बेगार।'

धरनीधर की आँख छदामी पर गई और फिर बनमाली पर।

बोला, 'पर दूसरों की जिमीन हथियाना उससे कहीं अधिक बुरा है।'

'सोई तो, सोई तो,' छदामी कुछ और अधिक नहीं कह सका।

सनेही ने कहा, 'अपने गाँव में सहकारी कृषि समिति बनने जा रही है। आगे यही

एकमात्र साधन ऐसा है जो हम सबको एक-दूसरे के निकट ले आवेगा। जिमींदार और मजदूर की आपसी खींचातानी इसी से बंद होगी।'

'यह क्या है?' छदामी ने अपना संदेह प्रकट किया।

सनेही ने बताया, 'वही, जिसके बारे में कोऑपरेटिव अफसर, राघवनजी, ने उस दिन मीटिंग की थी और दस्तखत निशान करवाए थे।'

छदामी बोला, 'दस्तखत निशान तो हो गए, पर बात क्या है, सो समझ में नहीं आई।'

बनमाली ने व्याख्या की, 'मिल-जुलकर खेती करना, अपनी-अपनी जिमीन समिति के भंडार में एक कर देना, इखरी-बिखरी जोतों को इकट्ठा कर देना—ये सब। सरकार रुपए-पैसे से मदद करेगी, अच्छा बीज देगी, मार्के के साँड़ भेजेगी, जिनसे ढोरों की नसल सुधरे, नहर निकाल देगी जिससे खेतों को अटूट पानी मिलता रहे—'

छदामी बोल उठा, 'मैंने इसी मद्दे अपने अँगूठे का निशान लगाया था, पर और कुछ समझ में आया नहीं। कहीं ऐसा न हो कि सरकार एक हाथ से हमें जिमीन दे और दूसरे से छीन ले। मूड़ चाहे कट जाए, पर बापौती तो न देंगे।'

देशराज ने समझाया, 'नहीं, जो कुछ होगा, अपनी सबकी मरजी से होगा। मैं भी शामिल हो जाऊँगा सहकारी समिति में और अपनी भूमि का बहुत-सा हिस्सा उसमें लगा दूँगा।'

छदामी इत्यादि के चित्त पर बात नहीं चढ़ी। देशराज भी शामिल होगा उस समिति में, यह बात छदामी को खटकी।

सनेही ने कहा, 'राघवन साहब, जो इस विभाग के बड़े अफसर हैं, इसी समय आते होंगे। वे समिति के काम को आज ही से चालू कर देंगे। किसी के मन में कोई भ्रम हो तो उसको दूर कर देंगे। मैं इसमें शामिल हो रहा हूँ और धरनीधरजी भी। सब तरह के लोगों को उसमें अपना हाथ बँटाना चाहिए।'

छदामी के मन में सवाल उठा—क्या बनमाली का भी हाथ उसमें रहेगा? पर उसने पूछा नहीं।

देशराज उत्साह के साथ बोला, 'आज जिमींदारी उन्मूलन की खुशी में रात को अंजना देवी का संगीत होगा, जिसके लिए दोनों गाँवों के लोगों को बुलाऊँगा।'

दोनों गाँवों के लोगों में बाँगुर्दन के टहल, बटोले इत्यादि भी! कुछ भी हो, इस मौके पर ऊपर-ऊपर की बनाए रखना ठीक होगा।

फिर मुसकराकर—

'और इस समय सब लोग थोड़ा-सा चाय-पानी लें तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।'

पिछली बात का सब लोगों ने स्वागत किया—विशेषकर जो चबूतरे के नीचे बैठे थे,

उन लोगों ने।

इतना बड़ा आदमी सचमुच आज हम लोगों को आदर देने के लिए कितना नीचे उतर आया है! मुकद्दमे और झगड़े तो लगे ही रहते हैं; मेल-जोल का बढ़ाना भी तो कोई चीज है!!

चाय-पानी की तैयारी हुई; इतने में मोटर में कोऑपरेटिव अफसर राघवन आ गया। वह भी हर्ष के साथ चाय-पानी में शामिल हुआ। चाय के साथ देशराज ने पकवान भी खिलाए जिन्हें अंजना ने परोसा।

देशराज ने सनेहीलाल से कहा, 'श्रीमती राजदुलारी ने भी यहाँ आने की कृपा की होती तो हम सबको अच्छा लगता।'

सनेही हँसकर बोला, 'उन्हें घर-गृहस्थी के काम-काज की सुधि आ गई होगी तो लौट पड़ीं।'

'फिर कभी सही—आज के संगीत समारोह में आ जाएँ।'

'यह उनकी मरजी पर है। परदा तो वे करती नहीं, पर जो कुछ करती हैं, अपने मन का।'

अंजना ने मुसकान बिखेरी, 'तो मैं बुलाने जाऊँगी।'

'आप जानें और वे जानें।' डॉक्टर ने सीधी बात कही। अंजना को अच्छी नहीं लगी। पर चेहरे पर कोई वैसा भाव नहीं आया।

राघवन ने संगीत समारोह की बात सुनकर हर्ष प्रकट किया, 'आज संगीत समारोह है?'

'जी हाँ,' देशराज ने उत्तर दिया, 'जिमींदारी उन्मूलन और सहकारी कृषि समिति की स्थापना का आनंद मनाने के लिए।'

राघवन उत्साही पदाधिकारी था। उछल पड़ा।

'आप भी सदस्य बन जाइए देशराजजी, हमारी सहकारी समिति के। उस दिन जब ललिता के किनारे आप मिले तब मैंने इस संबंध में आपसे प्रार्थना की थी। आपको याद होगा?'

'आपका कहना हम दोनों के सिर-माथे। इसीलिए तो अंजना देवी संगीत का आयोजन कर रही हैं।'

'घोर धन्यवाद!' किसी अंग्रेजी मुहावरे की हिंदी हँसी के साथ राघवन ने पेश की और कहा, 'समिति की रजिस्ट्री हो गई है। कागज अपने साथ लाया हूँ। समिति के सभी लोग यहाँ मौजूद हैं। पदाधिकारियों का चुनाव फिर से कर लिया जाए और पूरे जोर के साथ काम चालू कर दिया जाए।'

'मेरे मन भाया साहब, बिलकुल जी में समा गया।' देशराज बोला।

पहले समिति के प्रधान के चुनाव की बात चली। सनेही का नाम लिया गया। उसने तुरंत प्रस्ताव किया, 'देशराजजी को प्रधान चुना जाए। इनके प्रधान चुने जाने से सारी गुत्थियाँ सुलझ जावेंगी और उलझनें नहीं आवेंगी।'

एक ही साँस में बनमाली ने समर्थन किया।

अपनी आनंद विभोरता को यत्न के साथ छिपाकर देशराज ने कहा, 'डॉक्टर साहब को प्रधान बनाया जाना चाहिए, मैं मामूली सदस्य बनकर भी बराबर सेवा करता रहूँगा।'

राघवन बड़ी उमंग के साथ बोला, 'तो प्रधान बनकर और भी खरी सेवा करिए। क्यों भाइयो?'

किसी भाई ने आक्षेप करने का साहस नहीं किया।

देशराज सदस्य बना लिया गया और फिर प्रधान चुन लिया गया।

मंत्री और खजांची के चुनाव की बारी आई। देशराज ने बनमाली को मंत्री पद के लिए और धरनीधर को खजांची पद के लिए प्रस्ताव किया। बनमाली ने बनावटी और धरनीधर ने सच्ची आनाकानी की परंतु राघवन के जोर लगाने पर वे लोग चुन लिए गए और उन्हें स्वीकार करना पड़ा। विक्रम, छदामी और सनेही पंच बनाए गए। रजिस्ट्री के पहले जो कागजी चुनाव हुआ था, उसकी जगह यह हो गया।

राघवन ने बताया कि 'ललिता नदी का ऊँचा बाँध लगभग बँध चुका है, उससे इस ओर नहर आएगी और कुछ समय पीछे सस्ती बिजली भी। हजारों एकड़ भूमि की साँस घोटनेवाले काँस को उखाड़ फेंकने के लिए मशीनें आएँगी, कुटीर उद्योग फैलाए और बढ़ाए जाएँगे, ढोरों की नसल बदलने के लिए बड़े-बड़े साँड़ आ रहे हैं, रूखी भूमि अन्न की हरियाली से लहलहा उठेगी, जनजीवन फूल-फल उठेगा।'

छदामी ने पूछा, 'क्या हमारे खेत छीन लिए जाएँगे?'

राघवन ने पकड़ लगाई, 'किसने कहा? बिलकुल गलत। सब लोग अपने खेतों के मालिक रहेंगे। इखरी-बिखरी जोतें अवश्य इकट्ठी कर दी जाएँगी, सो भी जब ऐसी जोतोंवाले राजी हो जाएँगे, तब। हर हालत में खेतों पर मालिकी उन्हीं की रहेगी जो नए कानून से उनके मालिक मान लिए गए हैं।'

छदामी ने शंका प्रकट की, 'उस दिन आपने कहा था कि कमेटी में जितनी जिमीन लगाना चाहे, लगा दे और चाहे जितनी उसके बाहर रखकर अपनी निजी खेती रहे। अब यह क्या?'

'कुछ भी नहीं,' राघवन ने समाधान किया, 'चाहे जौन से खेत अपनी निजी खेती के लिए अलग रखो, किसी को उजर न होगा।'

देशराज ने अपनी छाप लगाई, 'अरे भाई, मैं खुद अपनी बहुत-सी सीर खुदकाश्त,

समिति से बाहर, अपनी निजी खेती के लिए रक्खूँगा।'

सनेही ने हँसकर कहा, 'मेरे पास तो एक इंच भी भूमि नहीं, पर काम अपनी गाँव समाज के लिए बहुत अच्छा है, इसलिए सबकी सेवा के लिए मैं भी इसमें पड़ा हूँ। किसी को घबराने की जरूरत नहीं। जब जिसके मन में आवे तब वह समिति को छोड़ सकता है और समिति की गड्डी में डाली हुई जिमीन वापस ले सकता है।'

राघवन को यह बात अखरी, पर कायदे में थी इसलिए चुप रहा।

धरनीधर बोला, 'जिमीन तो मेरे पास भी नहीं है, पर सबका हठ है इसलिए सेवा करने को शामिल हुआ हूँ।'

'है तो,' बनमाली ने पत्थर-सा फेंका।

देशराज ने सहला लिया, 'तो क्या हुआ? कायदे के भीतर है। जब ठीक समझेंगे तब समिति में लगा देंगे।'

छदामी परती के बारे में पूछना चाहता था परंतु फिर कभी के लिए बात उचट गई।

राघवन ने कहा, 'समिति के मेंबर भूमि के ज्यादा से ज्यादा रकबे समिति में लगाएँगे, क्योंकि रकबे के हिसाब से मुनाफा पैदावार के रूप में बाँटा जाएगा।'

'बहुत अच्छा है,' बनमाली ने झूमकर समर्थन किया।

राघवन के चेहरे से उत्साह के चिह्न कम हो चले। जगनू एक बड़े थाल में पान लगा लाया। देशराज ने मुसकानों के साथ बाँटे।

छदामी ने चलते-चलते एक सवाल पूछ डाला, 'जिनके पास भूमि है, पर हल-बैल नहीं, उनकी खेती कमेटी कैसे करवाएगी?'

राघवन ने उत्तर दिया, 'किराए के हल-बैल से। मजदूरी और किराए की दर समिति तय करेगी जो अच्छी ही होगी।'

'और?'

'और, भाई मेरे, जब जो कुछ पूछोगे, बराबर बताया जाएगा। कायदे की पुस्तक छोड़ जाऊँगा। तुम्हारे मंत्री, प्रधान और पंच सब समझा दिया करेंगे।'

छदामी कुछ और नहीं पूछ सका।

अंतिम प्रश्न राघवन ने किया, 'संगीत समारोह कितने बजे से होगा?'

'वही कोई छः-सात बजे से,' देशराज ने बताया।

'काफी समय है। मैं तब तक आस-पास के गाँवों में कुछ काम करे लेता हूँ।'

'और तब तक मैं अच्छा-खासा रंगमंच खड़ा करवाए देता हूँ। लंबे लट्ठे बहुत-से रखे हैं।'

देशराज की आँख आँगन के एक कोने में रखी हुई उस लकड़ी पर गई जो कुछ समय पहले उसने कटवा उठाई थी।

धरनीधर की भी आँख गई। माथे की रेखाएँ फूल गईं।

देशराज ने राघवन को सुनाया, 'मैं अपने मित्र नाहरगढ़ के राजा को तार देकर बुलाता हूँ। बड़े संगीत-प्रेमी हैं। बहुत मिलनसार। आपका परिचय है?'

'नहीं तो। कभी मिलने का अवसर नहीं आया।'

'मैं आज ही मिलाऊँगा।'

वे सब चले गए।

रास्ते में जब सनेही और धरनीधर अकेले रह गए, धरनीधर ने कहा, 'समिति की आज की कार्यवाही शुभ मुहूर्त में नहीं हुई।'

'क्यों?'

'आपको प्रधान पद स्वीकार करना चाहिए था।'

'देशराज को पद के भार से दबाना जो मुझे अच्छा लगा।'

'देखिए क्या होता है, पर भविष्य अच्छा नहीं दिखता।'

: १३ :

उसी दिन टहलराम के घर पर जमाव देर तक रहा। आगे क्या करें, चर्चा इस विषय पर होती रही। बाँगुर्दन के लोग सुहाना की सहकारी समिति में शामिल नहीं हुए थे और न उन्होंने अपने ही गाँव में समिति खुलवाई, क्योंकि टहलराम उसके विरुद्ध था।

टहलराम ने समझाया, 'उन्हीं जिमींदारों, उनके पिछलग्गों और अफसरों से लदी हुई समिति से कुछ नहीं होना-जाना है। अपनी समिति अलग क्यों न बनावें? सरकार से कोई वास्ता नहीं रखेंगे। सरकारी अफसरों के दखल के मारे काम ठिकाने का नहीं हो पाता है, उनको इससे दूर ही रखना भला।'

टहलराम के कई साथियों के विवेक में यह बात नहीं बैठी परंतु वे सरकार या किसी की भी अपेक्षा टहलराम को अपने निकट अधिक पाते थे, इसीलिए उसकी बात को मानते थे, मन चाहे भरे या न भरे।

'तो बना डालो समिति, भैया टहल,' बटोले ने कहा।

'जहाँ मन एक होता है वहाँ तन अलग नहीं रहते,' टहलराम ने कहा, 'अपने-अपने खेत समिति में जुटा दो और मिलकर काम करो।'

'पर सबके पास तो जिमीन नहीं है,' मंटू ने बात उठाई।

टहलराम ने मार्ग दिखाया, 'न सही। अपने हाथ और पसीने का तो बल है। मैं अपने अच्छे-बुरे सब खेत समिति को दे दूँगा, अलग से निजी खेती नहीं करूँगा; किसी को भी नहीं करनी चाहिए। मेरे सब खेत समिति के, यानी तुम सब लोगों के हो जावेंगे।'

और गाँव के हमारे भी निकल जावेंगे! बटोले ने सोचा।

दमरू बोला, 'मैं अपने खेत लगाने को तैयार हूँ, लेकिन उनमें से कई झगड़ेवाले भी हैं। विक्रम, बनमाली, देशराज—सभी से कुछ-न-कुछ झंझट है।'

'तो वे खेत लगा दो जिन पर कोई लड़ाई मुकद्दमा नहीं है,' मंटू ने सुझाया।

दमरू को अखर गया, 'बगल के पिल्ले को फेंककर कूर-कूर करते फिरो!'

बटोले ने समझौता प्रस्तुत किया, 'बीच का रास्ता सबसे भला। कुछ झगड़ेवाले लगा दो और एकाध बगैर झगड़ेवाला। मान लो समिति का काम न चला तो पल्ला फटकारकर फिर जहाँ के तहाँ खड़े हो जाएँगे।'

जिनके पास खेत थे उनके भूमि-मोह ने यही पसंद किया।

मंटू ने प्रश्न किया, 'जिनके पास हाथ-भर भी जिमीन नहीं, वे क्या करेंगे? जैसे में हूँ। बटोले दादा की सोंझ करता हूँ। अगर वह भूमि समिति को सौंप दी गई तो मेरा क्या होगा?'

टहलराम ने बताया, 'अपने गाँव की आबादी सुहाना गाँव की आबादी से अधिक है। निज की जिमीन थोड़े से ही लोगों के पास है। बाकी मजदूरी करते हैं। हजारों बीघा अच्छी भूमि को काँस ने खा लिया है। सरकार की मशीनें काँस को उखाड़ फेंकेंगी। जो जिमीन साफ होकर निकलेगी वह जरूरतवाले किसान-मजदूरों में बाँट दी जावेगी।'

यह बात सबको अच्छी लगी।

किसको कौन-सा और कितना बड़ा टुकड़ा मिलना चाहिए, इस विषय पर देर तक बात चलती रही। उसी समय राघवन की मोटर भर्र-भर्र करती हुई टहलराम के दरवाजे पर आ खड़ी हुई। वे सब बाहर निकल आए। राघवन टहलराम से मिलने आया था। उसको वे सब सम्मान के साथ भीतर ले गए।

टहलराम ने, संक्षेप में, अपने ढंग की समिति बनाने का संकल्प सुनाया।

राघवन ने अपना विचार प्रकट किया, 'मैं आपकी अधिकांश बातों से सहमत हूँ। मैं स्वयं इस बात के पक्ष में नहीं हूँ कि कुछ भूमि समिति में लगा दें और कुछ अपनी निजी खेती के लिए अलग रखें, क्योंकि होते-होते अंत में निकम्मी भूमि समिति में रह जाएगी और अच्छी निजी खेती में। आप अपनी समिति जिस विचार को रखकर बना रहे हैं, वह बहुत सुंदर है—'

टहलराम को इस विशेषण से संतोष नहीं हुआ। वह उत्साह के साथ बीच में बोल उठा, 'मेरे लिए जीवन में जो कुछ भी बहुत सुंदर है, वह श्रम है। अपनी समिति में श्रम को हम लोग अधिक महत्त्व देंगे।'

'मेरा भी यह मत है,' राघवन ने बहस के सभी पहलुओं को बचाते हुए कहा, 'इसीलिए सुहाना की समिति में मजदूरों को भरपेट मजदूरी, समिति के कामों में राय देने का हक और भत्ता मिलेगा। कुटीर उद्योगों से बेकारी दूर भगाई जावेगी।'

'हम लोग सुहाना से दूर नहीं बसते हैं, देखेंगे क्या-क्या होता है।'

'आपकी समिति अपने ढंग की एक ही रहेगी। मेरा अनुरोध है कि इसकी रजिस्ट्री करवा लीजिए। सुहाना और बाँगुर्दन की समितियाँ अपने-अपने ढंग पर अलग-अलग चलें और दोनों में उन्नति और प्रगति की होड़ लगे। यह एक ऐसा प्रयोग रहेगा कि हम सब उससे कुछ-न-कुछ सीखेंगे।'

राघवन बहुत उमंग में था।

टहलराम रजिस्ट्री कराने के विरुद्ध था। इसलिए बात बहस के क्षेत्र में पहुँचे बिना न रही।

टहलराम ने कहा, 'मैंने आपकी योग्यता और कर्तव्य-भक्ति के बारे में बहुत सुना है, परंतु सरकार में आप सरीखे कितने अफसर हैं? आतंक जमाना, भत्ता सीधा करना और संस्थाओं पर अमरबेल की तरह छाए रहना ही अधिकांश का लक्षण है। ये लोग इस युग के सामंत हैं। हम उनसे दूर रहना चाहते हैं।'

राघवन को कहना पड़ा, 'अंग्रेजों के जमाने की अफसरी और इस युग की अफसरी में बहुत अंतर हो गया है। कामचोरों, अकड़बेगों ने भी अब अपने को सँभाल लिया है। जनता का स्नेह और सम्मान कमाने की लालसा सभी के जी में है।'

लोग काफी देर से बैठे-बैठे बातें सुन रहे थे। इतनी-सी ही बहस पर उकता उठे।

मंटू, जिसे बात करने की उतावली रहती थी, बोला, 'काँस को मिटाने के लिए अफसर लोग क्या कर रहे हैं?'

राघवन को अच्छा प्रसंग मिला।

'मशीनें आ रही हैं। दो खास तौर से बड़े काम की—एक, ट्रैक्टर, दूसरी, बुलडोजर। ट्रैक्टरों से काँस उखाड़ फेंका जाएगा और बुलडोजरों से बँधियाँ डाली जाएँगी, और—'

'बिना जिमीनवाले और कम जिमीनवाले किसान-मजदूरों को इसमें से कुछ मिलेगा?' मंटू ने जल्दी से प्रश्न किया।

'अवश्य,' राघवन ने उत्तर दिया। फिर उत्तर की व्यापकता को सुधारा, 'सरकार एक बड़ा नमूना-फार्म बनाएगी, क्योंकि हजारों एकड़ जिमीन तो सरकार की है। जो जिमींदारों की परती है, उसका बंदोबस्त गाँव की पंचायत करेगी—यानी आप लोग उसको बिना भूमिवालों में बाँट देंगे।'

'जिमींदारों की परती! वही फसाद की बात है!!'

'तो क्या मशीनें जिमींदारोंवाली परती में नहीं चलेंगी?' मंटू ने दूसरा प्रश्न किया।

टहलराम ने जो आश्वासन दिया था कि काँस को उखाड़ फेंकने के बाद साफ भूमि जरूरतवाले किसान-मजदूरों में बाँट दी जाएगी, फीका पड़ने लगा। मंटू उस आश्वासन की थाह में जाना चाहता था और वह उसे सरकारी आश्वासन से मिला रहा,

जिसकी सराहना स्वयं टहलराम ने अभी-अभी की थी। परंतु उसकी आशा का तार नहीं टूटा और टहलराम के प्रति आस्था भी कमजोर नहीं पड़ी। टहलराम ने देख लिया कि किसान किसी-न-किसी प्रकार हर बात को अपनी-अपनी कसौटी पर कसता है।

राघवन ने मंटू को बताया, 'मशीनें सहकारी समितियों की खास तौर पर मदद करेंगी। जिमींदारी की जो परती सीर कहलाती है उस पर उन्हें खेती करानी पड़ेगी, नहीं तो वह गाँव की पंचायत के हाथ चली जावेगी। ऐसी जो परती सरकारी कृषि समिति में लगा दी गई होगी या जो लगा दी जावेगी, वह सब मेंबरों के भोग और उपभोग में आवेगी।'

'और ऐसी परती झगड़ेवाली भी हो सकती है,' यह शंका बटोले और दमरू के मन में उठी।

राघवन की बात अधिकांश लोगों की समझ में साफ तौर पर नहीं आई। वे उसका मुँह देखने लगे।

टहलराम ने कहा, 'देखना है, सुहाना में क्या होता है। निरखें-परखेंगे और समस्याओं का मुकाबला करने को तैयार रहेंगे।'

टहलराम के साथी राघवन से कुछ और सुनना-जानना चाहते थे, पर टहलराम की बात का लाँघना अभीष्ट नहीं था।

राघवन ने विषयांतर करते हुए प्रसंग जारी रखा, 'आज संध्या समय सुहाना में, देशराजजी की हवेली के आँगन में, सहकारी कृषि समिति के उद्घाटन का हर्ष प्रकट करने के लिए संगीत समारोह होगा। आप लोगों के लिए भी निमंत्रण आएगा। अवश्य पधारिए। जिमींदारों की परती और उसके भोग-उपभोग की भी चर्चा होगी। मशीनों के काम पर भी बातचीत चलेगी।'

मंटू तुरंत बोला, 'यदि देशराजजी बुलाएँगे तो पहुँचेंगे। वहाँ एक नाचनेवाली आई है। सुना है, उनका नाच भी होगा?'

मंटू मौजी तबीयत का था।

राघवन ने कहा, 'हाँ। गाँव-गीत और गाँव-नाच के भी नमूने पेश होंगे।'

लोकगीत और लोकनृत्य की चर्चा टहलराम के सिद्धांत की परिधि में आती थी, परंतु वह उस समय लोक-संगीत को देशराज के नाम और हवेली के अँगना से संश्लिष्ट नहीं करना चाहता था।

टहलराम बोला, 'हाँ, सो तो खैर ठीक है, परंतु हम सब कुछ बातें यहीं साफ समझ लेना चाहते हैं। सरकारी परती में से, जिसका काँस मशीनें उखाड़ेंगी, बाँगुर्दन और सुहाना के भूमिहीन किसानों को कितनी दी जावेगी? और जिमींदार की जो परती सीर और खुदकाश्त नहीं है, उसका क्या होगा?'

राघवन ने यथाशक्ति सावधानी से बताने की चेष्टा की, 'सरकारी परती के एक बड़े भाग में सरकार नमूना-फार्म स्थापित करेगी, यह तय हो चुका है। कुछ परती, जिसका रकबा भी काफी होगा, भूमिहीनों को बाँटी जाएगी; कह नहीं सकता किस-किस को। संभव है, बाहर से आए हुए शरणार्थियों को उस पर बसाया जावे। उन बिचारों की सहायता करना भी बहुत जरूरी है। है न? रह गई जिमींदारी परती, वह गाँव की पंचायत के अधिकार में आ जाएगी और बँटेगी; परंतु जैसा मेरा अनुमान है, पहले सहकारी कृषि समितियों को दी जाएगी।'

यहाँ के बहुत से निवासी बेघर-बार और बँधे हुए काम से हीन हैं यह बात टहल के मन में उठी और कइयों के भी, परंतु उस कष्टदायक प्रसंग पर मत प्रकट करने का साहस नहीं हुआ।

तो भी टहलराम ने थोड़ा-सा छेड़ा, 'यहीं क्या कम बेकारी और गरीबी है? लेकिन अपने उन भाइयों को भी अपनी भुखमरी में से कुछ सहारा देना ही चाहिए। फिर भी इतनी भूमि है कि सबकी गुजर हो जाएगी। हमारे गाँववालों को भी अवश्य मिलेगी।'

'तो समिति की रजिस्ट्री क्यों नहीं करा लेते? भूमि के बाँट के समय माँगने, लेने का पूरा हक रहेगा।' राघवन ने मुसकराकर अपने मन की बात कह डाली।

वह मुसकराते समय भी गंभीर जान पड़ता था।

टहलराम के सिवाय उन सब के मन में सहकारी कृषि समिति की रजिस्ट्री कराने की बात घर कर गई। जो किसान अनंत काल से दुष्ट प्रकृति, कृमिकीट, भाव-कुभाव, आर्थिक और राजनीतिक विपत्तियों से मरते दम तक कुश्ती लड़ता आया है, वह पुराने जिमींदारों या नए अफसर 'सामंतों' की दाघलात की कुचल-पिचल से भी अंत में अपने को बचा ले जाएगा, यह अंतर्निहित, अज्ञात, आत्मविश्वास उनका जन्म-संगी था। मंटू के जी में आया, रजिस्ट्री करा दो, हर्ज ही क्या है। पर वह टहल की भाव-भंगिमा को देखकर सहम गया। उसका मुँह ताकने लगा।

टहलराम बोला, 'सरकार ऐसा अन्याय नहीं कर सकेगी। हम लोग उसे न्याय करने के लिए मजबूर करेंगे। यह कोई बात है कि सरकारी छाप सहकारी समिति पर लग जावे तब तो वह सरकार को प्यारी लगे, नहीं तो दुतकारी जावे!'

बटोले ने पूछा, 'आपने कुटीर उद्योगों की सहायता की कुछ बात कही थी। इसमें तो सीर और परती की कोई उलझन नहीं। यदि हम सहकारी समिति में शामिल न हों तो क्या हमारी मदद नहीं की जावेगी?'

'क्यों नहीं?' टहलराम ने जोर के साथ कहा।

राघवन ने उत्तर दिया, 'अवश्य की जावेगी। यदि कुटीर उद्योगवालों की भी सहकारी समिति बन जावेगी तो सहकारी तौर पर माल बेचने खरीदने का भी सुभीता

हाथ लग जाएगा। ग्राहकों की खोज-तलाश नहीं करनी पड़ेगी। दलालों की दलाली से बचे; रुपए-पैसे, सामान, मशीनों की जो मदद मिलेगी वह अलग।'

बटोले ने बात गाँठ में बाँध ली। वह प्रसंग पर अधिक बात करके टहलराम का प्रतिवाद आगे नहीं बढ़ाना चाहता था।

उसने तुरंत विषयांतर किया, 'चलो न रात को वहाँ। कुछ देना-लेना तो पड़ेगा नहीं; अपना क्या बिगड़ता है? पर हाँ, बिना बुलाए नहीं जाएँगे।'

मंटू ने भी अनुरोध किया।

बटोले ने रंग गहरा किया, 'और उन लकड़ी के लट्ठों को भी देखेंगे जिनको देशराज ने चोरी-चोरी रातों-रात, कटवाकर उठा मँगाया था। मैं कोई-न-कोई मौका निकालकर बात छेड़े बिना न मानूँगा।'

संघर्ष में टहलराम को रस मिलता था। बटोले की छेड़छाड़ की कल्पना करके उसे भी संगीत समारोह में जाना रुचा—शर्त यह कि निमंत्रण आए तो जाएँगे। बटोले, मंटू और इन सरीखे कई सोच रहे थे—मन की कह डालने का मौका भी मिलेगा—मुफ्त में राग-रंग अलग।

राघवन को विश्वास था कि निमंत्रण आएगा; देशराज भूल गया होगा तो उसे याद दिला दूँगा, इन दोनों गाँवों के मुखियों में थोड़ा-बहुत भी मेल-जोल करा सका, तब बात है।

राघवन चला गया। कुछ समय उपरांत उन लोगों के पास देशराज का निमंत्रण आ पहुँचा।

: १४ :

छः बजने के पहले ही सूर्य ने अपनी किरणें पहाड़ों के पीछे समेट लीं। संध्या के प्रकाश को जंगल और पहाड़ सेंत रखने की होड़-सी लगा रहे हों।

देशराज की हवेली के आँगन में गाँव-भर की चहल-पहल सिमट आई। नंगे-अधनंगे बालक शोरगुल करने में सबसे ज्यादा व्यस्त थे।

प्रकाश के लिए गैस के हंडे रंगमंच के बाहर और भीतर लगा लिए गए थे। मंच सादा सफेद परदों का बनाया गया था। हरे पत्तों के बंदनवार की सजावट थी जिनमें से कुछ मुरझा चले थे। मंच-सृजन के काम में उस रात के काटे कुछ लट्ठे लगा लिए गए थे, बाकी आँगन के एक कोने में इखरे-बिखरे पड़े थे।

थोड़ी देर में अँधेरा हुआ। गैस की बत्तियाँ जला ली गईं और मंच के सामने, दर्शकों के लिए फर्श बिछा दिए गए। मंच के आगे बढ़िया कालीन और तकिए।

खेतों पर काम करके किसान हल-बैल बखर लिए आँगन के फाटक के सामने से

निकले। थोड़ी देर के लिए ठिठके, फिर एक हाथ से माथे का पसीना पोंछते हुए दूसरे से बैलों की पूँछ मरोड़कर अपने घर चले गए।

एक मोटर आई। उसमें से नाहरगढ़ का बाघराज, उसका एक साथी और ड्राइवर उतरे। आव-भगत के लिए देशराज, बनमाली इत्यादि झपटे। उन लोगों को आदर के साथ बिठा लिया गया। राघवन भी मोटर से आ गया। देशराज ने बाघराज से उसका परिचय कराया। राघवन को मौके-बेमौके भी सहकारी कार्यों की चर्चा चलाने की सनक थी। नाहरगढ़ के इलाके में सहकारी प्रणाली चलाने के लिए कितनी गुंजाइश है, इस विषय पर बात करता रहा। बाघराज ने चाव के साथ वार्तालाप किया। राघवन को ऐसा प्रतीत हुआ।

सनेहीलाल, धरनीधर इत्यादि सुहाना के और टहलराम, बटोले, मंटू इत्यादि बाँगुर्दन से आए। स्वागत के लिए फाटक पर, सहकारी कृषि समिति का मंत्री बनमाली था ही। देशराज ने भी इन सबकी दिखावटी आवभगत की। और आगे के आसनों पर बिठा दिया। टहल ने सोचा, उस दिन के जलूस की बात या तो भूल गया है या उसके आतंक से प्रभावित है। पीछे का स्थान जब तक न भर जाए, मंच का परदा नहीं खुला। इसमें एक घंटे से ऊपर का विलंब हो गया।

फिर भीड़ उमड़ी। दोनों गाँवों के स्त्री, पुरुष और बालक इकट्ठे हुए। इतना शोर कि कान पर हाथ धरते नहीं बनता था।

टहलराम सनेही के पास बैठा था और मंटू विक्रम के जरा पीछे।

'यदि इन अवसरों पर हमारी जनता को कुछ ऐसा सांस्कृतिक भोजन मिले जो इनको थोड़े से भी समय के लिए सशक्त कर दे तो कितना अच्छा रहे।' टहलराम ने सनेही से गला फाड़कर कहा।

सनेही शोर के मारे वैसे ही परेशान था। बोला, 'हाँ आँ।'

'पर अंजना के नाच-गान से क्या मिलता है?' टहल और भी जोर से चिल्लाया।

थोड़ी ही दूर बैठे हुए देशराज ने सुन लिया। उसका ध्यान आकृष्ट हुआ। अनसुनी कर दी।

सनेही ने कोई टीका नहीं की।

टहलराम से फिर भी न रहा गया, 'जरा तटस्थ होकर इस हल्ले-गुल्ले की तह में जाइए; लोग इस नाच-गाने के सुनने के लिए नहीं तड़प रहे हैं। उनका भीतरवाला स्वस्थ मानसिक भोजन माँग रहा है, उसी माँग को यह शोर अपनी भाषा में भिन्नता के साथ प्रकट कर रहा है।'

'अब परदा उठनेवाला है,' सनेही ने उसको चुप रहने का संकेत किया।

परदा उठ गया। शोर धीमा पड़ा।

अंजना बहुत भड़कीले-सजीले वेश में मंच पर दिखाई पड़ी। साज में गाँव का एक सारंगीवाला, दूसरा मृदंग और तीसरा मजीरे बजानेवाला था।

सारंगी अंजना के गाने का साथ रो-रोकर दे रही थी। मृदंग अलग था। मजीरेवाला अपनी धुन में मस्त। परंतु अंजना को इनमें से किसी की परवाह न थी। वह अपनी कला में ध्यान-मग्न थी और अपना प्रदर्शन कौशल के साथ कर रही थी।

शोर बंद हो गया। जनता को वह सजीव रंगीन पुतली की तरह गाती-नाचती जान पड़ी।

मंटू ने धीरे से बुदबुदाया, 'है तो बड़ी मजेदार, जैसे कोई सनीमावाली हो।'

'चुप भी रह,' विक्रम को क्षोभ हुआ, 'बड़ा जानकार बना फिरता है।'

मंटू तमतमा गया।

स्त्रियाँ आपस में बिरबिरा रही थीं। इनमें सनेही की पत्नी, राजदुलारी, नहीं थी।

अंजना की दृष्टि के दो केंद्र विशेषकर थे—एक, राजा बाघराज और दूसरा, देशराज; दूसरे की अपेक्षा पहला अधिक।

हाव-भाव, कटाक्ष, अंगों का उद्दीपक दोलन उसने जी खोलकर किया। देशराज और बाघराज ने कई वाह-वाह कीं। निकट और दूर बैठे कुछ और लोगों ने भी। बटोले के मुँह से निकला, 'हिष्ट!'

टहल ने सनेही के कान के पास खिसककर कहा, 'शरम आनी चाहिए।'

सनेही चुप रहा।

फिर अंजना ने एक लोकगीत और नृत्य का प्रदर्शन किया। इसका साथ सारंगी, मृदंग और मजीरों ने ठिकाने से किया।

जनता को अच्छा लगा।

टहल ने धीरे से कहा, 'इसमें ऐसा क्या है जिसे ये मूर्ख इतना पसंद कर रहे हैं?'

टहल की असंगति पर सनेही बोला, 'वे जानें।'

मंटू ने अपनी जानकारी प्रकट करने के लिए कहा, 'यह है बहुत ठाठ का!'

भिन्न-भिन्न प्रकार के गान और नृत्य लगभग दो घंटे चले। अंत में सबको विनयपूर्वक नमस्कार करके अंजना, बाघराज को अपनी आँख का अंतिम लक्ष्य बनाती हुई, मंच पर से चली गई। परदा गिर गया। जनता, जो रात-रात-भर गाँव के नाच-गान देखने-सुनने की अभ्यस्त थी, कई घंटे और रमना चाहती थी। देशराज के इस आश्वासन देने पर कठिनाई से हटी कि फिर कभी ऐसा ही मेला भरा जाएगा।

सनेही, टहलराम और धरनीधर को देशराज ने रोक लिया। बाघराज को तो रात-भर वहाँ ठहरना ही था। उसे अंजना ने मंच के पीछे के शृंगार गृह में बुला भेजा।

देशराज ने सनेही से पूछा, 'आपकी श्रीमतीजी नहीं आईं! अंजना देवी स्वयं उन्हें

निमंत्रण देने गई थीं।'

सनेही ने सहज भाव से उत्तर दिया, 'वे जानें। घर के किसी काम में लग गई होंगी। ऐसी भीड़-भाड़ में वैसे भी भाग नहीं लेती हैं।'

'जाती तो हैं!'

'अपने घर पर।'

आधे क्षण गंभीर रहकर देशराज ने हँसकर कहा, 'अब की बार उन्हें लाने के लिए मैं जाऊँगा और उनके पैर पड़ूँगा।'

सनेही भी हँसा। राघवन निकट आ गया।

'तो अब जाऊँ न?' सनेही चलने को हुआ।

देशराज ने रोका, 'जरा-सा ठहरिए। टहलरामजी और धरनीधरजी तथा इनके मित्रों को मैंने खास तौर से इसलिए बुलाया है कि मैं बतला दूँ—मैं अब वह नहीं रहा। सहकारी समिति की जिम्मेदारी सिर पर आ गई है। उसका भार इतना बड़ा है कि हम थोड़े से उसे नहीं सँभाल सकते। हम चाहते हैं कि बाँगुर्दन भी हाथ बँटाए; सहकारी कामों में दोनों गाँव एक होकर चलें।'

'तो कुछ साफ-साफ बातें करूँ?' टहलराम ने रुखाई के साथ कहा।

देशराज को भीतर-भीतर खटका, पर ऊपर मुसकान बनी रही जिसमें होकर उसने 'हाँ क्यों नहीं' निकाली।

'आपने बटोले, दमरू, छदामी के कब्जे की जिमीन बनमाली और विक्रम को लगा दी। बहुत बुरा किया।'

'मुकद्दमे से तय हो जाएगा कि जिमीन किसकी है।'

'इस तरह क्या आप इन दुखियों के मेल-जोल को पा जाएँगे?'

'वह जिमीन सहकारी कृषि समिति में लगा दी गई है या लग जाएगी। यदि मुकद्दमे से बटोले वगैरह की तय हुई तो उनकी हो जाएगी। वे समिति में आ जावें। भूमि उनकी रहे या नहीं, समिति के नाते सबके खाते में उनका खाता जुड़ जाएगा।'

'यह आपकी ज्यादती और चालाकी है।'

'इन बातों के सुनने का मुझे अभ्यास होता जा रहा है।'

टहलराम की आँख आँगन के कोने में पड़े हुए शहतीरों के इखरे-बिखरे ढेरों पर गई। धरनीधर की भी।

टहलराम ने उस ढेर की ओर उँगली उठाते हुए जरा जोर के साथ कहा, 'और आपको कानून की अवहेलना करने में जैसे कुछ लगता ही न हो। यह जंगल क्यों कटवा दिया?'

देशराज ने मुसकराकर उत्तर दिया, 'मैं इस सारी लकड़ी को समिति की सहायता के

लिए दान कर दूँगा—'

धरनीधर ने तपाक से टोका, 'हाथ जोड़े ऐसी समिति के जो इस दान को काम में लावे।'

टहलराम ने देशराज को स्मरण दिलाया, 'आपके यहाँ बीज और खवाई के लिए अन्न देने में जो अनाचार होता है उसकी मैंने शिकायत की थी। आपने क्या किया?'

'आगे से अन्न देना बंद कराए देता हूँ। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।'

सनेही बीच में पड़ा, 'ऐसा क्यों करते हैं? प्रथा को सुधार दीजिए।'

धरनीधर ने आक्षेप को विस्तार दिया, 'कारिंदे का हक, रेडियो का टैक्स और तौल में डाँड़ी का मारना! सहकारी कृषि समिति के साथ यह सब कैसे चलेगा?'

'जैसे आपका एक पैसा फी रुपया ब्याज के ऊपर अधेला रुपया धर्मादा, अधेला रुपया चंदा-वंदा और न जाने क्या-क्या?'

'जिनसे लेता हूँ उन्हीं पर उसे खर्च कर देता हूँ।'

अब की बार राघवन ने बीच-बचाव किया, 'इन बातों का बढ़ाना बेकार है। सहकारी समिति और सरकारी बीजगोदाम हो जाने पर न यह रहेगा और न वह। आप सबको इस काम में मन के साथ एक हो जाना चाहिए।'

राघवन प्रत्येक सामाजिक बीमारी और त्रुटि का इलाज सहकारी कामों में पाया करता था।

सनेही ने समझाया, 'गड़े मुरदों का उखाड़ना व्यर्थ है। सर्वथा पूर्ण और निर्दोष सिवाय भगवान् के और कोई नहीं। इसलिए व्यक्ति और समाज को आगे बढ़ाने के लिए जहाँ से जब जो कुछ मिल जाए, लेकर, काम में लाना चाहिए।'

'यानी पूरा अवसरवादी बनना चाहिए,' टहलराम ने व्यंग्य किया।

'मैं बहस में नहीं पड़ना चाहता, काम करना चाहता हूँ।' सनेही हँसता हुआ चला गया।

देशराज ने निश्चय किया, मैं अकेला ही मोर्चा लूँगा। बोला, 'आपने अपने घर में भी देखा, क्या होता रहता है? आपकी माताजी भी सवाई पर गल्ला देती हैं। देने की तौलवाला बरतन लेने की तौलवाले बरतन से भिन्न!'

'आप साबित कर सकेंगे? यह बहुत नीचा और झूठा आक्षेप है मेरी माताजी पर।'

राघवन सबलता के साथ बीच में पड़ा, 'जाने भी दीजिए। इन बातों में क्या रखा है? अब अपना देश स्वतंत्र हो गया है, उसकी बहार छोटे-बड़े—सब—को दिखलाइए। इन छोटी-छोटी बातों को छोड़िए।'

'पुराने सामंत जब उसे पनपने दें, तब तो,' धरनीधर ने चुटकी काटी। टहल का क्रोध उस कक्ष में पहुँच गया जब वह अपने पात्र को एक जगह नहीं टिकने देता।

'चलो जी यहाँ से,' टहलराम ने धरनीधर से अनुरोध किया, 'इन्होंने अपमान करने के लिए ही हम लोगों को यहाँ बुलाया था। धन-संपत्ति का बहुत घमंड है। धूल में मिली जाती है सब ऐंठ-अकड़ कुछ ही समय में!'

टहलराम देशराज के कलेजे में आगी लगाकर चला गया। परंतु धरनीधर जिस तरह सिर उठाकर और पैर धमधमाकर उसके साथ गया, वह देशराज को कुछ कम नहीं अखरा।

राघवन ने सांत्वना दी, 'इन्हें माफ कीजिए राजा साहब और मुझे इनसे भी अधिक, क्योंकि मेरे ही कहने से आपने इन सबको निमंत्रित किया था। युगांतर के काल में यह सब होता ही रहता है। सहकारी कार्यक्रम को दत्तचित्त होकर अपना लेने से यह सब घुल-घुलाकर समाप्त हो जाएगा। सहकारी सिद्धांत–'

'चाय मँगवाऊँ आपके लिए?' देशराज ने पूछा।

'नहीं तो, मैं अभी सदर जा रहा हूँ।' राघवन ने उत्तर दिया।

'फिर कब आइएगा?'

'संभवतः मशीनों के साथ, जल्दी ही।'

'अच्छा, नमस्ते। आपने बड़ी कृपा की; इस समारोह की शोभा को बढ़ाया।'

राघवन जाते-जाते कह गया, 'मैं कह रहा था कि सहकारी सिद्धांत ही हमारे भारतीय समाज की अनेक आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का हल है। नए युग के स्वागत में उसी को अपनाइए।'

देशराज कुछ और सोच रहा था।

: १५ :

जब सब चले गए और नौकर सामान इकट्ठा करके जहाँ-का-तहाँ रखने में लग गए, अंजना, बाघराज और देशराज खा-पीकर हवेली के भीतरवाले एक एकांत कमरे में जा बैठे। बाहर के भोंड़ेपन से भीतर की सजावट की बाघराज ने तुलना की और अंजना के रंगमंचीय आकर्षण शृंगार से इस समय की अपेक्षाकृत सादी वेशभूषा से। रंगमंच की जो थिरकनें और चितवनें देखी थीं, वे अब नहीं थीं, फिर भी उसकी आँखों में मद झलक मार जाता था। बाघराज के मन में बैठा–अंजना बहुत रूपवती है पर कैसे संकटवाले काम को इसने अपना रखा है!

बोला, 'आप कब तक ठहरेंगी यहाँ?'

'बस थोड़े दिन और। फिर उत्तर की दिशा में। अब की बार अधिक माल लाने का संकल्प है।'

'चाहता हूँ, जल्दी अपना पेटा भर जाए तो दूसरा धंधा देखें।'

'मेरी भी यही कामना है,' देशराज ने कहा, 'मैं भी इनके साथ जाऊँगा।'

'जरूर साथ ले जाऊँगी। सोचती हूँ, इस सहकारी झंझट में ये कहीं ज्यादा न उलझ जाएँ।' अंजना हँसी। उसके मोती जैसे चमकदार और सुघड़ दाँत बाघराज को सुहावने लगे।

देशराज ने फीकी हँसी में साथ दिया, 'अरे नहीं। जीवन को सुगमता के साथ चलाने के लिए ही बानक बना लिया है। जोश उस काम के लिए सिवाय शायद सनेहीलाल के और किसी के मन में नहीं है, परंतु वह राघवन की तरह सनकी नहीं है, इसलिए मुझे नहीं अखरता। बाकी तो अपने-अपने किसी-न-किसी मतलब से चिपके हैं। मैं चाहता हूँ, इन सबको लड़ाता-भिड़ाता रहूँ।'

अंजना मुसकराकर बोली, 'इसकी चिंता मत करो। वे स्वतः लड़ते रहेंगे। उस टहलराम को भी इसमें खपा लेते तो एक काँटे की नोक और झड़ जाती।'

देशराज यकायक तमतमा गया।

'आज वह बहुत बकझक कर गया है। कलेजे में तीर-सा चुभ रहा है। मैं थका-वका नहीं हूँ। असल में उन लोगों की बातें कसक रही हैं।'

'मैं समझी थी कि किसी सहकारी प्रसंग को लेकर बात गंभीरता पर चढ़ रही है, क्योंकि जब शृंगार कक्ष में राजा साहब को चाय पिला रही थी, थोड़ी-सी भनक कान में पड़ी थी। क्या बात थी?'

देशराज ने बताया। जैसे-जैसे वह बात को घटा-बढ़ाकर कह रहा था, क्षोभ की मात्रा बढ़ती जाती थी। वह क्रोध में उसी तरह बेकाबू हो गया था जैसे मनुष्य शराब पीने पर।

'इन टुच्चों की इतनी हिम्मत!' बाघराज को भी क्रोध आया।

अंजना उदास होकर एक क्षण के लिए किसी विचार में निमग्न हो गई।

महीन स्वर में बोली, 'इनकी गुस्ताखी का नियंत्रण तो होना ही चाहिए।' सिर नीचा किए थी।

'कुछ मुश्किल नहीं।' बाघराज ने निश्चय के स्वर में कहा।

'मैं भी चाहता हूँ।' देशराज ने शब्दों में जो कुछ प्रकट किया, उससे अधिक उसकी आँखों ने कहा।

'हो जाएगा। कालीसिंह को जरा छुछकारने की जरूरत है, सो मैं करूँगा। आप लोग निश्चिंत रहें। बहुत दिन नहीं हुए जब पुलिस, फौज, सब हाथ में थी। अब वह नहीं रही तो कालीसिंह सरीखे नातेदार तो हाथ में हैं।'

वे दोनों आश्वस्त हो गए।

बाघराज ने व्यवसाय की चर्चा चलाई, 'माल खपने में देर नहीं लगी। और जितना

भी आ जाएगा, तुरंत करारे दाम ले आएगा; पर मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप लोग किसी तरह के भी संकट में न पड़ें, यानी साँप मरे लाठी न टूटे।'

अंजना मुसकराई।

उस मुसकान में जो आत्माभिमान निहित था उसे बाघराज जानता था। हँसकर बोला, 'मैं आप लोगों के विकट साहस को जानता हूँ, परंतु मोह-ममता के कारण ऐसा कहा।'

'तो एकमात्र रोजगार की बात नहीं है, थोड़ा-सा कुछ और भी है, इसके ऊपर मेरी विजय आरंभ हो गई है।'

अंजना के अहंकार को बाघराज की 'मोह-ममता'-वाली बात अच्छी लगी।

हिसाब से जो कुछ बैठा था, अंजना पिछले दिन चुकता ले गई थी। उसी के उत्साह की प्रेरणा से संगीत समारोह को उन दोनों ने सफल बनाने का प्रयत्न किया था। अंजना के मन में आगे अधिक पा जाने की आशा जागी।

कब किसको क्या करना है, इस बात का निश्चय किया गया। और तार द्वारा विशेष संवाद भेजने के लिए सांकेतिक शब्द तय कर लिए गए।

बाघराज दूसरे दिन सवेरे नाहरगढ़ चला गया।

: १६ :

टलहराम की माँ का मायका घाटी नाम के गाँव में था। इसलिए वह घाटीवाली कहलाती थी। आयु में उतरी हुई और बात में तेज। जब कुछ कहने पर आ जाए तो न संकोच करे और न लिहाज। देशराज के पिता ने तो टहलराम के पढ़ने में थोड़ी-सी ही सहायता की थी, घाटीवाली ने अपनी हड्डी घिस-घिसकर उसे असल में इतना पढ़ाया था। टहलराम उसका बहुत आदर करता था।

सरकारी नौकरी न पाकर, या न करके, टहल ने बाँगुर्दन में एक स्कूल स्थापित किया था जिसमें अंग्रेजी की शिक्षा विशेषकर दी जाती थी। उसका एक सहायक शिक्षक भी था। लड़कों की फीस, जो थोड़ी-सी ही थी, खेती-पाती और घाटीवाली के छोटे-से पैमाने पर चलानेवाले अन्न सवाई के व्यवसाय से घर का काम चलता रहता था। टहलराम दिन के कुछ घंटे नियमित रूप से अध्यापन पर खर्च करता था, शेष बहुत-सा समय किसान-मजदूरों के संगठन पर, जिसमें वह थोड़ा-सा ही सफल हो पाया था। घाटीवाली उसके काम में हस्तक्षेप नहीं करती थी और न वह माँ के अन्न सवाई के लेन-देन में। मन को न इच्छा थी, न फुरसत। घाटीवाली को विश्वास था कि टहल एक दिन बड़ा नामी आदमी होकर रहेगा।

उस दिन सवेरे-सवेरे ही टहलराम गाँव में निकल गया। बहुत से लोगों ने खेत बो

लिए थे, कुछ के अभी पड़े हुए थे—या तो किसान की बीमारी या बीज की दुष्प्राप्यता के कारण।

घाटीवाली ऐसे ही कुछ लोगों को बीज दे रही थी। थोड़ा-सा पढ़ना-लिखना जानती थी, एक छोटी-सी कापी-बुक में अपना हिसाब रखती थी। धर्मादा या किसी मद पर गल्ला नहीं काटती थी। फसल पर सवाई और फसल चूकी तो ड्योढ़ा अवश्य लिया करती थी। लेनेवाले उसके साफ व्यवहार से संतुष्ट थे, पर कुछ गिनती के लोगों से ही उसका व्योहार था। कहती रहती थी—जब हमारा भंडार बढ़ जाएगा तब व्योहार फैला दूँगी।

जो लोग बीज लेने आए थे, उनके साथ बच्चे भी थे। नंगे-अधनंगे। जिन पर कुछ कपड़ा था भी तो वह मैला-कुचैला, चिथड़ा। किसी बालक की आँखों में कीचड़, किसी की नाक बहती हुई, किसी का पेट बड़ा जैसे तिल्ली निकली पड़ती हो—एकाध ही स्वस्थ।

अनाज का नाप घाटीवाली पीतल के एक बरतन से कर रही थी जिसे वहाँ पया कहते हैं।

बटोले के साथ टहलराम बातचीत करता हुआ आया। प्रसंग जिमीन के मुकद्दमे का था।

'फैसला सुनने को रह गया है। जीत जाने की आशा है। पटवारी ने बयान अच्छा दिया।' बटोले कह रहा था।

पौर में आकर टहलराम पूछ बैठा, 'पटवारी को कुछ देना पड़ा?'

बटोले ने बैठकर उत्तर दिया, 'यह न पूछो। बिना होम परसादी के तो देवता भी नहीं पसीजते।'

टहलराम अनमना हो गया। उसका ध्यान बीज लेनेवालों से उचटकर उन बालकों पर, फिर उस पया पर गया। देशराज ने जो आक्षेप संगीत समारोह की रात उसकी माता पर किया था, उसने काट-सा खाया।

'क्यों माँ,' टहल ने प्रश्न किया, 'क्या अपने घर में दो पया हैं; एक अनाज देने का और दूसरा लेने का?'

घाटीवाली एकदम तिनक पड़ी—'किस मुँह झोंसे ने कहा?'

'वैसे ही पूछा।'

'वैसे ही कैसे पूछा? बतलाओ, किसने कहा?'

टहलराम प्रश्न करके पछताया। देशराज का नाम लेता हूँ तो ये उसका मुँह नोच डालने के लिए हवेली पर पहुँचेंगी और इनका अपमान होगा; नहीं बताता हूँ तो माँ के अनादर का अपराधी बना-बनाया।

लंबी साँस छोड़कर बोला, 'वहीं चल पड़ी थी यह बात।'

बटोले को मालूम हो गया था कि उस रात टहलराम ने देशराज को बुरी तरह फटकारा। बाँगुर्दन की साधारण जनता की श्रद्धा उसके प्रति और भी बढ़ गई थी, पर यह कोई नहीं जानता था कि देशराज ने घाटीवाली की कोई निंदा की है।

बटोले ने अटकल जमाया, 'हवेली का वह कारिंदा कुंजीलाल बड़ा बेलगाम है। चाहे जिसके लिए अंड-बंड बक उठता है।'

टहलराम को स्मरण हो आया कि उसने भी निंदा की थी।

'खैर, देखा जाएगा।'

बीज लेनेवाले बिगड़ पड़े—

'बड़ा पाजी है वह कुंजीलाल।'

'वह और उसके मालिक, दोनों पापी हैं।'

'हम गरीबों को यह भी ठिकाने नहीं लगने देना चाहते।'

'सत्यानाश हो जाए उनका।'

घाटीवाली लाल पड़ गई। बोली, 'उस निपूते के मुँह में अभी जाकर जलता कंडा भरती हूँ।'

किसी झगड़े की आशंका से बालक रो पड़े। टहलराम ने अपनी माँ के पैर पकड़ लिए, 'ना माँ, ऐसा मत करना।'

घाटीवाली ने उसके सिर को उठा लिया और हाथ फेरती रही।

कुछ क्षण उपरांत बोली, 'साँप को मारो नहीं तो दाँत उसके फिर भी तोड़ दो।'

टहलराम ने सिर उठाया। भीतर लौटे हुए आँसुओं से उसकी आँखें लाल थीं। बोला, 'जहाँ तक हो सकेगा, हम लोग यही करना चाहते हैं, माँ। यदि साँप के दाँत न तोड़ सके तो फिर मारे बिना नहीं छोड़ेंगे। अपनी समिति और संगठन इसीलिए है।'

'उसमें स्त्रियाँ भी काम कर सकती हैं न? मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। डाक्टर सनेही की दुलहिन बड़ी भली है; मेरा साथ देगी।'

'पर डॉक्टर तो सरकारी समिति के चक्कर में पड़ गए हैं।'

'कैसी सरकारी?'

टहलराम ने समझाया।

'अरे तो रजिस्ट्री का ही भेद है, बस।' घाटीवाली ने कहा।

बीज लेनेवाले बोले—

'सरकार की मदद लेनी चाहिए। सरकार से तो हर पखवारे काम पड़ता है।'

'उसमें बुराई क्या है?'

टहलराम ने हँसकर कहा, 'धीरे-धीरे सब समझ लोगे।'

एक बालक रोकर बोला, 'भूख लगी है।'

दूसरे ने एक रोटी माँगी। तीसरा टहल के आँगन की तरफ देखने लगा जैसे वहाँ रोटी रखी हो।

घाटीवाली रोटी नहीं दे सकी। बासी रोटी इतनी थी भी नहीं कि उन सब बालकों को दे पाती। बीज बाँधकर वे सब चले गए। बच्चे उनके साथ।

टहलराम ने घाटीवाली से अनुनय के साथ कहा, 'माँ, रुपए का सवा न लेकर अठारह आना ही लो तो भी अपना काम चल जाएगा।'

घाटीवाली सोच-विचार में पड़ गई।

बटोले बोला, 'सब साहूकार किसी-न-किसी तरह बेईमानी करते हैं। ये फसल सवाई के सिवाय एक दाना भी ज्यादा नहीं लेतीं। सो धरम-ईमान है।'

घाटीवाली ने गला साफ करके कहा, 'पिछला वसूल करने के बाद, आगे से न सोलह आने के बीस आने और न अठारह आने।'

'माँ! माँ!!' टहलराम का गला काँप गया और आँखें भर आईं। उसने यह नहीं देखा कि घाटीवाली के चेहरे पर उत्साह या आनंद के चिह्न नहीं थे।

'पर यह सलूक करूँगी उन्हीं लोगों के साथ जो तुम्हारे काम में हाथ बटाएँगे।' घाटीवाली ने कहा।

बाँगुर्दन की सहकारी समिति पर बात चल पड़ी। टहलराम के पास एक जोड़ी बैल थे जो उसकी भूमि के लिए पर्याप्त थे। बटोले के दो जोड़ी थे, पर उसकी जोत और वह परती मुकद्दमे से जिसके मिल जाने की आशा थी, उन दोनों जोड़ियों के लिए बहुत थी। मंटू भूमिहीन था। दमरू के पास भूमि थोड़ी-सी ही थी, पर थी बढ़िया और सींचने के लिए अच्छा पनिहार कुआँ। थोड़े से और ऐसे थे जिनके पास छोटे-छोटे इखरे-बिखरे रकबे और एक-एक जोड़ी निर्बल बैल, जो खेतों पर झींकते रहते थे। बाकी सब मंटू की तरह भूमिहीन, या तो बटिया पर किसानी करनेवाले या दूसरों की मजदूरी। भैंस किसी-किसी के ही पास थी। एक-दो गाएँ सभी किसानों के घर, लेकिन दूध कोई भी पाव-भर से ज्यादा न देनेवाली। बटोले के घर कुछ दुधार बकरियाँ थीं। एक करघा भी था जिससे उसकी घरवाली और वह अवकाश के समय गाँवों में काम आनेवाले कपड़े बुनते थे। कपड़े से उनको लाभ बहुत कम होता था, क्योंकि मिल के सस्ते कपड़ों की ओर लोगों की रुचि अधिक थी और हाथ के बुने कपड़े में पड़ता नहीं बैठता था।

टहलराम इन सब तत्त्वों को अपनी समिति में सँजो लेना चाहता था। जिसके पास कुछ अधिक था, वह कम हो जाएगा और जो अभावग्रस्त है उसके लिए थोड़ा-सा और मिल जाने पर भी, अपर्याप्त। ऊपर से पैसे की कमी। साहूकार कोई देवाल नहीं, होता भी तो टहलराम लेने के लिए तैयार नहीं। तब क्या हो? यह समस्या उसके और उसके

साथियों के सामने थी जो टहलराम के हठ के कारण और भी उलझ-उलझ जाती थी। कोई भूमि देने को तैयार तो कोई बैल देने को तैयार नहीं। बटोले अपनी बकरियाँ समिति में लगा देने को राजी न था। मेरे दो जोड़ी बैल क्या कम हैं? वह कहता था। करघे की बात और भी दूर। टहलराम हठपूर्वक समझाता, 'कर दो सबको एक गड्डी में और करो डटकर श्रम। पसीने की नदी बहा दो। वह सब विघ्न-बाधाओं को बहा ले जाएगा।' परंतु यह बात किसी के मन पर नहीं जमती थी।

इन्हीं बातों पर उलट-फेरकर चर्चा हुई।

सब बातें सुन-समझकर घाटीवाली ने कहा, 'चलाओ जब तक और जैसी चलाते बने।'

बटोले ने अपने भीतर की बात कह डाली, 'सो तो हो ही रहा है। जब देखेंगे कि काम नहीं चलता तब सरकार में रजिस्ट्री करा देंगे।'

'अरे वाह!' टहलराम बोला।

बटोले और दमरू के दो छोटे-छोटे खेत पास-पास। दोनों पर पहले की बंधी पड़ी हुई थी। पानी बरस जाने के कारण मिट्टी गीली थी। जब पपड़ी पड़ जाए तब बखर डाला जाए। फिर आ गई दीवाली। अमावस के दिन बैलों से कोई काम नहीं लिया जाता, नहलाया जाता है और हरे तथा लाल रंग के ठप्पे उनके शरीर पर लगाए जाते हैं। उस दिन वैसे भी बीज नहीं बोया जा सकता था। पड़वा के दिन खेतों पर पपड़ी आई तो गोवर्धन पूजा और मौनियों का गश्त। दौज को सही, बटोले और दमरू ने निश्चय किया।

अमावस के दिन बैलों को नहलाया गया और बैल, गाय, सब पर हरे और लाल रंग के गोल ठप्पे लगाए। दुबले-पतले छोटे कद के बैल और बौनी गायों पर वे ठप्पे उनकी हड्डियों को उभारने में सहायक हुए। रात को हवेली पर बड़ी शानदार रोशनी हुई। थोड़े से घर और थे जिन पर प्रकाश का वैभव जगमगाया। बाकी घरों में एक-एक, दो-दो दीपों से लक्ष्मीजी का आवाहन हुआ।

टहलराम ने अपनी माँ से कहा, 'दीपों की सजावट से क्या होता है, पसीने की बूँदों से ही लक्ष्मी प्रसन्न हो सकती है।'

घाटीवाली ने उत्तर दिया, 'पसीने की बूँदों से लक्ष्मीजी के चरण प्रसन्न हो सकते हैं, पर मन प्रसन्न होगा ज्योति के उजियाले से ही।' टहल बहस नहीं कर सका।

दूसरे दिन गोवर्धन की पूजा के उपरांत मौनिये—मौनव्रतधारी—ढोल और मजीरे बजानेवालों के साथ गश्त लगाने के लिए निकले। मौनिये बारह वर्ष तक हर दीवाली की पड़वा को दिन-भर मौन साधते हैं। दूध, शरबत और पानी के सिवाय और कुछ ग्रहण नहीं करते। ये कृष्ण के ग्वाल सखा हैं। बारह गाँवों की सीमाओं को

दौड़ते-नाचते-कूदते छूना पड़ता है; भले ही इसमें आधी रात हो जाए। परंपरा है कि इस दिन कृष्ण अपने ग्वाल-बालों के साथ नाचते-कूदते, बाँसुरी बजाते-बजाते वृंदावन के आस-पास के बारह गाँवों का चक्कर काट आते थे, तब वे सब अपना-अपना मौन तोड़ते थे।

नाच-कूद के साथ मौनिये चाचर के डंडे ढोल की ताल के साथ एक-दूसरे के डंडों से खटखटाते हैं और उसी ताल और खटखट का साथ कूद-कूदकर नाचते हुए देते हैं। गाने-बजानेवाले अन्य लोग होते हैं जो बारह वर्षों तक इस व्रत को साध चुके हैं। बारह वर्ष के बाद मौनिये मथुरा-वृंदावन जाकर अपने चाचर के डंडे यमुना को भेंट कर आते हैं।

बाँगुर्दन के मौनिये पहले अपने गाँव में खास-खास घरों पर गए। परिपाटी के अनुसार उन्हें यथायोग्य नजर-न्योछावर मिली–कहीं से दो आने, कहीं से चार आने।

कमर में बड़े-बड़े घुँघरू कसे–जो बैलों की गरदनों से खोल लिए गए थे–मोर के पंखे कमर में खोंसे, आँखों में गहरा काजल पोते, बालों में तेल भरे–तिल का, सरसों का, निबोरी का! जिसे जो मिल सका। गले में खँगोरिया डाले, जो किसी को अपनी माँ से, किसी को बहिन से और किसी को अपनी पत्नी से मिल गई थी!

टहलराम को अपने घर दूर से ही घुँघरुओं की सामूहिक आवाज सुनाई पड़ी। उसने मौनियों का खेल पहले भी देखा था, वे सब उसी के घर आ रहे थे।

माँ से उसने तुरंत कहा, 'इन्हें देने के लिए एक रुपया तैयार रखो, थोड़ा-सा गुड़ का शरबत भी।'

'गुड़ का शरबत तो ठीक है,' माँ ने बताया, 'पर सदा से आठ आने देते आए हैं, वही देंगे।'

'नहीं माँ, अब की बार एक रुपया।'

'सो क्यों?'

'अब की बार समिति जो खोली है जिसके इनमें से बहुत से मेंबर हैं।'

'भली तुम्हारी समिति। आठ आने से ज्यादा नहीं दूँगी।'

टहलराम को मानना पड़ा।

मौनिये द्वार पर आ गए। मुहल्ले की स्त्रियाँ और बालक तमाशा देखने के लिए इकट्ठे हो गए।

मौनियों के संगियों ने सुर-बेसुर में गीत गाए–उन्हें वे दोहरा कहते हैं–

'मधुकरसा महाराज कें रानी कुँवरि गनेश,
अवधपुरी से ओरछे ल्याई अवध नरेश।
जल थम्मन करि वन गहन, रैन पियारी होय,

छत्रसाल जू भेजियो—देश तुम्हारो होय।
पहले लाल पीछे हरी, फेर लाल जो होय,
वृसिहदेव जू भेजियो, देश तुम्हारो होय।
बेल बोई, कीरत जमी; करन करी दो पात,
सींची वृसिहदेव ने, जब देखी कुम्हलात।'

गाने के समय ढोल नहीं बजता था। प्रत्येक दोहे की समाप्ति पर पहले ताल विलंबित, फिर द्रुत—ताक धिनाधिन, धाधि धिन्ना; धाधी धिन्ना, ताधी तिन्ना। उसी के अनुसार पूरी उमंग के साथ मौनियों का कूद-कूदकर नाचना। ढोल की गति के साथ पैरों का उठाना और चाचर के डंडों की ध्वनि। प्रत्येक दोहे के अंत पर नृत्य और फिर थोड़े से क्षण विश्राम। यही क्रम।

मौनियों की काजल-भरी आँखें, चमकते हुए बाल, थिरकते हुए अंग। इनसे जो यौवन, उल्लास और आनंद झर रहा था उनमें उनकी सारी गरीबी और निस्सहायता थोड़ी देर के लिए डूब गई। स्त्रियाँ घूँघट के भीतर उत्साहमग्न थीं और बालक मौका पाते ही नाच-कूद और चाचर की नकल करने पर उतारू।

इनमें यदि यह संवेग, यह लहर, यह ज्योति स्थायी हो जाए तो इनको कौन कुचल सकता है? कौन परास्त कर सकता है? मैं इनको सजग करूँगा, इनकी सेवा करूँगा। टहलराम हुलास में भर गया।

ये गीत दीर्घकाल से दीवाली की पड़वा के दिन गाए जाते रहे हैं। झीलों और हाथीवाले विकट जंगलों का प्रदेश, जहाँ की रात प्यारी होती है—मालवा और उसके आसपास की रात प्यारी होती ही है—वहाँ छत्रसाल को भेजना जहाँ राजा मधुकरशाह की रानी गणेशकुँवरि अयोध्याजी से रामचंद्र की मूर्ति ले आई थीं। जहाँ की भूमि पहले लाल, फिर हरी-भरी और पुनः (हर्ष के मारे) लाल हो गई; बेल को बोया, करन ने दो पत्ते उसमें कर दिए, वृसिहदेव को भेजा तो उन्होंने कुम्हलाती हुई बेल को सींचकर फिर हरा कर दिया!

टहलराम को इन तीनों में पुरातनवाद, पुनरुद्धारवाद और सामंतवाद की गंध जान पड़ी, परंतु उस नृत्य से उसने जो कुछ पाया, उससे वह अपने किसी सिद्धांत से प्रेरित, उस वाद-विवाद में नहीं उलझा।

गायन और नृत्य की समाप्ति पर वह घाटीवाली को भीतर अकेले में ले गया। घिघियाकर बोला, 'माँ, इन्हें एक रुपया दे दो, नहीं तो मैं अपना कुर्ता दे दूँगा, जो तुम्हें कहीं ज्यादा महँगा बैठेगा।'

माँ मुसकरा गई।

'बड़ा जिद्दी है। तो बोल, अपना ब्याह कब करेगा?'

'हूँ ऊँ।'

टहलराम कुआँरा था। माँ का बहुत लाड़ला।

घाटीवाली को दो अठन्नियाँ देनी पड़ीं। गुड़ का शरबत तो दस्तूर में था ही।

'अब कहाँ जाओगे?' टहलराम ने शरबत की समाप्ति पर पूछा।

ढोल बजानेवाले ने बताया, 'सुहाना–सेठ धरनीधर, डॉक्टर साहब और राजा साहब के यहाँ। फिर दूसरे गाँवों में।'

'राजा साहब! वह राजा न थे और न हैं। ऐसे के यहाँ नहीं जाना चाहिए।' टहल ने कहा।

उन लोगों पर इस बरज का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

'दस्तूर चला आया है।' कहकर वे लोग फुदकते-दौड़ते चले गए।

गरज बावली होती है, टहलराम ने सोचा।

पहले वे लोग धरनीधर के यहाँ गए। उससे उन्हें दो रुपए मिले–मिलते आए थे–और शक्कर का शरबत।

'सेठ सेठ ही है,' वे लोग तीन रुपया दो आने सैकड़े माहवारी ब्याज की बात भूल गए।

और धरनीधर ने सोचा, इनसे जो कुछ लेता हूँ कुछ इस तरह और कुछ उस तरह लौटा भी तो देता हूँ; देशराज नीच है जो उसने मेरी निंदा की।

धरनीधर के रस्मी सवाल के उत्तर में उन लोगों ने बताया कि डॉक्टर साहब के घर, फिर राजा साहब की हवेली जाएँगे। इसने भी वहाँ जाने से मना किया। पुराने दस्तूर ने उसकी अवहेलना की।

डॉक्टर सनेहीलाल के घर उनको मिला तो एक ही रुपया, पर सत्कार मन भाया।

राजदुलारी ने आगंतुकों को आदर और स्नेह के साथ शरबत पिलाया जैसे बहिन भाइयों के साथ सलूक करती है।

राजदुलारी ने धीरे से सनेही से कहा, 'यदि इन लोगों को थोड़ी भी शिक्षा मिल जाए तो नाच-गान दोनों अधिक सुंदर बन जावें।'

'अंजना से कह दो।' सनेही हँसा।

'छिः!' राजदुलारी के मुँह से निकला।

अंत में सनेही ने उन लोगों से कहा, 'देशराजजी की हवेली जाओगे सब लोग यहाँ से?'

'हाँ।'

'सामने बनमाली के यहाँ भी? ठीक है।'

'उनके यहाँ जाने की रसम नहीं है।'

वे लोग देशराज की हवेली पहुँच गए। नाच-गान होता रहा। नौकर इकट्ठे हो गए; पर अंजना और देशराज बहुत पीछे आए और दूर से देखते-सुनते रहे।

अंजना ने भौंह सिकोड़ीं–

'कितना वाहियात है! बंदरों जैसी उछल-कूद और कितने बेसुरे! यहाँ से कुछ ही दूर गोंड लोग जो नृत्य करते हैं वह ज्यादा अच्छा होता है।'

'टलें कमबख्त यहाँ से जल्दी।' देशराज बोला।

देशराज से उन्हें पाँच रुपए मिले, पाँच वह सुहाना की मंडली को दे चुका था जो पहले हवेली पर आई थी और पीछे दूसरे स्थानों पर गई। उन लोगों ने असीसा। शरबत नहीं मिला। मिलता ही न था। तमाखू मिली और बाजेवालों को उतारन का एक कपड़ा। उन्होंने सराहना की। बिना किसी भाव-कुभाव के उनके भीतर से एक बात निकली–

'टहलराम ने मना किया था कि हवेली मत जाना, धरनीधर ने रोक लगाई, पर हम न माने, जुगों से आ रहे हैं और अपना बंधान पा रहे हैं।'

देशराज को यह भी मालूम हो गया कि सनेहीलाल ने निषेध नहीं किया था, प्रत्युत् आने के लिए उत्साहित किया था।

उन सबके चले जाने पर देशराज ने अंजना से कहा, 'टहलराम और धरनीधर के मन में मेरे बाइकाट की बात अब भी बसी हुई है। देखूँगा इन पाजियों को।'

अंजना ने मरहम-पट्टी की, 'टुच्चे हैं, टुच्चे! राजा साहब नाहरगढ़ जो नुस्खा बतला गए हैं, उसी को बरतना पड़ेगा।'

'हाँ, पर जरा ठहर के।'

: १८ :

दीवाली, पड़वा, दौज–सब चली गईं और अपने साथ अपनी लहर समेट ले गईं। मन में जो संवेग उठा था, उसका अधिकांश खर्च हो गया, थोड़े से को लेकर तीज से काम आरंभ हुआ। पर हाथों में उतना कस नहीं प्रतीत होता था। पैर तो ढीले थे ही। किसानों को भविष्य के भय ने उत्तेजना दी।

कहीं खेतों का ताव न चल बसे, बटोले और दमरू सवेरे से ही बीज बोने लगे। आगे-आगे बटोले और दमरू के बखर चल रहे थे। पीछे मंटू बटोले के हल से, जिसमें बीज की नली जुड़ी थी, कूँड़ करता जाता और उसकी बहिन हरकुँवरि झोली में से बीज बोती जा रही थी। दमरू के बखर के पीछे बीज का अपना हल टहलराम चला रहा था! लज्जा को जीतने के लिए हँसता हुआ, मुसकराता हुआ। एक सहयोगी के बखर और हल भी चल रहे थे जिसके पीछे बीज बोने के लिए उसकी स्त्री। वे सब स्त्रियाँ बीज

बोने के समय का एक लोकगीत गा रही थीं। उसकी स्थायी को सब एक साथ उठाती थीं और अंतरों को अलग-अलग गाती थीं। काम एक साथ हो रहा था। बटोलेवाले खेत को बो लेने पर दमरूवाले को हाथ में लेना था।

टहलराम को हल चलाने का अभ्यास न था। चूक-चूक जाता था, कभी-कभी लड़खड़ा भी जाता था। स्त्रियाँ गीत के बीच-बीच में उसकी दुर्गति पर हँस-हँस देती थीं। बैलों के हाँकने की टिकटिक, टहलराम की लड़खड़ाहट, स्त्रियों के गीत और उनकी हँसी की ऐसी लय बन रही थी कि टहलराम के मन में एक भाव उमड़ा—देशराज के यहाँ वाला वह संगीत समारोह इस श्रम-संगीत के सामने फीका लगता है। मंटू को वह गीत साधारण लग रहा था और बहिन का खिलखिलाना अखर रहा था।

एक बार उसने डाँटा, 'हरको, तू काम कम करती है, ठिलठिलाती बहुत है।'

'हूँ।' कहकर उसने हँसी बंद कर ली और गाना जारी रखा।

सत्तरह-अठारह साल की युवती, साँवली और रूप-सरूपवाली, आँखें लंबी बादाम की तरह खिची हुई, परंतु जब हँसती थी तो आँखें मुद-सी जाती थीं और होंठों के बीचोंबीच एक ऐसा छोटा-सा त्रिकोण बन जाता था जो उसके रूप में कसर लगा देता था—ऊपर की पाँत में एक दाँत की कमी दिखाई पड़ जाती थी।

टहल को मालूम हो गया कि व्याख्यान देना सहज है, हल चलाना कठिन; परंतु वह अपने हठ से पीछे नहीं हटना चाहता था। पसीने में तर हो गया। स्कूल का समय खिचने को था। उसी समय पटवारी आया। कोई तिकड़म साथ लाया है, टहल ने सोचा और हल रोक लिया।

पटवारी ने आते ही चिरौरी की, 'अरे टहल बाबू, यह काम नहीं है आपका। आप पढ़ाने का जो काम हाथ में लिए हुए हैं वह कितना बड़ा है! विद्यादान से बढ़कर और कुछ नहीं!!' उसका लड़का टहल के स्कूल में नहीं पढ़ता था।

'कैसे आए?' टहल ने पूछा।

'अच्छी खबर लाया हूँ। अभी-अभी तहसील का चपरासी इत्तिला दे गया है कि दमरू मुकद्दमा जीत गया है। वह परती इसी के नाम लिखी जाएगी। किसी दिन बटोले को भी ऐसा ही फैसला मिला समझिए।'

टहल हर्षमग्न हो गया—इसने कुछ पैसे लिए तो निभा भी दिया। फिर तुरंत अपने ऊपर ग्लानि हुई—भूमि इसकी थी सो इसे मिल गई; रिश्वत के चोर दरवाजे से न्याय आया तो क्या आया!

बटोले और दमरू को बुलाकर बात सुनाई। दमरू आनंदविभोर हो गया।

पटवारी के प्रति वे दोनों कृतज्ञ थे। पटवारी का कागजी दाँव-पेंच मन में नहीं था।

पटवारी बोला, 'एक और शुभ समाचार है।'

वे सब सुनने के लिए उत्सुक हुए।

'कल-परसों तक खेती-बाड़ी की कई दर्जन मशीनें लारियों पर लदकर आ रही हैं। यहीं फिट की जाएँगी। कारीगर और मिस्त्री आएँगे। कारखाना खुलेगा। कारखाने की इमारत भी जल्दी बनेगी, बहुत जल्दी, जिसमें अटक पड़ने पर मशीनों की मरम्मत हुआ करेगी, काम कभी नहीं रुकेगा। एक दिन नहर आएगी। जहाँ नहर का पानी नहीं पहुँच सकेगा वहाँ नलकूप—नलवाले कुएँ—खुदेंगे। एक दिन बिजली भी—'

पटवारी ने वाक्य पूरा नहीं कर पाया। टहलराम अपने आनंद की बाढ़ को न रोक सका। हँसकर बोला, 'लाला, तुम व्यक्ति नहीं हो, संस्था हो।'

पटवारी नहीं समझा। मुँह ताकने लगा। न बटोले, दमरू इत्यादि समझे, पर उनको भान हुआ कि टहल पटवारी की प्रशंसा कर रहा है।

टहल के मन में उसके प्रति सहानुभूति जागी—यह भी तो दरिद्र जनता में से एक है, कम वेतन मिलता है, इसलिए रिश्वत लेता है। फिर पटवारी-संस्था के अन्य कर्मों का नक्शा कल्पना में कौंध गया—शासन और व्यवस्था की उत्पत्ति हैं ये, इसलिए कुछ काम तो इनके बड़े ही निकृष्ट होते हैं।

अपने हल का प्रबंध करवाकर टहल पटवारी को लेकर चला गया। उसे स्कूल जाना था और वह नहीं चाहता था कि पटवारी को शुक्राना वसूल करने के लिए अपने पीछे छोड़ जाए। बटोले इत्यादि बोने का काम करते रहे।

: १९ :

सुहाना, बाँगुर्दन और निकट के अन्य ग्रामों की परती भूमि सब मिलाकर लगभग दस हजार एकड़ तो सरकार की ही थी। पूरी-की-पूरी काँस से ढकी हुई। जिमींदारों और किसानों की भी लगभग इतनी ही परती का रकबा काँस से दबा हुआ था। इस काँस में उनके दुबले-पतले ढोर चरते रहते थे। किसान इसी को अपना लाभ समझते थे। लगान देना पड़ता था, नहीं तो यह परती भी सरकारी हो जाती। लगान थोड़ा होने पर भी आँसता था, परंतु भाग्य की भोगमान; बरसों से भुगतते आ रहे थे।

इस काँस को समूल नष्ट करने के लिए मशीनें आ गईं। काँस-विनाश के उपरांत ऊँची, सीधी, चौकोर बँधियों के डालने का आयोजन था, जिससे बरसाती पानी भूमि के प्राणवान तत्त्वों को धोकर न बहा ले जाए।

अस्थायी सायाबान और स्थायी इमारतों के निर्माण के साथ ही मशीनों का फिट होना शुरू हो गया। लुहारी और बढ़ईगिरी का कारखाना भी बनने लगा। कारीगर और मिस्त्री तो बाहर से आए ही थे, अधिकांश मजदूर भी बाहर से लाए गए। वहाँ गाँव से

कम लिए गए। उनको कम सक्षम समझा गया था।

जाड़ों में जिमीन को फाड़कर काँस को सदा के लिए बिदा देनी थी। और हो सके तो कुछ रकबे में गेहूँ, चना, अलसी बोकर बढ़िया फसल भी तैयार करके दिखा देनी पड़ती थी।

पड़ोस के एक राज्य का कटु अनुभव अधिकारियों को मालूम था। उस राज्य में मई-जून के महीने में ट्रैक्टर चलाकर काँस की खुदाई की गई थी। जड़ें रह गईं। जुलाई में पानी बरसा और काँस बेतहाशा पनपा। सब श्रम और व्यय व्यर्थ गया। इसलिए ठंड के दिनों में ही मशीनों का काम समाप्त करना था।

मशीनों की फिटिंग, इमारतों का निर्माण और बाहर से आए हुए अनेक व्यस्त लोगों का तमाशा देखने के लिए बेकार समूहों की भीड़ लगी रहने लगी।

गाँवों में भाग्यवादी तो असंख्य होते ही हैं, निराशावादी निंदकों की संख्या भी थोड़ी नहीं होती। मशीनों को देखने के शौकीन परंतु उनके काम के ठोसपन और स्थायित्व में अविश्वास करनेवाले।

'दान की बछियों से काम नहीं चलता!'

'अरे, सरकार का सब यों ही खेल-तमाशा है!'

'हम लोगों के मन बहलाने की बातें।'

'मोटी तनखाहें पानेवालों की मौज!'

'दिन में खेल खेलकर काम करते हैं और रात को शराब पीते हैं।'

'रुपयों का नाश करके किसी दिन सारा बँधना-बोरिया उठाकर चल देंगे!'

'अभी काँस से ढोरों की कुछ गुजर हो जाती थी, आगे उसमें भी खोट लगी!' इत्यादि।

गनीमत थी कि अधिकांश जनता यह सब नहीं सोच रही थी—शायद वह कुछ भी न सोच रही हो!

मशीनें कई दर्जन थीं। एक दर्जन की फिटिंग एक-एक सप्ताह के भीतर ही हो गई। उसी सप्ताह में काम भी चालू कर दिया गया। काम बड़े सपाटे के साथ हो रहा था।

जिस दिन कार्यारंभ होने को था, राघवन आ गया। उसने ग्राम-निवासियों को आग्रह के साथ बुलवाया।

जहाँ काम होना था उसके कुछ निकट ही महुए के पेड़ों की एक कुंज थी। देशराज ने यहाँ अधिकारियों, ड्राइवरों, मिस्त्रियों और प्रमुख आगंतुकों के चाय-पानी का आयोजन किया। टहलराम और धरनीधर को भी बुलाने से वह नहीं चूका। मेज-कुरसियों का प्रबंध कुछ घर से, कुछ स्कूलों से कर लिया गया।

मशीनें चलीं।

ट्रैक्टरों के सामने करोंदी, झरबेरी, रेंवजे, चिरौल इत्यादि के पेड़ जो फैले हुए काँस में इधर-उधर उगे और बढ़े थे, तड़ातड़ टूटकर उखड़ने, गिरने और बिछने लगे। उनकी लंबी-लंबी जड़ें, जो धरती की छाती का खून चूसे जा रही थीं, ऐसे उपटा डाली गईं जैसे कोई प्रबल पहलवान गीली मिट्टी में से मूली को उखाड़ फेंके। काँस तो ऐसे साफ होता चला जा रहा था जैसे अनधिकारी की विरासत। मशीनों के पीछे-पीछे मजदूर पेड़ों को उठाकर ढेरों में दूर रखते चले जा रहे थे—ईंधन के लिए। कुछ उखड़े हुए काँस के ढेर वहीं-के-वहीं लगाते जाते थे; जहाँ दो-तीन दिन में सूखा कि अग्नि के हवाले किया। राख देगी खाद का काम। मानो उस विनाश में सृजन की ध्वनि मशीनों के इंजन धुआँधार कर रहे थे। बात-की-बात में काँस, घास-फूस और जंगली पेड़ों से भूमि साफ होने लगी। साथ ही लगभग हाथ-हाथ भर गहरे कूँड़। सफाई होने के बाद जहाँ मिट्टी लौटने और बराबर करनेवाले ट्रैक्टर-हल चले कि भूमि बीज का स्वागत करने को तैयार!

समूहों में स्त्रियाँ और पुरुष इस मशीन से उस मशीन के पास आ-जा रहे थे। एक के पास टहलराम और बटोले पहुँचे, जिसके भाग्य में कुछ अधिक बड़े जंगली पेड़ों का उखाड़ना बदा था। टहलराम उत्साह से भरा हुआ था। इस भीमकाय मशीन का प्रचंड कर्तव्यपालन देखकर उसकी देह-भर में बिजली-सी दौड़ गई। तपाक के साथ पैर मिलाकर उसने मशीन को फौजी प्रणाम किया! मशीन पर काम करनेवाले दो आदमी ही थे—एक ड्राइवर, दूसरा उसका सहायक। वे हँस पड़े। टहल ने उनकी हँसी में अपनी हँसी मिलाई। बटोले को कुछ आश्चर्य हुआ—क्या यह देवताओं को छोड़कर अब इंजनों की पूजा करेगा? एक और मशीन के पास घाटीवाली और हरकुँवरि कुछ स्त्रियों के साथ खड़ी थीं। उनमें उत्सुकता पुरुषों से भी अधिक और उसको अप्रकट रखने की समर्थता भी ज्यादा।

हरको कुछ चंचल थी। बोल पड़ी, 'काँस तो अब नहीं रहेगा। डटकर खेती होगी।'

घाटीवाली कुछ कहना चाहती थी। अवसर मिल गया।

'कह नहीं सकते। हाँ, यदि मशीनें कई साल तक यह काम करती रहें तो मिटेगा, नहीं तो नहीं।'

एक स्त्री ने हरको की फसलवाली बात काटी—

'इतने गहरे कूँड़ हो रहे हैं कि ज्वार की फसल नहीं हो सकेगी। बीज जमेगा ही नहीं। जमेगा तो सड़ जाएगा, आगे की बात इतनी तो मैं अभी से बतलाए देती हूँ।'

आशावादिनी हरको को यह काट बुरा लगा।

'ओ हो! जोतिसिन कब से हो गई?' हरको ने व्यंग्य किया।

जरा दूर खड़ी एक स्त्री हँस पड़ी।

जिस पर व्यंग्य किया गया था वह भभक गई, 'जिस दिन से तुम ससुराल से भाग आईं उस दिन से।'

हरको ने अपने दाँत भींच डाले।

हरको के निस्पंद क्षोभ में उसकी पराजय का लक्षण कल्पित करके वही स्त्री प्रसन्न हुई।

हरकुँअरि, जिसे साधारणतया हरको कहते थे, ससुराल की दुखिनी थी; पति किसी-न-किसी रोग में लगभग सदा ग्रस्त और बहुत गुस्सैल—जरा-जरा-सी बात पर हरको की ठोक-पीट कर डालता था। सास-ससुर मर चुके थे। चाचा-ससुर, चाची-सास और उनके दो लड़के, हरको के देवर, घर में इतने व्यक्ति थे। कभी-कभी सास और ये देवर भी उसे मार बैठते थे। वैसे खाने-पीने से तंग न थी। पर पेट-भर भोजन और तन-भर कपड़े मिल जाना ही तो सब कुछ नहीं होता। जब हरको को लगा कि ससुराल उसे चबाए डालना चाहती है तो एक दिन भाग खड़ी हुई और अपने भाई मंटू के पास आ रही, जहाँ उसे उतना खाना-कपड़ा प्राप्य न होने पर भी स्नेह का आश्रय तो मिला।

एक दूसरी स्त्री बोली, 'जब जनी काम बिगाड़ती है तो घरवाला मारता-पीटता ही है। पर हरको तो विकट है, हवा में घर बनाना चाहती है।'

'हाँ बनाऊँगी हवा में, तुम आकर बस जाना उसमें।' हरको ने रिस उस पर उतारी।

बात बढ़ती परंतु छुट्टी का समय हो गया था, इसलिए ट्रैक्टरों ने भोंपू बजाए। काम बंद कर दिया गया। दो घंटे की छुट्टी।

ड्राइवर इत्यादि चाय पीने के लिए महुओं की कुंज की छाया में पहुँचे। वहाँ अंजना और देशराज सत्कार के लिए तैयार थे।

बड़े आदमियों का चाय-पानी का आयोजन क्या होता है, वहाँ के अनेक स्त्री-पुरुष नहीं जानते थे। इधर-उधर पेड़ों के आगे-पीछे खड़े होकर देखने लगे। स्कूलों के कुछ विद्यार्थी अधिक निकट से। इनमें जनक भी था। घर से सब कुछ-न-कुछ खा-पीकर चले थे। तमाशा देखने की उत्कंठा थी। दो घंटे के बाद बुलडोजरों के काम का प्रदर्शन होना था जो पलक मारते बड़ी-बड़ी बँधियाँ डाल देते थे। जितनी भूमि का काँस इत्यादि साफ हो गया था, उसी की एक तरफ बुलडोजरों को बंधी डालने का प्रदर्शन करना था। दो घंटे की ही तो बात थी, क्यों घर जाएँ और फिर लौटें?

देशराज ने बाँगुर्दन के कुछ अन्य व्यक्तियों के अलावा टहलराम और बटोले को भी बुलाया था। देशराज अपने मन के भीतर बसी हिंसा को ढकने में प्रयत्नशील था। सनेही और बनमाली तो निमंत्रित किए ही गए, धरनीधर और छदामी को भी बुलाया गया। और तो सब मेज-कुरसियों पर थे, छदामी और उसके सहयोगी नीचे बैठ गए।

खाने-पीने के साथ बातचीत भी चल रही थी। सनेही और टहलराम पास-पास बैठे थे। टहल उत्साहमग्न था, सनेही आलोचक वृत्ति में। धरनी थोड़ी दूर बटोले के कंधे से कंधा भिड़ाए बैठा था। राघवन देशराज के निकट।

राघवन को देश-भर का, विशेषकर ग्रामों का, भविष्य मशीनों से जुड़ा हुआ दिखाई पड़ता था। राघवन कह रहा था, 'अन्न की उपज छलाँगें भरकर बढ़ेगी, कुटीर उद्योग फूलें-फलेंगे और देहाती गरीबी, अविद्या, गंदगी सब जाएगी। मतलब यह कि देश की अनेक समस्याओं का हल यहीं होगा, यों होगा और शीघ्र होगा।'

टहलराम के मन में उस समय देशराज के प्रति कोई विशेष कुढ़न नहीं थी। उस भविष्य को सुहाना, बाँगुर्दन इत्यादि गाँवों में लाने का कुछ श्रेय राघवन को भी था। टहलराम उससे सहमत हुआ–

'हमारे देहात के लिए आज का दिन शुभ है, बहुत महत्त्व का। बिना मशीन के खेती आगे चल ही नहीं सकेगी।'

कुछ दूरी पर दुबले-पतले ढोर दूबा के अवशेष पर जीभ फेर रहे थे।

सनेही ने उनकी ओर इशारा करके कहा, 'इनका क्या होगा? इनकी सुधरी हुई नसल की भी क्या जरूरत नहीं रहेगी? अगर सारे पुराने साधनों को समाप्त कर दिया गया तो देश पर ऐसी विपत्ति का पहाड़ टूटेगा कि सँभाले न सँभलेगा।'

राघवन ने समाधान का प्रयत्न किया, 'ये तो अनिवार्य है। सुधारे, बढ़ाए और काम में लाएँ जाएँगे।'

टहल को अच्छा नहीं लगा।

'तो क्या आपकी समिति बैलों के ही हल-बखर से समस्याओं का हल करेगी?'

सनेही ने, जैसा कि उसे अभ्यास था, मुसकराकर उत्तर दिया, 'जब जैसी जरूरत पड़ेगी, तब तैसा करेंगे। काँस उखाड़ फेंकने और बड़ी-बड़ी बँधियों के डालने के लिए ट्रैक्टरों और बुलडोजरों की जरूरत पड़ेगी। फिर बैलों और पुराने तरीकों से ही काम चलेगा।'

'यानी फिर कभी मशीनों का नाम नहीं लिया जावेगा।'

'जरूरत पड़ी तो नाम तो क्या उनकी आराधना भी कर लेंगे और वे सुलभ भी हो जाएँगी; पर ऐसी योजना नहीं बनाना चाहते कि उनके बिना अटके रहें।'

'मतलब यह कि पुरातन पंथ पर आप लोगों का ज्यादा जोर है, तो हो चुकी गाँवों की समस्या हल। दूसरे देशों में सामूहिक खेती–'

राघवन ने टहल को तुरंत टोका, वह विवाद नहीं बढ़ने देना चाहता था, 'तो सुहाना की समिति में क्यों नहीं अपने साथियों सहित आ जाते? उनमें शामिल होकर डॉक्टर साहब, बनमालीजी, सेठ धरनीधर इत्यादि की सहायता कीजिए और अपने सिद्धांत का

विवेकसंगत व्यवहार।'

बनमाली बोला, 'हम लोग आप सबका स्वागत करेंगे।'

धरनीधर चुप रहा। बटोले कुछ कहना चाहता था, पर जबान न खुली। मौके पर बात न कह पाने और पीछे पछताने का उसका स्वभाव था।

टहलराम ने कहा, 'समिति में कुछ कुरूप बातें हैं, जैसे व्यक्तिगत खेती के लिए अच्छे-अच्छे खेत सेंत रखना और समिति में काँसवाले निकम्मे, कमजोर या झगड़ेवाले लगा देना।'

बटोले को अच्छा लगा। वह झगड़ेवाले खेतों के लगाने की ही बात कहना चाहता था, पर टहलराम कुछ और भी ज्यादा कह गया।

धरनीधर बोला, 'देखें कब तक चलती है हमारी समिति?'

'जब तक आपने अपनी भूमि समिति को नहीं सौंपी,' देशराज ने व्यंग्य किया।

अंजना मुसकराई।

सनेही ने चर्चा की दिशा मोड़ी, 'हो सकता है ये सब दोष हमारी समिति में हों। क्रम-क्रम से सुधारेंगे। मान लिया कि इन और अन्य दोषों के कारण आपको हमारी समिति में आना पसंद नहीं, तो बाँगुर्दनवाली अपनी समिति की रजिस्ट्री करवा लीजिए और उसका मनचाहा विकास करिए।'

राघवन उमंग के साथ बोला, 'मैंने तो कई बार आपसे प्रार्थना की है।'

टहलराम ने सोचा, दमरू को मुकद्दमे से काफी रकबा मिल गया है जो काँस से ढका हुआ है; बटोले को भी मिलेगा, और, सरकार की दस हजार एकड़ परती में से भी जो अपने नियरे है, थोड़ी-बहुत तो ले ही लेंगे।

टहलराम ने अपनी कठिनाई बताई, 'हम लोग निर्धन हैं। श्रम ही हमारा बल और धन है। परंतु हमारे समाज की जैसी आर्थिक व्यवस्था है उसमें अकेला श्रम-धन लँगड़ाते हुए ही चल पाता है। हमको अपनी समिति की बहुत-सी भूमि का काँस उखड़वाना पड़ेगा, बँधिया डलवानी पड़ेगी। मशीनों की फीस जमा करनी पड़ेगी; पेशगी कहाँ से लाएँगे?'

'सेठ धरनीधर दे देंगे,' राघवन मुसकराया।

'बैंक का कुछ रुपया मेरे पास रखा है, परंतु सिवाय समिति के मेंबरों के और किसी को तो दिया नहीं जा सकता।' धरनीधर ने बताया।

'आपका निजी रुपया,' राघवन फिर हँसा।

धरनीधर बोला, 'देशराजजी क्यों नहीं दे देते? उनके पास तो ढेरों है।'

देशराज ने कहा, 'बैंकों में मेरा जो कुछ जमा है उससे आपका जिमीन में गड़ा हुआ कहीं ज्यादा होगा।'

टहलराम ने देखा कि समस्याएँ व्यंग्यों के परों पर बिठाकर उड़ाई तो जा सकती हैं, पर सुलझाई नहीं जा सकतीं।

'कहीं से मिलें, हम लोग अपने मन की समिति बनाकर काम को तेजी के साथ बढ़ाने की जी तोड़कर कोशिश करेंगे।' टहलराम ने कहा।

राघवन उत्साहित हुआ।

'जहाँ दृढ़ संकल्प होता है वहाँ सफलता की राह निकल ही आती है। मनस्वी के लिए कुछ कठिन नहीं।'

धरनीधर ने चोट की, 'उस लकड़ी के दान से उस या इस समिति का कुछ नहीं बनना है, देशराजजी। ठोस रकम दीजिए दान में, तब तो बात है।'

देशराज की त्यौरी चढ़ी।

अंजना ने तुरंत सँभाली–

'मैं पाँच सौ रुपया दूँगी बाँगुर्दन की समिति के लिए जो मशीनों की फीस की मद में जमा कर दिए जाएँ।'

दानी के चेहरे पर दान करने के समय जो उदारता और शालीनता छा जाती है, वह उसके ऊपर न थी। उसने धरनीधर पर चिनौती-भरी दृष्टि घुमाई। फिर कई रंग आते-जाते रहे।

राघवन ने एक हाथ से मेज पर ताली पीटी।

'वाह! वाह!! क्या कहना है!!! बहुत काम बन जाएगा इस रकम से।'

फिर राघवन ने हिसाब लगाया–लगभग पैंतीस रुपया प्रति एकड़ सहकारी समितियों से लिया जाता है जबकि प्राइवेट लोगों से पचास रुपया प्रति एकड़ के लगभग। बाँगुर्दन समिति की पंद्रह एकड़ भूमि तो सुधर ही जाएगी।

बनमाली ने नाम कमाने का प्रयत्न किया, 'देशराजजी भी दान करेंगे।' देशराज की तरफ देखने लगा।

उसने उस समय यह नहीं सोचा कि इस दान से उसके जाली पट्टे की कुछ भूमि तो मशीनों से भारी हो जाएगी। शायद मन में उठा हो कि वैसे भी जा रही है, कुछ लोकप्रियता ही संचित कर लूँ।

राघवन ने देशराज को निहोरे की दृष्टि से देखा।

देशराज ने तिरछी आँख करके जरा जोर से कहा, 'पाँच सौ रुपए मेरे!' उसका चेहरा क्षण-भर के लिए लाल हो गया।

टहलराम ने धन्यवाद दिया, पर स्वर में खनक नहीं थी। देशराज ने उस धन्यवाद की कमजोरी को परख लिया।

उसी समय विद्यार्थियों के समूह से एक वाक्य उसके कान में पड़ा, किसान चालाक

है यह!' यह स्वर जनक का था।

देशराज के आग-सी लग गई। राघवन ने उमंग में आकर फिर जोर से मेज पीटी। बोला, 'सहकारी आंदोलन के इतिहास में यह दिन अमर रहेगा, और देशराजजी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा।'

बनमाली ने बड़े आत्मगौरव के साथ लोगों पर चितवन फिराई, मानो कह रहा हो—मैंने दिलवाई यह रकम, नहीं तो देशराज क्या वैसे पिघलनेवाले थे।

राघवन ने टहलराम से अनुरोध किया, 'अब आप समिति की रजिस्ट्री की कार्रवाई कर डालें। मैं सहायता करूँगा। जैसे ही कार्रवाई की खानापूरी हुई कि फीस जमा कर ली जाएगी और मशीनें काम शुरू कर देगीं। इसमें कुछ दिन लग जाएँगे। तब तक राजा साहब और देवीजी का दिया दान सुहाना समिति के खजांची धरनीधरजी के पास जमा रहेगा। ठीक है न?'

धरनीधर ने पूछा, 'रुपया कब दिया जाएगा?'

देशराज ने उत्तर दिया, 'आज संध्या समय।'

धरनीधर ने सिर हिलाया, मुँह फेरकर मुसकराया भी, जैसे कह रहा हो कि मैं इसे टालबाजी नहीं करने दूँगा।

देशराज ने इस घूँट को पी लिया। अपनी बात कही, 'मेरे निज की खेती की भूमि यहाँ से दूर नहीं है। चाहता हूँ, उस पर बंधी डाल दी जावे। फीस कल ही जमा कर दूँगा।'

पदाधिकारियों ने स्वीकार कर लिया। राघवन ने टहलराम से कहा, 'आप अपनी समिति की रजिस्ट्री करवाने के लिए बैठक कब करेंगे? कार्रवाई जल्दी शुरू करना चाहता हूँ।'

टहलराम ने एक आक्षेप प्रस्तुत किया, 'समिति में जो जिमीन लगाई जाए उसकी मालिक समिति होनी चाहिए, न कि मेंबर। मेंबर यदि कभी समिति से अलग हो तो उसको भूमि वापस नहीं मिलेगी।'

'तो उसको क्या मिलेगा?' बनमाली ने पूछा।

'भूमि के मूल्य का कूता लगा लिया जाए और उस मूल्य में समिति के जितने हिस्से बैठें उतने हिस्सों का मेंबर हिस्सेदार; बस, वे हिस्से या उनका दाम लौटा दिया जाए।' सनेही ने कहा।

बटोले फिर कुछ कहना चाहता था, परंतु बात गले में ही अटक गई।

टहल बोला, 'यह ठीक है। कायदा क्या है?' बटोले के मन में कई प्रश्न बने-बिगड़े परंतु पूछ वह एक को भी नहीं सका।

राघवन सरकारी कायदों का पूरा जानकार था, पर वह इस अवसर पर कायदों की खुड़-पेंच टालना या दूर रखना चाहता था।

उसने हँसी में घोला, 'अरे साहब, श्रीगणेश तो करिए। कायदे बनाते-सुधारते रहिए। काम की डगों को बढ़ाइए, जिसके गीत तो बहुत गाए जाते हैं, पर उनका व्यवहार कम होता है।' हँसते हुए भी उसके चेहरे पर कुछ रुद्रता तो भी रहती थी।

टहल को भी हँसना पड़ा।

सनेही ने कहा, 'हमारे देश में कायदे बाल की खाल खींच-खींचकर बनाए जाते हैं, कायदे बनाते-बनाते ही काम की टाँग भले ही टूट जाए।'

'नहीं डॉक्टर साहब, हम लोग काम भी करके दिखलाएँगे। अपनी सारी भूमि समिति को सौंप देंगे; हल, बखर, बैल इत्यादि पशुओं को भी समिति के शासन में देने पर विचार करेंगे। हमारा काम नई जिंदगी का, नई लहर का साथ देगा।' टहलराम ने निश्चय प्रकट किया।

'तो कार्रवाई की पहली बैठक कब होगी?' राघवन ने पूछा।

'आप तो अभी यहाँ ठहरे ही हैं; कल हो जाएगी।' टहल ने उत्तर दिया।

बटोले के मन में उठा—मैं अपनी सब-की-सब भूमि तो नहीं लगाऊँगा समिति में और न अपने जानवर दूँगा।

राघवन ने मेज को ठोककर धन्यवाद दिया।

ट्रैक्टरों के नायक ने सूचित किया, 'समय हो रहा है। हम बुलडोजर द्वारा बंधी डालने का प्रदर्शन करेंगे।'

'जरूर-जरूर!' कई कंठों से निकला।

देशराज ने कहा, 'जैसे ही आप लोगों को आज थोड़ा-सा अवकाश मिले, मैं अपनी भूमि दिखलाऊँगा।'

'और मैं अपनी,' बनमाली बोला।

बटोले तुरंत सामने आया। 'मैं साथ चलूँगा,' उसने कहा।

राघवन और अन्य पदाधिकारी राजी हो गए। बनमाली बटोले की बात पर चिंतित हुआ।

'एक बात रह गई है। मन में गड़ रही है, इसलिए पूछता हूँ। व्यक्तिगत, निजी खेती, कब समाप्त होगी?' टहल ने प्रश्न किया।

देशराज तिनककर बोला, 'आप व्यर्थ बार-बार मेरे ऊपर लाँछन डालते हैं। सहकारी खेती में अधिक लाभ होता दिखाई पड़ेगा तो व्यक्तिगत को कोई चलावेगा ही क्यों? इखरी-बिखरी हुई जोतें जब एक हो जाएँगी, तब समस्या का सुलझाव शुरू होगा। फैले-फूटे खेतों के एकीकरण को व्यक्तिगत खेती ही उत्तेजना देगी। उस उत्तेजना को देने के लिए ही तो मैं व्यक्तिगत खेती कराए हूँ।'

सब लोग उठ खड़े हुए, इसलिए आगे बहस न बढ़ सकी।

छुट्टी का समय समाप्त हो गया था। बुलडोजर चला और उसने मिट्टी काट-खोदकर ऊँची सीधी बंधी डालनी शुरू कर दी। नर-नारियों में आश्चर्य और आह्लाद की लहर दौड़ गई। रह-रहकर उनके मन में एक बात उठती थी—मशीनों द्वारा काम कराने के लिए इतने पैसे कहाँ से लावें?

सनेही सोचता था—इन मशीनों के अधिकाधिक प्रचलन से जो मजदूर बेकार हो जाएँगे, उनको रोटी-कपड़ा कहाँ से मिलेगा? पर मशीनों का कार्य उन सबको एक बढ़िया तमाशा लग रहा था, इसलिए सब शंकाओं को भुलाकर विनोदमग्न हो रहे थे।

जब दिन का कार्य समाप्त हुआ, देशराज पदाधिकारियों को अपनी भूमि दिखाने ले गया। अंजना हवेली चली गई। बनमाली साथ गया। टहलराम के साथ बटोले और दमरू उनके जरा पीछे थे।

देशराज ने भूमि दिखाई, वह सब उनकी सीर खुदकाश्त थी, एक बड़ा चक। कुछ भाग में काँस भी था।

काँस खोदने और बंधी डालने की तारीख और फीस निश्चित हो गई। बनमाली ने अपनी दिखाई। दमरू और बटोले तो भीड़ में आ ही गए थे। उन्होंने तुरंत आक्षेप किया— इसमें इतना रकबा हमारा है, उतना दूसरों का। दमरू ने अपने मुकद्दमे के जीतने का हवाला दिया।

'मैं अपील करूँगा, अभी तुमने कैसे समझ लिया कि यह तुम्हारी ही होकर रहेगी?' बनमाली जोर से बोला।

अधिकारी ने दमरू को समझाया, 'यदि तुम्हारी ही रही तो दाम इनके लगेंगे, काम तुम्हारे आएगी।'

'कभी नहीं,' दमरू दहाड़ा।

बटोले बोला, 'इसमें मेरा भी काफी रकबा है। मैं मशीन नहीं चलने दूँगा।'

'मुकद्दमा तय हुआ ही नहीं और जिमीन तुम्हारी हो गई!' बनमाली ने बहस की।

टहल बोला, 'जो फैसला दमरू के मामले में हुआ है, वही इनके में भी होगा।'

देशराज ने सोचा, इसी की आवाज बटोले, दमरू इत्यादि के गलों में होकर बोल रही है।

अधिकारी ने कहा, 'ये तो झगड़े के खेत हैं। पीछे देखा जाएगा।'

राघवन काहे को माननेवाला था। प्रत्येक अड़चन का सुलझाव उसके बाएँ हाथ में—

'अरे भाई, सहकारी समितियों में खेत डाल दो, सबके भोग में आएँगे। इस पर भी, कानून जिस के तय करेगा उसके बने रहेंगे।'

यह बात टहल को खटकी। सनेही की बात याद आई, 'समिति में लगाए हुए खेतों का मूल्य कूता जाएगा और उस मूल्य को हिस्सों के रुपयों में परिवर्तित कर लिया

जाएगा—यह बात कहाँ रही? भूमि पर स्वामित्व फिर भी व्यक्ति का बना रहा! पर खैर, देखा जाएगा। कायदे तो हमीं बनावें-बिगाड़ेंगे।'

बटोले और दमरू राजी नहीं हुए।

देशराज ने बनमाली को सांत्वना दी, 'और भी जिमीन है। परेशान मत हो।'

अधिकारी बोला, 'जल्दी भी क्या है। हमें तो यहाँ बहुत समय तक टिकना है।'

'खैर,' बनमाली को कहना पड़ा।

टहलराम, बटोले और दमरू जब लौटे तो देशराज ने देखा कि वे सब हँस रहे थे। वह हँसी बनमाली को उतनी न अखरी होगी जितनी देशराज को।

: २० :

उसी दिन, साँझ होते-होते, देशराज और अंजना के पाँच-पाँच सौ रुपए—सौ-सौ के दस नोट—धरनीधर के पास पहुँच गए। उन दोनों के चरित्र का जो अंकन धरनीधर ने अपने मन में कर रखा था, उसको ठेस लगी। अपने पूर्वाग्रह पर विजय पाना उसके लिए कठिन हो गया। अनुमान था कि देशराज किसी-न-किसी बहाने की पोल में होकर निकल जाएगा और अंजना को भी खिसका ले जाएगा। उसको डर लगा कि देशराज की गिरती हुई पाली फिर सिरे की तरफ बढ़ेगी। लकड़ी कटवा लेने की बात दब गई। जिमींदारी उन्मूलन को न केवल सह लिया बल्कि उसे अपना सहयोग भी दिया!! फिर भी उसमें कुछ ऐसा जरूर है जो उसे नीचे घसीटे बगैर न रहा। बढ़िया भूमि में लंबी-चौड़ी व्यक्तिगत खेती और घटिया जिमीन सहकारी समिति को! लेकिन मैंने तो अपनी इंच-भर भी नहीं लगाई!! तो क्या हुआ? काम कितना करता रहता हूँ। देशराज सेवा का तो कोई कार्य करता नहीं। जनता इस अंतर को पहचाने बिना न रहेगी। सुहाना की जनता तमाशा देखने के बाद जरा देर में घर लौट पाई। ढोरों के बाँधने-दुहने में इतना विलंब हुआ।

स्त्रियाँ देर से पानी भरने कुएँ पर पहुँचीं। ठंडी पवन चल उठी थी। पेड़ों के झोंके सरसरा रहे थे। सूर्य की नरम-नरम पीली किरणें उनमें होकर ताक-झाँक कर छिपनेवाली ही थीं। नंगे-अधनंगे बच्चे अपनी माँ-बहिनों के साथ रोते-चिल्लाते कुएँ के आसपास खड़े हो गए। उनको जाड़ा नहीं लग रहा था, क्योंकि काँपते नहीं दिखाई पड़ रहे थे; भूखे थे इसलिए बिलबिला रहे थे। घर रोटी नहीं बनी थी। स्त्रियाँ जब पानी भर लें और पिसान पीस लें तब कहीं रोटी बन पावे। स्त्रियाँ बातें करती जाती थीं और बीच-बीच में बच्चों को डाँटती भी जाती थीं। दुलार-पुचकार का वहाँ काम न था।

एक कह रही थी, 'इंजिन हिलकारी क्या मार रहे हैं, रुपएवालों का रुपया बोल रहा है।'

दूसरी, 'अपने भाग में तो वही हल-बखर बदा है।'

'सो अच्छा है जीजी, दूसरों का मुँह तो नहीं देखना पड़ेगा। भगवान् वहाँ और अपने हाथ-पैर यहाँ।'

'मशीनों की भकभक-फकफक, सत्यानासी पेड़ों का उखाड़ना, काँस का फिंकना और धूल का उड़ना हमें तो ऐसा लग रहा था जैसे दीवाली के पटाखे और होली की धुलैंडी एक साथ हो रही हों।'

'ओ हो! हो हो!! खा लेना उसे, भर लेना उससे पेट अपना।'

एक ने अपने रोते हुए बच्चे को कोसा, 'आग लगी यहाँ आई रोने को!'

फिर खाने-पीने की चर्चा छिड़ी।

'आज दो रोटी खाई थीं—भोर, फिर उन दईजारी मशीनों को देखने निकल पड़ी।'

'मैंने तो एक ही खाई थी, ढाई वे डाल गए थे पेट में।'

'मैंने मठे में चार मीस ली थीं, पर अब तो आँतें जल रही हैं।'

'और मैंने तो बाई, दो कौर महेरी ही पाई।'

बाँगुर्दन में भी एक कुएँ पर कुछ इसी प्रकार की बातें हो रही थीं। कुछ बच्चे भी थे जो आने-जानेवाले ढोरों को गालियाँ दे रहे थे।

'तुझे साँप डस ले!'

'तुम पै पड़े भवानी! तुम पै!!'

'तुझे खा जावे तेंदुआ!'

'तुम्हें लग जाय भोंरा रोग!' और ऐसी गंदी गालियाँ जो उन्होंने अपने वातावरण में से सीखी थीं।

हरको भी पानी भरने आई। कुएँ के पास ही एक घर के सामने करोंदी की झाड़ी से घिरा बेड़ा था। उसी में खाद के लिए कूड़ा-कचड़ा और गोबर का ढेर। चारों तरफ दुर्गंध फैल रही थी। जब उस ढेर के पास से होकर निकली तब उसने न नाक सिकोड़ी, न भौंह। पर जैसे ही कुएँ के मनघटे पर आई, उसने घड़े जगत पर रखकर आँचल नाक पर रख लिया। बोली, 'बदबू के मारे नाक फटी जा रही है।'

एक स्त्री ने फबती कसी, 'ससुराल में तो खाद के ढेरों से गेंदा-चमेली की सुगंध आती होगी।'

दूसरी हँसी, 'अरी बाई, नाक सँभालती है कि अपने अंग! देखो तो इसने कपड़ा कितना ऊँचा उठा लिया!!'

हरको के पेट की शिकनों के ऊपर का कुछ अंग दिख रहा था। उसने तुरंत नाक पर से आँचल हटाया और अंग ढँक लिए। उसकी ओढ़नी काफी लंबी-चौड़ी न थी। जो कुछ भी थी, उसमें कई जगह फटनें और छेद।

उसको उतनी लज्जा नहीं जितनी रिस। परंतु वह किसी से कुछ न कहकर पानी खींचने में लग गई।

मशीनों के प्रसंग पर चर्चा फिर चल पड़ी।

'कूँड़ हाथ-हाथ-भर के हो जाते हैं; बीज इतने गहरे बैठकर जमा भी तो वहीं मर जावेगा।'

'आगे फिर काँस का काँस।'

हरको उबल पड़ी, 'वे तो सब मूरख ही हैं जिन्होंने मशीनें बनाईं और चलवाईं। अपने हल-बखर से न उखाड़ फेंका काँस और जंगल-झाड़ी को? बेमतलब की बातें करती हो।'

'ओ हो हो! ये आईं बड़ी जानकार। ससुराल में चलवाओ मशीनें। ले जाओ डिरैवरों को।'

कई हँस पड़ीं।

'यहीं चलवाऊँगी, यहीं जहाँ तुम्हारी ससुराल है और मेरा मायका। दिखाऊँगी करके।'

हरको ने जल्दी-जल्दी पानी भरा और चली गई।

: २१ :

उसी शाम, जब देशराज धरनीधर के पास रुपया भेज चुका, वचन के निभाने पर, उसका भार हलका नहीं हुआ, कुछ भारी पड़ गया।

सूर्यास्त के उपरांत अंजना और देशराज हवेली के भीतर कमरे में इकट्ठे हुए।

'आज जोश में आकर नाहक एक हजार रुपए ठंडे कर दिए,' देशराज ने अपना एक कंधा आधी अँगड़ाई में मरोड़ते हुए कहा।

अंजना मुसकराई। आँखों में काइयाँपन था।

'तुम भले ही जोश में बह गए होगे, मैंने तो जान-बूझकर किया।'

'हाँ, कुछ लोकप्रियता तो मिल ही गई है।'

'लोकप्रियता मिली है और मिलती रहेगी। रुपए ब्याज समेत वापस होंगे।'

'सहकारी समिति के काम से तो होंगे नहीं। हाँ-आँ—अपनी जिमीन पर बुलडोजर बंधी जल्दी डाल देंगे, तब वहाँ कुछ होगा, पर बँधियों के डालने का असर तो अगली फसलों पर पड़ेगा।'

'अजी मेरे सरकार, पढ़िए इस कागज के टुकड़े को।' अंजना ने अपनी एक भीतरी जेब से कागज का टुकड़ा निकालकर देशराज को दिया। देशराज पढ़ने लगा। उस पर लिखा था—'संवाद भेजो। हम कुछ समय बाद आवेंगे।'

अंजना ने कहा, 'जब तुम सब बुलडोजर का प्रदर्शन देखने के बाद खेत-वेत देखने-दिखलाने के लिए गए तब मैं वहाँ से चली आई और यह तार नाहरगढ़ भेज दिया।'

उस कागज के टुकड़े पर जो कुछ लिखा था, उसके शब्दों का सामान्य अर्थ किसी प्रकार की गुदगुदी या उत्सुकता उत्पन्न नहीं कर सकता था, पर जैसे ही देशराज ने अपनी स्मृति को कुरेदा, फड़क उठा।

'तुम गजब की हो!' दो-तीन क्षण चुप रहा। फिर अपनी नाक के सिर पर उँगली फेरते हुए बोला, 'है बड़े खतरे का काम!'

'खतरों में हम लोग पले और खतरे ही हमारा-तुम्हारा पुष्टिकारक भोजन है,' अंजना ने भौंहें समेटकर कहा।

'ठीक कहा तुमने,' देशराज उत्साहपूर्वक बोला, 'पर यह सबका सब इतनी जल्दी!'

अंजना की भौंहें ढीली पड़ीं। चितवन मद-भरी हुई और मुसकान विजय के रस में डूबी।

'यह नुस्खा कब सोचा?' देशराज ने पूछा।

सिर हिलाकर संगीत के स्वर में अंजना ने उत्तर दिया, 'पाँच सौ रुपए देने का वादा करने के पहले।'

देशराज उमड़ पड़ा, 'वाह री अमरबेल! शब्दों के सच्चे अर्थ में मेरी अमरलता!!'

वह हँस पड़ी, 'हाँ, अकेले में यह सब कह सकते हो।'

देशराज ने उसको लिपटा लिया।

□

धरनीधर ने निरख-परखकर नोट रख लिए और अपने भविष्य की बहुत-सी बातों को सोचता-विचारता सो गया।

कई घड़ी दिन चढ़े समिति के कुछ लोग रुपया उधार लेने आए। अगहन का महीना लगनेवाला था। किसी को लड़की का, किसी को लड़के का ब्याह करना था। जिला बैंक से आए हुए रुपयों का कुछ भाग, जो मशीन चलवाने की फीस में जमा करना था, पेटी के ऊपरी भाग में रखा हुआ था और अपना निजी नीचे के भाग में, जिसको साधारण दृष्टि नहीं भेद सकती थी। फीस में रुपया तभी जमा होता जब सदस्य अपने इस या उस खेत पर मशीन चलवाने के लिए राजी होते। इसमें अभी कुछ विलंब था और विलंब की सीमा बढ़ाई भी जा सकती थी।

जो लोग ऋण लेने आए थे उन पर धरनीधर का कुछ पहले का दातव्य चला आ रहा था। धरनीधर ने जिला बैंक का रुपया और अपना इन लोगों को अपने निजी खाते में

उधार दिया और जो बाकी चली आ रही थी उसको उधार दिए रुपयों में से काट लिया। आशा थी ही कि दूसरे ऋणिए अठवारे-पखवारे में रुपए जब दे जाएँगे तब कुछ तो उस एक हजार में से और कुछ इससे रोकड़ बराबर कर लूँगा, क्योंकि वह एक हजार भी तो एक साथ खर्च होगा नहीं। और नहीं तो थोड़े से ब्याज का मुनाफा ही सही, क्योंकि धरनीधर उस पुरानी कहावत का अनुयायी था कि गाँठ से निमक तक खरीदकर खानेवाला साहूकार जड़-मूल से मारा जाता है!

एक ने जब प्रतिवाद किया कि—'बाकी को इसमें से न काटो; बैंक की ब्याज-दर इतनी सस्ती और तुम्हारी इतनी कड़ी। फिर भी तुम्हीं से लेते हैं और लौटा देते हैं, बाकी को आनेवाली फसल पर ले लेना,' तो उसने बताया कि—'बैंक आज है और कल न रहे! ओस चाटे प्यास नहीं बुझती। काम हमीं आएँगे। सदा से हैं, और सदा रहेंगे। और फिर भाई, बैंक शादी-ब्याह के लिए तो रुपया देता नहीं।' वे लोग मन मारकर चले गए।

रास्ते में कुड़कुड़ाते गए, 'सब एक से हैं। कोई लंबी नाकवाला! कोई लंबे हाथवाला!!'

□

दिन-भर ट्रैक्टर चले। मशीनों के भिन्न-भिन्न कार्य होते रहे। उनका काम देखने और हल्ला-गुल्ला सुनने के लिए इन दोनों गाँवों के बहुत से लोग और बड़ी संख्या में दूर-दूर के गाँवों के लोग आए। थोड़े से बाँगुर्दन में अपने-अपने नातेदारों के रूखे-सूखे के मेहमान हुए और बहुत से लौट गए। इन दोनों गाँवों में ब्यालू के समय तक काफी चहल-पहल रही। फिर वह घटती गई और नीरव बढ़ता गया। आधी रात के समय बिलकुल सन्नाटा।

निस्तब्धता जैसे किसी का आवाहन कर रही हो, किसी की प्रतीक्षा में हो। दोपहर रात गए के पखेरू बोलकर चुप हो गए। हवा चलते-चलते रुक गई। वृक्ष-पल्लव निस्पंद से। चंद्रमा पश्चिम के एक कोने की ओर सरकता-सरकता मंद होने लगा और बड़े-बड़े तारों में आभा बढ़ने लगी।

निश्शब्दता का साथ देते हुए कुछ हथियारबंद धरनीधर के मकान के सामने चुपचाप आ खड़े हुए। चेहरे पर वे ढाठियाँ बाँधे हुए थे। मार्गों की नाकेबंदी के लिए वे अपने साथियों को पहले ही छोड़ आए थे।

उनमें से एक ने किवाड़ खटखटाए। कुछ क्षण उपरांत भीतर से आवाज आई, 'कौन है? क्या है?'

स्थानिक बोली में आगंतुक ने काँपते हुए गले से कहा, 'बड़ी अटक का काम है। ऊँचे नातेदार की बात जा रही है। मुँह अँधियारे उठकर चले जाएँगे। काम छोटा-सा ही है पर है बहुत जरूरी। आधी घड़ी के लिए आ जाइए। अहसान कभी नहीं भूलूँगा।

एक किवाड़ों के सामने खड़ा हो गया; उसके साथी अगल-बगल डट गए।

धरनीधर कुछ मिनिट बाद लालटेन लिए आ गया।

भीतर की साँकल खुली, एक किवाड़ हटा कि वह व्यक्ति आँधी के वेग के समान टूट पड़ा। पीछे से उसके कुछ साथी घुस पड़े।

जो सबसे आगे था उसने कठोर स्वर में कहा, 'मैं हूँ कालीसिंह।'

धरनीधर के हाथ से लालटेन छूट गई। कालीसिंह के एक साथी ने लपककर लालटेन उठा ली, कालीसिंह ने धरनीधर के गले की तरफ हाथ बढ़ाया।

धरनीधर चिल्लाया, 'दौड़ियो! बचाइयो!!'

इससे अधिक वह नहीं बोल सका। कालीसिंह ने उसे दबोच लिया।

बोला, 'चल भीतर!' धरनीधर अचेत-सा था। उसके पैर लड़खड़ा गए। कालीसिंह और उसके कुछ साथी धरनीधर को घसीटकर भीतर ले गए। वह एक जगह गिरकर बैठ गया। कालीसिंह ने उसकी छाती पर बंदूक अड़ा दी।

'बोल, माल कहाँ है?' कालीसिंह गरजा। धरनीधर की घिग्घी बँध गई।

फिर जो कुछ हुआ, उसमें देर नहीं लगी। धरनीधर को अपनी पेटी बतानी पड़ी।

किवाड़ खुलते ही कालीसिंह और उसके साथियों के घुस पड़ने पर जब धरनीधर चिल्लाया—दौड़ियो, बचाइयो—तब उसके एक-दो पड़ोसियों ने, थोड़ी-सी देर के बाद दरवाजे खोले और वे लालटेन लेकर बाहर निकले भी।

'कौन है? क्या बात है?' उन्होंने हड़बड़ाकर प्रश्न किए कि एक डाकू ने बंदूक का हवाई फायर किया। पड़ोसी जल्दी से अपने-अपने घरों में चले गए और किवाड़ बंद कर लिए।

बंदूक के उस फायर पर, कुछ समय पीछे, हवेली की दिशा से बंदूक दागे जाने की दो-तीन आवाजें आईं।

इस बीच में कालीसिंह ने धरनीधर की पेटी से सौ रुपए के वे दस नोट निकाल लिए, साथ में उसकी निजी रकम भी। यह सब लेकर वह साथियों सहित चला गया।

घड़ी-डेढ़ घड़ी धरनीधर अर्द्ध अचेत अवस्था में पड़ा रहा। कानों में तरह-तरह की ध्वनियाँ सनसना रही थीं। उन ध्वनियों के ऊपर घर में हल्ला-गुल्ला और लोगों के चलने की आहट सुनाई पड़ी। उसने कल्पना की—डाकू लौट पड़े हैं। अब और जो कुछ होना हो सो होले; अपने को भाग्य के हवाले करके वह सन्न हो गया। उसके चारों ओर कई लालटेनों का प्रकाश हुआ।

एक ऊँची आवाज कान में पड़ी, 'अरे भाई धरनीधरजी!'

यह स्वर देशराज का था। धरनीधर ने आँखें खोलीं। देशराज, बनमाली, विक्रम और कुछ पड़ोसी उसे घेरे खड़े थे। देशराज बंदूक लिए था। वह बनमाली और विक्रम

को लेकर आया था जिनके घर मार्ग ही में पड़ते थे। इनको आता देखकर पड़ोसी भी साहस करके निकल पड़े थे। डाकू धरनीधर के किवाड़ खुले हुए छोड़ गए थे, इसलिए इनको भीतर चले आने में अड़चन नहीं पड़ी। स्त्रियाँ सिकुड़ी हुई, किवाड़ बंद किए, भीतर सिसक रही थीं।

थोड़ी देर बाद जब पूरा चेत आ गया तब धरनीधर ने डाके का ब्योरा सुनाया। किसी ने सच्ची, किसी ने बनावटी सहानुभूति प्रदर्शित की।

देशराज ने कहा, 'मैं अध-सोया-सा था। बंदूक के फायरों पर चौंक पड़ा। सोचा, कहीं कुछ गड़बड़ है। शायद डाकू कहीं गाँव में उत्पात कर रहे हों। कहाँ कर रहे होंगे? बनमालीजी के यहाँ या आपके यहाँ? इनका घर है मेरे निकट ही और बंदूक चलने की आवाज आई कुछ दूर से। मैंने कपड़े पहने, बंदूक उठाई और कारतूसों की पेटी ले ली। आँगन से निकलकर दो फायर दागे। बनमालीजी को बुलाया। ये आ गए। फिर विक्रम को साथ लिया। आपके पड़ोसी हम लोगों को आया देखकर निकल पड़े। उनसे मालूम हुआ कि आप पर डाका पड़ गया है!'

बनमाली, विक्रम और पड़ोसियों ने समर्थन किया।

देशराज ने धरनीधर से पूछा, 'आपने उन नोटों के नंबर कहीं लिख लिए थे?'

'नहीं तो,' उसने धीमे स्वर में कहा, 'आपके पास होंगे।'

'हमारे पास भी नहीं हैं। रुपए आते-जाते बने रहते हैं। नंबरों के टीप लेने का अवसर ही नहीं आता—अभ्यास ही नहीं है।'

बहुत सांत्वना देने और धीरज धराने के बाद सब लोग अपने-अपने घर चले गए।

□

रात तीसरे पहर में भीगने लगी। गाँव के सन्नाटे में घर-घर लोग खुसफुस करते रहे। सोचते थे, कब सवेरा हो। अंजना और देशराज भी जाग रहे थे। अंजना अतिथि-भवन में न होकर, हवेली के ही एक भीतरी भाग में थी। देशराज कुछ ही समय पहले धरनीधर के घर से लौटा था।

'तो धरनीधर ने उन नोटों के नंबर कहीं नहीं लिखे?'

'नहीं लिखे। मैंने अच्छी तरह से पूछ लिया है।'

'कालीसिंह क्या है, एक तूफान है!'

'विकट है।'

अंजना प्रसन्न थी। होंठों पर बारीक मुसकान। आँखों में मादकता नहीं, एक भयानकता थी। यदि उस समय एक विशेष कोण से उसका फोटो लिया जाता, तो बहुत कुरूप दिखती।

देशराज अवश्य हर्ष में था।

'तुम्हारी सूझ-बूझ पर मैं तो न्योछावर हूँ।' देशराज बोला।

वह हँसी।

'यह तो कोई बड़ी बात नहीं हुई। आगे बहुत करने को शेष है। लखनऊ की दिशा में चलना है। कब तक चल सकोगे?'

'जिमीन पर मशीनें चलवा लूँ और जाँच-पड़ताल के लिए पुलिस आ जावे, तब चल पड़ो।'

'देर हो रही है,' एक विजय पर दूसरी विजय का ढेर लगाने की आकांक्षा की लहर में अंजना बोली। 'नहीं, शीघ्रता करेंगे। मशीनों का उपयोग हर प्रकार से जरूरी है—रुपए की वृद्धि में सहायता मिलेगी और दूसरे साधनों से प्राप्त और बढ़ाई हुई संपत्ति के लिए आड़-ओट।'

☐

प्रातःकाल ही पुलिस में रिपोर्ट करा दी गई। पुलिस अविलंब दौड़ी आई। राजा देशराज के गाँव में भी डाका पड़ गया! पुलिस इंसपैक्टर को आश्चर्य था।

जाँच-पड़ताल हुई। देशराज को, और उसके साथ, यद्यपि उससे कम, बनमाली और विक्रम को सराहना मिली। अपनी जान पर खेलकर एक साधारण साहूकार की सहायता के लिए दौड़ आए बिचारे!

आए थे वे दो घड़ी पीछे!!

कालीसिंह अपना नाम बता गया था, इसलिए किसी और पर संदेह करना व्यर्थ था। परसों शाम को धरनीधर के पास रुपए पहुँचे, कल रात डाका पड़ गया। कालीसिंह को कैसे पता लगा? वह कहाँ रहा होगा? निकटवर्ती जंगलों और पहाड़ों को पुलिस की असंख्य गालियाँ मिलीं। यहीं कहीं छिपा होगा अपने गिरोह के साथ। या तो किसी गाँववाले ने उसको उन रुपयों की खबर दी या मशीनों का तमाशा देखने के लिए आने-जानेवालों में उसके किसी सहयोगी ने। गाँव में धरनीधर की ऐसी शत्रुता भी किसी से नहीं जो वैर चुकाने के लिए किसी ने यह कुकर्म करवाया हो। हो न हो बाहर का ही कोई बदमाश आया और कालीसिंह को सूचना दे गया। पुलिस की जाँच-पड़ताल समाप्त हो गई। वह आगे कुछ न कर सकी। नोटों के नंबर कहीं लिखे थे नहीं कि उनके संबंध में रोक-टोक की कोई कार्रवाई की जाती।

पुलिस के चले जाने पर राघवन धरनीधर के घर आया। संक्षेप में सहानुभूति प्रकट करने के उपरांत उसने बैंक के रुपयों के संबंध में प्रश्न किया।

धरनीधर ने बतलाया, 'वे एक हजार गए, बैंक से जो रुपया आया था वह गया और इनके साथ मेरा निज का भी।' बैंक से आए रुपए उधार में डाल दिए थे, इस बात को वह छिपा गया।

'बुरा हुआ। बहुत बुरा हुआ।' राघवन ने कहा। पर क्या बुरा हुआ, यह उसने अभी मन में ही रखा। धरनीधर बहुत उदास था।

राघवन उसे उत्साहित करने के लिए बोला, 'कल संध्या समय टहलरामजी के घर बाँगुर्दन के लोगों की सहकारी कृषि समिति बनाने के लिए बैठक हुई।'

धरनीधर को प्रसंग बुरा लगा। राघवन ने देखा, उसने मुँह लटका लिया है, परंतु वह तो धुनी था, कहता गया—

'टहलजी व्यक्तिगत खेती के बहुत विरुद्ध हैं, पर बटोले पक्ष में हैं। उन्होंने टहलजी की बात नहीं मानी और बिगड़ पड़े। और भी कुछ थे—नाम याद नहीं—जो व्यक्तिगत खेती के लिए जिमीन अलग रखने के पक्ष में हैं। आप शायद उनके नाम जानते होंगे।'

धरनीधर जानता भी होगा तो उसने न जानने का सिर हिलाया।

राघवन ने बात समाप्त की, 'व्यक्तिगत खेती और भूमि स्वामित्व के लिए कायदों में स्थान है। टहलजी को अपने साथियों के आग्रह के सामने झुकना नहीं आता। समिति बनाने का प्रस्ताव पास न हो पाया। पर शीघ्र ही होगा। समिति की रजिस्ट्री होते ही आपको मशीनें चलवाने की फीस जमा करनी पड़ेगी।'

धरनीधर जानता था।

क्षीण स्वर में बोला, 'कहाँ से दूँगा?'

सांत्वना के लिए मुसकान में डुबोकर राघवन ने उत्तर दिया, परंतु होंठों के सिवाय शेष आकृति पर स्वाभाविक रुद्रता की छाप थी, 'धीरे-धीरे दे दीजिएगा, पर देना तो पड़ेगा और बैंक के रुपए तो बहुत जल्दी देने पड़ेंगे। जितनी मुहलत मुझसे बनेगी, मैं आपको दिलवा दूँगा।'

धरनीधर की आँखें छलछला आईं, 'मेरे पास इतना है ही नहीं कि दे सकूँ।'

'मैं क्या करूँ, भाई मेरे? मेरे सिर पर भी तो कानून है।' कहकर राघवन चला गया। धरनीधर सोच रहा था, इस सहकारी समिति से कैसे पीछा छूटे?

: २२ :

सुहाना-बाँगुर्दन के बीचवाला नाला आगे जाकर चौड़ा होता चला गया था। ललिता नदी में मिलने से पहले इस नाले ने किनारे की एक-एक, दो-दो फलांग भूमि को काट-कूटकर छोटे-छोटे भरकों में पलट दिया। इन भरकों में रेंवजा और झरबेरी के लटे-दुबले, कुंठित पेड़ थे, पर घास न थी। रेंवजा और झरबेरी को उन गाँवों की और आस-पास की भेड़-बकरियाँ चरा करती थीं। उस चारे से उनमें जान ही कितनी पड़ती थी? कोई बकरी आधपाव दूध देती थी, कोई तीन छटाँक। वह भी साल में चार महीने। पर गाय-बैलों की गुजर भी इन भरकों से नहीं होती थी और दूध तो गरमियों में

पच्चीस गायों से दो सेर मिल जाए तो बहुत। काँस जला तो यह भी हाथ से गया! गरमियों में ढोर बेभाव मरेंगे वह आफत अलग!!

घास को काँस चाट गया और काँस को मशीनें डसने लगीं। अब ढोर क्या खाएँ? आगे कैसे गुजर होगी? लोग सोचने लगे।

मशीनों का हो-हल्ला, झाड़ी-झंकाड़ की उखाड़-पछाड़, बँधियों का डाला जाना, रोज-रोज इतना हुआ कि तमाशा पुराना पड़ने लगा।

आरंभ में सरकारी परती पर मशीनें चलीं। फिर कुछ देशराज को किराए पर मिलीं। अब सुहाना की सहकारी समिति के उन खेतों की बारी आनेवाली थी जो काँस से ढँके हुए थे। इनमें वे भी थे जिन पर छदामी का दावा था। कुछ ऐसों के भी थे जिन्होंने मुकद्दमा नहीं चलाया था और न चला सकते थे, केवल कलप रहे थे।

गाँव की राजनीतिक प्रगति पर भी मशीनों के आने का प्रभाव पड़ा—नेतागीरी खटाई में पड़ने लगी। बड़े-छोटे सरकारी अफसर जब देखो तब हवेली में, मशीनों के ड्राइवर और मिस्त्री भी वहाँ बहुधा आ जमते थे। देशराज का अदृष्ट रूप बढ़ने लगा। योजना में सहकारी कार्यों को महत्त्व दिया गया था। इसलिए उन कार्यों में प्रमुख संचालकों को मान्यता मिलने लगी। इखरी-बिखरी जोतों की चकबंदी की जानी थी। चकबंदी में जोतवालों की अरुचि थी। उस अरुचि का या तो प्रतिकार हो या संपादन। महत्त्वाकांक्षी ग्राम्यनेता के लिए जरूरी था कि अपनी प्रभावहीनता से छुटकारा पाए और आगे बढ़े। इसलिए धरनीधर ने सुहाना की जनता के असंतोष का संपादन प्रारंभ कर दिया। टहलराम ने बाँगुर्दन में अपने मन की सहकारी समिति नहीं बना पाई थी, इसलिए वह किसी दूसरे मार्ग के खोजने में लगा था, पर बटोले, मंटू, दमरू इत्यादि जानदार आदमियों को वह नहीं छोड़ सकता था।

बनमाली ने देखा कि सरकारी अफसरों की रीझ-बूझ तो मिलने लगी है, फिर भी देशराज के मुकाबले में कम। उधर जनता उसके प्रति विमन। और देशराज के पट्टे द्वारा जो विस्तृत भूमिखंड मिले थे, वे संकट के शिकंजे में कपास ओटने चले थे। अब मिलता दिख रहा था जपने को केवल हरिनाम! बटोले की तरह दमरू और छदामी भी किसी दिन मामला जीत ले जाएँगे; गाँव पंचायत या गाँव समाज जब जिमींदारी उन्मूलन द्वारा प्राप्त भूमि का प्रबंध—यानी बाँट-बँटवारा—करेगी, तब कुछ हाथ लगने का नहीं, क्योंकि अदालती कार्रवाई नहीं की थी और कोस-किलप रहे थे, चुनाव में उसका वोट मिलने से रहा। पंचायत या गाँव समाज में पहुँचने का एकमात्र साधन था यही। इसलिए बनमाली भी, यद्यपि स्वतंत्र रूप से, परोक्ष में धरनीधर का सहयोगी बना।

□

धरनीधर चाहते हुए भी सहकारी समिति को नहीं छोड़ सकता था, क्योंकि चार्ज सौंपने के समय समिति या जिला बैंक की पूरी धरोहर वापस करनी पड़ती। देनी तो पड़ेगी ही किसी-न-किसी दिन, परंतु दीर्घकाल के लिए टल जाए तो बड़ी गनीमत। तब तक ब्याज पर फैला हुआ रुपया लौट आएगा और किसी प्रकार आगे का काम चलाएँगे।

समिति की थोड़ी-सी निर्विवाद भूमि पर मशीनें चलवाने का किराया धरनीधर को जमा करना पड़ा। अन्य भूमि के निर्विवाद हो जाने पर और भी जमा करना पड़ेगा। यहाँ मशीनों का चलना रुक जाए तो साँस लेने के लिए तो समय मिल जाए, धरनीधर मना रहा था।

साधारण जनता के लिए काँस का और अधिक उत्सादन अब दुस्सह हो गया। कैसे बंद किया जाए? प्रश्न यह था।

धरनीधर और बनमाली ने अलग एक ही उत्तर दिया—

सत्याग्रह करो। ट्रैक्टरों और बुलडोजर इत्यादि मशीनों के सामने, पाँतें बाँध-बाँधकर लेट जाओ, बिलकुल न चलने दो! तुम्हें शायद पकड़-पकड़कर और घसीट-घसीटकर हटाया जाएगा, इसलिए बीच-बीच में स्त्रियों को लिटा देना, उन्हें कोई छू भी नहीं सकेगा!!

जनता को बनमाली या धरनीधर की नियत में कोई बल—दाव-पेंच—नहीं दिखाई पड़ा।

और, एक दिन यकायक सत्याग्रह हो गया!

जब स्त्री-पुरुषों की भीड़-की-भीड़ मशीनों के सामने आई तब मशीन संचालकों ने समझा, तमाशा देखने के लिए फिर टूट पड़ी है। परंतु जब यह भीड़ पाँतों में मशीनों के सामने हाय-हाय करती हुई पट्ट लेट गई, तब वे चक्कर में पड़ गए।

कारण पूछने पर किसी ने न बतलाया। उन्होंने समझाया, मनाया, डाँट-डपट की। किसी ने परवाह नहीं की। अन्य लोगों ने कारण बताया तो अधिकारियों की समझ में न आया।

राघवन बहुत परेशान था।

देशराज को बुला भेजा। बनमाली, धरनीधर और टहलराम को भी।

इनके आने के पहले उसने भविष्य की हरियाली दिखाई, 'नहर आएगी तो तुम्हारे इन खेतों की उपज दिन दूनी बढ़ेगी। नल-कुएँ खोदे जाएँगे, सस्ती बिजली मिलेगी। ऐसे खाद पाओगे जिनसे फसलें चौगुनी हो जाएँगी। उद्योग-धंधे बढ़ेंगे कि फूले न समाओगे।'

उन लोगों के कान पर जूँ तक न रेंगी।

देशराज आ गया।

राघवन ने भीड़वालों से कहा, 'क्यों अपने पैरों पर कुल्हाड़ी चलाते हो? काँस उपट जाने पर अगली साल घास अच्छा पैदा होगा, फसलें बढ़ेंगी—'

लेटे-ही-लेटे कुछ बोले, 'गरमियों में जब हमारे सब जानवर मर जाएँगे, तब अगली साल का घास कौन चरेगा?'

'मशीनें जो तेल खाती हैं वह हमारे देश में नहीं होता। तेल फूँककर ये कोई खाद नहीं देतीं। काँस खाकर ढोर गोबर करते हैं और खाद तो देते हैं!'

देशराज ने कहा, 'यह इनकी नहीं, इनके दिमाग में दूसरों की ठूँसी हुई बात है।'

बनमाली नहीं आया। उसके पेट में यकायक दर्द हो आया था! धरनीधर को बुखार था!!

बनमाली के लिए देशराज कुछ नहीं कह सकता था; समझता था, हमारे वर्ग का हो गया है। धरनीधर के संबंध में उसने कहा, 'उन्हीं के बहकाए, बरगलाए हुए हैं ये बिचारे। बुखार का बहाना लेकर अब पड़ गए हैं घर के भीतर।'

राघवन की आकृति भयानक हो गई। उसने और उसके सहायकों ने बाँहें उकसाईं; पुरुषों को पकड़ा-घसीटा। परंतु वे फिर जहाँ-के-तहाँ। स्त्रियों को राघवन इत्यादि बाँहें घुमा-घुमाकर, पैर पटक-पटककर धमका तो रहे थे, परंतु उनको छू नहीं रहे थे।

एक स्त्री पड़े-पड़े ही चीखी, 'रोंद डाल, मार डाल हमें!'

दूसरी—'अरे हत्यारे, क्या तेरे घर में कोई नहीं है?'

अन्य स्त्रियाँ चिल्लाईं—

'निपूते हैं, निपूते, मूँछों जले!'

'गाँव मिटाने आए हैं!!'

'चला दो मशीनें हमारे ऊपर!!!'

राघवन ने क्रोध के स्वर में, परंतु आँखों से वर्जित करते हुए कहा 'चला दो मशीनें! कुचल डालो इन पाजियों को!!'

ड्राइवरों ने इंजनों की धुत्कारें, फुफकारें छोड़ीं, परंतु मशीनों को बढ़ाया नहीं।

स्त्रियाँ जानती थीं—एक रोम भी नहीं कुचला-पिचला जा सकता।

इंजनों की धू-धू-हू-हू के ऊपर स्त्रियों के चीत्कार उठे—

'मार डाला! मार डाला!!'

'भगवान् करें इनके घर में राँड़ें रह जाएँ!!!'

राघवन का क्रोध गहरे जा पहुँचा। इंजन बंद करा दिए। एक सहयोगी को पुलिस ले आने का आदेश दिया।

भर्राए हुए स्वर में बोला, 'तुरंत जाकर एक दस्ते को मय हथियार के लिवा लाओ।

उनके डंडे जब पीठ फोड़ेंगे तब होश ठिकाने आएगा। सूचना दो कि बलवा हो रहा है।'

उसी समय एक दिशा से टहलराम और दूसरी से सनेहीलाल आ पहुँचे। टहल के पीछे-पीछे उसकी माँ और हरको भी आ रही थीं।

परिस्थिति उनकी समझ में जल्दी आ गई। असली कारण का उन्हें कुछ आभास था, परंतु यह नहीं जानते थे कि 'सत्याग्रह' इतनी जल्दी छेड़ दिया जाएगा।

टहलराम ने दौड़-धूप की। उन सबको समझाया। घाटीवाली ने स्त्रियों की बहक को दूर करने का बहुत प्रयत्न किया—हरको अपनी जान-पहचानवाली स्त्रियों को फुसला रही थी, परंतु उनके ऊपर प्रभाव नहीं पड़ा।

सनेही ने राघवन को रोका, 'पुलिस को मत बुलाइए, गुत्थी और भी उलझ जाएगी।'

राघवन झल्लाया, 'और कोई उपाय नहीं।'

सनेही ने निर्भयतापूर्वक भर्त्सना की, 'असल में आपके उत्साह की व्यग्रता समस्या जटिल बना रही है। आपने इन लोगों पर मशीनें दौड़ाने का हुकुम दिया?'

'केवल डराने-धमकाने के लिए!'

'खूब! इससे वे और भी उत्तेजित हो गए। अब क्या पुलिस को बुलाकर गोली चलवाइएगा?'

'पुलिस जाने।'

'बिना इन लोगों की मरजी के सहकारी काम तो चलने से रहे। इनमें बहुत से सहकारी समिति के सदस्य भी हैं; वे नहीं चाहते तो जबरदस्ती मत करिए। पहले उन्हें समझाइए। समझाते रहिए। तब तक सरकारी परती, जो अब भी कोसों फैली पड़ी है, उसे ठिकाने लगाइए। ऐसे तो काम नहीं चलेगा।'

'इखरी-बिखरी जोतों की चकबंदी कैसे होगी?' राघवन ने असंगत-सा प्रश्न किया।

सनेही ने उत्तर दिया, 'मशीनों से नहीं होगी, इनके ही बहुमत से होगी।'

राघवन को कानून का स्मरण हो आया। ठंडा पड़ने लगा।

सनेही की बातें कुछ लोगों ने सुनीं। टहल ने भी, जो पास ही था।

बोला, 'मशीनें यदि सरकारी परती में बिध गईं तो गाँवों के पास की यह जिमीन तो रही, जिसका काँस निकट के खेतों में भी फैलता रहेगा।'

सनेही मुसकराया। राघवन उन दोनों के पास आ गया।

सनेही ने कहा, 'जब तक जगाते-जगाते इन बिचारों की बुद्धि जागे तब तक बटोले इत्यादिवाली परती में क्यों नहीं मशीनें चलवा देते जो इसे अदालत से मिली है?'

बटोले के भूस्वामित्व-हठ और व्यक्तिगत खेती के आग्रह के कारण टहलराम बाँगुर्दन में अपने मन की सहकारी समिति नहीं बनवा सका था।

सोचने लगा।

सनेही लेटे-अधलेटे नर-नारियों के पास गया। बोला, 'मशीनें तुम्हारी भूमि पर नहीं चलेंगी। जिम्मा लेता हूँ। घर जाओ या छाया में जा बैठो।'

उन लोगों ने देख लिया था कि सनेही ने आते ही राघवन से कड़ी कहासुनी की है। उसके प्रति उन लोगों की निष्ठा थी। कुछ ढीले पड़े।

राघवन ने टहल से कहा, 'आप समिति बन जाने देते तो सुगमता से काम चलता, पर आपने बटोले जैसे अपने साथी की भी न मानी। आप अपने सामूहिक खेती के घोड़े को बेलगाम दौड़ाने की यों ही जिद कर रहे हैं।'

सनेही पास आ गया।

मशीनवालों को राघवन ने आदेश दिया, 'काम बंद कर दो। ट्रैक्टर इत्यादि सरकारी परती में चलेंगे।'

जनता ने सुन लिया। सत्याग्रह समाप्त हो गया। नर-नारी हटने लगे।

टहल यकायक बोला, 'सरकारी में नहीं चलेंगे ट्रैक्टर, हमारी समिति की परती में चलेंगे।'

'है कहाँ वह समिति?' सनेही ने धीरे से पूछा। थकी हुई दृष्टि से राघवन टहल की तरफ देखने लगा।

'यहीं कर लीजिए उसकी कार्रवाई, कराइए उसकी रजिस्ट्री। मैं अपने साथियों को नहीं छोड़ सकता। उनके मन की समिति बना दीजिए।' टहल ने उत्साह की खनक में कहा।

घाटीवाली दूर नहीं थी। टहल को अपनी माँ के शब्द सुनाई पड़े, 'ठीक कहा बेटा। बनाओ समिति, कुछ स्त्रियाँ भी उसमें शामिल होंगी।'

अपनी धुन का मस्त राघवन टहल से जा लिपटा।

'मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ? मेरी लाज रख ली।' राघवन के गले में कंप था। आँखों में आँसू दृढ़तापूर्वक कैद कर लिए गए थे। बोला, 'समितियों के रूप में कुछ भिन्नता भी रहे तो कोई हर्ज नहीं। कोई नाला सँकरा होता है, कोई चौड़ा; परंतु दोनों का पानी मिलकर एक बड़ी नदी बना देता है। हमें तो उस बड़ी नदी की तरफ आँख पसारनी है।'

सनेही ने आगे बढ़कर कहा, 'मेरी बधाई, टहल बाबू।'

टहल ने सनेही की मुसकान में व्यंग्य ढूँढ़ने का प्रयत्न किया। वहाँ ऐसा कुछ न था।

राघवन के आलिंगन से मुक्त होकर बोला, 'मेरा सिद्धांत तो सामूहिक खेती का ही है, परंतु विवश हो गया हूँ।'

सनेही जरा-सा हँसा। परंतु उसकी हँसी में भी व्यंग्य की काट-कतर नहीं थी।

'सिद्धांतों से कोई लड़ाई नहीं; मैं तो व्यवहार मात्र देखा करता हूँ। यदि कभी मेरी भी

जरूरत पड़े तो आप मुझे अपने से दूर नहीं पाएँगे।'

सनेही के प्रति टहल के मन में एक अपरिचित श्रद्धा उत्पन्न हुई। कह सका वह केवल इतना ही, 'बहुत अच्छा, डॉक्टर साहब।'

सनेही से राघवन उतना संतुष्ट नहीं था।

मशीनें उस दिन बंद रहीं। मशीनवालों ने छुट्टी मनाई। परंतु राघवन को चैन तभी मिला जब उसने टहलराम के घर बाँगुर्दन सहकारी कृषि समिति का, अपने कायदों के अनुकूल, निर्माण करवा लिया। उसमें घाटीवाली और हरको ने भी अपने नाम लिखवाए।

बनमाली ने देखा कि नेतृत्व गाँठ में न पड़ सका, कहीं अन्यत्र चला गया। मन को सांत्वना दे ली—धरनीधर से तो सनेही कहीं अच्छा।

धरनीधर पर मानो वज्र-सा टूटा। बाँगुर्दन समिति का निर्माण उन एक हजार रुपयों को देर-सवेर बिना लिए न रहेगा—शायद जल्दी ही। खैर भुगतूँगा।

राघवन ने तकाजे को गरम किया। उसे सरकारी परती की अपेक्षा सहकारी समिति का काम ज्यादा प्यारा था। इसके अतिरिक्त 'मशीन-बाईकाट' में धरनीधर के हाथ की बात उसे मालूम हो गई थी। पड़ गया वह धरनीधर के पीछे। उसे रुपयों का प्रबंध करना ही पड़ा।

धरनीधर ने निश्चय कर लिया कि उधार फैला हुआ रुपया वसूल करने के बाद समिति से इस्तीफा दे दूँगा।

: २३ :

बाँगुर्दन सहकारी कृषि समिति की रजिस्ट्री हो गई। धरनीधर को रुपए लौटाने पड़े। फीस जमा कर दी गई। बटोलेवाली परती पर ट्रैक्टर चला और बंधी पड़ी। काँस साफ हो गया। बढ़िया भूमि अपनी पुरानी विभूति के साथ दिखाई पड़ने लगी। बंधी ऐसी शुद्ध नाप और डील-डौल की बनी जैसे किसी चित्रकार ने चित्र बनाने के लिए किसी युवती के रूप-सरूप की रेखाएँ बनाई हों, रंगों के सौंदर्य का समन्वय मानो, तब होगा जब उसमें मुसकराती हुई फसलें अपने नीले, लाल, पीले फूलों की सज-धज में आ खड़ी होंगी।

टहल ने बटोले को बाँगुर्दन समिति का प्रधान बनाया। घाटीवाली खजांची और वह स्वयं मंत्री चुना गया।

गाँव में, ऊपर से कोई विशेष झगड़े नहीं दिखाई पड़ते थे। लोग अपने-अपने काम में लग गए।

अंजना और देशराज नाहरगढ़ गए।

जाने से पहले अंजना ने नाहरगढ़ तार भेजा—'हवाला उस दिन का तार, हम आ रहे हैं।'

जिस तार का उसने हवाला दिया था वह था उस दिनवाला तार जिसकी रात धरनीधर पर डाका पड़ा था।

नाहरगढ़ मध्यकाल का पहाड़ी किला था। बड़ा नहीं था परंतु ऊँचाई पर होने के कारण आकर्षक और विशाल लगता था।

चौथे पहर का आरंभ। जाड़े की ऋतु, जिसमें अभी तीखापन नहीं आया था। सड़क किनारे के काग के पेड़ सफेद फूलों के लंबे-लंबे गुच्छों से लद गए थे, इतने कि पत्तों की हरियाली उनमें होकर झाँक-झाँक के झाँईं-सी मार रही थी। महक इतनी कि चंपा-चमेली उसके सामने सहम जाए। सूर्य की नरम किरणें अपने सोने के डोरों का उन फूलों और पत्तियों पर जाल-सा बुन रही थीं। पहाड़ों की नीची घाटियों के सम-विषम फैलाव में सुनसान समाया था। एक-दूसरे से दूर बसे हुए छोटे-छोटे गाँवों की कल्पना केवल उस धुएँ से की जा सकती थी जो कुहरे की तरह उनके ऊपर पहाड़ों की तली में छितराया हुआ दिखता था।

संध्या के पहले ही अंजना और देशराज नाहरगढ़ पहुँच गए। नाहरगढ़ की बस्ती बड़ी न थी। टूटे-फूटे परकोटे के बाहर खेती थी और भीतर इखरे-बिखरे गृह-समूह।

ये दोनों खा-पीकर निवृत्त हुए थे कि इनकी और बाघराज की गोष्ठी में कालीसिंह आ गया। अंजना ने अपने भीतरी भाव को छिपाया। चर्चा उसी संबंध में चल रही थी। उन तीनों ने उसका अभिनंदन किया।

अंजना ने मुसकराने का प्रयास करते हुए कहा, 'उस रात जब आए तब साधु की लंबी दाढ़ी लगाए थे! और कैसा चोगा। मूँछों की ऐंठी हुई नोक ऊपर न होती तो मैं तो न पहचान पाती!'

'जब आपके यहाँ आया, गाँव में घर-बाहर कोई नहीं मिला। मिलता भी तो पहचान नहीं सकता था।' कालीसिंह के स्वर में दंभ था।

'यहाँ तक कि जगनू ने भी नहीं पहचान पाया होगा!' बाघराज ने हँसते हुए शाबाशी दी।

'जगनू ने पहचान लिया था। उसके आँख-कान तेज हैं, परंतु उसने इन्हें भाँपने नहीं दिया,' देशराज ने बतलाया, 'सो कोई बात नहीं, वह तो अपना ही है।'

'और आज आप दूसरे ही वेश में हैं, परंतु मूँछें वैसी ही।' अंजना ने कालीसिंह का यश बढ़ाया।

'मैं मूँछों को कभी नहीं गिरने देता। वे पुरुष भी क्या जो सफाचट किए रहते हैं!' कालीसिंह ने देशराज के सफाचट चेहरे पर आँख गड़ाई।

सब हँस पड़े।

बाघराज बोला, 'इनका प्रण है कि सिर चाहे जाए, पर मूँछ न जाने पाए।'

कालीसिंह का हाथ अनायास मूँछ पर फिरकर जहाँ-का-तहाँ आ गया।

'अब काम की बात,' बाघराज ने कहा।

देशराज ने चर्चा आरंभ की, 'हम दोनों बहुत शीघ्र लखनऊ जा रहे हैं। फिर वहाँ से उत्तर का भ्रमण।'

'अब की बार कम-से-कम चार पेटियाँ आनी चाहिए, तब कहीं हम लोगों के पल्ले मुनाफे की अच्छी-सी रकम हाथ लगेगी।' कालीसिंह ने बिना किसी रुखाई परंतु बिना किसी विनय के कहा।

अंजना मुसकराई।

'मैं तो सोलह पेटियाँ साथ लाना चाहती हूँ, परंतु करूँ क्या, माल के इकट्ठा करने और लाने में जिन खतरों का सामना करना पड़ता है उन्हें हमीं जानते हैं। बेचने में भी जोखिम है, पर उतनी नहीं।'

कालीसिंह ने अपनी छोटी पैनी आँखें उठाईं, परंतु अंजना की मुसकान और एकाग्र चितवन के सामने से हटकर देशराज पर आ जमीं।

देशराज ने कहा, 'कुछ पेशगी चाहिए, राजा साहब।'

'आजकल तो बड़ी मुश्किल है।' बाघराज बोला, 'कालीसिंहजी से कुछ लेना पड़ेगा। उस दिन की तरह आज भी ये हमारे पड़ोस में थे, नहीं तो हम कुछ न कर पाते। आपका तार सवेरे ही मिल गया था। इनको ढूँढ़ निकाला।'

अंजना की मुसकान में भिन्नता आई और मात्रा में बढ़ती हुई—'इनके लिए तो सब तरफ यह विख्यात है कि इन्हें कोई देवी सिद्ध है, चाहे जहाँ पहुँच जाते हैं और चाहे जो कर डालते हैं।'

'धरनीधर अब तो बहुत दब गया होगा?' बाघराज ने पूछा।

'हाँ काफी,' देशराज ने उत्तर दिया, 'बिना दंतवाला साँप-सा हो गया है; पर अभी एक टहलराम और है।'

'कभी उसको भी देखूँगा,' कालीसिंह ने मूँछ की नोक उमेठी।

अंजना अपने विषय पर आई।

'खैर, उसके संबंध में अभी तो कोई जल्दी नहीं है। आज तो हम लोग कुछ रुपए के लिए आए हैं।'

कालीसिंह ने बाघराज की ओर देखा। वह भीतर गया और वहाँ से कुछ नोट लेकर आया।

बोला, 'आज तो आपके वे एक हजार रुपए ही हैं। इन्हीं से काम चलाइए।'

बाघराज ने सौ-सौ रुपए के दस नोट देशराज को थमा दिए।

'कुछ और पूँजी हो जाती तो काम चलता।' देशराज ने नोटों की गिनती करते हुए कहा।

बाघराज ने अपनी विवशता प्रकट की।

'गुजारा जो सरकार से मिलता है वह ऊपर के खर्चों और परिवार के लोगों पर ही निबट जाता है। बड़ी महारानी साहब, मेरी माताजी के खजाने से ही जब-तब कुछ काम सध जाता है।'

देशराज ने कालीसिंह से मुसकराते हुए अनुरोध किया, 'धरनीधर के यहाँ से इनके अलावा जो लोग लाए थे, यदि वह जुड़ जाता, और–' बाघराज से विनय की, 'कुछ श्रीमान दे देते तो गाड़ी का पहिया घूमता रहता।'

श्रीमान ने होंठ बिदराए और नाहीं का सिर हिला दिया, 'अपनी मजबूरी पहले ही जाहिर कर दी।'

कालीसिंह बोला, 'इन दस नोटों के ऊपर जो कुछ हाथ लगा था वह अपने साथियों को बाँट दिया। कोई और मोटा आसामी सुहाना या बाँगुर्दन में?'

देशराज ने बिना किसी उत्साह के उत्तर दिया, 'सुहाना में तो ऐसा कोई नहीं है। हाँ, बाँगुर्दन में एक बटोले है जो टहलराम के पड़ोस में रहता है। परंतु आपके धरनीधरवाले पराक्रम को अभी थोड़े ही दिन हुए हैं, इसलिए उचित नहीं है।'

'कोई जल्दी नहीं।' बाघराज ने सावधान किया।

बाघराज देशराज की उत्साहहीनता के सुनसान में सरसता उत्पन्न करना चाहता था।

अंजना को प्रोत्साहन दिया, 'उस रात आपका संगीत-प्रदर्शन गजब का रहा। बिचारे कालीसिंह वहाँ आ नहीं सकते थे। होते तो रसगुल्ले बनकर लौटते।'

कालीसिंह होंठों की एक कोर को चाँपकर दूसरी से जरा-सा मुसकराया। चेहरे पर भयानकता आई और चली गई। बोला तो कुछ नहीं, पर उसके गले तक आ गया था, मुझे संगीत-वंगीत से क्या सरोकार?

अंजना रसमयी हो गई।

बोली, 'मुझे संगीत छुटपन से ही प्रिय है। माँ ने सिखलाया और फिर बड़े-बड़े उस्तादों से शिक्षा दिलवाई। स्कूल और कॉलेज से भी कुछ पाया। मुझे स्वयं बहुत अच्छा लगता है और जब दूसरों को रस में भिगो देती हूँ तो बड़ा आनंद मिलता है।'

फिर उसने मोहक मुसकान में बिखेरा, 'इस संगीत की सहायता से ही तो इतना काम बना ले जाती हूँ।'

बाघराज देशराज की ओर देखते हुए हँसा; बोला, 'अपने शिकार को मंत्रमुग्ध कर

डालती है संगीत के घूँट पिला-पिलाकर।'

देशराज ने भी उमंग के साथ सराहना की, 'वह तो है ही, पर इनका व्यक्तित्व उससे भी बढ़कर है जो किसी जानी-मानी परिभाषा के भीतर नहीं आता।'

कालीसिंह की समझ में नहीं आया, इधर-उधर देखने लगा।

अंजना की मदीली चितवनें और रस-भरी मुसकानें उसकी बात के साथ प्रखर हो उठीं।

'ऐसे-ऐसे अभिनय करने पड़ते हैं कि क्या बतलाऊँ। कभी तितली, कभी मोर, कभी कोयल बनना पड़ता है। इंद्रानी, कभी मेनका, कभी इस अप्सरा, कभी उस अप्सरा की भूमिका में उतरना पड़ता है। मैं खुद अपने अभिनय पर जब कभी चकरा जाती हूँ।'

फिर खिलखिलाकर बोली, 'कभी-कभी ऐसी निपट गँवार देहातिन बन जाती हूँ कि ऐसे-ऐसे लोकनृत्य दिखलाती हूँ कि अपनी ही हँसी मुश्किल से रोक पाती हूँ। एक बार घसियारी बनी थी। उसी घास में दस सेर माल छिपा लाई थी। उस दिन सोचा था, यदि मैं फिल्मों में काम करती तो बहुत-सी तारिकाओं को ठिकाने लगा देती, पर मुझे सिनेमा की कैद का जीवन पसंद नहीं। मैं तो भ्रमण और पराक्रम का जीवन पसंद करती हूँ।'

बाघराज ने कहा, 'हीरों-जवाहरों को घास-पात से कैसे ढका जा सकता है! आप तो कमाल करती हैं।'

अंजना के भीतर कल्पना कोंधी, बाघराज पर विजय पाने की आधी मंजिल तो पूरी कर ली, किसी दिन पराकाष्ठा पर भी पहुँचूँगी; और तब—तब इनके गड़े हुए हीरा-जवाहर बाहर निकलकर आँचल में आ जाएँगे।

कालीसिंह केवल इतना समझा—यह किसी वेश्या की पुत्री है जो किसी तरह पढ़-लिख जाने पर भी वेश्या ही है; पर है काम की।

बाघराज को लगा कि इस समय भी कोई अभिनय ही कर रही है, बहुत करके मुझे उल्लू बनाने के लिए।

देशराज के मन में आया—इस बार नहीं तो अगली बार राजा साहब से बहुत सारा लेंगे जिसके द्वारा सब मिलकर कोई खासा रोजगार उजागर होकर चलाएँगे, फिर न तो अंजना को उन अभिनयों की जरूरत पड़ेगी और न हम दोनों को संकटों में प्राण झोंकने की, और सारी दुनिया हमारे हाथ जोड़े फिरेगी!

थोड़ी देर बातचीत करने के बाद अंजना और देशराज जा सोए। बाघराज और कालीसिंह बैठे रहे।

कालीसिंह ने कहा, 'बड़ी वाहियात औरत है।'

बाघराज बोला, 'वाहियात नहीं, भयंकर है।'

'चील है। इसके पंजों और नाखूनों से बचे रहना।'

'मैं मूर्ख नहीं हूँ, भाई। जब राज था, काफी ऐश-आराम कर लिए। यों ही थोड़े हिल जाऊँगा।'

'इनको कोई लंबी पेशगी मत देना, महाराज।'

'समझ-बूझकर ही काम कर रहा हूँ।'

कालीसिह प्रात:काल के बहुत पहले एक चोर दरवाजे से किले से बाहर निकल गया।

अंजना और देशराज दिन चढ़े चाय-पानी के उपरांत कुछ घंटे शिकार में लीन रहे क्योंकि वे उसकी भी ओट लिया करते थे, फिर संध्या के पहले सुहाना लौट पड़े। दो-तीन दिन पीछे लखनऊ चले गए।

: २४ :

खेतों के कूँड़ों में से गेहूँ, चना और अलसी के नन्हे-नन्हे पौधे फूटकर ऊपर आ गए और साँझ-सवेरे की रश्मियों में मिट्टी के ढेलों को ढकते हुए दिखाई पड़ने लगे। पवन चलने पर जब धीरे-धीरे हिलते तो लगता जैसे पलने में झूल रहे हैं।

सरकारी फार्म के भी एक बड़े से रकबे में बीज डाल दिया गया था। जम निकला, परंतु अभी ऊपर नहीं आ पाया था। बोहनी कुछ देर में हो सकी थी।

देशराज के व्यक्तिगत खेतों में पौधों की हरियाली की लहर कुछ अधिक थी, क्योंकि समय पर जुताइयाँ हुई थीं और बोहनी भी चौकोर बंधी पड़ जाने से पौधे ऐसे जान पड़ते थे जैसे एक बड़े चौखटे में हरी मखमल सजा दी गई हो।

इन पौधों के बीच-बीच में बथुआ, कलैना घास-फूस भी जम आया था। छोटे खेतीवाले इस घास-फूस की निराई करते थे, बड़ी खेतीवालों को गुंजाइश नहीं थी, इसलिए चिंता भी न थी।

बटोले, छदामी, दमरू, टहल इत्यादि के खेत बड़े-बड़े न थे। टहल को एक चैन था—उसके सब खेत एक में थे। बटोले की केवल वह भूमि जो उसे अदालत से मिली थी, बड़े रकबेवाली थी। बाकी दूर-दूर बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों में बँटी हुई थी। यही हाल दमरू का था और सुहाना में छदामी का। बहुत से और थे जो इसी परिस्थिति में थे।

बटोले ने वह लंबी-चौड़ी परती बाँगुर्दन सहकारी समिति में डाल दी। थोड़े-से अच्छे खेत भी सौंप दिए, पर ज्यादा बढ़िया व्यक्तिगत खेती के लिए सेंत रखे। उस परती पर ट्रैक्टर चलने लगा। बटोले कभी-कभी देख आता था, अधिकांश समय अपने निजी खेतों के घास-फूस की निराई को देता था। दमरू ने भी यही किया। अंतर यह रहा कि उसे वह परती अभी अदालत से नहीं मिली थी जिसके संबंध में झगड़ा विक्रम से बाँगुर्दन गाँव के रकबे का और बनमाली से सुहानेवाले का चल रहा था। परंतु लगा

उसने भी दी थी यह परती बाँगुर्दन समिति को; ट्रैक्टर अलबत्ता नहीं चला था उस पर—और जब तक झगड़ा अदालत से तय न हो जाए, चल भी नहीं सकता था। मंटू के पास गाँठ की कोई जिमीन थी नहीं, बटोले की सोंझ करता था। टहल ने अपनी सारी जिमीन सहकारी समिति को सौंप दी थी और जी तोड़कर काम कर रहा था। उधर सुहाना में यही लगन डॉक्टर सनेहीलाल को थी। यद्यपि भूमि उसके पास एक इंच भी न थी, तो भी अपने किसी विश्वास और सिद्धांत की प्रेरणा से वह जितना समय देता था उसमें मन लगाकर काम करता था। उसकी आस्था कुटीर उद्योग की स्थापना और उन्नति में थी और वह सहकारी कृषि समिति को उसका साधन मानता था।

□

बटोले ने मंटू के साथ अपने एक खेत में निराई पूरी की और दूरवर्ती दूसरे खेत पर पहुँचा। शरद् का अवसान था, फिर भी तीसरे पहर की धूप इतनी कड़ी थी कि पसीने में कुर्ता तर हो गया और साफे के नीचे से पसीना माथे पर लीकें बनाता हुआ नाक और आँखों पर आ गया। इस खेत को निबटाते-निबटाते सूर्यास्त होने को हुआ। तीसरे खेत पर न पहुँच पाया जो वहाँ से काफी दूर था। दूसरे दिन, टहल तो सहकारी कृषि के खेतों की देख-भाल करता हुआ थोड़ी देर के लिए ट्रैक्टर के पास गया, फिर अपने स्कूल; पर बटोले और दमरू अपनी-अपनी निजी खेती पर रहे। उधर सुहाना में सनेहीलाल सहकारी समिति का जितना काम करा देता, उतना तो हो जाता; बाकी की वही गति। छदामी अपनी निजी खेती की धुन में; बनमाली में हाँका-हूँकी तो बहुत, पर काम नहीं के बराबर था। ध्यान अपनी खेती पर अधिक केंद्रित। देशराज को सहकारी कृषि की देखभाल से कोई वास्ता न था और चाह अवश्य निजी खेती पर अधिक थी, जिसको उसका कारिंदा किराए के मजदूरों से पूरी किया करता था।

लखनऊ जाने के समय वह कारिंदे से कह गया था—निराई का काम डँटकर करवाना मजदूरों से; बहुत बदमाश हो गए हैं ये सबके सब।

कारिंदे को इस हिदायत की जरूरत नहीं थी, वह कारिंदागिरी का मर्मज्ञ था।

एक मजदूर का बुखार तो चला गया था—यानी जाड़ा देकर नहीं आता था, थोड़ी-सी झुरझुरी बराबर रहती थी। तिल्ली के कारण पेट बढ़ गया था। खाँसी भी आती थी, जो तमाखू पीने से कम नहीं होती थी।

इसे कारिंदे ने कई बार सावधान किया—कामचोरी कर रहे हो, पैसे कटेंगे।

एक को काम करते-करते घास में भी ठंड लग आई और वह एक पेड़ की छाया में, फटे साफे की लपेट में गठड़ी-सी बनकर, घड़ी-भर के लिए जा लेटा।

'दूसरों को देखो, पसीना बहा रहे हैं, पानी पीने तक के लिए दम नहीं लेते! और एक ये हैं जो बहाना बनाकर उधर चल दिए!! शाम को मजदूरी बाँटते समय देखूँगा।' कारिंदे

ने चेतावनी दी।

स्त्रियाँ बच्चों को दूध पिलाने के लिए रुकीं तो उनका नाम एक कागज पर टीप लिया।

और जो मजदूर उसकी चिरौरी करते थे, ढीले हाथों कभी खुरपी इधर, कभी उधर और मौज के साथ चने की भाजी भी नोच-नोचकर अपने कपड़े में बाँधते थे, उनकी तरफ कारिंदा पीठ फेरे था।

संध्या समय जब मजूरी बाँटी गई तब कारिंदे ने कइयों की मजदूरी काट ली; खर्च बही में पूरी दर्ज कर दी, बाकी अपनी जेब में। मजदूर भी ऐसी मोटी खाल के कि न तो मन लगाकर काम करें और न दूसरी जगह काम करने जाएँ—शायद दूर-दूर तक काम दुष्प्राप्य भी था और देशराज के यहाँ मजूरी की दर एक-दो आना ज्यादा थी।

□

हरको सहकारी समिति के एक खेत में निराई कर रही थी। बीच-बीच में काम रोक-कर मजूरनी से बातें भी हँस-हँसकर करती जाती थी। खुरपी लेकर घाटीवाली भी थोड़ी देर के लिए आ गई और काम पर चिपट गई।

एक-दो मजदूर मन लगाकर काम कर रहे थे जैसे हरको; परंतु दूसरों को ढीला और असावधान देखकर वह भी उसी तरह काम करने लगी। साथ-साथ बातें भी।

'बातें कर-करके तुम तो अन्न के पौधों को भी गोड़े डालती हो, हरको!' घाटीवाली ने टोका।

'तो जब पौधे बड़े हो जाएँ तब निराई करवाओ।'

'बड़े होने पर क्या निराई होगी?'

'तो फिर होगी तो ऐसे ही होगी।'

'क्या मुफ्त में करती हो? मजदूरी नहीं लेतीं?'

'बड़ी मजदूरी मिलती है! वाह! वाह!! मुझ ही से कहती हो, दूसरों से कुछ नहीं कहतीं!'

घाटीवाली को ताव आ गया। उसी समय टहल आ पहुँचा। यह सब इसी के सिखावन का फल है, घाटीवाली के मन में उठा। उसने टहल से शिकायत की। टहल ने हरको को ठीक तरह काम करने के लिए कहा।

वह बोली, 'मैं कल से काम पर नहीं आऊँगी। जो अच्छा काम करे, उसे भी वही मजूरी और मरियल-सड़ियल करे, उसे भी वही।'

टहल के मुँह से निकला, 'क्या मुश्किल है!' और सोचा, इन सब को मजदूरी तो पूरी दी जाए, पर काम कराने में रियायत न बरती जाए, बल्कि जबरदस्ती भी काम कराया जावे!

मंटू को लिए हुए बटोले निजी खेतीवाले उस टुकड़े की ओर जाते हुए वहाँ से निकला जिस पर पिछले दिन नहीं पहुँच पाया था।

टहल ने बटोले से कहा, 'आज के दिन यहीं काम कर लो।'

बटोले मिठास के साथ बोला, 'भैया, अपना वह खेत घास-फूस के मारे हा-हा खाने लगा होगा। यहाँ तो काम हो ही रहा है। वहाँ का चुका दिया तो सब गुड़ गोबर हो जाएगा।'

'तुम तो समिति के प्रधान हो। दूसरों के लिए नमूना बनो। हमारी माँ तक यहाँ काम कर रही हैं।'

'सोई तो भैया टहल, सोई तो। उनकी और तुम्हारी क्या कहानी। जैसे ही हम उन खेतों से निबटे, फिर बस यहीं आ चिपटेंगे।'

टहल ने मंटू पर आँख पसारी। बटोले से अधिया-बटिया में जो मिलेगा वह समिति की मजदूरी से कहीं ज्यादा बैठेगा, मंटू का विश्वास था।

बोला, 'बटोले दादा ठीक तो कहते हैं, भैया। वहाँ का काम पूरा करके फिर इसी को तो देखना है। और फिर हरको तो है यहाँ। एक ही घर के दो-दो क्या करोगे, भैया?'

वे दोनों चले गए। काम कैसे चलेगा, टहल सोच रहा था। उसको एक देश की याद आई जहाँ निकम्मों को कोड़े लगाकर कार्यारूढ़ किया जाता है; दूसरे देश की—जहाँ सामूहिक काम न करनेवाले आलसियों का बहिष्कार किया जाता है, भोजन दुर्लभ कर दिया जाता है, निंदा की जाती है और मुँह नहीं देखा जाता। और दूसरे देशों में क्या होता है, आगे कल्पना न की जा सकी। यहाँ किस-किस का मुँह न देखें। आलसियों और निकम्मों की तो पल्टनें की पल्टनें बिना किसी कवायद-परेड के ही आँखों में समाई रहती हैं! टहल खीज गया।

□

छदामी के पास खेत तो बहुत थे, पर उतनी खेती नहीं थी जितने खानेवाले। जात-बिरादरी के पंचायती झगड़े सिर पर अलग।

अच्छे-अच्छे खेत एक-दूसरे से अलग, दूर-दूर। घर का कोई व्यक्ति इस खेत पर, तो कोई उस पर। थोड़े-से सहकारी खेतों में मजदूरी पर। जब निगरानी सनेही करता था उसकी दुलार-पुचकार में भी करारी त्यौरियों को देखकर हाथ-पैर चलाने पड़ते थे। परंतु जब बनमाली की पाली आती थी, तब जरा मौज पट जाती थी, क्योंकि वह प्रायः छाया में बैठकर अखबार, कहानियाँ, कविताएँ पढ़ने में ज्यादा लग जाता था।

उस दिन छदामी की घरवाली—बुढ़िया और उसकी दस-बारह साल की लड़की सहकारी खेती पर काम करने के लिए आई थीं।

बुढ़िया अपने निकट काम करनेवाली स्त्री से बोली, 'कलेवा में एक रोटी मैं ला आई

और आधी यह छोकरी। हाथ चलें तो कैसे चलें?'

'तुम्हें रोटी तो मिल गई। मैं तो महुए ही भून-खाकर आई हूँ। उस पर भी कमर में दर्द।'

दोनों बैठकर गाँव की किसी खटपट पर बात करने लगीं। बनमाली का ध्यान उचटा।

वहीं से बैठा-बैठा बोला, 'बाई, काम किए जाओ। बातें तो बहुत कर लीं।'

बुढ़िया ने गला फाड़ा, 'हो कैसे! जैसा सब कर रहे हैं, वैसा ही तो कर रही हैं, हम।'

'बाई, अपना पंचायती काम है यह।'

'तो पंचायती काम में से क्या हाथी-घोड़े उपजेंगे?'

□

विक्रम ने कुछ बिना झगड़े का, और अधिक रकबा विवादग्रस्त, लगाया था। घरवाली खेती की देख-भाल कर लेती थी। वह स्वयं सरकारी जंगल में अपने ढोर, आँख बचाकर, ले जाता था। पैरों का मजबूत था। कभी इधर, कभी उधर निकल जाता था और ढोरों को पेट भर चराकर लौटता था। उसे सहकारी कृषि की परवाह नहीं थी। जानता था, अंत में कुछ तो मिल ही जाएगा।

□

काम से जब लौटकर टहल स्कूल गया तो खेतों पर से कोई उमंग बाँधकर न ला सका—थका-सा आया। बटोले जब आया तो मुँह उतरा हुआ, मंटू का मुरझाया हुआ।

बनमाली अखबार पढ़ते-पढ़ते राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा में डूबता-उतराता, छदामी पैर घसीटता हुआ, दमरू के गालों की झुर्रियाँ कुछ और गहरी, विक्रम जब लौटा तो पैरों पर धूल, पर चेहरे पर मौज। मजदूर कुड़कुड़ाते आए।

सनेही सोचता था, परिवर्तन का युग है; जैसे अस्पताल में मरीज, धीरे-धीरे जब चंगे हो जाने पर अस्पताल छोड़ेंगे, तब कुछ और दिखाई पड़ेंगे—अभी तो रोगग्रस्त हैं, पर आ गए हैं अस्पताल में।

: २५ :

खेतों पर काम नहीं रहा तो उस दिन हरको गाय के लिए हरी घास लाने थोड़ी दूर नाले के किनारे गई। मंटू की गाय दूध देती तो एक जून पाव-भर ही थी, लेकिन थी तो गाय। एक बार में कितनी गाएँ पाव-पाव-भर दूध देती थीं? जिस दिन उस गाय को हरी दूबा मिल जाती थी उस दिन पाव-भर में कसर नहीं लगाती थी, वैसे आधपाव, हद तीन छटाँक। और बुड्ढी नहीं थी। दूध न तो मंटू पीता था और न उसके दो छोटे-छोटे बच्चे। उसकी पत्नी और बहिन को मिल ही कहाँ से सकता था? पाँचवें-छठवें दिन

मट्ठा भाँया-बिलोया जाता था, तब एक दिन ज्वार की महेरी और दूसरे दिन मट्ठे में पीसकर रोटी खाने को मिल जाती थी—वे दो दिन बड़े शुभ रहते थे।

हरको दूबा का गट्ठा सिर पर रखे भूख की गरमी को महेरी द्वारा शांत करने की लालसा में तेजी के साथ बाँगुर्दन की ओर बढ़ी चली आ रही थी। आगे-आगे ढोर चले जा रहे थे। धूल बहुत उठ रही थी। ढोरों में से निकल जाना बहुत कठिन, क्योंकि हरी दूबा पर मुँह मारने के लिए न जाने कितने चिपट पड़ते। हरको ने एक हाथ से घास का गट्ठा सँभाला और दूसरा नाक पर रख लिया।

पीछे से किसी ने झटका देकर घास का गट्ठा पटक दिया। हरको समझी, किसी गाय या बैल का काम है। कमर के फेंटे में खोंसी हुई खुरपी निकालकर मारने के लिए मुड़ी थी कि उसका पति जोधा अपने एक नातेदार को लिए ऊपर झपटता हुआ दिखाई पड़ा। खुरपी हाथ से छूट गई और वह सन्न से रह गई। वे दोनों लाठियाँ लिए हुए थे। जोधा दुबला-पतला पीला युवक था। हरको उसके मुकाबले बहुत तगड़ी थी, परंतु एक तो जोधा पति, दूसरे उसके साथ एक लठैत। जोधा ने उसका हाथ पकड़ा और घसीटकर वहाँ से ले जाना चाहा। हरको बैठ गई। रोने-चिल्लाने लगी। जोधा ने दो-चार हाथ जमाए। गाँव से कुछ लोग आ गए। उनको मालूम हो गया कि जोधा हरको का पति है, अपने घर लिवा ले जाना चाहता है।

एक ने सलाह दी, 'अपनी ससुराल चले जाओ। गली में ऐसा कांड रचना अच्छा नहीं मालूम होता।'

जोधा ने अपना अधिकार प्रकट किया, 'घर से भाग-भाग आती है चुड़ैल। ससुराल नहीं जाऊँगा, यहीं से झोंटा पकड़े घसीट ले जाऊँगा।'

'ले तो जाओगे!' हरको रोते-रोते चिल्लाई।

गाँववालों ने समझाया कि हरको के भाई मंटू से बात कर लो, वह बिदा कर देगा, उस तरह की मार-पीट गाँववालों की नहीं भाएगी।

जोधा चीखा, 'मेरी ब्याहता है, गाँववालों की नहीं है।' और हरको पर उसने फिर सपाटे लगाए।

'डायन! उठ नहीं तो अब लाठी से हड्डी तोड़ूँगा।'

कुछ गाँववाले वहीं खड़े-खड़े जबानी बीच-बचाव करते रहे, एक गाँव की ओर दौड़ा गया। हरको को पति और उसका साथी उठाकर नहीं ले जा सकते थे। मारपीट तो बंद कर दी, परंतु उसे घसीटने लगे। हरको भूमि को ऐसे पकड़ने का प्रयास कर रही थी जैसे वहाँ खूँटियाँ गड़ी हों।

थोड़ी देर में टहल को लिए हुए मंटू आ गया। मंटू अपने बहिनोई और उस नातेदार पर क्रोध में बावला था। टहल की दृष्टि में उचित नहीं थे, वह पुरुषों के एक सारे बन

विशेष पर क्षुब्ध था। इन लोगों के आते ही हरको की घसीट तो बंद हो गई, पर मंटू और उसके उन नातेदारों के बीच गालियों की आँधी-सी आ गई। माँ, बहिन, पिता, पितामह से लेकर आगे की कई पीढ़ियों तक को गालियों की उस आँधी में समेटा गया। टहल का क्षोभ लाजों डूबने लगा। कभी इसको और कभी उनको चिल्ला-चिल्लाकर मना करने लगा। गाँव के बहुत से लोग आ गए। उनमें बटोले भी था। उसकी देह, आँखें और लाठी की लंबाई-मुटाई को देखकर उनका साथ उसकी स्वरावलि भी दे रही थी—उस भीड़ में वे बाहरवाले दोनों धीमे और ढीले पड़ गए।

हरको घास के गट्ठे समेत न जाने कब की खिसक गई थी।

अंत में वे सब टहल के घर गए। टहल ने हरको को छोड़-छुट्टी की बात उठाई, पर जम न सकी। बहुमत ने तय किया कि हरको एक बार और ससुराल जावे; यदि उसके साथ फिर बुरा बरताव किया तो देखा जाएगा। 'जात के पंच मर तो गए नहीं हैं।'

हरको की बिदा कर दी गई। मंटू मुँहफट था और पैसे-कपड़े से उतना ही तंग। एक धोती पहने हरको रोती-बिलखती घर से निकली। वह लौट-लौटकर टहलराम के घर की ओर देख रही थी। घाटीवाली द्वार पर खड़ी थी। देखकर चुपचाप हिलक उठी। उसने अंचल के छोर से अपनी आँखें पोंछी। मन में कहा, 'भगवान् लड़की दें तो गरीबी न दें।' फिर उसने एक निश्चय किया, 'इससे कभी कड़ी बात नहीं कहूँगी। बुरे बरताव के कारण अब के भागकर आई तो इसकी पीठ पर हाथ धरूँगी।' मंटू घर के भीतर अपनी कड़ी उँगलियों से आँसू हटा रहा था। कभी एक गीत सुना था। इसकी एक कड़ी कान में झाँईं मार गई—'तिरिया जनम जिन देय विधाता—'।

हरको अपने पति और नातेदार के साथ चली गई। जब दूर निकल गई, रोना तो बंद हो गया; पर उसके मन में बिरादरी की पंचायत के लिए जो गालियों पर गालियाँ उमड़ीं उनका सार यह था—

'सत्यानास जाय इन पंचों का! राँड़ें हो जाएँ इनकी औरतें!!'

ये गालियाँ उन पंचों तक पहुँचतीं भी तो वे करते क्या? ससुराल पहुँचने के दो-चार दिन पीछे ही उसकी वही मारा-कुट्टी फिर हो उठी।

: २६ :

सुहाना सहकारी समिति में आठ सदस्य हो गए। आधे से कुछ ही कम ऐसे भूमिहीन मजदूर थे। हिस्सा बिना खरीदे समिति का सदस्य कोई भी नहीं हो सकता था। हिस्से के रुपए की पहली किश्त थी छोटी-सी ही, पर मजदूर मेंबर वह रकम भी नहीं दे सकते थे। रोज खोदना, रोज पीना, हिस्से की किस्त का रुपया कहाँ से लावें? मजदूरी में से कट-कटकर उनकी किस्त का रुपया समिति में जमा होने लगा। उन्हें बहुत अखरा।

परंतु राघवन की उमंग और दृढ़ता के सामने मजदूरों के क्षोभ को दब जाना पड़ा। समिति को अपने सदस्यों की किस्त के रुपए से जिला बैंक के हिस्से खरीदने थे; अनिवार्य था। बैंक लेता खरीदे हुए हिस्से की पहली छोटी ही किस्त, पर बिना इस वसूली के समिति को ऋण पर रुपया नहीं दे सकता था। लेकिन देता था हिस्से की रकम का अठगुना तक। जो रुपया बैंक से समिति के लिए आया, उसमें से कुछ सदस्यों को बीज और बैल खरीदने के लिए दिया गया, कुछ ब्याह-शादी के लिए भी, क्योंकि यह काम बीज-बैल से भी अधिक महत्त्व का था! कुछ रुपया सहकारी समिति के एक छोटे-से भवन-निर्माण के लिए राघवन ने रखवा दिया। राघवन का उत्साह उसके शारीरिक बल और मानसिक वर्चस्व से ही सीमित था, और किसी से नहीं। उसने अपने जीवन का ध्येय, थोड़े-से-थोड़े समय के भीतर, अपने कार्य-क्षेत्र में, अधिक-से-अधिक सहकारी कामों की स्थापना का बना लिया था। उसकी लगन को कोई सनक, कोई खब्त और कोई पागलपन तक कहते थे। अपने नीचे के कर्मचारियों के लिए तो वह कभी-कभी यमतुल्य हो जाता था और वे ही अधिकतर उसकी इस कीर्ति के कारण थे!

सहकारी समिति का भवन बनने लगा। बन जाने पर इसमें समिति की बैठकें होंगी, एक कोने में छोटा-सा वाचनालय होगा जिसमें कुछ पुस्तकें और समाचार-पत्र, और सप्ताह में एक साँझ तुलसीदास रामायण का गा-बजाकर पारायण, बाहर से सुंदर दिखाई पड़नेवाला भवन और भीतर से सुनाई पड़नेवाला सदस्यों का कलरव। क्या बढ़िया प्रतीक रहेगा सरकारी कर्मठता का! राघवन कल्पना करता था।

उसका ध्यान सहकारी कृषि और सहकारी कुटीर-उद्योगों पर केंद्रित था। चाहता था, गाँव-गाँव इस कार्य को फैला दूँ; परंतु अवस्था अभी परीक्षण की थी। अन्य गाँवों में सहकारी ऋण समितियाँ तो थीं, लेकिन वे कृषि समितियाँ नहीं थीं। वह इन सबको कृषि समिति में परिवर्तित करने का महत्त्वाकांक्षी था। किंतु जिला बैंक की समिति पूँजी और सरकार की सावधानता पर आधारित नीति उसकी बेदम दौड़ को रोक-थाम रही थी। उसे अपने मन में यही शिकायत थी।

बीज बोने के डेढ़-दो महीने पीछे खेतों की मिट्टी हरियाली से ढँक गई। जिन खेतों की निराई-गुड़ाई हुई थी, उनमें अधिक चमक-दमक थी। जिन खेतों पर बँधियाँ पड़ी थीं उनमें निराई न होने के कारण फसलों के साथ घास-फूस भी बढ़ गया था, फिर भी फसलें ऊँची थीं और घमंड के साथ लहरा उठी थीं।

बोहनी और निकाई-निराई से निबटे तो अब फसल की रखवाली का काम आ खड़ा हुआ। दिन-भर निठल्ला बैठता कोई न था। कोई बिरवाई के लिए झाड़-झंकाड़ काट-काटकर इकट्ठा कर रहा था, कोई पलाश की जड़ें खोदकर कूटता और रस्सी

भाँजता, कोई मजदूरी करता तो कोई पुराने ताप-तिल्ली में काँखते-काँखते समय काटता। फिर रात में खेतों की रखवाली। जिनके पास ओढ़ने-बिछाने के लिए कपड़े थे, वे भी नींद न आने देने के लिए एक मोटी चादर ही ले जाते थे। ठंड से बचने के लिए अलाव की आग, अलाव के पास चिलम और धोती के छोर में तंबाखू, जागरण में सहायता देने के लिए। इस पर भी जंगली जानवर, जिनसे पड़ोस के जंगल-पहाड़ भरे मालूम पड़ते थे।

फसल चर जावें तो भाग्य और भगवान् के सिवाय दोष देवें तो किसको दें?

बनमाली को सेवा का काम दिखाना था। समिति के कुछ खेतों के बीच एक मड़वा डाला, जिसके ऊपरी भाग में चारपाई बँधवा ली। लालटेन लेकर आया, मड़वे के एक खूँटी से चारपाई के ऊपर बाँधी और लंबी तानकर शृंगार रस का कोई उपन्यास पढ़ने लगा। जितना अश्लील हो, उतना ही मनोरंजक। भीतर की वासनाओं को तृप्त करने की सामग्री उसमें हुई तो जागते रहे और बीच-बीच में बीड़ी पीते हुए 'हा-हू' कर दी। पढ़ने में मन न लगा तो नींद तो कहीं गई नहीं। सो गए। दूर के खेतवाले तो हल्ला-गुल्ला करते ही थे, यहाँ तक जंगली जानवर आएँगे कैसे?

जब वह लालटेन के उजयाले में पढ़ रहा था, दूर के खेत का एक रखवाला वहाँ होकर निकला—

'लेटे-लेटे तो सो जाओगे भैया!' उसने रामराम करके कहा।

'पढ़ता रहता हूँ, सो कैसे जाऊँगा? और सो भी गया तो लालटेन की रोशनी को देखकर जानवर दूर से ही भाग जाएँगे।' बनमाली ने लालटेन के उपयोग का लाभ बताया।

सरकारी फार्म पर रखवाली के लिए दो बंदूकवाले रात में रहते थे। छपरी और अलाव की आग ठंड से बचने के लिए थी ही, ठाव पर आते ही बंदूकों के दो फायर किए; फिर क्या मजाल कि जानवर फसल को झाँक भी जाएँ। कुछ दिन तो इस उपचार ने काम किया, परंतु इन रखवालों की अपेक्षा जंगली जानवर ज्यादा चालाक निकले। उन्होंने इसको रोज का एक बँधा हुआ तमाशा समझा और कभी इधर से, कभी उधर से फसल चौपट करना आरंभ कर दिया। बनमाली की लालटेन भी कुछ न कर सकी। दिन में रखवाली न तो कोई कर सकता था और न उसकी जरूरत समझी जाती थी। इसलिए दूर के खेतों में, विशेषकर समिति के इखरों-बिखरों में और सरकारी फार्म में, गाँव के ढोर घुस पड़ते और एक-न-एक कोने को साफ कर देते! सरकारी फार्म के रखवालों से जवाब माँगा गया तो उन्होंने गाँव के ढोरों का एक पूरा बगर पकड़कर अफसर के सामने पेश कर दिया।

'ये चरते हैं फसल दिन-दहाड़े। रात में हमारी रखवाली के कारण जंगली जानवर

नहीं आ पाते और न नुकसान कर पाते हैं।' रखवालों ने सफाई दी।

ढोरवालों ने प्रतिवाद किया, थराई-विनती की। सरकारी फसल को हानि पहुँची थी और उसकी कुछ जिम्मेदारी गाँव के थोड़े से ढोरों की थी भी। उनकी एक न चली। कानीहौद (काईन हाउस—पशु बंदीगृह) में बंद कर दिए गए और ढोरवालों को ढेर-भर रुपए जुर्माने में देने पड़े।

परंतु समिति के रखवालों से कोई जवाब नहीं माँगा जा सका। उन्होंने पेशबंदी कर ली थी—

गाँव के ढोर नहीं जाते वहाँ चरने। जंगली जानवर फसल चर जाते हैं। रात-भर जागते-जागते आँखें फोड़ते हैं, इस पर भी सुअर, चीतल, साँभर, नीलगाय और न जाने कौन-कौन जानवर बेधड़क चुपचाप आकर चर जाते हैं! बंदूक पास हो तो हम उन्हें मार गिरावें।

गाँवों में बंदूकों के लाइसैंस बहुत थोड़े थे। जो थे, वे अधिकांश देशराज के। देशराज की खेती की रखवाली उसके महींदार करते थे। चूकें तो वेतन कटे और ऊपर से चमड़ी की खैरियत नहीं। वहाँ बंदूकें भी रहती थीं। फसल को जंगली या गाँवटी जानवर तो नहीं चर पाते थे, पर इतने नौकरों का वेतन फसल पर चढ़ता था कि पैदावार पर कसर बैठ जाती थी।

सरकारी जंगल का हाँका किया नहीं जा सकता था क्योंकि वह 'रक्षित वन' था। गाँव के सब लोग सुअर को छोड़कर बाकी सब जानवरों के शिकार के विरुद्ध थे, इसलिए भी साधारण जन के मन में हाँके के लिए उत्साह न था। और अपनी अरुचि की पुष्टि यह सोचकर कर लेते थे—कभी इसके और कभी उसके ढोर ही खेती चरते रहते हैं, जंगली जानवर तो इस ओर आते ही नहीं!

□

बटोले दिन-भर अपने करघे पर लगा रहा। चौखाने की तौलिया और बचकानी धोतियाँ तैयार करनी थीं। कई दिन से उसकी घरवाली और वह तन्मयता के साथ यही काम कर रहे थे। एक अठवारे के बाद ही सुहाना में एक बड़ा-सा मेला लगना था। तौलिया और धोतियाँ बिक जाएँगी तो कुछ पैसे पल्ले पड़ जाएँगे, जिनसे काम चलेगा। समिति के खेतों की रखवाली वह कभी-कभी ही करता था; पर अपनी निजी खेती के लिए तो उसके सिवाय और कोई था नहीं। मजदूर महँगे पड़ते। फिर उनका भरोसा ही कितना? इसलिए वह अपने खेतों पर, भले ही देर में पहुँच पाए, पर जाता अवश्य था। जब कभी रात में दूर-दूर बिखरे हुए खेतों का गश्त भी करना पड़ता था। काफी कष्ट होता था, पर वह थी अपनी खेती, उसके लिए सभी प्रकार का दुःख झेलना पड़ेगा।

उसका एक खेत विक्रम के एक खेत से लगा हुआ था। विक्रम तत्पर पशुपालक

था—वह रात में कभी-कभी पसर भी चराता था—यानी निकटवर्ती सरकारी जंगल में चराते-चराते सुहाना और बाँगुर्दन के लोगों के खेत भी चरा लेता था! मुस्तैद इतना कि जिस रात पसर चराता था, इतनी होशियारी बरतता था कि रखवाले सिर खुजाते रह-रह जाते थे। और उसके जानवर भी कितने चालाक! जैसे उन्होंने कहीं शिक्षा पाई हो!! जैसे ही कोई रखवाला उन्हें पहचानने-ताड़ने या घेरने-पकड़ने को दौड़ा कि वे नौ दो ग्यारह हो गए!!! और विक्रम तो कहीं ऐसा छिपकर बैठ जाता था कि दिखाई ही नहीं पड़ सकता था। उसका पौ बारह! मवेशी तगड़े और स्वयं आनंदमग्न। विक्रम चुपचाप अपने ढोर लेकर आया। बटोले के खेत में आहट ली। किसी को भी न पाकर खेत में ढोर छोड़कर पसर चराने लगा। अपने खेत पर मड़वा था ही, वहाँ जा बैठा।

ठंडी हवा चल रही थी। अँधेरी रात। झींगुरों की झंकारों में होकर दूर बजनेवाली नगड़िया और फाग का गीत आ रहा था। अन्न के लहराते हुए पौधे जैसे पशुओं के मुँह से बचना चाहते हों, परंतु वे चरमराकर उनके पेट में चले जा रहे थे और बहुत-से रौंदे जा रहे थे। विक्रम को झपकी आ गई और वह सो गया। ढोर बटोले की खेती चरते हुए उसी के खेत में धँस आए और मौज में चरने लगे। उसी समय गश्त लगाता हुआ बटोले आ पहुँचा। अपने खेत के एक भाग की दुर्गति देखी। गुस्से के मारे काँप गया। पास ही विक्रम के खेत में ढोर वही सब किए जा रहे थे जो उन्होंने बटोले के खेत में किया था। अपने खेत की दुर्गति देखकर क्रुद्ध हो गया था, अब जी कुछ हलका हुआ। समझने में देर नहीं लगी कि जिन ढोरों ने उसके खेत को चौपट किया है वे ही विक्रम के खेत में क़हर बरसा रहे हैं, और बहुत करके उसी के होंगे। देखा तो मड़वे पर विक्रम कंबल ओढ़े सो रहा है। निश्चय ही इसी के जानवर हैं। मेरे खेत में पसर चराने के लिए ढोर ले आया और चराता रहा! अब सो गया तो उलटी आँतें गले पड़ गईं।

बटोले चिल्लाया, 'बिकरमा, ओरे बिकरमा!'

विक्रम हड़बड़ाकर उठ बैठा। लाठी टटोली। बगल में ही थी, सँभाली और मड़वे से नीचे उतर पड़ा।

'कौन?'

'मेरा खेत चरवा लिया, अब सो रहा है!'

'कौन कहता है?'

'तुम्हारे ढोर, जो अब तुम्हारे खेत को मैदान कर रहे हैं।

'तुम्हारे होंगे। तुम पसर चरा रहे होगे मेरे खेत में। देख लिया कि मैं यहाँ पड़ा हूँ तो यह बदमाशी रच डाली! देखूँ, कहाँ हैं वे ढोर?'

विक्रम खिसका। बटोले उसके पीछे पड़ा। विक्रम के ढोर अपने मालिक के इशारे को पहचानते थे। विक्रम ने एक विशेष ललकार दी। ढोरों ने सिर उठाकर फूँसा, कान

खड़े किए और भर्राटा करते हुए भाग गए।

बटोले विक्रम की इस क्रिया को जानता था। 'साले, आज तुझे तेरे पुरखों की याद दिलाता हूँ। तेरी हड्डियों का चूरा न कर दिया तो मेरा नाम बटोले नहीं।'

'एक तो मेरा खेत अपने ढोरों से चरवा लिया! ऊपर से गाली देता है!! नीच कहीं का!!!' विक्रम ने भी गालियों का कोष खाली किया।

फिर लाठी तनी और चली। बीच-बीच में जोर के साथ गाली-गलौज।

विक्रम पर बहुत मार पड़ी। जगह-जगह से रक्त बहने लगा। बटोले को भी चोटें आईं, परंतु विक्रम को तो इतनी लगीं कि अचेत होकर गिर पड़ा।

गाली-गलौज और मार-पीट का शोर झींगुरों की झंकार और फाग के गायन-वादन के ऊपर चढ़ गया और दूर-दूर तक सुनाई पड़ा। 'क्या है? क्या है?' कहते हुए लोग इकट्ठे होकर घटना-स्थल पर आ गए। विक्रम अचेत था। बटोले बेहोशी का दंद-फंद बना रहा था।

आगंतुकों की समझ में थोड़ी देर तक वास्तविक बात नहीं आई। फिर बटोले से नहीं रहा गया। अचेतता का ढोंग करते हुए उसने बताया—'मेरे खेत में पसर चरा रहा था। मैंने रोका तो लड़ बैठा। मैंने इसके ढोर हाँके। इसने लाठी चलाई तो मैंने भी अपने बचाव के लिए उठा ली। फिर चल पड़ी। मैं अपने को न बचाता तो यह आज मुझे मार डालता। वैसे ही इसने कोई कसर नहीं लगाई।'

'और अगर यह मर गया तो?' एक ने कहा।

'मर जाय तो गाँव की एक बला टले।'

'और तुम्हारा क्या होगा?'

'तो क्या मैं अपना खेत मिटवा दूँ? क्या मैं मर जाऊँ?'

थोड़ी-सी बातचीत के बाद कुछ लोगों ने विक्रम के मड़वे पर से चारपाई खोली और उस पर उसे लिटाकर ले गए। कुछ बटोले को उसके घर पहुँचा आए। खटिया पर ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

: २७ :

उसी रात हरको की ससुराल में जो कुछ हुआ, वह इससे कम न था—केवल किसी को कहीं खटिया पर ले जाने की जरूरत नहीं पड़ी।

मवेशियों के लिए हरको घास का गट्ठर लादकर साँझ बीते ले आई और आँगन में पटक दिया।

'ऐसी डायन है कि ढंग से तो काम करना जानती ही नहीं।' उसकी जिठानी ने कहा।

हरको ने घूँघट में से आग बरसाती आँखों जिठानी को देखा, नथुने फुलाए, पर बोली

कुछ नहीं। हाथ-पैर धोने लगी, मानो कुछ खाने-पीने के लिए उतावली हो।

जिठानी ने चेताया, 'घर में है क्या अभी जो हाथ-मुँह पखारकर चौके में घुस पड़ने के लिए तैयार हो रही है।'

'तुमने खा-पीकर साँवटा कर दिया होगा!'

'है कैसी? पीसा किसने है जो मैं बना खाती?'

'क्यों नहीं पीसा? कौन-सी हकूमत करती रहीं दिन-भर?'

'दारी, झोंटा पकड़कर कंस-कड़ोरन करूँगी बहुत मुँह चलाया तो। पीस जल्दी से अनाज। वे सब आ रहे होंगे। न पीसेगी तो खाएँगे क्या? तुझे चबाएँगे?'

इतने में हरको की चाची सास आ गई। जिठानी ने घूँघट जरा लंबा किया। फफक-फफककर रो पड़ी। सास को विश्वास हो गया, बिचारी को बहुत सताया है।

जिठानी ने गले को खूब कँपाकर कहा, 'जब चाहे तब गालियाँ देती है, मुंस-पूत को कोसने में नहीं लजाती। पीसने के लिए कहा तो गालियाँ दीं और मुझे थप्पड़ मार दिए।'

'क्यों झूठ बोलती हो? मैंने तो कुछ नहीं कहा। उलटे गालियाँ दे उठीं।'

'मैंने इनसे कहा कि बाई थोड़ा पीस लो, मैं हारी-थकी आई हूँ तो सब लोगों को कोसने लगीं और मुझे हुकुम दिया कि तुम्हीं पीसो। फिर मेरे भाइयों और बाप को गालियाँ दीं।'

सास गरम हो गई–

'हाड़ जल जावें इसके भाई मंटुआ के जिसने इसको सिर पर चढ़ाया है, और भवानी माता उठा ले जावें उस गाँव-भर को जहाँ से रोम-रोम में मस्ती भर लाई है! पीस दो पंसेरी अनाज, नहीं तो अभी टपकवाती हूँ तेरी खाल।'

हरको एक कोने में जा बैठी और रोती-रोती बोली, 'मेरे हाथ नहीं चलते, बहुत थकी-माँदी आई हूँ।'

'खाने को खाती है एक भैंस के बराबर और काम के नाम पर एक तिनका भी इधर का उधर नहीं टालती।' सास तड़की।

हरको भी भभकी–

'तो मार क्यों नहीं डालतीं? मेरी विपदा टले और तुम सबका बोझ उतर जाय।'

जिठानी ने सास को उकसाया, 'ओ भगवान्! हम सब इसके लिए आफत और बोझ हो उठे हैं। हमीं खिला-खिलाकर मोटा करें और हमीं इसके लिए पहाड़ का बोझ! बूढ़ी सास के लिए जबान निकाली तो छाती पर चढ़कर जीभ खींच लूँगी।'

'मार डाल! मार डाल!! हत्यारी!!!' हरको से न रहा गया।

जिठानी उस पर चढ़ बैठी। चित करके उसकी छाती पर ही सवार न हो सकी, पर उसने घूँसे-थप्पड़ लगाए और बाल भी खींचे। हरको ने भी आत्मरक्षा में अपनी

उँगलियों को कठोर किया और जिठानी को कई जगह नोच डाला। खून निकल आया। जिठानी अलग हो गई, हरको की मांसपेशियाँ जिठानी के लिए भारी पड़ गईं।

'अरे रे रे! मुझे तो कतर डाला डायन ने!! खून के पनाले बह उठे हैं!!! अंग-अंग छलनी कर डाले हैं!!!!' और वह चिल्लाते-चिल्लाते गिर पड़ी, पर गिरी सधकर।

अब आ गए घर के पुरुष। सास-जिठानी ने पूरा अपराध हरको के सिर पर थोपा। जिठानी के कुछ अंगों का खून दिखाया गया—था थोड़ा-थोड़ा-सा ही, पर था तो खून!

हरको रो रही थी। प्रश्नों और भर्त्सना का उत्तर केवल उसकी बिलख।

फिर पति और देवर ने मिलकर उसे बेभाव पीटा। लाठी कुछ पतली थी जिससे वह पीटी गई थी। यदि अधिक मोटी होती तो उसके हाथ-पाँव टूटे बिना न रहते। केवल सिर बचाया गया, बाकी अंगों को लाठी का शिकार होना पड़ा। वह कमर तक नंगी हो गई थी। अचेत होकर वैसी ही आँगन की कठोर भूमि पर पड़ गई।

'ढोंग करती है, ढोंग?' पति ने हाँफते-हाँफते कहा।

'लगा दो-चार लातें और! कितनी बेशरम है जो अपने मस्ताए हुए अंग भी नहीं ढाँक्ती।' सास ने कहा।

पड़ोसी सोचते थे, यह तो नित्य का किस्सा है; पर जब असाधारण ध्वनियाँ कान में पड़ीं, तब आ गए।

समझा-बुझाकर और यह समझकर कि बखेड़ा ठंडा हो गया है, चले गए; क्योंकि दिन-भर के थके-माँदे थे।

हरको की सास और जिठानी को पिसान पीसना पड़ा।

घर की पंचायत ने तय किया, 'आज इसके मुँह में रोटी का एक कौर भी न पड़ने पावे, तब अकल ठिकाने लगेगी। देखें कब तक इस तरह साँड़िनी की तरह पड़ी रहती है।'

इस निर्णय के समय हरको चेत में आ गई थी, पर उसे इतनी सुध न थी कि उसके कौन से अंग उघड़े हुए हैं और कौन से ढँके हुए। नस-नस दूख रही थी। घिसटते हुए हाथों उसने धोती समेटी और अंग ढँक लिये। वहीं पड़ी हुई करवट बदलती रही। घर के स्त्री-पुरुषों और बालकों ने खाना खाया और उपेक्षा के साथ जा लेटे। सास ने चौके में रोटियाँ ढँककर रख दीं; 'मनाओ मत, अपने आप उठकर खा-पी लेगी।' थोड़ी देर में सब सो गए।

रात जब तीसरे पहर में जाने को हुई, हरको उठी और उसने आहट ली। झींगुरों की झंकार और घर के चूहों की दौड़-धूप के सिवाय और कुछ नहीं सुनाई पड़ा। हरको चुपचाप घर के बाहर हो गई।

अंग-अंग में चोटों की कसक थी, परंतु चोटें उसकी दृढ़ता को परास्त नहीं कर पा रही थीं। वह सावधानी के साथ बाँगुदन की दिशा में पैर बढ़ाए चली जा रही थी। तारे

झिलमिला रहे थे। एक तारा आधे आकाश से पश्चिम की ओर जाकर मार्ग के अंधकार को चिनौती-सी दे रहा था। हवा की साँय-साँय पत्तों की खड़खड़ाहट को गंभीर कर रही थी। पेड़ों के नीचे से जब हरको निकलती तब चिड़ियाँ चौंककर एक पेड़ से फड़फड़ाकर दूसरे पर जा बैठतीं। वह उस फड़फड़ाहट में किसी भय का अनुमान करके घबरा जाती, चोटों में होकर बिजली-सी कौंध जाती, हाथ-पैर ढीले पड़ जाते, पीछे मुड़कर देखती और निश्शंक होकर फिर चल-पड़ती। जब कई बार ऐसा हुआ तब अभ्यास के कारण भय का भूत भी कम डरावना होता चला गया। उस तारे का प्रकाश अखर रहा था, किसी वैरी का जासूस-सा लग रहा था; चाहती थी कि बादल होते तो अंधकार बहुत गहरा होता।

तीसरा पहर समाप्त हुआ और चौथा अंतिम घड़ियों पर आ गया। पूर्व की ओर क्षितिज पर सीधी सफेद रेखाओं का एक पुंज खिचा। भोर होने को है; हे भगवान्, अभी कुछ देर और न हो! हरको ने डगें बढ़ाईं। प्रातःकाल की ठंड नहीं आँस रही थी और न अब चोटों की उतनी कसक। हरको पाँच-छः कोस निकल आई थी। दो कोस और कि फिर बाँगुर्दन, अपना घर। हरको में और अधिक स्फूर्ति आई।

सवेरा होने पर ससुराल में पहले जिठानी ने उसकी खोज में इधर-उधर आँख पसारी। सोचा, दिशा-मैदान के लिए बाहर गई होगी। सूर्योदय हुआ। दिन चढ़ आया, पर हरको का कोई पता नहीं। ससुरालवालों को डर लगा, कहीं कुएँ में न जा समाई हो। कुएँ ढूँढ़े गए; जब वहाँ से अभय होकर लौटे तो वे अनिवार्य निष्कर्ष पर पहुँचे—मायके भाग गई है। ओफ! कितनी पाजी है!! और बेहया भी। अंग उघाड़े सबके सामने पड़ी रही, जब हम सब सो गए तो निकल भागी!

उन लोगों ने तय किया—पड़ी रहने दो मायके में कुछ दिनों। जाएगी कहाँ? आवेगी तो अंत में इसी घर। फिर भी संदेह मिटाने के लिए एक आदमी को बाँगुर्दन भेजा—चुपचाप देख आवे कि पहुँच गई है या किसी खाई-खड्डे में खो गई।

: २८ :

सूर्योदय के दो-तीन घड़ी पीछे डॉक्टर सनेहीलाल के घर जमघट लग गया। कुछ तो मरीज और कुछ तमाशा देखनेवाले। चारपाई पर लेटा हुआ विक्रम आया। साथ में देशराज के दल के लोग। विक्रम कराह रहा था। था चेत में। कूलते-काँखते कुछ तो विक्रम ने, बाकी पक्षवालों ने रात की मारपीट का हाल सुनाया—बटोले ने उसका खेत अपने पशुओं से चरवा लिया और हड्डियाँ तोड़ दीं। सीधे-सादे वस्त्र और कलाहियों में केवल काँच की चूड़ियाँ पहने राजदुलारी भीतर से आई, जैसा प्रभात काल का नक्षत्र। तमाशा देखनेवालों ने गाँव की और गाँव बाहर की राजनीतिक चर्चा शुरू कर दी।

डॉक्टर सनेही घायल के घाव देखता जाता था और उन लोगों से हाँ-हूँ करता जाता था। वह मरहम-पट्टी करने लगा, पर घाव देख लेने के बाद भी उनकी गलेबाजी बंद न हुई।

राजदुलारी ने प्रतिकार किया, 'उनको अपना काम करने दो, शोर मत करो।' और स्वयं सनेही की सहायता करने लगी।

सनेही मुसकराया—

'मुझे केवल दिखाई पड़ रहा है, सुन कुछ भी नहीं रहा हूँ।'

वे लोग बाहर चले गए और बैठकर बातें करने लगे। जब मरहम-पट्टी कर चुका, सनेही ने विक्रम से कहा, 'पाँच-छः दिन हमारे यहाँ ही रहो। जब ठीक हो जाओ, घर चले जाना।'

उसकी पत्नी आ गई, रोने-कलपने लगी।

राजदुलारी ने शांत किया, 'बहिन, घबराओ मत, जल्दी अच्छे हो जाएँगे। मैं इनकी देखभाल करूँगी। तुम भी बनी रहना।'

विक्रम कराहा, 'मेरी गाएँ-भैंसें और खेती कौन देखेगा! हे राम!'

राजदुलारी ने उसकी पत्नी से कहा, 'तुम घर का काम देखो। मैं खिलाई-पिलाई, सेवा-शुश्रूषा सब करती रहूँगी। फिकर मत करो।'

वह सिसककर बोली, 'बच तो जाएँगे?'

डॉक्टर ने उत्तर दिया, 'अरे बिलकुल। शरीर की सूजन दो दिन में ही पटा जाएगी। एक हाथ की हड्डी टूट गई है, उसके बिठलाने की भी क्रिया करूँगा। वैसे और कोई संकट नहीं। हाथ के ठीक करने में ही कुछ देर लगेगी।'

पत्नी ने बटोले को गालियाँ दीं और विक्रम ने एक उद्गार प्रकट किया, 'अच्छा हो पाऊँ तो बटोला के मांस और हड्डियों का चूरा कर के ललिता नदी में बहा दूँगा।'

सनेही 'हुँ' करके दूसरे कमरे में चला गया, जहाँ अन्य मरीज उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

राजदुलारी ने विक्रम के सिर पर हाथ फेरकर कहा, 'बस, बस। गुस्से की बात मत करो, नहीं तो अच्छे होने में देर लग जाएगी।'

उसकी घरवाली बोली, 'बटोला ने तो हमें मार मिटाने में कसर लगाई नहीं। यह कहो, भगवान् सीधे थे। अब आप दोनों का बल-भरोसा है।'

विक्रम ने घरवाली से अनुरोध किया, 'तुम जाकर घर का काम देखो, नहीं तो बैरी ढोरों और खेती का नुकसान कर डालेंगे। मैं अच्छे होने तक यहीं बना रहूँगा। घर का समाचार दे जाया करो, बस।'

इसके बाद उसने अपने कुछ दिनों के काम गिनाए जो उसकी अनुपस्थिति में

सहायता करते रहेंगे।

अंत में कहा, 'डॉक्टर साहब के लिए कुछ रुपयों का बंदोबस्त कर लाओ।' फिर कराहा, 'न हुए आज हमारे मालिक राजा देशराज, नहीं तो बटोला को और उसके हिमायतियों को गोली से उड़वा देते। खैर, देखूँगा।'

राजदुलारी ने फिर शांत करने का प्रयत्न किया और फीस के प्रसंग पर बोली, 'डॉक्टर साहब घर आए मरीज की फीस नहीं लेते। मरहम-पट्टी और दवा-दारू का ही दाम लेते हैं।'

विक्रम की घरवाली को विश्वास नहीं हुआ।

विक्रम ने कहा, 'जो कुछ बनेगा, अभी दे दूँगा। रह जाएगा उसे राजा साहब लौटने पर दे देंगे।'

राजदुलारी मुसकराई जिसमें न मादकता थी, न कोई रसीलापन, पर उस मुसकान में जो कुछ था उससे विक्रम को लगा जैसे उसकी पीड़ा यकायक कम हो गई हो।

राजदुलारी बोली, 'अरे भाई, रुपए के मोह में हम लोग गाँव में नहीं आए हैं। देखो न, कितने गहने-कपड़े हैं मेरे पास?'

विक्रम की घरवाली चाँदी के कुछ गहने पहने हुए थी। अपने से उसकी तुलना की। जी को थोड़ी-सी ठंडक मिली।

'तो भी आपको कुछ तो लेना ही पड़ेगा।' विक्रम ने हठ किया। इसलिए और भी कि राजदुलारी से सस्ते में पट जाय तो डॉक्टर से क्यों बात करें।

राजदुलारी ने कहा, 'सब मिलाकर दस-बारह रुपए से ज्यादा खर्च नहीं पड़ेगा। जो कुछ अभी देना चाहो, दे जाओ; नहीं तो पीछे सही। इस सनय तो हमें चंगा कर देने की इच्छा अधिक है।'

विक्रम ने चैन की साँस ली।

उसी समय बाहर से टहल का स्वर कान में पड़ा।

विक्रम फिर काँखा, 'यह पापी टहल यहाँ भी आ गया! पीछा नहीं छोड़ता। धरती सिर पर उठा रखी है इसने। यही तो बहकाता-बरगलाता रहता है सबको।'

'चुप-चुप,' राजदुलारी ने रोका, 'अपने काम से आए होंगे। सभी आते हैं यहाँ तो। कई बार कह चुकी हूँ कि आपे से बाहर होगे तो चंगे होने में देर लग जाएगी।'

बाहर से कुछ गरम बातचीत की ध्वनि आई जो किसी के कूल्हने-काँखने से लिपटी हुई थी।

राजदुलारी कहकर चली गई, 'बिलकुल चुपचाप पड़े रहना। आपस में भी कोई बात न करना। इनको घर का काम-काज देखने-भालने के लिए भेज दो।'

उसके चले जाने पर विक्रम ने पत्नी से कहा, 'तुम जाओ। ढोर-डंगर देखो और खेतों

को सँभालो। नेक सुनती जाना टहल कौन-सा बिस बोने इस घड़ी यहाँ आया है।'

वह भी चली गई।

दूसरे कमरे में डॉक्टर, टहल और बटोले थे।

कमरा बहुत बड़ा न था। थोड़ी-सी अलमारियाँ, जिनमें दवाओं की शीशियाँ थीं। सारे कमरे का सामान एक साधारण डॉक्टर के छोटे से अस्पताल का नमूना था। पर स्वच्छता वहाँ यथासाध्य काफी थी। मकान पक्का था, कोई भाग खपरैल का और कोई छतदार। सनेही इसे देशराज से रियायती किराए पर लिए था।

सनेही बटोले की चोटों का निरीक्षण कर रहा था और वह काँखते-काँखते चिल्लाकर विक्रम की शिकायत कर रहा था। उसकी काँखों में बनावट थी, पर शिकायत में सचाई। टहल ने विक्रम की थोड़ी-सी ही बुराई की; वह उस आर्थिक संयोजन की निंदा कर रहा था जिसकी उत्पत्ति यह समाज और इस प्रकार की दुर्घटनाएँ हैं।

सनेही ने संकेत से उन दोनों को रोका। राजदुलारी आ गई। टहल ने नमस्ते की। थोड़ी देर सब चुप रहे। राजदुलारी के पीछे दूसरे कमरे में दीवार से सटकर विक्रम की घरवाली आ खड़ी हुई।

सनेही ने बताया, 'चोटें हैं तो बहुत-सी, परंतु गहरी कोई नहीं है। बटोले दो-तीन दिन में बिलकुल अच्छे हो जाएँगे। जरा-सी भी चिंता की बात नहीं।'

विक्रम की घरवाली को सूल-सा गड़ गया।

राजदुलारी बोली, 'विक्रम के बहुत गहरी हैं। एक हाथ तो टूट ही गया है।'

टहल ने टीका की, 'देवीजी, लड़ाई में किसी को कम, किसी को अधिक चोटें लगती ही हैं। इन्हें चोटें अपनी रक्षा करते भी बहुत आ गई हैं। ये सावधान रहे, इसलिए हाथ-पाँव बचा ले गए। विक्रम गुस्से में पागल हो गए, इसलिए हाथ-पाँव तुड़वा बैठे। मैं यह नहीं सोच रहा हूँ कि विक्रम ने इनका खेत चरवा डाला, बल्कि यह सोच रहा हूँ कि वे बटोले का खेत चराने गए ही क्यों? समाज में ऐसे कौन और क्यों हैं जो—'

विक्रम की घरवाली ने तड़ाक् से टोका, 'तुम्हीं ने सब ऊधम करवा रक्खा है! तुम्हीं सब पापों की जड़ हो!! तुम्हारी ठठरी बँधे, तुम्हारा—'

राजदुलारी झपटकर भीतर हुई और उसे लिवा ले गई।

टहल को विक्रम की घरवाली की बात आँस गई। डॉक्टर पर बुखार उतारा, 'आपका भी क्या पेशा है, डॉक्टर साहब! उस नरक के कीड़े का भी इलाज कर रहे हैं!!'

सनेही ने अपनी उठती हुई हँसी को मुसकान में पलट लिया—

'मैं नरक और स्वर्ग—दोनों के कीड़ों का, यदि उन्हें मेरी जरूरत पड़ जाए तो, समान भाव से इलाज करता हूँ। मेरे लिए व्यक्ति पहले है और समूह पीछे।'

बटोले ने देखा [illegible] बढ़ेगी—इनके हाथ इस समय कोई मरीज नहीं और उनके

स्कूल का घंटा अभी दूर है। बोला, 'डॉक्टर साहब, मुझे दवा दे दीजिए। बोटी-बोटी दुख रही है।'

'अभी लो।' डॉक्टर ने कहा और थोड़े ही समय में उसकी चोटों पर दवा लगा दी। खाने की भी दवा दी।

'फिर कब आऊँ?' बटोले ने पूछा।

'कल सवेरे। दो-तीन दिन ही आना पड़ेगा बस, फिर बिलकुल अच्छे। अवस्था तो विक्रम की ज्यादा खराब है।' डॉक्टर ने उत्तर दिया।

'अपने किए का पाया और आगे इससे भी ज्यादा पावेगा,' बटोले ने दाँत पीसकर भविष्य की बात कह डाली।

'तुम जाओ,' टहलराम ने उससे कहा, 'मैं डॉक्टर साहब से जरा बातचीत करके आऊँगा। डरना मत। तुम्हें घर लिवा जाने के लिए कई साथी बाहर होंगे।'

बटोले ने फुफकारा, 'डरना किससे और कैसा? मैं तो अपने हक के लिए जमराज से भी भिड़ जाने की दम रखता हूँ।'

बटोले चला गया।

चुटीला हो जाने पर भी वह सीधा तना था। टहल अभिमान-भरी दृष्टि से उसकी ओर, जब तक ओझल नहीं हुआ, देखता रहा।

मुड़कर उसने कहा, 'आप अहिंसा और सत्याग्रह की साधना से विक्रम सरीखे लोगों को समाज के इस तरह के राजनीतिक और आर्थिक संयोजन के होते हुए भी सुधारने की धारणा और कामना किए हैं!'

'कौन-सी अहिंसा और किस सत्याग्रह की साधना से? उससे तो नहीं जिसका प्रयोग मशीनों का काम बंद करने के लिए किया गया था।' सनेही मुसकराया।

'परिभाषाओं की आप जानें, मेरा तो उनमें कतई विश्वास नहीं। समाज पर जो कूड़ा-कचड़ा, घास-फूस छा गया है, उसको खाक किए बिना समाज के नए अंकुर और किसलय नहीं पनप सकेंगे। एक दूसरे के साथ सच्चा और प्यार से कसा हुआ गठबंधन पुरानी गाँठों, फाँसों और गुत्थियों को काट फेंकने के बिना न हो सकेगा।'

'शब्दों के लिए सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि उनका उपयोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों की चूल में सही नहीं बिठाया जाता। आप खूनी क्रांति का संकेत कर रहे हैं; परंतु क्या कभी सोचा कि आज तक कोई ऐसी रासायनिक क्रिया नहीं खोजी जा सकी है जिसके द्वारा व्यापक घृणा में से सार्वभौम स्नेह की ग़ाँठें तैयार की जा सकें? घृणा हिंसा की जननी है। व्यक्ति की घृणा की अपेक्षा समूह की घृणा कहीं अधिक हानिकारक और स्थायी होती है। केवल कानून और कानून के आधार पर रची हुई सरकार घृणा या हिंसा का उपयोग व्यक्तियों और समाज के हित के लिए कर सकती है—'

'समाज के वृक्ष को तरह-तरह की अमरबेलें डँसे जा रही हैं। वृक्ष अपने नए जीवन के लिए इन अमरबेलों के मारे कानून बना कहाँ पाता है? अमरबेलें तो शोषण के अपने मतलब का कानून बनाती हैं।'

'वृक्षों की अमरबेलें दिखलाई पड़ती हैं। उनका काट फेंकना सहज है; पर समाज और व्यक्ति की अनेक अमरबेलें दिखलाई ही नहीं पड़तीं। इन अमरबेलों को नष्ट करने के साथ ही कहीं ऐसा न हो कि व्यक्ति और समाज भी काटकर गिरा दिए जाएँ।'

'तो नया जीवन आवे कैसे?'

'रक्त से सने हुए गंदे हाथों नए जीवन का स्वागत नहीं किया जा सकता।'

'हमारे देश में हुआ है और बाहर अनेक देशों में भी। मुश्किल यह है कि आप और आप सरीखे कुछ लोग यह नहीं सोचते कि अहिंसामात्र से अँगरेज यहाँ से नहीं हटाए गए। खूनी क्रांति का लाल हाथ जरूर राष्ट्रीय आंदोलन के पीछे था। राष्ट्रीयता उसी के चेताने पर जागकर खड़ी हुई। उसी ने विदेशी शासन को निकाला और उसी की आज जरूरत है।'

सनेही हँस पड़ा।

'शब्दों की वही मुश्किल फिर! गुलामी की बेड़ियाँ काटने के लिए राष्ट्रीयता अनिवार्य है, परंतु बेड़ियाँ टूट जाने के बाद यह भावना मानव प्रेम में बदल दी जानी चाहिए; अन्यथा, वह प्रचंड वासना बनकर दूसरों को गुलाम बनाने के लिए बेड़ियाँ तैयार करेगी।'

'यानी अब उन अमरबेलों की पूजा-अर्चा की जाए। लोकतंत्र और समाजवाद का मेल हो ही नहीं सकता।'

'हाँ, कुछ मनीषियों ने यही लिखा है। परंतु एक ही आकार-प्रकार के नश्तर से सब किस्म के फोड़े नहीं चीरे जा सकते। यह उपमा सोलह आने ठीक न उतरे, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि लोकतंत्र के सक्रिय सिद्धांत—स्वाधीनता और समाजवाद के सक्रिय सिद्धांत—समता, का समन्वय किया जा सकता है। और इस देश में होगा। राम, कृष्ण, महावीर और बुद्ध के देशवाला इस बात को बिना अहंकार के कह सकता है।'

प्रतिवाद करने के लिए टहल ने कुछ सोचकर एक बात निकाली।

टहल उन लोगों में से था जिनकी धारणा होती है कि या तो मेरी बात से सहमत हो जाओ, नहीं तो मैं तुम सरीखे लोगों की सारी दुनिया से असहमत हूँ, और रहूँगा।

'इतिहास का निर्माण भौतिक तत्त्वों से होता है। व्यक्ति इतिहास नहीं बनाते।'

'मैं भी विकासवादी हूँ, परंतु विकासवाद केवल भौतिकवाद नहीं है। विकास की धारा को विशेष प्रकार के व्यक्तियों ने हर एक देश में मोड़ा है और मोड़ते रहेंगे। उनकी क्रिया कभी-कभी दिखलाई पड़ जाती है और पहचान में आ जाती है, परंतु

बहुधा अदृष्ट रहती है।'

उसी समय बाहर थोड़ा-सा शोरगुल हुआ। टहल ने निकलकर देखा—हरकुँअरि को उसका भाई मंटू साधे लिए आ रहा है। साथ में छोटी-सी भीड़। हरको थकी हुई, अधमरी-सी।

'क्या हुआ?' टहल ने पूछा।

मंटू काँपते हुए कंठ से बोला, 'मार डाला उन हत्यारों ने!'

सनेही भी बाहर आ गया।

मंटू ने संक्षेप में हरको की दुर्गति का हाल बताया। सनेही ने भीतर ले जाकर उसकी चोटों का निरीक्षण किया। राजदुलारी सहायता के लिए आ गई।

हरको के हाथ, पैर, पीठ और पेट पर लंबे नीले निशानों के तिकोने और चौकोने-से खिचे हुए थे। इनमें से कई पर सूजन भी थी। सनेही दवा लगाने लगा।

'वे सब पिशाच हैं।' राजदुलारी ने कहा। सनेही अपने काम में चुपचाप लगा रहा। राजदुलारी की कल्पना भारतीय नारी की दुरावस्था पर दौड़ी। मैं यदि किसी दुष्ट के साथ ब्याही गई होती तो लाख पढ़ी-लिखी, बी०ए० होने पर भी कुछ इसी तरह का व्यवहार मेरे साथ भी होता। तब क्या करती? भोजन और कपड़े के लिए उसी दुष्ट का मुँह ताकना पड़ता, क्योंकि स्त्री की निजी संपत्ति होती ही क्या और कितनी है? आत्मवध कर लेती या कहीं नौकरी कर लेती; पर उस दुष्ट से पीछा कैसे छुटाती? हरको अपने पेट भरने लायक मजूरी कर सकती है, यहाँ करती ही थी, फिर भी दुष्ट पति के अत्याचार से नहीं बचाई जा सकती। स्त्री के पास अपनी निज की संपत्ति का साधन अवश्य होना चाहिए। मेरे पास कितना है?

उसने सनेही से यकायक कहा, 'तुम बहुत भले हो।'

'कर्तव्यपालन ही तो कर रहा हूँ,' सनेही हरको के एक पैर की चोट पर पट्टी बाँधते हुए बोला, 'जिसमें तुम मेरी सदा सहायता करती रहती हो। दवा-दारू की शिक्षा बिना पाए हुए भी तुम इतनी बढ़िया नर्स हो गई हो कि वाह!'

'मैं कुछ और कह रही हूँ।'

'हूँ।'

डॉक्टर ने थोड़ी देर बाद अपना काम समाप्त किया। मंटू को बुलाकर कहा, 'इसे घर ले जाओ। मैं नित्य एक बार देखने आया करूँगा। फीस नहीं लूँगा, केवल दवा के दाम।'

वहाँ टहल भी था। स्कूल जाने का समय आ रहा था, पर कुछ कहना चाहता था। रुक गया। मंटू उसके साथ जाने के लिए खड़ा रहा। हरको एक कोने में बैठकर कराहने लगी।

'क्या आप उस तरह की पंचायत को भी बनाए रखने के पक्ष में हैं जिसके अन्याय के

कारण इस बिचारी की यह कुगति हुई?' टहल ने कहा।

'नहीं हूँ पक्ष में। उसके बदलने का प्रयत्न निरंतर जारी रखना चाहिए। बतलाइए उन पंचों को आप ही कितना प्रभावित कर सके?'

'अब की बार आवें गाँव में जोधा बगैरह तो मार-मार के चटनी पिसवा दूँगा।'

'और अपने ही गाँव के उनका क्या करिएगा जिनके विरोध के कारण आप अपने मन की छोटी-सी सहकारी कृषि समिति भी न बनवा सके?'

टहल तिलमिला गया।

'अपने साथियों का मन रखना पड़ा।' राजदुलारी ने कहा।

सनेही बोला, 'कठिनाई यह है कि ये आगे के एक पूरे समूचे युग को, जिसकी निश्चित रूपरेखा का ध्यान में आना दुस्साध्य है, आज के ही थोड़े से क्षणों में भर लेने के लिए अधीर हैं।'

'भाई रामटहल, यदि आपने अपने गाँव की सहकारी समिति में उन पंचों को भी शामिल कर लिया होता तो आप जात-पाँत संबंधी विषयों में भी उन पर कुछ-न-कुछ प्रभाव तो डाल ही लेते; जब हरको की बिदा का निर्णय हुआ तब आप कुछ शर्तें रखवा लेते तो वे लोग डर के मारे इतना बुरा बरताव न कर पाते।' राजदुलारी ने मिठास के साथ सुझाया।

हरको की कराह में होकर फूट पड़ा, 'सत्यानाश जाय उन सबका!'

राजदुलारी ने दुलार के साथ हरको के सिर पर हाथ फेरा। टहल को अवगत हुआ—राजदुलारी का व्यक्तित्व सनेही से बड़ा है।

बोला, 'एक बार प्रयत्न करूँगा उन सबको सहकारी समिति में लाने का।'

राजदुलारी ने प्रोत्साहन दिया, 'देश के चौमुखी विकास के लिए सहकारी प्रयत्न ही अचूक साधन है।'

हरको की कराहें अधिक तीव्र हुईं।

'मैं अवश्य प्रयत्न करूँगा, बहिनजी।' टहल ने आश्वासन दिया।

मंटू घर जाने के लिए अधीर दिखाई पड़ा।

टहल जाते-जाते कह गया, 'आपसे बात करने में मन लगता है, डॉक्टर साहब। फिर कभी समय लूँगा।'

सनेही ने 'हाँ' का सिर हिलाया।

जब दोनों अकेले रह गए, राजदुलारी बोली, 'तुम इतने भले न होते तो मेरा क्या होता!'

'गहनों से लदी रहतीं; और, तुम कुछ और होतीं तो मेरी पिटाई-कुटाई होती रहती।' सनेही हँसा।

राजदुलारी ने भौंह सिकोड़ी–

'कितने टेढ़े बोलते हो! कितने बातूनी!!'

'अभी तक तो नंबर एक का भला था। बड़ा डॉक्टर!'

राजदुलारी हँस पड़ी।

'तुम बड़े डॉक्टर और मैं बड़ी नर्स। जबान न चलाओ तो कहूँगी तुम बड़े मानव भी हो।' वह यकायक गंभीर हो गई।

'यानी भूख लगे तो भी जबान पर लगाम चढ़ाए रहूँ। आज की दवा-दारू में हम दोनों इतने उलझे रहे कि रसोई स्थगित हुई-सी दिखती है।'

'जैसे तुम्हारी बातें चलती रहती हैं वैसे ही मेरी रसोई का काम भी। दाल पका ली, साग बना लिया और आटा गूँदकर रख आई हूँ, पर तुम्हें बहस से अवकाश मिले तब तो।'

'जानती हो, काम करनेवाले सिद्धांतों की बहस नहीं करते और सिद्धांतों की बहस करनेवाले काम नहीं करते। इसलिए मैंने रसोई बनाना नहीं सीखा।'

राजदुलारी के होंठों पर मुसकान आई। भीतर जाने के लिए पीठ फेरी, और बोली, 'खाना खा लो, नहीं तो कोई आकर फिर बातों में लगा लेगा।' दो कदम चलकर मुड़ी। होंठों पर मुसकान थी, आँखें तरल। उसकी रूपरेखा में उस मुसकान और आँसू के भीतर सनेही ने जो सौंदर्य देखा, उससे पुलकित हो गया। सोचता था, आँखें क्यों छलक आईं?

: २९ :

उन दिनों उन छोटे-से गाँवों तक में ब्याह-बारातों की बाढ़-सी आ गई। रस्मी बाजों का रिवाजी शोर, अक्षय दरिद्रता में आतिशबाजी, फुलवाद, दुर्लभ भोज्य पदार्थ, इत्यादि, सीमित आय पर बेभाव खर्च। छाती-से-छाती मिलाते-मिलाते मुक्के तानने की नौबत। पैसेवालों की बड़ी रहन-सहन का अनुकरण करने की परंपरा का गला घोंटूपन। बीमार और घायल उस शोर के मारे परेशान होते रहे–कितने निर्दयी हैं ये गाने-बजानेवाले लोग! एक कुढ़न और–गेहूँ की रोटी और पूड़ी तक खाए जा रहे हैं ये सब! इधर एक हम जिन्हें साबूदाना और दाल का पानी भी नसीब नहीं!! बारातें चली गईं, ब्याहों का वह मुहूर्त निकल गया और घायल अच्छे हो गए। इन्हें और उन बीमारों को भी, जो कुछ स्वस्थ हो गए थे, मजदूरी खोजनी और करनी पड़ी। नहीं तो गुजर कैसे हो? मजदूरी न मिले तो कर्जा, भीख, चोरी–जो साधन भी काम कर जाएँ!! कठिनाई उनके सामने और भी अधिक जिन्होंने ऋण लेकर ब्याह-बारातें की थीं। समधियों में हँसते-मुसकराते लड़ाई हो पड़ी, मारपीट तक नौबत आई और पैसे से हाथ धो बैठे। रंग के छपके-भर फटे कपड़ों पर रह गए जो उस लड़ाई और व्यर्थ व्यय का स्मरण दिलाते थे।

छदामी इन सबमें अधिक दुखी था। फसल कटते ही बीज, लगान और धरनीधर का रुपया चुकाना है। फिर अगली फसल के लिए क्या बचेगा? नंगा क्या नहावे और क्या निचोड़े? साहूकार कोई ऐसा था नहीं जिससे कुछ और ले खाते। बनमाली से सिवाय बातों के और कुछ मिलना नहीं। देशराज दे सकते थे, पर एक तो यहाँ हैं नहीं, दूसरे उनसे बिगाड़ इतना कर लिया है कि मुँह दिखाने लायक भी न रहे। टहल और धरनी के भड़कावे में नाहक आ गए, सब अपना-अपना स्वार्थ बनाने में लगे हैं। घाटीवाली को आसामी चाहिए, टहल को स्कूल की फीस, बनमाली को पंचायत में घुसने के लिए हमारा वोट; आन पड़े पर हमारी सहायता करनेवाला कोई नहीं। शायद बनमाली कुछ लच जाए। जिमीन का झगड़ा मच जाने पर भी बोलते तो अच्छी तरह हैं। वह जिमीन अब तो कापटी (सहकारी) समिति में लगा दी है, मेरी रही तो अच्छी ही है, न भी रहे तो भी उससे कुछ फायदा तो होता ही रहेगा। जाने में क्या हर्ज है? हमारे वोट की मदद चाहेंगे तो हमको भी उन्हें कुछ तो देना पड़ेगा। न मिला तो हम भले और वे भले। हमसे बाँध ही क्या लेंगे? छदामी बनमाली के घर गया। बनमाली का सलूक देखकर उसे ढाढ़स बँधी। बनमाली की जिमीन का झगड़ा गड़ रहा था, परंतु उसकी महत्त्वाकांक्षा में एक और उद्देश्य का महत्त्व अधिक था, इसलिए मीठा बरताव किया।

छदामी बोला, 'मालिक, थोड़ी-सी मदद कर दो।'

'कितना समझाता हूँ कि किसी को मालिक मत कहो। अरे मालिक तो तुम हो जिनके वोट से यह सब चल रहा है। किसान-मजदूर का राज है, भाई।' बनमाली ने कहा।

'नहीं, मैं तो मालिक ही कहा करूँगा। छोटे-बड़े का भेद सदा से चला आया है और रहेगा। वोट तो कोई चीज नहीं। वोट लेना आपका हक है और देना हमारा काम। हमारा ले लेना और हमारे सब लोगों का।'

बनमाली के मन में जिमीन की समस्या हलकी पड़ गई और उसकी गड़न बिखर गई। इसकी ही हो जाए तो पंचायत में समझ लूँगा।

'शाबाश! तुम पहचानते हो सच्चे काम करनेवालों को। हमारा काम तो भाई, सेवा करने का है। कुछ ऐसे हैं जो काम में टाँग अड़ाते हैं, जैसे टहलराम बाँगुर्दन में और धरनीधर सुहाना में। वे तुम्हारे साहूकार हैं, पर तुम डरना नहीं। इन दोनों गाँवों की एक ही पंचायत बनेगी। बात तब है जब इधर धरनीधर और उधर टहल पंचायत में न चुने जा सकें।'

'मालिक की निगाह बनी रहे, भगवान् ने चाहा तो ऐसा ही होगा। धरनीधर का दबाव जरूर पड़ेगा। उनका देना है सो फसल पर गिना दूँगा।'

बनमाली प्रसन्नता के मारे फूलने लगा।

छदामी ने सावधानी के साथ बात बढ़ाई, 'डाक्टर साहब कैसे हैं?'

'भले हैं। फीस तो लेते हैं, पर काम भी कर देते हैं। बड़ी बात यह कि किसी की बुराई-भलाई में नहीं पड़ते।' बनमाली ने उत्तर दिया।

छदामी ने पूछा, 'राजा साहब कब तक लौट आएँगे? कोई समाचार आया?'

बनमाली कुछ नहीं जानता था।

बोला, 'बड़े आदमी हैं। देश-विदेश घूमते रहते हैं। न मालूम कहाँ होंगे और कब तक आवेंगे। मस्त मौजी जीव ठहरे, तभी समाचार देते हैं, जब यहाँ आने को होते हैं। शायद चुनाव के समय तक आ जाएँ। मन चाहे तो उन्हें वोट देना नहीं तो जैसा अच्छा लगे, वैसा करना। हमें तो अपनी कहनी थी, सो कह ली। और यह जानकर बहुत अच्छा लगा कि तुम फिर हमारे हो गए।'

छदामी को अपनी कहनी थी—

'हम गरीब पढ़े न लिखे। उन लोगों के बहकावे में आ गए और राजा साहब का मन अपनी ओर से फिरा दिया। अब पछताते हैं। अपने अपने ही हैं, हम लोग तो उन्हें भी वोट देंगे। आप और उन सरीखों से तो हमारी गुजर ही होती है।'

बनमाली मगन हुआ।

पूछा, 'कैसे आए? क्या किसी ने तंग किया है?'

उसने बताया, 'हमारे भाग ने तंग किया है। ब्याह में सब फूँक देना पड़ा। सबको करना पड़ता है। कल के लिए खाने को गाँठ में नहीं। फसल के आने में देर है। धरनीधर के नीचे और ज्यादा हाथ फँसाना नहीं चाहता। टहल की माँ के पास जाऊँगा नहीं। आपके सिवाय और किससे अपना दुःख रोऊँ? पच्चीस रुपए दे दो, बड़ी मदद मिल जाए। अनाज ले लूँगा, घर का काम चलता जाएगा। सब बाल-बच्चे मिहनत-मजूरी से फसल तक समय काट ले जाएँगे।'

बनमाली का हर्ष समाप्त हो गया। पच्चीस रुपया न दे पाने के मीठे बहाने बनाए। अंत में उसे पंद्रह रुपए ही देने पड़े। वोट मिल जावें और जिमीन को अपनी तरफ़ करा लूँ तो सस्ते ही निबटे। पर इस प्रसंग पर अभी कुछ नहीं करना चाहिए। लिखा-पढ़ी नहीं करवाई क्योंकि सलूक में बट्टा लगता—आगे की योजना का रंग बिगड़ जाता।

छदामी ने सोचा, जो मिल गया उससे काम चलाऊँगा और साल-दो साल तो रुपया लौटाना नहीं है।

: ३० :

थोड़े दिन चढ़े बरेली की ओर से रेलगाड़ी लखनऊ चारबाग स्टेशन पर आई और ऊँचे दरजे के एक डिब्बे से अंजना और देशराज उतरे। उनकी अगवानी के लिए दो-तीन लोग खड़े थे। इनमें से एक आबकारी पुलिस का अफसर सादे वेश में। वह

इधर-उधर टहलता हुआ बना रहा, जैसे किसी आगंतुक की खोज में हो। अंजना ने भाँप लिया। मजदूर सामान उतारने लगे। देशराज अपने उन दो परिचितों से हँस-हँसकर बात करने लगा। अंजना सामान इकट्ठा करवाकर इनके निकट आ गई। सामान में चार पेटियाँ हरे बक्सों की थीं। उनमें फल दिखाई पड़ रहे थे। आबकारी पुलिस का अफसर धीरे-धीरे बात सुनाई पड़नेवाली दूरी पर आ गया।

अंजना हँसकर ऊँचे स्वर में बोली, 'मुझे तो आप लोगों की जिमींदार सभा से केवल इतना सरोकार हो सकता है कि यदि उन्हें संगीत का उत्साह हो तो घंटे-पौन घंटे का प्रदर्शन कर दूँ, अन्यथा मैं तो कॉलेजों के लड़के-लड़कियों का समारोह करूँगी, जिसमें यदि कोई सुपात्र दिखलाई पड़े तो फिल्म के लिए दो-तीन को चुन लूँगी। प्लेटफॉर्म पर भीड़ की घेराघारी से बचना चाहती हूँ, इसलिए जल्दी निकल चलना चाहिए।'

स्वागतकर्ताओं और उस अफसर ने एक क्षण में बारीक दृष्टि से देख लिया कि अंजना की सज-धज ऐसी है जैसे किसी फिल्म निर्माण गृह में जाने ही को हो।

देशराज ने कहा, 'मुझे डर लग रहा था कि सभा की बैठक के लिए कहीं विलंब न हो गया हो; सोचता था कि अधिवेशन नौ-दस बजे होगा। अब मालूम हुआ कि तीन बजे से है। और साहब भी आने को थे क्या इस गाड़ी से?'

'सब आ चुके हैं। विषय निर्वाचनी समिति की बैठक भी हो चुकी है। आप ही का इंतजार था। तार मिलने पर हम सबको हर्ष हुआ। वहाँ के जिमींदारों के प्रतिनिधि आप ही हैं।' उनमें से एक ने बताया।

मजदूर ने सामान अपने ठेले पर चढ़ा लिया था। अंजना ने मुड़कर जरा जोर से कहा, 'फलवाली पेटियों को सँभालकर रखो। दूर से आए हैं; कहीं पिस न जाएँ।'

मजदूर ने पेटियों को फिर से सँजोया। स्वागतकर्ताओं की आँख उन पेटियों पर गड़ी और पुलिसवाला तो उन्हीं पर ध्यान दिए था।

अंजना फिर हँसी।

'आज ही संध्या समय इन पेटियों के बोझ को उतार दूँगी। आखिर उन लड़के-लड़कियों के लिए चाय-पानी का भी तो कुछ आयोजन चाहिए।'

'फिर कल वे लोग आपका स्वागत समारोह करेंगे; और न जाने आपको कहाँ-कहाँ भटकना पड़ेगा; पर देखिए, अपने कार्यक्रम को ज्यादा पसारा न दीजिएगा।' देशराज ने मुसकराकर कहा।

मजदूर बोला, 'साहब, चलिए। मैं दूसरी मजदूरी देखूँगा।'

अंजना ने उपेक्षा के साथ कहा, 'चलो किसी अच्छी मोटर पर। हम लोग आते हैं।'

मजदूर ढकेलकर चला। पुलिस अफसर दाएँ-बाएँ उसके साथ। थोड़ी दूरी पर पीछे-पीछे देशराज, अंजना और वे दोनों स्वागतकर्ता चले आ रहे थे।

अंजना कह रही थी, 'जिमींदारी उन्मूलन का कानून पास हो गया, आगे कुछ होने का नहीं, आप लोग व्यर्थ ही दिमागपच्ची कर रहे हैं।'

एक ने नम्रता के साथ प्रतिवाद किया, 'देवीजी, यह अपने हकों की लड़ाई है। साँस रहते जारी रक्खेंगे।'

देशराज ने कोई सम्मति प्रकट नहीं की।

अब की बार अंजना की तिरछी चितवन और मदीली मुसकान पुलिस अफसर ने देखी, और सुना—'जैसे मैंने प्रण किया है कि आजीवन फिल्म की कला और संगीत समारोहों द्वारा जनता की सेवा करती रहूँगी।'

यात्रियों के इधर-से-उधर और उधर-से-इधर आने-जाने के कारण वे सब एक साथ न रह सके। टिकिट देकर बाहर आए और किराए की एक मोटर के पास सामान समेत खड़े हो गए। मोटरवाले को होटल का पता दे ही रहे थे कि चुंगी का मुंशी आ गया। अंजना ने देख लिया कि उस सफेदपोश के इशारे पर आया है।

मुंशी ने हरी पेटी की जाँच का आग्रह किया।

स्वागतकर्ता बिगड़ पड़े, 'जानते हो कौन हैं ये?'

मुंशी थोड़ा-सा झिझका।

देशराज ने तुरंत एक पेटी की ओर हाथ बढ़ाया और हँसकर बोला, 'आजकल कोई किसी की इज्जत की परवाह नहीं करता।'

उसने पेटी खोलकर दिखानी शुरू कर दी। उसमें फल ही फल निकले। जरा तीव्र स्वर में कहा, 'और दिखलाऊँ? अपनी और अपनी म्यूनिस्पैलिटी की खैर मनाए रखना।'

'अब नहीं देखना है। चारों पेटियों के फलों की चुंगी चुकाकर तशरीफ ले जाइए। माफ कीजिएगा, फर्ज निभाना पड़ा,' मुंशी ने अपनी झेंप साफ की, चुंगी का कर लिया और तीखे नेत्रों पुलिस अफसर को देखता चला गया। शेष पेटियों के खुलवाने की आवश्यकता पुलिस अफसर ने भी अवगत नहीं की।

अंजना एक कॉलेज के कुछ व्यक्तियों को पहले से जानती थी। उनके द्वारा उसने तीसरे पहर एक समारोह किया। विद्यार्थी प्रचुर संख्या में आए। उन्हीं के यहाँ की एक लड़की फिल्म जगत् में पहुँच गई और अब किसी फिल्म निर्माण की योजना में मग्न है! किसी-न-किसी रूप में फिल्म इन सबके मन में बसी हुई थी। अध्ययन और अध्यापक के प्रति उपेक्षा, फिल्म तथा फिल्म परी के प्रति निष्ठा उन सबमें थी ही, कुछ ऐसे थे जो रात-भर में फिल्म के चाँद बन जाता चाहते थे और खूब शृंगार करके आए—कुछ लड़के और थोड़ी-सी लड़कियाँ भी।

इधर से फलों की पेटियाँ खाली हुईं, उधर से मन की मौजें और आकांक्षाएँ। उस दिन

के समारोह में कोई भी नहीं चुना गया!

अंजना ने आशा दिलाई, 'यह समारोह अंतिम नहीं है। फिर भी कभी आऊँगी; फिल्म निर्माण बड़े दायित्व और व्यय का काम है। संभव है आप लोगों में से एक दिन कुछ को चुन लूँ, परंतु क्षेत्र को अभी थोड़ा-सा और टटोलना है।'

वह पुलिस अफसर इस समारोह में भी उपस्थित था। उसने देख लिया कि पेटियों में से फलों के सिवाय और कुछ नहीं निकला; बिलकुल रीत गई थीं।

उसी समय लखनऊ की एक पुरानी बारहदरी में जिमींदारों का अधिवेशन हो रहा था। ऐसा लगता था जैसे किसी टूटे हुए अनाथालय के लोगों का जमाव हो। युगों की परंपराओं में पले हुए हमारे हक लूटे जा रहे हैं! परिश्रम, बुद्धि और पराक्रम से कमाई हुई हमारी संपत्ति उजाड़ी जा रही है!! अब हमारा क्या होगा? हमारे असंख्य आश्रित किसके होकर जीवन बिताएँगे? समाज के स्थायित्व और गौरव के स्तंभ हमीं रहे हैं; हमको गिरा देने से समाज अब कहाँ टिकेगा? देश में साम्यवाद, समूहवाद के प्रवाह को रोकनेवाली मोटी पुख्ता दीवार हम ही रहे हैं; उस दीवार को जिमींदोज करके सरकार समूहवाद के प्रवाह को प्रगति दे रही है! बातचीत और व्याख्यानों का यही सार था। विख्यात समाचार-पत्रों के संवाददाता एक विशिष्ट स्थान पर बैठे कार्रवाई को आँकते जा रहे थे। देशराज का ध्यान उन पर अधिक गया! बोलने का अनुरोध किया गया तो उसने सभा प्रधान को थोड़ा-सा और पत्रों के संवाददाताओं को विशेषकर संबोधन किया।. वह जो कुछ बोला उसमें एक अँगरेज की लिखी हुई पुस्तक की एक बात का, जो उसने कॉलेज में पढ़ी थी, अपने मुहावरे में उपयोग किया—

'जिमींदारी प्रथा प्राचीन नहीं है। जब शकों ने हमारे देश में अपना राज्य जमा लिया तब गाँव के मुखिया और पटेल को लगान वसूली के लिए अपना नंबरदार बना लिया और वसूली पर उन्हें कमीशन के रूप में जमीनें दे दीं। उनके पहले गाँव की सारी भूमि उसके जोतनेवाले किसानों की होती थी, कोई बेदखल नहीं हो सकता था। शकों के राज्य-काल में भूमि किसानों की न रहकर राजा की हो गई। जब एक राजा की जगह कई सामंत, सरदार, रावजी और राव साहब हो गए, तब भूमि के मालिक वे बन गए। फिर आए यहाँ मुसलमान। उन्होंने अपने राज्य-काल में इसी प्रथा को जारी रक्खा। उनके बाद अंगरेजों ने अपने स्वार्थ के लिए इसे पाला-पोसा। अधिकांश जिमींदारियों का इतिहास जबरदस्ती, लूटमार और साहूकारों के दाव-पेचों से बना है। आप लोग नाहक की चिल्ल-पौं करते हैं कि अब हमारा क्या होगा? करने की ठान लो तो बहुत-से काम हैं। मैं खुद बराबर कुछ-न-कुछ किया करता हूँ। कारखाने खोलिए, फिल्म कंपनियाँ बनाइए; साथ ही खेती करते रहिए। मुझे तो सहकारी कृषि समितियों में विश्वास है। उन्हें अपनाइए। ये न रुचे तो मशीनों से खेती करिए। सहकारी समितियों

से बड़ी-बड़ी सीरों, खुदकाश्तों को अलग रखने का एकमात्र औचित्य उन्हें वैज्ञानिक साधनों द्वारा आदर्श फार्म बनाने में है। प्राचीनकाल में जिमींदारों ने संगीत, चित्र और ललित कलाओं की जरूर बहुत रक्षा की, परंतु अंगरेजों के काल में–'

सभा प्रधान की घंटी बजी। श्रोता तो बीच-बीच में टोकते ही जाते थे, अब क्षुब्ध हो गए।

'बैठ जाओ! बैठ जाओ!!'

'सरकार का खुशामदी!'

'सरकार का भाँड़!'

'आवारा!'

'नेताओं का पिट्ठू!'

समाचार-पत्रों के संवाददाताओं ने किसी व्याख्याता के भाषण के इतने नोट नहीं लिए जितने देशराज के भाषण के लिए। वह उनकी ओर मुसकान के साथ देखता हुआ जा बैठा। उन आवाजों पर उसे जरा भी खिन्नता नहीं थी। केवल एक उत्सुकता थी–यदि किसी प्रकार इन संवाददाताओं को अपना नाम और भाषण का सार मोटे शीर्षक और बड़े अक्षरों में छपवाने के लिए राजी कर सकूँ तो काम बन जाए। दूसरा व्याख्याता जब तक मंच पर आए, कोई जोर से कोई धीमे स्वर में कहते रहे–

'गुंडा है! यहीं एक वेश्या को लिए बाप की कमाई उड़ाता फिरता है!'

'कहीं से एक खूबसूरत लड़की को भगा लाया है। बिलकुल आवारा है।'

'नेता बनने की फिकर में है जिससे सरकारी खजाने में से रकम हाथ लग जाए!'

'आवारागर्दी छिपाने के लिए बका है कमबख्त ने यह सब!'

'इतना कंजूस है कि चंदे में एक कौड़ी नहीं दी। उसी से बचने के लिए विरोध किया है नालायक ने!'

'जिमींदारों का कलंक!'

जैसे ही दूसरे व्याख्याता का भाषण शुरू हुआ, देशराज बैठक को छोड़कर चला आया। संवाददाताओं ने नोट कर लिया कि जिमींदारों के रोष को अँगूठा दिखाते हुए देशराजजी बाहर चले गए!

जब अंजना से मिला, उसने अधिवेशन का हाल विस्तार के साथ सुनाया। अंजना मोदमग्न हो गई–

'तुमने कमाल किया! जिमींदारों और उनकी सभा से हमें मिलना क्या? तुम्हारा भाषण पत्रों में छपेगा ही। अधिकारी पढ़ेंगे–'

देशराज ने वाक्य की पूर्ति की, 'और उनकी आबकारी पुलिस को भी कुछ सोचना पड़ेगा। इसी उद्देश्य से तो मैं बोला था। बात बन गई और चंदा देने से बचे। पर आगे

भी हम लोगों को अपने व्यवसाय की उन्नति के लिए काफी सावधानी बरतने की जरूरत है।'

अंजना ने अपने समारोह का हाल सुनाया।

देशराज ने बड़े हर्ष के साथ टीका की, 'तुम्हारा काम क्या कम रहा। शायद मेरे से अधिक लाभदायक। वह पुलिस अफसर अपने बड़ों को रिपोर्ट देगा—फिल्मवाली गायिका हैं। पेटियों में फल भरकर लड़के-लड़कियों में बाँटती फिरती हैं।'

दोनों एक-दूसरे की सराहना करते-करते नहीं अघा रहे थे।

देशराज उन संवाददाताओं से नहीं मिल पाया। पर हुआ वही जो उसकी चाह थी। दूसरे दिन कई समाचार-पत्रों के विशेष स्थानों में मोटे-मोटे शीर्षक और बड़े-बड़े अक्षरों में उसके भाषण का सार प्रकाशित हुआ। दूसरे स्तंभ में अंजना के समारोह का समाचार छपा। उसने उन सब पत्रों को अच्छी तरह रख लिया।

दो-तीन दिन लखनऊ रहकर वे दोनों अन्यत्र चले गए।

: ३१ :

अंजना और देशराज उत्तर प्रदेश के एक ऐसे क्षेत्र से बाहर हुए जहाँ सरकारी देखरेख में अफीम की खेती होती है। अब की बार उन्होंने नाव से यात्रा की। नाव बड़ी थी, ऊपर के खंड में दो छोटे-छोटे, परंतु हवादार, कमरे भी थे। एक में बैठने-उठने और सामान रखने की काफी गुंजाइश थी। साथ में वे चार हरी पेटियाँ। दोनों मजे में जा बैठे। नाव छूटने में अभी थोड़ी देर थी। कमरे में दोनों अकेले थे। नाव पर माझियों और यात्रियों की चहल-पहल थी। वे धीरे-धीरे बातें कर रहे थे।

'क्यों जी, इसकी खेती नाहरगढ़ में क्यों न करवाई जाए? टोह लगानेवालों से दूर, निराला स्थान और जिमीन उपयुक्त।' अंजना ने कहा।

देशराज चौकन्ना होकर बोला, 'मुश्किल है।'

'क्या मुश्किल है?' अंजना ने एक जिले के ऐसे गाँव का नाम लिया जहाँ चोरी-चोरी अफीम की खेती की जा रही थी।

'वहाँ तो गुलाब के बड़े भारी बाग में बड़ी हिकमत के साथ खेती हो रही है। थाना, पुलिस, रेलवे स्टेशन सब सिर के ऊपर, फिर भी बराबर काम चलाया जा रहा है। नाहरगढ़ में तो कोई दिक्कत ही नहीं। वहाँ होने लगे तो इधर-उधर का यह भटकना और बहुत-सी जोखिम समाप्त हो जाए।'

'यहाँ की यात्राओं में मुझे जो मजे तुमसे मिलते हैं और सब तरह के लोगों की जो ललचाई निगाहें हम लोग यों ही बटोर लेते हैं सो उस पहाड़ी जंगली इलाके में कहाँ?'

'तुम तो मजाक करते हो। बतलाओ, वहाँ क्यों संभव नहीं?'

'मेरी प्यारी—अमर—'

इस संबोधन पर तुरंत अंजना ने आँखें तरेरीं। देशराज गंभीर हो गया।

बोला, 'नाहरगढ़ निराला होने पर भी इस काम के लिए अरक्षित है। कोई-न-कोई बड़ा आदमी उनके यहाँ आता रहता है। जैसे ही उन्होंने नई तर्ज का बाग-बगीचा लगाया कि उस पर आँखें दौड़ेंगी। राजा साहब स्वयं देखभाल कर नहीं सकते। नौकर रहस्य को छिपा नहीं सकेंगे। बात फैलते समय नहीं लगेगा। जहाँ का तुमने नाम लिया वहाँ तो कई चतुर खिलाड़ी उस काम को कर रहे हैं। यहाँ-वहाँ में बड़ा अंतर है।'

किसी के आने की आहट पाकर अंजना ने कहा, 'हाँ, संभव है, संभव है। यात्रा तीन-चार घंटे की तो है ही।'

अंतिम शब्दों के पूरे होने के पहले ही एक सज्जन वेशधारी ने कमरे में पैर रखा। बिस्तरों का बंडल हाथ में लिए था। छरहरी देह, आँखें पैनी।

बड़ी नम्रता के साथ बोला, 'क्षमा कीजिएगा, दूसरे कमरे में स्थान नहीं। आवश्यक काम और दूर की यात्रा। आपको कष्ट तो होगा, पर एक कोने में पड़ा रहूँगा।'

वे इनकार नहीं कर सके। साथ में खपाना पड़ा। उसने अपना जो निर्दिष्ट स्थान बताया, वह इनकी यात्रा से लंबा पड़ता था।

माघ के महीने की ठंड कड़ी पड़ उठी थी। ऋतु की चर्चा हुई। फिर परस्पर परिचय की बात आई। फिल्म निर्माण के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव संचित करने का यात्रा-प्रयोजन बताते ही आगंतुक खिल उठा। देशराज ने उन समाचार-पत्रों की प्रतियाँ उसे पढ़ने को दीं, जिनमें उसके भाषण का सार और अंजना के समारोह का समाचार छपा था। वह पढ़ने लगा। नाव चल पड़ी। आगंतुक पढ़ते-पढ़ते प्रसन्न हो रहा था। उसने एकाध बार बाहर के शोर से खिन्न-सा होकर आँख हटाई और आतुरता के साथ पेटियों पर गड़ाई—मानो गिन रहा हो, और 'कितना चीखते हैं ये लोग!' कहकर फिर पत्र पढ़ने लगा। अंजना और देशराज ने एक-दूसरे से चितवन जोड़ी। देशराज एक क्षण विचार-मग्न रहा, नाक के अग्रभाग पर उँगली फेरी और बोला, 'देवीजी, बाहर चलो ना। घंटे-आध घंटे शोर करनेवालों की बातें सुनें, उनमें से भी कुछ-न-कुछ निकालकर रहेंगे और धूप मुफ्त में।'

अंजना ने कहा, 'बहुत अच्छा विचार है। चलिए।' और खड़ी हो गई।

देशराज ने आगंतुक से पूछा, 'आप भी धूप में चलेंगे? नदी की नीली धार, किनारों का हरा-भरापन, यात्रियों के शोर का प्रसंग—सभी में रंगत है। है इच्छा बाहर आने की?'

'मुझे तो ये पत्र बड़े अच्छे लग रहे हैं। यहीं बैठकर पढ़ना चाहता हूँ।' उसने उत्तर दिया।

देशराज ने कहा, 'यदि आप आवें तो किवाड़ बंद कर आइएगा। वैसे तो हमारे पास कोई कीमती सामान नहीं, पर शायद कोई आ जाए और कपड़े लेकर चंपत हो जाए तो जरा परेशानी हो जाएगी, क्योंकि हम लोग कम-से-कम एक घंटे तो बाहर रहेंगे ही।'

उसने रस घोला, 'मैं यहीं हूँ। आप इतमीनान से सैर करें।'

वे दोनों बाहर चले गए और ऐसे ठौर पर जा खड़े हुए जहाँ से उस कमरे की खिड़की में होकर भीतर की कुछ झाँकी ले सकते थे। नदी के विस्तृत पाट में नीले जल की चौड़ी धार, दोनों किनारों की हरी वृक्ष कुंजें वे इतने ध्यान के साथ नहीं देख रहे थे और न यात्रियों के शोर में से किसी पदार्थ का संचय कर रहे थे जितने ध्यान के साथ जब तब आँख की कोरों उस खिड़की में होकर कुछ खोज रहे थे। एक बार वह बहुत झुका हुआ दिखाई पड़ा, फिर बहुत कम।

इनके बाहर आने के कुछ ही मिनिट पीछे आगंतुक ने समाचार-पत्र रख दिए। उझककर खिड़की में से देखा। एक जेब में रिवाल्वर सँभाला और दूसरी में से चाभियों का गुच्छा निकाला, झटपट हरी पेटियों को एक-एक करके खोला। उनके फल अलग रख दिए और भीतरी खंड की जाँच में संलग्न हो गया।

बीस-पच्चीस मिनिट हुए होंगे कि देशराज ने अंजना को आँख का संकेत किया। अंजना आगे-आगे और देशराज पीछे, ऐसे कोण से कमरे की ओर बढ़े कि कमरे की खिड़की में से दिखाई न पड़ सकें।

कमरे के दरवाजे पर अंजना पहले पहुँची। एक पेटी के फल बिखरे पड़े थे, दो के ढक्कन खुले और तीसरी बंद।

वह सकपका गया, परंतु क्षण-भर के लिए ही। जेब में रिवाल्वर पर हाथ गया, लेकिन उसे निकाला नहीं। खड़ा हो गया।

अंजना के पीछे देशराज आ खड़ा हुआ।

अंजना के होंठों पर व्यंग्य की मुसकान आई।

तीखे स्वर में बोली, 'क्या भूख बहुत लगी है जो फलों पर टूट पड़े?'

आगंतुक का चेहरा फक।

देशराज ने कहा, 'मैं पहले ही कह गया था कि हमारे पास कोई कीमती सामान नहीं है। फिर भी आप न माने! अरे भाई, वैसे ही माँग लेते। एक-दो रुपया तो हम यों ही दे देते।'

अंजना के चेहरे पर तमतमाहट आई।

'जो कुछ गहना-पत्ता हमारे पास है, उसे पहने रहती हूँ। उन पेटियों में से तो कुछ निकला न होगा। या कुछ हाथ पड़ गया? पुलिस के सिपाही को बुलाऊँ? नाव पर हैं।'

अपरिचित ने गले को साफ किया।

धीमे किंतु अकंपित स्वर में बोला, 'क्षमा चाहता हूँ। आप मेरी जगह होते तो आप भी यही करते।'

देशराज ने व्यंग्य किया, 'पर मैंने तो जेबकटी विद्यालय या ताला तोड़ कला मंदिर के कभी दर्शन तक नहीं किए, वहाँ शिक्षा पाने का सौभाग्य तो बहुत दूर की बात है।'

'सुनिए,' अब अपरिचित का कंठ कुछ तीखा पड़ा।

वे दोनों भीतर आ गए। पर खड़े इस तरह हुए जैसे उसके निकल भागने का निरोध करने के लिए तुल गए हों।

'कहिए, कुछ बाकी है,' अंजना कूकी।

'पहली बात तो यह कि मैं हृदय से आप लोगों का क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं गलत लीक पर चला।'

'यानी आपके गिरोहवालों ने आपको गलत बतलाया कि हमारे साथ ढेरों सोना, चाँदी और रुपया है, क्योंकि ये एक बड़े जिमींदार है और मैं फिल्मों में काम करती हूँ।' अंजना ने फिर व्यंग्य किया।

'दूसरी बात यह कि,' उसने जारी रखा, 'मैं भुक्खड़, चोर या गिरहकट नहीं हूँ। इन पेटियों में अफीम होने का संदेह था, इसलिए खोलकर जाँच की, क्योंकि मेरी ड्यूटी है—मैं आबकारी पुलिस का अफसर हूँ।'

'ओह!'

'ओह!!'

उन दोनों ने आश्चर्य प्रकट किया।

'तो आपको उन समाचार-पत्रों में छपी हुई बात का विश्वास नहीं हुआ जो आपको बड़ी अच्छी लग रही थीं!' देशराज बोला। उसका स्वर भर्रा गया था।

'क्षमा कीजिएगा,' पुलिस अफसर ने कहा, 'हम लोग पत्रों में छपी हुई दुर्घटनाओं में तो कुछ विश्वास कर लेते हैं, परंतु अन्य समाचारों को बहुत महत्त्व नहीं देते।'

'इसका क्या प्रमाण है कि आप पुलिस अफसर हैं?' अंजना ने प्रश्न किया।

'प्रमाण मेरी जेब में है। तसदीक कर लीजिए पुलिस के उस सिपाही से जिसको आप रिपोर्ट करने जा रहे थे।' उसने उत्तर दिया, और जेब से सीटी निकालकर बजाई।

अविलंब वरदीवाला पुलिस का सिपाही और बहुत-से यात्री आ गए। उनमें सादा कपड़े पहने आबकारी पुलिस के भी कुछ आदमी थे। वरदीवाले सिपाही ने अपरिचित को सैनिक प्रणाम दिया।

अपरिचित ने आदेश के स्वर में कहा, 'जाओ, कुछ नहीं निकला। हम भ्रम में पड़ गए।'

वे सब चले गए—अन्य यात्रियों की भीड़ को भी हटाना पड़ा।

देशराज को सहमा हुआ ताव था। बोला, 'तो क्या आपको किसी भी भले आदमी की नंगा-झोली लेने का अधिकार है?'

'मैं भी यही पूछना चाहती थी।'

पुलिस अफसर ने विनय के साथ उत्तर दिया, 'मैं आपसे पहले ही क्षमा माँग चुका हूँ। मेरे जीवन में यह गलती पहली बार हुई है। फिर भी मैंने सबके सामने आपकी खाना-तलाशी नहीं ली, जिसका मुझे कानून ने अधिकार दे रखा है। आप लोग यकायक न आ जाते तो आपको या किसी को भी न मालूम पड़ता कि क्या हुआ। अब मुझे विश्वास हो गया है कि मेरे मन में आपके संबंध में केवल भ्रम ही था।'

देशराज को धन्यवाद देना पड़ा। अंजना मुँह बनाए बैठी रही। नाव का पहला घाट आ गया था और वह किनारे लग गई। पुलिस अफसर अपने सिपाहियों के साथ उतर गया। जाते समय उसने शिष्टाचार किया।

जब अकेले रह गए, वे दोनों प्रसन्न थे।

विजय-गर्व में देशराज बोला, 'अपनी योजना कभी असफल नहीं हो सकती है। मैं जानता था कि हम लोग पछियाये जा रहे हैं, इसलिए, भई, खूब रहा!'

अंजना हँस पड़ी।

'इसलिए पेटियों में फल ही फल भर लिए! क्या सूझ है तुम्हारी!'

'मुझे वहीं से शंका हो गई थी, बस माल का भरना मुल्तबी कर दिया। अब चैन के साथ मनचाहा काम करो। एक को गधा बना लिया, इसलिए दूसरे पीछा नहीं करेंगे।'

'तभी तो मेरा रोम तुम्हारे लिए उमगता रहता है।'

'इस इलाके में फिर से आने के लिए कोई नया कारण होना चाहिए।'

'अब की एक केमरा लेकर जाएँगे। जिन अनुभवों का संग्रह किया है उनकी पृष्ठभूमि के लिए सुंदर प्राकृतिक दृश्यों के चित्र भी तो लेने चाहिए। फिल्म वैसे तो बन नहीं जाती!'

: ३२ :

एक पखवारे के बाद अंजना और देशराज लखनऊ स्टेशन से बनारस के लिए संध्या की गाड़ी में—ऊँचे दरजे के डिब्बों में—अलग-अलग जा बैठे। देशराज ऐसे में जहाँ कुछ यात्री पहले से आ गए थे, अंजना ऐसे छोटे-से में, जो खाली था। सामान अंजना के साथ था; अंजना ने फलों की भरी उन पेटियों को डिब्बे में ऐसी जगह रखवा लिया था, जहाँ वे बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ रही थीं। सामान जरा फैलाकर रखा था।

गाड़ी चलने को ही थी कि एक टोपधारी अंजना के डिब्बे में आ गया। उसके पास बिस्तरों के बंडल के सिवाय और कोई सामान नहीं था।

टोपधारी ने अपना बिस्तर रखवाने के पहले अंजना के सामान को आँख गड़ाकर देखा।

बोला, 'देवीजी, क्षमा करें तो आपका सामान एक तरफ रखवा दूँ। दूर जाना है, रात में सोने के लिए थोड़ी-सी जगह कर लूँ?'

'कोई हर्ज नहीं। आप कहाँ ज़ा रहे हैं?'

'बनारस, और आप?'

'मैं भी बनारस जा रही हूँ।'

वह अपने हाथों अंजना का सामान उठाकर एक क्रम से रखने लगा। पहले वे पेटियाँ उठाईं। अंजना साँस साधे देखने लगी।

'आप कष्ट न करें, मजदूर तो है।' अंजना ने कहा। मजदूर आगे बढ़ा।

टोपधारी बोला, 'कोई बात नहीं। सामान रख दिया गया।'

मजदूर पैसे लेकर चला गया। गाड़ी चल दी।

अंजना ने देखा, यात्री खिड़की की ओर मुँह किए हुए भी तिरछी आँखों उसे देखता जाता है। पेटियाँ उसके सामने रखी थीं। अंजना विचारमग्न हो गई।

यात्री ने जेब से सिगरिट निकाला।

'अनुमति दें तो मैं सिगरिट पी लूँ?' उसने पूछा।

अंजना के होंठों पर मद-भरी मुसकान आ गई, चितवन भी वैसी हो गई।

'मैं पीती नहीं हूँ, परंतु उसके धुएँ से मुझे कोई परहेज नहीं है।' अंजना ने कहा।

'बहुत-बहुत धन्यवाद।'

उसने सिगरिट जलाया और पीने लगा।

फिर परिचय की बात चली। उसने अपना नाम और काम बताया—नहर विभाग में अफसर है। अंजना ने अपना व्यवसाय फिल्म।

नहरवाले की रीझ विकसित हुई।

बोला, 'तभी आप इतनी असाधारण हैं। मुझे अचंभा हो रहा था कि जनाने डिब्बे में न बैठकर आप यहाँ अकेली यात्रा कर रही हैं!'

'अब तो अकेली नहीं हूँ। जानती थी, कोई-न-कोई आएगा। जनाना डिब्बा भरा हुआ देखा तो यहाँ चली आई।'

'निवास-स्थान क्या बनारस में है?'

'नहीं, लखनऊ में है। इलाहाबाद, बनारस फिल्म के काम से जा रही हूँ।'

'अभी तो सीधी बनारस ही जा रही हैं न?'

'और आप?'

'सीधा बनारस, जरूरी काम है कल।'

'इलाहाबाद में छेड़ न ली गई तो सीधी बनारस, मैं भी।'

'यही तो आप लोगों की कठिनाई है। बनारस में कहाँ ठहरिएगा?

अंजना ने एक होटल का नाम बताया।

नहर अफसर के मन में बेतकल्लुफी जागी। हरी पेटियों की ओर संकेत करके बोला, 'लखनऊ का क्या कहना! सब तरह के फल जब चाहो तब मिल जाते हैं। आपने तो ढेर के ढेर खरीद लिए! वैसे बनारस में भी मिल जाते हैं।'

अंजना का माथा ठनका, पर वह संयत रहना जानती थी।

'भले लगे तो इतने ले लिए। वैसे मैं जानती हूँ कि इलाहाबाद-बनारस में भी बढ़िया मिल जाते हैं।'

नहर अफसर ने पेटियों पर आँख गड़ाई।

'आपने सजाए बड़ी खूबसूरती के साथ हैं!'

अंजना ने अपनी मुसकान का फंदा फैलाया।

'सौंदर्य का सृजन हमारा काम है।'

वह मुसकराया।

थोड़ी देर दोनों चुप रहे।

नहरवाला सिगरिट पीता रहा।

'आपने किस-किस फिल्म में काम किया है?' उसने प्रश्न किया। अंजना उत्तर के लिए तैयार थी।

'मैंने कई फिल्मों में काम किया। प्रधान भूमिका अभी तक नहीं मिली है। फिल्मी दुनिया में भी सिफारिश इत्यादि चाहिए। मैं बी०ए० पास हूँ। कुछ रुपया इकट्ठा कर लिया है, अब अपनी ही एक फिल्म बनाने जा रही हूँ जिसमें मेरी प्रधान भूमिका होगी। अधिक रुपया इकट्ठा करने और कुछ पात्रों की खोज में निकल पड़ी हूँ।'

अंजना ने अपनी मुसकान, चितवन और बात रस में घोली। अफसर भी रस में आ गया।

'आप स्वयं गाती हैं फिल्म में या दूसरों के गले पर चलती हैं?'

'मैं स्वयं गाती हूँ और तरह-तरह के नाच भी जानती हूँ। नई फिल्म में काम देखिएगा मेरा।'

'क्या नाम होगा आपकी फिल्म का?'

'गोरी की चोरी।'

'ओफ हो! नाम तो आपने गजब का रखा है!!'

'इस तरह के नामों बिना अच्छी-अच्छी फिल्म तक पिछड़ जाती हैं। मेरा यह पहला प्रयत्न होगा; चाहती हूँ कि बंडल गोल न हो जाए।'

नहर अफसर ने देखा, भाषा-भाव सब उस विलक्षण संसार के हैं जिसे फिल्म-जगत् कहा जाता है।

'कहानी क्या है 'गोरी की चोरी' की?'

'यह लीजिए! कहानी बतला दी तो फिल्म का सारा रहस्य गाँठ में से निकल गया। अभी तो इतना ही बतला सकूँगी कि फिल्म की नायिका गोरी का अभिनय मैं ही करूँगी।'

'नायक का अभिनय कौन करेगा?'

'किसी नए पुरुष की तलाश में हूँ। छकानेवाली एक स्त्री की भूमिका और है। उसकी खोज में हूँ। नए चेहरे लाना चाहती हूँ, गोरी की चोरी में।'

फिर अंजना ने यकायक प्रश्न किया, 'आपने कभी नाटक में पार्ट किया है?'

नहर अफसर एक क्षण के लिए असमंजस में पड़ गया, थोड़ी-सी झेंप आई। फिर सँभलकर बोला, 'किया है।'

'मेरा यह प्रयोजन नहीं कि आपको नहर से खींचकर बंबई के समुद्र किनारे ले जाऊँ, पर आपमें अच्छे एक्टर के लक्षण हैं इतना तो बिना हिचक के कह सकती हूँ। बनारस में मिलने की कृपा करेंगे? आपके फोटो लूँगी।'

'आपके साथ कोई फोटोग्राफर है? न हो तो बनारस में कई बहुत अच्छे हैं।'

'उनसे काम नहीं चलेगा। फिल्म के लिए चेहरों का भिन्न-भिन्न कोणों से परीक्षण होता है। उसकी कला अलग है। मेरे साथी करेंगे यह काम।'

'कहाँ हैं?'

'दूसरे डिब्बे में।'

बातों-ही-बातों में एक स्टेशन आया जहाँ गाड़ी ठहरी। देशराज आया। उसके आते ही अंजना ने नहर अफसर को बताया—'ये हैं हमारे कैमरामैन। बड़े जिमींदार और ऊँची शिक्षा पाए हुए। हमारे कुछ साथी इलाहाबाद आ गए होंगे। संभव है स्टेशन पर मिलें।'

फिर उसने नहर अफसर का परिचय दिया। सामान्य शिष्टाचार के उपरांत देशराज ने अंजना से कहा, 'कोई तकलीफ तो नहीं है?'

'बिलकुल नहीं। यात्रा मजे में कट रही है।' होटलवाला आया। उसने भोजन की बात पूछी। अंजना और देशराज ने इनकार कर दिया। नहर अफसर ने अपने लिए मँगवाया। देशराज चला गया। अंजना ने एक पेटी के ऊपर से फल निकालकर नहर अफसर को दिए।

अँगड़ाई लेकर बोली, 'मैं लेटना चाहती हूँ। आप भोजन कर चुकें तो भीतर की चिटकनियाँ चढ़ा लीजिएगा।'

'जरूर,' उसने आश्वासन दिया।

अंजना लेट गई। गाड़ी चल पड़ी। अंजना आँख मूँदे भी देख रही थी—नहरवाला भोजन से निवृत्त होकर सिगरिट पीते-पीते अंजना की रूपरेखा को निरख रहा था। अंजना कनखियों से परख रही थी। नहर अफसर लेटा नहीं—बैठा रहा।

कुछ समय उपरांत अंजना उठ बैठी।

'नींद नहीं आ रही है, कुछ पढ़ूँगी। आप लेटे नहीं।'

'अब लेटता हूँ।'

अंजना ने अपने एक बक्स में से अंग्रेजी की पुस्तक उठाई और पढ़ने लगी। नहर अफसर ने बिस्तर लगाए और पड़ गया और थोड़ी देर में सो गया।

गाड़ी अपने समय पर इलाहाबाद पहुँची। अंजना सजग थी। उसने फाटक खोला, जरा-सी झाँकी थी कि देशराज आ गया। सामान उतरवाया और चल दी। नहर अफसर मोटे कंबल में लिपटा सोता रहा।

गाड़ी देर तक ठहरी। जब नहर अफसर की आँख खुली, डिब्बे में किसी को न पाकर हड़बड़ाया। बाहर जाकर एक पुलिसवाले को बुलाया। खुसफुस में कुछ बातचीत की। पुलिसवाले ने नाहीं का सिर हिलाया और प्रणाम करके चला गया। नहर अफसर ने सोचा, जैसे वे लोग ऊपर से दिखाई पड़े, संभव है हों भी वैसे ही, बनारस तो आवेंगे ही। गाड़ी चली गई और वह उसी डिब्बे में। अंजना और देशराज बंबई जानेवाली गाड़ी में जा बैठे और मानिकपुर उतर पड़े। वहाँ से सुहाना की दिशा में जानेवाली गाड़ी बदली। घर के पासवाले स्टेशन पर जगनू को पहले ही तार देकर मोटर मँगा ली थी। स्टेशनवालों का चाय-पानी लेकर और कुछ फल देकर वे दोनों सुहाना पहुँच गए।

'तुमने कमाल पर कमाल किए!' देशराज ने एकांत में कहा।

अंजना बोली, 'मैं समझती हूँ कि वह वास्तव में नहर विभाग का ही कोई अफसर था।'

'तुमने विस्तार के साथ जो कुछ सुनाया, उससे मैं दूसरे ही निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ। सोच रहा हूँ कि पेटियों का रंग बदल दिया जाय तो कैसा रहे?'

'अरे नहीं। जैसा है वैसा ही चलने दो, नहीं तो संदेह बढ़ेगा।'

'पर यह रंग नाम बहुत पा गया होगा।'

'जो लोग हमें पहचानते हैं, यानि जिन्होंने तुम्हारा रूप देख लिया है और मेरे अभिनय पर मुग्ध हो गए हैं वे रंग के परिवर्तन से कहीं कुछ और न सोचने लगें। अभी तो ऐसा ही चलने दो।'

देशराज की शंका का समाधान नहीं हुआ, परंतु उसने बात जहाँ की तहाँ रहने दी। माल खपाने की चर्चा होने लगी। अंत में निश्चय किया कि बाघराज के हाथ में

सबकी सब पेटियाँ नहीं देनी चाहिए, एक-एक करके दी जावें और दाम जहाँ तक हो सके, पेशगी ले लिया जावे। मुनाफे का हिसाब अंत में; बाघराज को सूचना दे दी जावे और फसल कट जाने के बाद सावधानी के साथ काम लिया जावे, भले ही कुछ देर हो जाए।

'गाँव के पहलू को भी सँभाले रहना है, बहुत दिन बाहर रहे।' देशराज ने कहा।

अंजना ने अलसाए स्वर में समर्थन किया, 'हाँ, कुछ दिनों थोड़ा-सा विश्राम भी कर लें।'

: ३३ :

फागुन का महीना समाप्त हो गया। होली भी हो ली। दिन के दूसरे-तीसरे पहर गरमी पड़ने लगी। संध्या भीनी-भीनी सुगंधियों से भर उठी—नीम और करोंदी के फूल डाल-डाल में फूट पड़े। आम भी वहाँ थोड़े से थे। मौर से छा गए और कोयलों को बुलाने लगे। बंधीवाले खेतों के चने हरी-पीली घेंटियों और छोटे-छोटे लाल फूलों से लद गए। अलसी, भरे दानों पर भी, नीले फूलों में इतरा रही थी। जहाँ बंधी नहीं थी वहाँ के चनों के पत्ते सूखकर झड़ उठे, उनकी घेंटियों की फुकली पीली-साँवली पड़ गई। गेहूँ सुनहली बालों से लदकर झुक गए। दोपहर की गरमी में जब नीम-करोंदी के फूलों और आम के मौर की महक मंद पड़ जाती, तब गेहूँ, चने और अलसी के खेतों की सोंध किसान को सँदेशा-सा दे उठती।

ये सब खेत दूर से लक्ष्मीजी के क्षीरसागर-से लहराते दिखते थे, परंतु उनमें भीतर जाकर देखो तो वह सागर बिलकुल उथला। गेहूँ और चने के पौधे दूर-दूर; या तो बहुत-सा बीज मारा गया था, या जमने के बाद सूख गया था। अलसी में कुछ जान दिखाई पड़ती थी, लेकिन जितने दाने पड़ने की आशा की गई थी, उतने नहीं थे। खेतों के भीतर, ठौर-ठौर, पौधों के ठूँठ खड़े थे—इनको गाँव या जंगल के जानवरों ने चर लिया था। जाड़ों में महावट पड़ी नहीं, इसलिए न तो ये पौधे फिर उठ पाए और न उनमें प्राण पड़ पाए जो अब कटने पर आ गए थे।

खेत-खेत में अंतर था। सहकारी समिति के लगभग सबके सब निकृष्ट। इनसे अच्छे निजी परिश्रमवाले। सबसे अच्छे सरकारी फार्मवाले थे। उनसे कुछ ही कम देशराज के, जो उसने सहकारी समिति में शामिल नहीं किए थे।

गाँवटी और जंगली जानवरों के चरने से जो कुछ बचा था उसे अब चिड़ियाँ चुगने के लिए उमड़ पड़ीं। इनको भी सहकारी खेतों पर अधिक अवसर मिला।

पहले थोड़े-से खेतों की कटाई आरंभ हुई, जिनकी फसल पक गई थी और अब कटने पर आ रही थी। फिर एक-दो दिन जो गरम पछाहीं हवा चली तो हरे खेत भी पीले लगने

लगे। कटाई तेजी पर आ गई। आस-पास के गाँवों से, जहाँ या तो रबी की फसल होती नहीं थी या कट चुकी थी, चैतुये (दूसरे गाँव में कटाई के लिए चैत में निकल पड़नेवाले नर-नारी) भीड़-की-भीड़ में इधर-से-उधर दौड़-धूप करने लगे। चैतुओं के समूहों में बैलगाड़ियाँ भी थीं जिन पर आटा पीसने की चक्कियाँ, रोटी-पानी के लिए तसले, बालटियाँ, थालियाँ, ओढ़ने-बिछाने के बिस्तर थे और ढोलियाँ थीं—रात को खा-पीकर थोड़ा गा-बजाकर पेड़ की छाँह में पड़ रहते—बहुत-से ऐसे भी थे जो अपना सारा सामान एक ही पोटली में सिर पर रखे थे।

□

सुहाना के एक सहकारी खेत की कटाई हो रही थी। मजदूर जुटे हुए थे। जवान और बूढ़े फटे साफे बाँधे और फटी मैली-कुचली धोतियाँ पहने, नंगी देह हँसिए-पर-हँसिए चलाने में व्यग्र थे। जवानों की नसें और बूढ़ों की हड्डियाँ धूप में फड़क-फड़क जा रही थीं। स्त्रियाँ कँछोटे लगाए चैत के गीत गा-गाकर, कटाई पर चिपटी हुई थीं। उनकी काँच की चूड़ियाँ और काँसे के पटेले खड़क-खड़क जा रहे थे, मानो गीत की लय को ताल दे रहे हों। आठ-आठ दस-दस बरस के बालक तक काम पर पिले थे। मजदूरों में छदामी और उसके परिवार के लोग भी थे। मजूरी में इनको पैसे नहीं मिलने थे, अन्न मिलना था, जिसका पड़ता पैसों की सामान्य मजूरी से ढाई गुना-तिगुना बैठता था। जितना काट लें उसके अनुपात में उतना कटा हुआ अन्न ले जाएँ। निगरानी बनमाली कर रहा था, इस खेत के निकट ही उसका एक निजी खेत था जिसकी कटाई इसके बाद ही होनी थी।

खेत कट गया और भोजन का समय हुआ। मजदूरों ने निमक-मिर्च की चटनी, किसी को भाग्य से कैथ मिल गया सो उसकी खटाई और गेहूँ-चने की सूखी रोटी बड़े स्वाद के साथ खाई। बनमाली का भोजन डिब्बे में था। वह मजदूरों को अविलंब अपने खेत पर ले जाना चाहता था। दोनों खेतों की कटाई की मजूरी संध्या समय एक साथ बँटनी थी।

खाने के बाद ही मजदूरों को बनमाली अपने खेत पर ले गया। मजदूरों के साथ उनके छोटे-छोटे बच्चे भी दौड़ गए। कोई सूखी रोटी का टुकड़ा अब भी चबा रहा था, कोई उसे मुँह में डाले चूस रहा था। बनमाली की निगरानी में यहाँ अधिक तत्परता थी। डाँट, फटकार, बढ़ावा, पुचकार सभी काम में लाए जा रहे थे। मजदूर वैसे भी सन्नद्ध थे, ज्यादा अन्न मिलने के लोभ में और भी झपटकर काम करने लगे।

बनमाली ने छदामी से अनुरोध किया, 'जरा तुम देखे रहना, मजूरी तो काफी देंगे ही, काम भी अच्छा होना चाहिए।'

छदामी को निगरानी मिल गई तो उसने और उसके परिवारवालों ने अपना काम ढीला कर दिया, सभी हुक्म चढ़ाने लगे। बनमाली ने भोजन किया और निगरानी पर आ

गया। छदामी पर मुखियायी सवार हो चुकी थी, इसलिए उसने हँसिया तो कम चलाया, जबान ज्यादा चलाई। साँझ के समय जब मजदूरी बँटी, बनमाली ने पहले सहकारी समिति से आधे से अधिक दिन की मजूरी दे दी। चौथाई या तिहाई जो रह गई थी, अपने खेत के अन्न से चुकाई।

छदामी ने कुछ अधिक माँगी।

'तुमने और तुम्हारे घर के लोगों ने सबसे कम काम किया, फिर भी मजूरी भरपूर दी। और, मेरे खेत पर काम भी बहुत कम हुआ, क्योंकि दिन ही कितना रह गया था? खाने-पीने में घड़ियाँ गुजार दीं, फिर तुमने मजदूरों से झंझट किया सो हमको कसर लग गई।'

छदामी ने मुँह डाल लिया।

बोला, 'जैसे आप जानो, पर हमने काम भी तो करवाया। नहीं तो आपका पूरा खेत इतनी जल्दी कैसे कट जाता?'

छदामी सुहाना की सहकारी समिति का पंच था। बनमाली ने बात मान ली—

'अरे भाई, तुमको दुखी नहीं करना चाहता, कुछ और ले जाओ। मेरे घर रहा या तुम्हारे घर पहुँचा, एक ही बात है।' बनमाली ने फिर भी थोड़ा-सा ही अपने खेत से दिया, बाकी सहकारी अन्न के ढेर से!

कटी हुई फसल गाड़ियों में भरवा के बनमाली ने खलिहानों में पहुँचा दी।

□

बाँगुर्दन में टहलराम सहकारी समिति के खेत कटवा रहा था जिनमें उसी का चक सबसे बड़ा था। मजदूर उसी मुस्तैदी के साथ काम कर रहे थे। उनमें एक हरको थी, दूसरा दमरू। हरको की मुस्तैदी में कुछ चपलता थी। वह हँसते-मुसकराते काम कर रही थी। जब से वह ससुराल से कुट-पिटकर आई, तभी से उसमें यह लक्षण अधिक दिखाई पड़ने लगा था। कोई कहता—तभी ससुराल में नहीं निभ सकी। कोई कहता—जवानी में मस्ता गई है। स्त्रियाँ अपना मत प्रकट करतीं—दूसरा घर बसाने की फिकर में है, स्वयंवर करनेवाली है। कोई कहती—चाल-चलन बिगड़ गया है। कोई कुछ, कोई कुछ।

हरको के कानों में यह सब पड़ चुका था, परंतु उसने प्रतिवाद करने के लिए सिर नहीं उठाया। लोगों को अपने-अपने मत में विश्वास होने लगा।

कभी इधर, कभी उधर, हरको काम करते-करते उछल-सी रही थी। हँसिया खूब चला रही थी, पर टहल को यह अच्छा नहीं लग रहा था। उसने हरको को चेताया। वह दमरू के निकट काम करने लगी। स्त्रियाँ उससे कुछ दूर थीं, पर गाने में वह उनका साथ दे रही थी।

'तुम्हारा गला बड़ा मीठा है, हरको।' दमरू ने कहा।

'और गीत के बोल?' हरको ने पूछा।

'बहुत प्यारे।'

'तुम्हें अच्छे लगे?'

'बहुत।'

'काम तो ठीक कर रही हूँ न?'

'बिलकुल।'

'फिर भी टहल बाबू ने टोका-टाकी कर ही दी!'

'अपने ही हैं। उनका बुरा न मानो।'

'मैं तो किसी का बुरा नहीं मानती।'

'मैं कुछ कहूँ तो शायद बुरा मान जाओ।'

हरको मुसकराकर गाना गाने लगी। जब अपनी कड़ी पूरी कर ली, बोली, 'बुरा क्यों मान जाऊँगी? तुम तो बहुत भले हो।'

'घर बसाओगी?' दमरू ने बेधड़क कहा।

'कहाँ?' हरको ने हँसिया चलाते-चलाते पूछा।

'इसी गाँव में।'

'मायके में! गाँववाले क्या कहेंगे?'

'क्या कहेंगे, गाँववाले चुपचुप जो कुछ किया करते हैं उससे तो तुम्हारा अपने गाँव में ही घर बसा लेना अच्छा।'

'किसके साथ?'

दमरू हिचक गया। अधिक दत्त चित्त होकर हँसिया चलाने लगा। दूसरी ओर मुँह कर लिया। थोड़ी देर में दोनों फिर निकट आ गए।

हरको ने मुसकराकर कहा, 'बतलाया नहीं?'

'बतलाऊँगा, कटाई के लिए कल यहीं आओगी न?'

'कल दिन-भर घर पर काम है, परसों बटोले के खेत पर जाऊँगी।'

'मैं भी पहुँचूँगा। और कहीं तो न जाओगी?'

'जैसे?'

'जैसे देशराज के खेतों पर। न जाने तुम कहाँ होगी और मैं कहाँ।'

'वहाँ नहीं जाऊँगी। बटोले के खेत पर जाऊँगी।'

'बटोले के किस खेत पर?'

हरको ने खेत का नाम बताया।

□

बटोले ने अपने जो खेत बाँगुर्दन समिति में लगाए थे, उनमें से एक दूर और अलग था। दमरू के जिम्मे उसकी कटाई और ढुलाई की गई। कटाई के लिए उसने अपने साथ कुछ मजदूर लगा लिए और ठीक समय पर काम समाप्त कर लिया। ढुलाई उसी की गाड़ी से होनी थी, जिस पर बैठकर वह सवेरे आया था। बैलों के लिए घास के आठ-दस पूले ले आया था जिन्हें वे कभी के चर चुके थे।

कटाई हो जाने पर खेत से अनाज इकट्ठा करके गाड़ी में भर दिया गया। इसके बाद मजूरी चुकाई। दमरू ने अपने लिए उतनी ही ली जितनी दूसरों को बाँटी थी।

जब मजदूर चलने को हुए, एक ने उनसे कहा, 'जोत लो गाड़ी और चलो। थका हुआ हूँ, मैं भी उस पर कहीं लटक जाऊँगा।'

दमरू ने नाहीं कर दी, 'अनाज का बोझ ही मेरे दुबले बैलों के लिए बहुत है, पैदल चले जाओ, घर दूर नहीं है।'

दूसरों के साथ वह मजदूर भी चला गया।

दमरू ने बैलों की तरफ देखा। वे भूख के मारे होंठ चाट रहे थे; आँखों में निहोरा था। दमरू ने इधर-उधर देखा और गेहूँ-चने की कटान का एक बड़ा बोझ गाड़ी में से खींचकर बैलों के सामने डाल दिया। जब तक बैलों ने अंतिम तृण तक नहीं चर लिया, दमरू चौकस बना रहा।

□

सरकारी फार्म की कटाई का काम मजदूरों से बहुत कम, मशीनों से कहीं अधिक लिया जा रहा था। फसल मशीनों द्वारा काटे जाने योग्य रकबे में नहीं थी। मजदूर ज्यादा सस्ते पड़ते, परंतु मशीनों की कटाई का प्रदर्शन करना था, इसलिए चलाई जा रही थीं। तमाशा देखनेवाले आए और बहुत थोड़ी देर ठहरकर चले गए। केवल बच्चे देखते रहे। इनमें स्कूल के विद्यार्थी अधिक थे। फसल की कटाई की छुट्टी होने के कारण स्कूल बंद थे। दूसरों को अवकाश ही कहाँ था? आने-जानेवाले चैतुये अवश्य मशीनों के आश्चर्य को देखने के लिए कुछ अधिक समय तक रम जाते थे।

एक समूह में हरको का पति जोधा था। मशीनों की सर्र-सर्र कटाई का काम देखकर प्रफुल्लता के साथ अपने संगी से बोला, 'इधर सपाटे के साथ काटती जाती हैं, उधर ढेर का ढेर करती जाती हैं, जैसे कोई देवी-देवता हों!'

संगी ने कहा, 'जैसे कोई बड़ा बैल इधर चरता जाता हो, उधर गोबर करता जाता हो।'

'खेती के लिए यहीं भूमि मिल जाय तो हम सब आ बसें,' जोधा ने इच्छा प्रकट की।

'और वह—तुम्हारी बहुरिया हाथ न आई तो लौटकर फिर गाँव के गाँव।'

'पड़ेगी कैसे नहीं?'

'फिर भाग खड़ी होगी।'

'अब की बार उसका धड़ भागकर आएगा।'

□

बटोले के खेतों में दो दिन की कटाई का काम रह गया था। कुछ चैतुये काम पर लगे थे, कुछ गाँव के लोग। मंटू था, हरको, दमरू। बटोले देखभाल पर था। हरको कटाई करते-करते दमरू के निकट आ गई। पहले जहाँ थी वहाँ मुसकान और बातें, इसके पास आई तो यहाँ भी वही मुसकान और बातें।

दमरू अवसर निकालकर बोला, 'तुम्हारा हाथ तो थकता ही नहीं।'

'बालों का काटते चले जाना अच्छा लगता है।'

'अब कहूँ वह बात?'

'कौन-सी?'

'अरे! इतनी जल्दी भूल गई!!'

'कहो न, कौन-सी?'

'घर बसानेवाली बात।'

'हाँ—आँ। कहो।'

बगल से बटोले आ गया। उसको भी देखकर हरको मुसकराई।

बटोले ने कहा, 'उधर एक माँग खाली पड़ी है। वहाँ चलो हरको। तुम उसे जल्दी निबटा लोगी।'

हरको तुरंत खड़ी हो गई।

दमरू बोला, 'मैं भी चलूँ?'

बटोले ने उत्तर दिया, 'नहीं, तुम यहीं बने रहो।'

हरको बटोले के साथ चली गई। दमरू उसकी ओर देखता रहा—शायद लौटकर एक बार देखे। हरको नहीं मुड़ी। बटोले उसे माँग पर लगाकर पास बैठ गया।

थोड़ी देर बाद बटोले ने कहा, 'तुम जैसी निडर हो वैसी ही फुर्तीली और अच्छे स्वभाववाली।'

'हूँ—ऊँ।' हरको हँसी। दाँतों के बीच की खाली जगह बटोले को कुरूप नहीं लगी।

'मुझे तो बहुत अच्छी लगती हो।'

'सबकी भली बनकर चलना चाहती हूँ, नहीं तो जैसे वहाँ डायन बनाई गई, यहाँ चुड़ैल कर दी जाऊँगी।'

'अरी नहीं, तुम सबको प्यारी हो।'

'वे लोग आ जाएँ तो फिर वहीं के लिए ठेल दोगे।'

'मैं अपने बस तो कभी नहीं होने दूँगा ऐसा।'

'और पंचों ने हठ पकड़ा तो?'

'तब की बात और थी, अब की नहीं होने पाएगा। देखूँगा मैं।'

□

जिन खेतों की कटाई कुछ विलंब से हुई उनमें देशराज के भी थे। उसके खेतों पर चैतुओं और गाँव के भी मजदूरों की बड़ी भीड़ थी। कारिंदा कुंजीलाल और जगनू डटकर काम करवा रहे थे। दोपहर के खाने-पीने की भी छुट्टी एक साथ नहीं दी गई। मजदूर टोलियों में रोटी खाने जा सके। खाने में किसी भी टोली को जरा-सी देर हुई कि वे दोनों गालियाँ दे उठे। किसी-किसी के ऊपर हाथ भी चला दिया।

'कमबख्त कामचोर कहीं के। काम के नाम पर बगलें झाँकते हैं, मजूरी लेंगे बाँहों भर-भर बालें!'

उस टोली में उस दिन जोधा और दमरू का साथ पड़ गया था। दमरू खा-पीकर पहले आ गया, जोधा जरा पीछे आया। जोधा को गाली अखरी। सहजकोपी था ही, उखड़ पड़ा।

बोला, 'ओ हो! जैसे कहीं के राजा हो!! बड़ा सोना-चाँदी तो भर देते हो न हमारी बाँहों में!!!' और काम पर लग गया।

कुंजीलाल का भी पारा गरम हो गया, परंतु वह उस गरम पारे में से अपने लाभ की बात निकालने की हिकमत पहले सोचता था—शाम को इसकी मजूरी के फूलों में से अपने लिए कुछ कटती न की तो बात काहे की!

दमरू को अचंभा हुआ कि एक साधारण चैतुये की बात को कारिंदा पी कैसे गया। उसने पूछताछ की, कहाँ का है यह। गाँव-नाम और बाँगुर्दन नातेदारी की बात सुनकर उसने सोचा, अच्छा तो यह है हरको का घरवाला! जिसने बिचारी के हाथ-पैर तोड़ डाले थे। बड़ा पाजी है।

जोधा रोगी तो था ही। सवेरे से काम करते-करते, रोटी खाने के उपरांत, काम पर तुरंत आ लगने के कारण दो घड़ी पीछे ही ढीले-ढीले हाथ चलाने लगा। कुंजीलाल की आँख उस पर बल खाए बैठी थी।

चिल्लाया, 'क्यों रे पाजी! सोना-चाँदी ऐसे ही समेट लेगा बाँहों में?'

जोधा ने अपने से धीमे स्वर में कहा, 'पाजी होगे तुम।' जोर से बोला, 'क्या दिखाई नहीं पड़ता? जैसे और सब हँसिया चला रहे हैं वैसे ही मैं भी चला रहा हूँ।' उसने दमरू की ओर देखा जो उसकी बगल में काम कर रहा था।

दमरू को बुरा लगा—मुझे अपनी पाँत में बिठला रहा है!

कुंजीलाल जोधा की ओर थोड़ा-सा बढ़कर थम गया। गरज पड़ा—'शाम को मजूरी काटूँगा तब रोओगे बाप को।'

'काटोगे तो—बड़े आए काटनेवाले!'

'अरे तो क्यों वैसे ही बकबक किए जा रहे हो? किए जाओ अपना काम।' दमरू ने कहा।

'यह आया इनका वकील! मत बोल हमारे बीच में।' जोधा ने दमरू को डाँटा।

'कैसा है रे, कैसा नहीं है?' दमरू कड़का।

कुंजीलाल को एक तगड़ा समर्थक मिल गया।

'देखा भैया दमरू, कितना उजड्ड है यह!' कुंजीलाल ने दमरू को उभाड़ा।

'तुम होगे उजड्ड।' जोधा के मुँह से सहसा निकल पड़ा।

काम करनेवालों के हँसिए रुक गए।

'जाओ मुनीमजी, अपना काम देखो। यह तो गँवार है।' दमरू ने क्षुब्ध स्वर में कहा।

जोधा न माना—

'तू गँवार, तेरा बाप गँवार!' जोधा खड़ा हो गया।

दमरू को भी देर नहीं लगी। तड़क गया—'एक थप्पड़ का तो है नहीं, बातें मारता है जैसे नाहर हो। लगाऊँ एक तो छठी की याद आ जाएगी।'

'मैं एक लात में तेरी सब मुटाई बाहर निकाल दूँगा।' जोधा क्रोधांध होकर बोला।

कुंजीलाल उन दोनों के बीच में आ गया। इतने ताव में था कि उसने जोधा को एक चाँटा मार दिया। जोधा ने उसकी छाती पर हँसिए की पीठ ठोक दी। कारिंदा पीछे हटा। दमरू जोधा का हाथ पकड़ने के लिए झपटा, जोधा ने उस पर धार की तरफ से हँसिए का वार किया। लोग बीच-बचाव के लिए हल्ला करते हुए इधर-उधर से दौड़ पड़े। जोधा और दमरू गुथ पड़े थे। कुछ ही क्षणों में दमरू के हँसिए की कई करारी चोटें जोधा के सिर पर पड़ीं और वह चीखकर गिर पड़ा। दमरू भी थोड़ा-सा घायल हो गया था, परंतु बहुत थोड़ा। तो भी सिर और पीठ से उसके खून निकल रहा था।

जोधा के सिर से रक्त की धार बह पड़ी। सारा काम बंद हो गया। रौरा मच गया। इतना शोर कि दूर-दूर तक सुनाई पड़ा होगा। जगनू देशराज के पास हवेली दौड़ा गया।

जगनू ने सूचना दी, 'मालिक, बलवा हो गया है। कुछ मजदूर कुंजीलालजी को मारे डाल रहे हैं।'

देशराज ने बहुत थोड़े-से प्रश्न करने के बाद बंदूक उठाई और जगनू के साथ चल दिया।

जोधा के साथी भी ताव में आ गए थे, पर वे थोड़े थे, अन्य मजदूर बखेड़े से दूर रहना चाहते थे, केवल हल्ला मचाकर घटना की आलोचना अपने-अपने दृष्टिकोण से कर रहे थे। कोई कुंजीलाल को बुरा कह रहा था, कोई दमरू को और कोई जोधा को।

'कोई तो धीरज धरता, जरा-सी बात पर लड़ बैठे!' उन सबकी आलोचना का सार था।

शोरगुल बाँगुर्दन में भी सुनाई पड़ा और थोड़े ही समय उपरांत किसी ने सूचना दी, 'कुंजी कारिंदे ने दमरू को बहुत पीटा है!'

दूसरे ने समाचार दिया, 'मंटू के बहिनोई जोधा, दमरू और कुंजीलाल की लड़ाई हो रही है।'

टहलराम और बटोले साथ-साथ गए। मंटू जरा पीछे।

घटनास्थल पर टहल और बटोले पहले पहुँचे। मजदूर भिन्न-भिन्न दिशाओं में हाथ हिला-हिलाकर चिल्ला रहे थे। कुछ कुंजीलाल को घेरे थे, कुछ दमरू को, थोड़े-से अचेत जोधा को। बटोले और टहलू को बाँगुर्दन की दिशा से आते देखकर ये चीख पड़े—'कुंजीलाल मुनीम ने मरवा डाला! कुंजी मुनीम ने मरवा डाला!!'

मुसीबत आती देखकर कुंजी तेजी के साथ हटा।

'मुझे इस गँवार ने मारा! मेरी बेइज्जती की!!' चिल्लाता जा रहा था।

दमरू का क्रोध काफूर हो चुका था, परंतु वह घबराहट या अनिश्चय में डाँवाँडोल न था। हँसिया कमर में खौंस लिया, टहल और बटोले की ओर दो-तीन कदम बढ़कर बोला, 'भले आ गए!'

उन दोनों ने अचेत जोधा को नहीं देख पाया था, दमरू के खून को देखकर लाल पड़ गए।

'पकड़ लो मुनीम को! भागने न पावे!!' टहल ने जोर से कहा।

बटोले दौड़ा। मुनीम भी सरपट हुआ।

'जरा सुनो!' दमरू के बैठे गले से निकला। टहल ने नहीं सुना। वह भी बटोले के पीछे-पीछे गया।

जोधा का दम टूटने लगा।

उधर से बंदूक लिए देशराज जगनू के साथ आ गया।

मुनीम ने हाहाकार किया, 'बचाना मालिक! मुझे बचाना!!'

देशराज चिल्लाया, 'खबरदार जो आगे बढ़े! छाती फोड़ दूँगा!!'

बटोले और टहलराम ठमठमा गए। देशराज के निकट आते ही मुनीम हाँफता हुआ उसके पीछे जा खड़ा हुआ।

देशराज ने बंदूक सुधिया ली।

बोला, 'खबरदार!'

बटोले रुक गया। टहल धीरे-धीरे बढ़ा।

'बंदूक मेरी छाती भले ही फोड़ दे, पर सारे समाज की छाती नहीं फोड़ सकती।

मुनीम ने दमरू के मरवा डालने में कसर नहीं लगाई है। वह खूनाखून हो गया है।' टहल ने कहा।

देशराज ने बंदूक नीची कर ली।

मुनीम ने हाँफते-हाँफते सफाई दी, 'दमरू को मैंने नहीं, एक मजूर ने घायल किया है जिसको दमरू ने बेतरह मारा है। वहीं पड़ा सिसक रहा है वह!'

मंटू और उसके साथ बाँगुर्दन का एक मजदूर दौड़ते हुए आए।

मंटू जल्दी-जल्दी पुकार रहा था, 'अरे यहाँ आओ, यहाँ आओ! मेरे बहिनोई जोधा को मार डाला है किसी ने!! उसका दम टूट रहा है!!!'

देशराज, बटोले, टहलराम—सबका दिमाग चक्कर खा गया। समझ में नहीं आ रहा था कि बात क्या है। मुनीम का कंठ तो सूख ही चुका था, कलेजा भी काँपने लगा। वह सिर पकड़कर बैठ गया।

मंटू पास आ गया। बटोले ने पूछा, 'क्या बात है?'

काँपते-फफकते स्वर में मंटू बोला, 'डॉक्टर साहब को बुला लो, मेरा बहिनोई मर रहा है!'

'किसने मारा?' टहल ने प्रश्न किया।

'किसने? किसने?' देशराज ने पूछा।

मंटू बोला, 'मुझे नहीं मालूम। मैं तो उसकी बुरी हालत देखकर सीधा टहलबाबू के लिए चला आया।'

बैठे धीमे स्वर में मुनीम ने बतलाया, 'दमरू ने हँसियों से मारा है, दमरू ने।'

'दमरू ने!' बटोले और टहल ने एक साथ आश्चर्य प्रकट किया।

'तब फिर दमरू को किसने मारा?'

जगनू ने उत्तर दिया, 'मैंने तो दूर से देखा, दमरू को उसने मारा जिसे फिर दमरू ने मार गिराया।'

'क्यों झूठ बोलते हो? दमरू की हिम्मत थी?' टहलराम ने जगनू की भर्त्सना की, परंतु उसका क्रोध गड़बड़ में कहीं चक्कर खा रहा था, स्वर में तीखापन न था।

देशराज बोला, 'वहीं चलकर देखूँ, क्या बात है।'

'डॉक्टर साहब को बुलवा लीजिए।' मंटू ने अभ्यर्थना की।

देशराज ने जगनू को नहीं भेजा। मंटू से कहा, 'दौड़ जाओ उनके पास। कहना, जल्दी चलिए।'

मंटू चला गया।

देशराज जगनू के साथ घटना-स्थल की ओर बढ़ा।

बटोले बोला, 'मुनीम न भागने पावे।'

देशराज ने डाँटा 'ओ हो तुम भी!'

'ठीक तो कहते हैं बटोले। मुनीमजी फरार हो गए तो फिर इन्हें कहाँ ढूँढ़ते फिरेंगे?' टहल ने कहा।

देशराज उपेक्षा के साथ चल पड़ा। मुनीम से कहा, 'आओ जी, मेरे साथ। तुम्हारा बाल बाँका न हो सकेगा।'

वे सब घटना-स्थल की ओर बढ़े।

सुहाना और बाँगुर्दन में समाचार नाना प्रकार के पंख लगाकर पहुँचा।

'देशराज बंदूक लेकर गए हैं टहल को मार डालने के लिए! बटोले और मंटू को तो उनके आदमियों ने लाठियों से ढेर कर ही दिया है!'

'जोधा को मुनीम ने मरवा डाला!!'

'मुनीम बेभाव पिटा है। देशराज बंदूक लेकर गए, तो उनकी बंदूक छीन ली गई है और उनका अब रोम-रोम तोड़ा जा रहा है।'

सुहाना में बंदूकों के तीन लाइसेंस और थे—एक बनमाली के पास। बाँगुर्दन में दो थे। ये सब टोपीदार बंदूकों के थे। सुहाना और बाँगुर्दन के सभी बंदूकोंवाले बंदूक लिए झगड़े की जगह जा पहुँचे; केवल बनमाली बंदूक नहीं ले गया।

देशराज, टहल, बटोले इत्यादि जोधा के पास पहुँच गए थे जब दोनों गाँव के बंदूकवाले झपटते हुए आए।

'क्या है? क्या हुआ?' सामान्य प्रश्न था। ठीक-ठिकाने की बात कोई नहीं कह पा रहा था। कोई मुनीम को दोष दे रहा था, कोई दमरू को, कोई जोधा को।

जोधा के दो-एक नातेदार, जो चैतुओं के समूह में उसके साथ आए थे, रो रहे थे। दमरू नीचा सिर किए सन्न बैठा था।

मुनीम से सवाल अधिक किए जा रहे थे। वह अब रोया, या रोता मालूम पड़ा।

उसने बताया, 'मुझे जोधा ने गाली दी, और जोर से तमाचा मारा। मेरा गाल देख लो, अब तक सूजा हुआ है।'

उसका गाल थप्पड़ से हो अथवा मलने के कारण ही, लाल जरूर था।

मुनीम उसी तरह कहता गया, 'दमरू ने बीच-बचाव किया तो उस पर टूट पड़ा। फिर दोनों में चल पड़ी।'

'नहीं, पहले मुनीमजी ने इसे चाँटा मारा। फिर—' दमरू धीरे-धीरे अपनी बात कहना चाहता था कि मंटू सनेही को लिए आता दिखाई पड़ा। लोग उसी ओर देखने लगे। बनमाली पूरी बात सुनना चाहता था। उसने पूछा, 'फिर क्या हुआ?'

'फिर उसने मुनीमजी को मारा। मुनीमजी ने बचाने के लिए मुझे टेरा, तो जोधा मेरे ऊपर बदल पड़ा—' दमरू इतना कह पाया था कि बटोले बोला, 'और मुनीम ने किसी

का हँसिया छीनकर उसे घायल कर डाला।'

'तुम बीच में मत बोलो जी।' बनमाली गरम हो गया।

'इसको झूठी बनाए बिना चैन कहाँ!' देशराज चिल्लाया।

'झूठ की रचना तो आपके यहाँ होती है—' टहल भी उतने ही जोर के साथ बोला। सनेही आया कि दोषारोपण की झड़ी-सी फिर लग गई। सनेही भीड़ को एक तरफ करता हुआ जोधा को देखने के लिए झुका और फिर सीधा खड़ा होकर पैने स्वर में बोला, 'थोड़ी-सी देर के लिए चुप रहिए तो मैं इसे देख लूँ।'

लोग आगे की बात जानने के लिए चुप हो गए। सनेही ने अच्छी तरह देख-भाल करके निःश्वास छोड़कर कहा, 'भेजा फट गया है। मरने में क्षणों की ही देर है।'

फिर दोषारोपण का तूफान-सा आया। दमरू के काटो तो खून नहीं! सिर पकड़कर कराहने लगा। लोगों को शंका हुई, क्या यह भी जा रहा है?

'डॉक्टर साहब, इसको भी देख लीजिए। बुरी हालत मालूम होती है!' टहल ने अनुनय की।

सनेही ने उसकी भी जाँच की।

'चोटें साधारण हैं, चिंता की कोई बात नहीं।'

जोधा ने अंतिम हिचकी ली और समाप्त हो गया। व्याख्या, आलोचना, बहस—सब खतम हो गई।

सनेही ने कहा, 'पुलिस को तुरंत चौकीदार के द्वारा समाचार देना चाहिए।'

मजदूरों ने देखा, मजूरी खटाई में पड़नेवाली है। उन्होंने तकाजा किया—'हमारी जितनी बैठे, दे दो। अब काम नहीं हो सकेगा, दिन भी थोड़ा ही रह गया है।'

मुनीम उदार हो गया, 'अरे भाई, आज की पूरी ले जाओ। कल फिर आ जाना।'

'कल की कल से लगी।'

टहल और उसके पक्ष के लोग मुनीम पर आँख गड़ाए रहे—कहीं खिसक न जाय। देशराज ने दमरू को अपने आदमियों से घिरवा लिया। बंदूकवाले वहाँ थे ही।

खेत से अनाज इकट्ठा करवा लिया गया और मजूरी बँटने के उपरांत गाड़ियों से खलिहान में भिजवा दिया गया। जोधा की लाश गाँव की अथाई पर भेज दी गई। मंटू उसके साथ गया। देशराज, सनेही, टहल, बटोले और मुनीम, दमरू को घेरे धीरे-धीरे चले। बंदूकवाले साथ में।

संध्या होने के पहले विक्रम अपने घर का काम निबटाकर डगें मारता उनके पास आ गया और साथ हो गया। उस समय उन लोगों में उसी प्रसंग पर बात चल रही थी।

विक्रम बोला, 'बटोले ने मेरा हाथ तोड़ डाला सो इन लोगों ने मामला न चलने दिया, अब इसको भी पचा जाएँगे।'

'तुमने ज्यादती की थी; बटोले ने अपनी रक्षा में लाठी चलाई। दोष तुम्हारा था, इसलिए मामला यहीं-का-यहीं ठप हो गया।' टहल ने कहा।

देशराज ने व्यंग्य किया, 'यह भी ठप हो जाएगा। मुनीम ने हँसिया चलाया, एक को मार डाला, दूसरे को घायल कर दिया!' मुनीम में अब उतनी अधीरता नहीं रही थी।

'टहल और बटोले जो कुछ न करवा डालें, थोड़ा है। इन्हीं की गिरोहबंदी के कारण तो जो चाहे धरती को सिर पर उठाए फिरता है।'

टहल को क्रोध आ गया—

'मिहनतकशों के खून सोखने की आप लोगों की बपौती को नष्ट करने के लिए ये लोग तारों तक को तोड़ लाएँगे।'

सनेही ने देखा, दूसरा झगड़ा होनेवाला है। बीच में पड़ गया—'झगड़े की जड़ अवश्य मुनीमजी की जबान ने डाली, पर हाथ और हँसिया चला जोधा के आपे से बाहर हो जाने के कारण। जो कुछ मैंने सुना है उससे तो मैं इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ।'

टहल को यह व्याख्या अच्छी लगी और देशराज को बुरी।

बटोले और विक्रम कुछ कहने को उकता रहे थे। डूबते हुए सूर्य की किरणों में उनकी आँखों के डोरे भयानक हो गए थे।

सनेही बोला, 'जो कुछ अभी-अभी हो चुका है, वह इन दोनों गाँवों के कलंक के लिए कम नहीं है।'

टहल ने कहा, 'गाँव सब ऐसे ही हैं। कारण झगड़ों की वह सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था है जो झगड़े उत्पन्न करती है। इसका सुधार करने के लिए—'

सनेही उसके कंधे पर हाथ धर के मिठास के साथ बोला, 'मैंने कहा था न कि मेरी आपकी बातें इस विषय पर होंगी और हम सब मिलकर काम कर सकेंगे। समय आ गया, मानव प्रकृति जैसी है, उसके सुधार की जरूरत है।'

ये सब गाँव के पास पहुँच रहे थे। गाँव के नर-नारी सकपकाए-से घूम रहे थे। इन लोगों की बातचीत बंद हो गई, यद्यपि टहलराम कुछ कह डालने के लिए आतुर था।

□

पुलिस आई। कानूनी कार्रवाई हुई। दमरू पकड़ लिया गया। मुनीम की जमानत हो गई। सदर में चीड़-फाड़ के बाद जोधा की लाश उसके घरवालों को दे दी गई। जिला मजिस्ट्रेट ने दोनों गाँवों को झगड़ालू निर्धारित करके सिवाय बनमाली के सबके हथियार मालखाने में रखवा लिए—देशराज के भी। बटोले, टहलराम, देशराज और विक्रम के विरुद्ध शांति बनाए रखने के हित में जमानत मुचलके की आज्ञा निकाल दी।

जोधा के देहांत पर हरको केवल एक दिन के लिए ससुराल गई और बाँगुर्दन लौट आई। मंटू की जाति के पंचों में इस पर खुसफुस हुई और हरको तथा मंटू को

जात-व्योहार से तब तक के लिए बंद कर दिया जब तक कि वे पंगत न दे दें। टहल ने मंटू का पक्ष लिया, पंचों को समझाया, पर वे न माने—'जात की बात है बाबू, हरको ससुराल में तेरहवीं करके नहीं आई!' मंटू की बिरादरी में दो दल हो गए। एक दल को बनमाली ने उकसाया।

बनमाली का आत्मविश्वास बढ़ा। उसने एक दिन छदामी से कहा, 'देखते हो, बड़े-बड़े अफसर तक मुझे कितना मानते हैं!'

गाँववालों के मन पर उसके आतंक की मात्रा में वृद्धि हो गई थी।

छदामी बोला, 'सो तो है ही।'

छदामी का भूमि संबंधी मामला अभी नहीं निबटा था।

: ३४ :

खलिहानों में अनाज पहुँच गया। सूखने में देर थी। किसी-किसी का चना सूख गया, उसकी दाँयँ शुरू हो गई।

सुहाना और बाँगुर्दन पर जोधावाली दुर्घटना की काली छाया-सी छाई हुई थी। अंजना और देशराज चिंताग्रस्त थे। कारिंदा परेशान। बाँगुर्दन समिति का काम लँगड़ा रहा था। दमरू जेल में, टहल और बटोले पर जमानती मुचलके की कार्रवाई, मंटू दुखी। हरको के होंठों की मुसकान चली गई। दुर्घटना के पहले हरको जिस पुरुष के भी संपर्क में आई, उसने समझा कि मेरी ओर आकृष्ट है। यह किसी ने न सोचा कि ससुराल और पंचों के अत्याचार से बचने के लिए मुसकान और मीठे बोल को उसने सहानुभूति संग्रह का हथियार बनाया था—न मालूम कौन किस दिन आड़े आकर काम आवे।

बटोले ने, शायद अपने उचटे हुए मन को सहलाने-थपथपाने के लिए एक दिन हरको की मुसकान को लौटाने का प्रयत्न किया।

'हरको, तुम उदास न रहा करो। उस दिन जब मेरा खेत कट रहा था, मेरी-तुम्हारी कुछ बात हुई थी। ससुराल में तुम्हें कोई सुख नहीं था। काँटा था सो निकल गया। वैसे ही फिर हँसा-खेला करो। मेरी-तुम्हारी खूब पट सकती है।'

'तुम सरीखे बेशर्मों से मेरी कभी नहीं पट सकती। औरतों में राजदुलारी और घाटीवाली, मर्दों में मेरा भाई, डॉक्टर और टहल बाबू के सिवाय मुझे ऐसा कोई और नहीं दिखता जिससे मेरी पट सके।'

बटोले तिलमिला गया। उसको ऐसे चुटीले उत्तर की आशा नहीं थी।

'अरी बाई, मैंने कहा ही क्या है? उदास न रहो, खेत-खलिहान का खूब काम करो, बस।'

'सो तो कर ही रही हूँ, कुछ और भी करूँगी।'

बटोले को भय हुआ—कहीं मंटू या किसी और से कुछ कहती न फिरे। मन में बहुत पछताया और उसे समझाता-बुझाता रहा।

□

दोनों गाँव के मुख्य दलों का वैमनस्य दूर करने के लिए सनेहीलाल ने प्रयत्न किया। देशराज को लाइसेंस जब्ती और शांति बनाए रखने के लिए जमानत मुचलके की कार्रवाई बहुत अखर रही थी। सारी शान मिट्टी में मिलती दिखाई पड़ रही थी—गाँव में बदरौबी हुई, अफसरों में मान घटा और उस व्यवसाय को भी धक्का लगने की आशंका।

टहल ने देखा, गाँव क़ी जनता उससे किनारा काटने लगी है। यदि मुचलके की कार्रवाई किसी राजनीतिक हलचल में हुई होती तो बात ही और थी—प्रभाव बढ़ता, मनपसंद काम करने का मार्ग प्रशस्त होता; लेकिन यह? यह तो गाँव के साधारण फसादियों की श्रेणी में बिठला देगी! स्कूल का चलाना, विद्यार्थियों को अपने बनाए ढाँचे में ढालना, नए जीवन का स्फुरण, कैसे हो सकेगा? कैसे मुँह दिखलाऊँगा?

सनेही का प्रयत्न असफल नहीं हुआ। उन चारों ने अदालत में राजीनामे का कागज पेश कर दिया। जमानत मुचलके की कार्रवाई उठा ली गई। इसमें लगभग एक महीना लग गया। सनेही को प्रतीत हो गया कि अब बेखटके काम होगा। हथियारों की वापसी के लिए भी प्रयास किया गया, परंतु विफल रहा।

□

अधिकांश खलिहानों का चना, अलसी, गेहूँ सूख गया। दाँयँ होने लगी। सुहाना और बाँगुर्दन के जो लोग बाहर चैत काटने चले गए थे, लौट आए; कोई दो पसेरी अनाज बचा लाया, कोई चार और कोई अधिक। यहाँ की दाँयँ करने में इनको भी कुछ मजदूरी मिल गई।

सरकारी फार्म की खेती का रकबा जितना ट्रैक्टरों से जुत सका था, उतने की फसल खलिहानों में सूख जाने पर मशीनों द्वारा बहुत थोड़े समय में दाँयँ करके साफ कर ली गई। मशीनों और नौकरों पर जितना खर्च हुआ था, उससे बहुत कम अन्न हाथ लगा। सरकारी फार्म को संतोष था कि मशीनों के प्रदर्शन से जनता में मशीनी खेती के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया है, इसलिए लाभ-ही-लाभ रहा। अधिकांश जनता सोचती थी—तमाशा अच्छा रहा, हम इसे देख तो सकते हैं, परंतु अपना नहीं सकते।

देशराज की फसल का पुंज सबसे बड़ा था। महींदारों और मजदूरों ने उसे यथासमय लौटा-पलटा था, इसलिए जल्दी सूख गया। उस पर खर्च भी काफी हुआ था। साफ होने के बाद जब अन्न के ढेर लगाए गए तब रिवाजी लोग झोली पसारकर आ गए। चौकीदार, बसोड़, लुहार, बढ़ई, मंदिर का पुजारी, जोशी (ज्योतिष द्वारा आनेवाली

फसल का फलाफल बतानेवाला) इत्यादि। कारिंदे ने मजूरों को तो तंग नहीं किया, पर इस फौज को यथारीति देने में हाथ सिकोड़ने लगा।

पुजारी ने कहा, 'आपकी मुकद्दमे में विजय हो, और किसी को चाहे कम दो, पर हमारा जो बंधान बँधा है वह तो उतना ही मिलना चाहिए; फिर अब की बार फसल भी अधिक आई है।'

जोशी बोला, 'असाढ़ और कुआर में हम पत्रा न खोलें तो किसान मुँहबाए फिरता रहे। मैंने पत्रे में देखा है कि आप मुकद्दमे में बरी होंगे। जय हो काली माई की!'

चौकीदार क्यों पीछे रहता?—'मुनीमजी, थाने में पहली रपट अगर सुधारकर न की जाय तो सब बंटाढार हो सकता है।'

बिचारे बसोड़ ने विनय की, 'हमारा बंधान तो थोड़ा-सा ही है। असाढ़ और कुआर में देवी-देवताओं को रमतूला से जगाना सतयुग से चला आया है। राजा हो, हमें न मारो, देखो।'

कारिंदे ने पहले लुहार और नाई को निबटाया—गतवर्ष की अपेक्षा तिहाई के लगभग दिया। कहा, 'मशीनें चल उठी हैं और कारखाना बन गया है। इस साल इतना दिए देते हैं; अगली फसल पर यह भी बंद।'

बेचारे चुपचाप लेकर चले गए।

पुजारी, जोशी और बसोड़ को पूरा दिया क्योंकि उनका संपर्क देवी-देवता या ग्रह-नक्षत्रों से था! और कुंजीलाल पर वह मुकद्दमा अभी छाया हुआ था।

जब देना-दिवाना काटकर पड़ता लगाया गया, तब बहुत थोड़ा गाँठ में पड़ा। देशराज ने सोचा, अगले साल की पूर्ति हो जाएगी; बंधी के भीतर पानी रमेगा, भूमि की शक्ति बहकर बाहर नहीं जाएगी और कुछ काम मशीनों से लिया जाएगा।

□

सुहाना के अन्य निजी खेती करनेवालों से अन्न का संग्रह करके मंगते सहकारी समिति के खलिहान पर पहुँचे। वहाँ लुहार और बढ़ई को यथारीति मिल गया, परंतु दूसरे कोरे टरका दिए गए। समिति का मंत्री बनमाली वहाँ था।

उसने अपनी बला टाली, 'यह अन्न पंचायत का है, आज साँझ मेंबरों की बैठक समिति भवन में होगी। वहाँ आ जाना। पर आशा बहुत कम है, क्योंकि कुछ लोग, जैसे टहल, खिलाफ रहें।'

वे लोग हठ न कर सके। समझ गए कि यहाँ से कुछ नहीं मिलेगा, बैठक में जाना व्यर्थ समझा। और कोसते चले गए—'सत्यानाश हो जाय इस कापटी सोंटी का!'

समिति भवन बन गया था। साँझ के उपरांत सहकारी समिति की बैठक उसी में हुई। धरनीधर लगभग अपना सारा उधार वसूल कर चुका था, इसलिए उसने समिति से

पदत्याग कर दिया। सनेहीलाल उसकी जगह खजांची चुन लिया गया था। धरनीधर बैठक में नहीं आया। शेष सभी सदस्य और पदाधिकारी उपस्थित थे।

बाँगुर्दन समिति के मुखियों को आमंत्रित किया गया था। वे दर्शकों की हैसियत से सम्मिलित हुए। सहकारी विभाग का एक निम्न कर्मचारी भी, जो समिति का काम चलाने के लिए वहाँ रखा गया था, उपस्थित था।

सबसे पहले उपज में से खर्चा काटा गया। बीज की सवाई निकाली गई।

समिति भवन बनाने के लिए जिला बैंक से रुपया लिया गया था। उसकी पहली किस्त, बैंक से अन्य कार्यों के लिए जो ऋण लिया गया था उसका चुकावरा, सरकारी लगान और जिनके बैल काम में लाए गए थे, उनका किराया। मजदूरों को मजूरी पहले ही दे दी गई थी। बाकी रहे का एक अंश रक्षित कोष में डाला गया। इससे जो बचा, वह था सदस्यों में बाँटे जाने योग्य मुनाफा। जिन्होंने समिति में अपनी भूमि लगाई थी उनको मुनाफे का पचहत्तर प्रतिशत बहुमत से तय किया गया। बहुमत इसलिए कि जो भूमिहीन मजदूर सदस्य थे, उन्होंने सोचा, न हमारी भूमि है और न पैदावार में हमारा कोई हक, इसलिए उन्होंने न हाँ की और न नाहीं, केवल सनेही ने आक्षेप किया—

'इसको सहकारिता नहीं कह सकते। किसानों से भूमि का लगान जितना मिलता उससे यह मुनाफा कहीं ज्यादा बैठेगा।'

टहल बोल उठा, 'दूसरों के निजी खेतों पर मजदूर खेती करे तो वे उसके हो सकते हैं, परंतु सहकारी समिति में चाहे कोई कितनी भी करे, उसे मुनाफे में से कुछ न मिले! वह अंधेर है!!'

देशराज समिति का प्रधान था। उसने व्यंग्य किया, 'डॉक्टर साहब के पास कोई जिमीन नहीं, इसलिए उन्होंने समिति के जो हिस्से खरीदे थे उन पर बहुत कम मुनाफा मिलेगा। आपकी सारी भूमि बाँगुर्दन समिति में लगी हुई है, देखें आप कितना छोड़ देते हैं।'

सनेही हँसा, 'मैंने समिति में लगाया ही कितना रुपया है। सिद्धांत की एक बात कही।'

बनमाली बोला, 'धरती ही तो अन्न देती है; समिति को जितनी जिमीन लगावे, उतनी पैदावार पावे।'

टहल ने कहा, 'उस पसीने का मूल्य कुछ नहीं, जिसके पराक्रम से धरती अन्न देने के लिए मजबूर होती है?'

सनेही नहीं चाहता था कि इस विवाद का मूल्य उसका कोई स्वार्थ समझा जाए। उसने सुझाव दिया, 'यदि गुंजाइश हो तो मजदूर मेंबरों को कुछ बोनस अवश्य दीजिए, नहीं तो वह शरीर के लिए भोजन अपने रक्त से ही खींचेगा और घुल जाएगा।'

सहकारी विभाग के कर्मचारी ने बताया, 'कायदों में है, बोनस दिया जा सकता है।'

हिसाब लगाया गया तो उनके लिए पाँच रुपया प्रतिशत बैठा। इसी का देना तय हुआ।

टहल ने हँसकर कहा, 'यह बोनस नहीं बोगस, बल्कि बोंगस है!'

मजदूर इसे नहीं समझे। जो मिल जाए वही बहुत।

देशराज ने पूछा, 'आपकी समिति का अधिवेशन कब है?'

टहल ने तारीख और समय बताया क्योंकि लाँक अभी सूखा न था।

'आप लोगों को आमंत्रित करूँगा। डॉक्टर साहब, जरूर आइएगा। आपने उस दिन वचन दिया था।'

सनेही ने आश्वासन दिया।

इसके बाद भूसा बाँटा गया। जिस अनुपात में अनाज बँटा, उसी में भूसा भी।

बनमाली ने कहा, 'कुछ प्रसंग और हैं, अब उनको ले लिया जावे।'

पहला प्रसंग था सदस्यों की संख्या बढ़ाने का; क्योंकि जितने अधिक सदस्य हों, बैंक उनकी संख्या और हैसियत के अनुपात में उतना ही अधिक रुपया उधार देगा। चूँकि भूमि पर पचहत्तर प्रतिशत मुनाफा बाँटा गया, इसलिए आशा हो गई कि भूमि-स्वामी श्रेणी के लोग समिति में काफी संख्या में आवेंगे। मजदूर तो आने के ही ठहरे; मजूरी मिले और मजूरी पर बोनस!

देशराज से आग्रह किया गया कि समिति को वह कुछ और अच्छी भूमि लगा दे। मुनाफे आकर्षण ने उसे थोड़ा-सा फुसलाया। एक खासे रकबे की अच्छी भूमि समिति को और लगा दी। खर्च और निगरानी से बचे, पचहत्तर फी सदी का मुनाफा यदि बराबर मिलता रहे तो वाह!

बोला, 'काम ठीक-ठीक चल उठे तो अगले साल बढ़िया जिमीन का एक बहुत बड़ा रकबा सहकारी समिति में शामिल कर दूँगा।'

सनेही ने कहा, 'अभी प्रारंभिक अवस्था है, आगे काम अच्छा चलेगा।'

देशराज ने जारी रखा, 'जैसे सरकारी फार्म नमूना बनने की कोशिश कर रहा है वैसे ही मैं भी अपने निजी फार्म को आदर्श बनाने की धुन में हूँ। निजी बड़े फार्मों का केवल इसीलिए बना रहना बहुत जरूरी है। बड़े फार्मवाले भूमि-स्वामियों पर आँख न उठाकर पहले इखरी-बिखरी जोतों को एक चक कर देना चाहिए। यदि बड़े-बड़े खेतवाले अपनी जिमीनें सहकारी समिति को दे दें तो इखरी-बिखरी जोतों वाले चकबंदी करने की सोचेंगे ही नहीं। इसीलिए मैंने अपना सबसे बड़ा रकबा समिति में न लगाकर निजी खेती के लिए रख छोड़ा है।'

सनेही मुसकराया। उसकी मुसकान में टहल को कुछ ऐसा मिला जो उसकी जबान

में न मिला था।

सनेही ने कहा, 'आपको अपने फार्म पर परेशानी और खर्च बहुत उठाना पड़ता है—सबका सब लगा दीजिए न समिति को। पचहत्तर फी सदी का बराबरी का तो वहाँ से मिला न होगा। रह गईं इखरी-बिखरी जोतें, सो उनकी तो एक दिन चकबंदी होकर ही रहेगी।'

देशराज यह प्रकट नहीं होने देना चाहता था कि सनेही ने कुढ़न पैदा करनेवाली कोई बात कही। बोला, 'मेरे यहाँ से जितनी मजूरी दी जाती है मजदूरों को उतनी कहीं नहीं मिलती।'

एक मजदूर सदस्य ने समर्थन किया, 'हाँ, साहब।'

देशराज ने कहा, 'और फिर हमारे यहाँ आराम कितना!' इस आराम के सिलसिले में उस दिन जो दुर्घटना हो गई थी वह उन सबकी कल्पना में घूम गई।

बनमाली ने विषय बदला, 'कहने में भूमि-स्वामियों को पचहत्तर प्रतिशत मिला, पर है वास्तव में वह बहुत ही थोड़ा। पैदावार हुई भी कितनी? मजूरी में बहुत खर्च हो गया। मजदूरों को हम बोनस देते हैं, आसानी के साथ तेल, निमक, कपड़ा और जरूरी चीजें उन्हें मिल जाती हैं जो गैर-मेंबरों को दुर्लभ हैं और भाव भी ठिकाने का। उस पर लगातार काम; किसी को बेकार नहीं बैठना पड़ता, इसलिए मजूरी की दर कम करनी पड़ेगी। बारह आने रोज और काम के घंटे कम। दर दस आने रोज की करनी पड़ेगी, जो कम नहीं है।'

भूमि-स्वामियों ने एक साथ समर्थन किया—दो-दो हाथ उठाकर।

मजदूर मेंबर चौंके।

एक बोला, 'हमारा पेट भर जायगा इतने में?'

'यह समिति है ही तुम सबका पेट पालने के लिए।'

'जैसा जानो,' उसने धीमे स्वर में कहा।

अन्य मजदूर मेंबर कुड़बुड़ाकर रह गए।

देशराज हँसा, 'जिनका मन यहाँ न मानेगा वे मेरे फार्म पर पहुँचेंगे।'

और अपनी खाल तुड़वाएँगे—सनेही के मन में उठा।

छदामी चुप बैठा था। उसकी भूमि समिति में थी और बैलों का किराया, अपनी मजदूरी, काम के घंटों में से समय निकालकर अपनी निजी खेती की देखभाल—यह सब ऊपर से।

बनमाली ने उसे अपनी ओर खींच लेने के लिए कहा, 'छदामी, बोलो भाई, ठीक है न? ये और तो चुप हैं।'

छदामी ने उसके मन की की, 'ठीक तो कहते हैं आप। बाँगुर्दन में तो दस आना रोज

की दर है।'

टहल झल्ला गया परंतु प्रतिवाद न कर सका, क्योंकि बात सच थी।

बनमाली का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया—केवल सनेही ने वोट नहीं दिया।

आगे की फसल की योजना पर चर्चा चली और वहीं रुक गई, क्योंकि फसल की योजना उनके हाथ में नहीं थी, वरंच इंद्र देवता के हाथ में रहती आई थी।

खाद की बात पहले उठी। सब लोग अपने-अपने खाद का ढेर अपने-अपने बेड़ों में, घरों के सामने या पीछे जमा करते थे। सनेही ने सुझाया कि समिति के सदस्यों का एक बड़ा गड्ढा गाँव से बाहर हो, उसी में सब लोग खाद इकट्ठा करें, अनुमान लगा लिया जाए कि किसका कितना पड़ा, उसी के आधार पर या तो नकद दाम दिए जाएँ या फसल आने पर दाम के बदले उतना अनाज़ दिया जाए। गाँव-बाहर ऐसी जिमीन देशराज की ही थी। वह सार्वजनिक खाद के गड्ढे के लिए जिमीन देने को तैयार हो गया तो और लोग नहीं माने। परंपरा के घूरों से गाँव के स्वास्थ्य को जो हानि पहुँचती रही है उसकी बहुमत ने उपेक्षा की—डॉक्टर तो ऐसा कहते ही रहते हैं। तली में कारण दूसरा था—एक गड्ढे में सबका गोबर-कूड़ा चला गया तो व्यक्तिगत खेतों में खाद कहाँ से देंगे? फिर कहेंगे कि गाँव-भर का कूड़ा-कचरा साफ करो, घर के गंदे पानी के सोखने के लिए गड्ढे खोदो इत्यादि! जैसा बाहर कुछ गाँवों में होता सुना है।

टहल ने कहा, 'चीन के किसान इतने चतुर हैं कि खुरपी साथ ले जाकर टट्टी फिरने जाते हैं और खुरपी से खेत की मिट्टी खोदकर मैले को उससे ढँक देते हैं जो समय पाने पर बढ़िया खाद का काम देता है।'

इस पर सब हँस पड़े—केवल सनेही गंभीर बना रहा।

जब हँसी थम गई, सनेही ने कहा, 'चीन में तो और भी बहुत कुछ होता है—'

'सुनता हूँ वहाँ कुछ लोग मेढ़क का अचार खाते हैं,' अबकी बार देशराज ने हँसी फैलाई।

टहल ने चोट की, 'आप इस तरह की, बेतुकी बातों के सिवाय और सुना ही क्या सकते हैं?'

'तुम ही बड़े जानकार हो दुनिया-भर के!' विक्रम ने, जो एक कोने में गुमसुम बैठा था, चिमटी-सी काटी।

'बात सुनो, बात सुनो,' सनेही ने झगड़े के प्रारंभ को रोका, 'हर एक देश में, अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार, जीवन बनता और चलता है। किसी को बुरा नहीं कहना चाहिए। हमारे देश में भी वही होगा जो हमारे स्वभाव के अनुकूल बैठेगा। अच्छी नई बातों को अपने स्वभाव का अंग कैसे बनावें, बस इसी को सोचते-करते रहना चाहिए।'

'एक प्रसंग और है,' बनमाली ने अपनी बात छेड़ी, 'अभी तक अवैतनिक कार्यकर्ताओं को, जैसे डॉक्टर साहब हैं, मैं हूँ, प्रधान देशराजजी हैं, कुछ नहीं दिया गया है। हर काम करनेवाले को कुछ-न-कुछ मिलना चाहिए।'

देशराज झट से बोला, 'मुझे कुछ नहीं चाहिए; मैं करता ही क्या और कितना हूँ?'

डॉक्टर सनेही ने कहा, 'परोपकार, त्याग और सेवा सब अलग-अलग भाव हैं। सेवा शब्द का जितना बुरा उपयोग हुआ है उतना शायद ही किसी दूसरे शब्द का हुआ। त्यागी, परोपकारी और हजारों रुपया मासिक वेतन पानेवाले सभी सेवक! मेरे खयाल में मुफ्त सेवा, थोड़ी-सी, कुछ ही समय तक की जा सकती है। इसके बाद वह भार होकर असह्य हो जाती है और कंधों से उतारकर फेंक दी जाती है—'

देशराज ने छिपा व्यंग्य किया, 'डॉक्टर साहब तो अपने पेशे में ही फीस बहुत कम लेते हैं, समिति के कार्य का भी थोड़ा-सा ही लेंगे, देना चाहिए।'

सनेही ने झुँझलाहट को दबाकर कहा, 'मैं भी कुछ नहीं लूँगा, यानी जब तक कि मजदूरों को भरपेट देने के बाद समिति को काफी लाभ नहीं होता, तब तक, क्योंकि मैं मुफ्त सेवा में विश्वास नहीं करता। मेरी राय में मंत्री को अगली साल से कुछ दिया जाना चाहिए। इस साल तो देने के लिए एक दाना भी नहीं।'

टहल हँसकर बोला, 'वह पचहत्तर फी सदी सब समेट ले गया।'

इस पर चुप्पे मजदूर मेंबर भी नीचा सिर किए हँसने लगे।

'आपकी समिति यहाँ से कुछ दूर नहीं है। देखें आप कितना दान-पुन्न करते हैं।' देशराज ने कहा।

विक्रम से फिर न रहा गया, 'इनकी समिति में हैं बड़े-बड़े धर्मात्मा!'

टहल और उसके साथी भन्नाकर चुप रहे।

फिर पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। देशराज प्रधान, बनमाली मंत्री और सनेहीलाल खजांची चुन लिए गए।

बैठक की समाप्ति।

थोड़ी देर बाद अंजना और देशराज मिले। देशराज ने बैठक का हाल संक्षेप में सुनाकर कहा, 'सहकारी समिति क्या है चों-चों का मुरब्बा है! अब अपने उस काम को हाथ में लेना है जिससे रकम पल्ले पड़ेगी।'

अंजना बोली, 'मैं चली जाऊँ बाघराज को रकम समेत पकड़ लाने के लिए?'

'तुम मत जाओ, बुलवा लूँगा।'

□

घाटीवाली से जिन लोगों ने बीज और सवाई के लिए अनाज लिया था वे मजूरी और समिति से प्राप्त अन्न लेकर आए। टहल वहाँ नहीं था।

घाटीवाली ने चेताया, 'मैंने कहा था कि सवाई नहीं लूँगी, सो मूल का मूल दे जाओ; परंतु आगे एक दाना भी नहीं दूँगी।'

'तो हमारा काम कैसे चलेगा?'

'और मैं ही अपना काम कैसे चलाऊँगी?'

'तुम्हीं ने कहा था, सवाई नहीं लूँगी, हम तो देने को तैयार थे।'

'मैं आज की और आगे की बात कर रही हूँ।'

'हमें तो अपना आगे का काम चलाना है। साफ कह दो, हम सवाई देने को तैयार हैं।'

'देखो टहल की बात और है। वे जितनी सेवा कर रहे हैं तुम सब की, वही बहुत है। पर घर-गिरस्ती तो मुझे चलानी पड़ती है, इसलिए ब्योहार बनाए रखना चाहते हो तो सवाई देनी पड़ेगी, वैसे मैं छोड़ने को तैयार हूँ, पर आगे नहीं दे सकूँगी।'

उन सबने सवाई समेत अनाज लौटाया। जब दे आए तो आपस में कहते गए—

'अरे भाई, ब्याज, सवाई कोई नहीं छोड़ता। देशराज नहीं छोड़ता बल्कि उसका कारिंदा तौल मारता है, और तरह-तरह से गरीबों के पेट काटता है। धरनीधर उससे उन्नीस-बीस ही है। यह धरम की सवाई तो लेती हैं, बस इतना ही अंतर है।'

'यही क्या कम है?'

□

प्रातःकाल पौ फटने के साथ ही बादल के टुकड़े दिखाई पड़े, दिन में फैल गए और रात होते ही छा गए। फिर हुई चमक तड़क। जिनके खलिहान अभी रखे हुए थे उन्होंने लाँकें ढकीं, जिनका भूसा बाहर रखा था उन्होंने भोजन-ब्यालू छोड़कर भीतर उठा लिया।

बाँगुर्दन समिति की एक लाँक ऐसी थी जो अभी तक नहीं सूख पाई थी। इसको उठाने-ढकने के लिए टहल ने पुकारें लगाईं। खाना खाकर एक-दो उसके पास आए, लाँक पर चिपट गए। आँधी आई, उसके साथ पहली बूँदें। फिर पड़े ओले। सब अपने-अपने घरों में घुस गए। टहल छाता लगाए घूमता रहा, पर दूसरों के पास तो छाते थे नहीं, उस पर पंचायती काम! कोई बाहर न निकला। ओलों का साथ बादल की कड़क दे रही थी। ओलों के साथ जोरों का पानी बरसा। कहाँ यह पानी जाड़ों में बरसता तो कैसी अनहोनी फसल आती! घर-घर कितना अनाज और भूसा न आ जाता!! जिन्होंने अपना अनाज और भूसा उठा लिया था, वे कह रहे थे।

एक घंटे पीछे बादल छँट गए। आकाश में जहाँ-तहाँ छोटे-बड़े तारे छिटक आए। बटोले, मंटू और कुछ अन्य लोगों को लेकर टहल सहकारी खलिहान पर पहुँचा। सब तरफ कीचड़, गड्ढों में पानी और ऊँची जगह से नीचे की ओर बुद्-बुद् करती हुई पनालियाँ—मानो इन लोगों को फटकार रही हों।

टहल के मुँह से आह निकली, 'यह सब नष्ट हो जाएगा।'

'क्या करते—ओला-पानी ऐसा तड़ातड़ आया कि कलेजा मसोसकर रह गए। देवता के कोप को कौन सँभाल सकता है?'

'अपनी-अपनी खेती में जूझते रहे; इसका यह हाल कर दिया!' टहल ने कहा।

बटोले बोला, 'उसे न देखते तो उसका भी यही हाल होता।'

टहल ने दाँत भींचे।

'अब क्या किया जाए? लाँक के नीचे पानी सिमट-सिमटकर आ रहा है। इसको उठाकर ऊँची जगह रख लो तो बच जाए।'

मंटू ने समझाया, 'अरे ऐसा न करना बाबू! पानी लाँक के ऊपर से बहकर चला गया है, भीतर अच्छी होगी। उखाड़ी-पछाड़ी तो अब गीली होकर सड़ जाएगी।'

बटोले ने भी यही राय दी।

अंत में लाँक को भाग्य के भरोसे छोड़कर सबको घर लौट आना पड़ा। दिन-भर के थके थे, जा सोए।

सवेरे देखा तो लाँक में नीचे, ऊपर, भीतर—सब जगह पानी। कई दिन से लौट-पलट नहीं की गई थी, इसलिए गरमी के कारण बालें, घेंटी, सब भभक गई थीं। भीतर पानी जो पहुँचा तो सूरज की किरणों में भाप उड़ती हुई दिखाई पड़ी। पूले के पूले उठवाकर छायादार स्थान पर रखे। सूख जाने की प्रतीक्षा में दाँयँ को रोकना पड़ा। समिति की बैठक कुछ समय के लिए स्थगित हो गई।

□

जात-बिरादरी के नीति या न्याय शास्त्र ने जोधा के मारे जाने के बाद मंटू को बिरादरी से बंद कर दिया था।

वह जात-ब्योहार में प्रवेश पा जाने की चेष्टा कर रहा था। टहल अपने साथियों की दलबंदी को तोड़ने का आकांक्षी था। समिति की बैठक होने के पहले ही झंझट समाप्त हो जाए तो बहुत अच्छा रहे।

पंचों ने जमाव किया और उसमें एक पंगत के जुर्माने का दंड। दूसरे दिन मंटू ने किसी तरह पंगत का आयोजन कर दिया। संध्या समय भोजन के लिए जाति के लोग आ गए। घर में इतना स्थान था नहीं कि सब लोग समा जाते, इसलिए बाहर पत्तलें पड़ीं। गाँव के कुछ कुत्ते आकर थोड़ी दूर आपस में भोंकते-दर्राते रहे।

दाल-भाजी मंटू ने परोसी। रोटियाँ परोसने हरको आ गई। थोड़ी-सी पत्तलों पर उसने आठ-आठ रोटियाँ डाली थीं कि एक पंच ने उजर किया—

'हरको परोस नहीं कर सकती। यह पहले ससुराल में शुद्ध हो आवे तब उसके हाथ का छुआ खाना खाया जा सकता है।'

'क्यों? जैसा मैं, वैसी मेरी बहिन।' मंटू ने कहा।

हरको आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगी। रोटियों से भरी थाली दोनों हाथों में साधे थी।

दूसरा पंच बोला, 'मंटू ठीक कहते हैं। दोनों को बिरादरी में मिलाने के लिए है यह पंगत। हरको में कोई दोष नहीं।'

'कैसे नहीं है? पंचायत ने मंटू को जात में मिलाया है न कि हरको को! उसका फैसला उसकी ससुराल के पंच करेंगे!!' तीसरा चिल्लाया।

मंटू के एक पक्षपाती ने बताया, 'खाना तो हरको के ही हाथ का बनाया हुआ है। परोसने में क्यों व्यर्थ की मीनमेख निकालते हो?'

'हमको मालूम नहीं था। मंटू ने दगा किया'—कहकर कुछ लोग खड़े हो गए। ये बनमाली के पक्ष के थे।

'क्या तुम्हारे माँ-बहिनें नहीं हैं जो हमें सताते हो।' हरको बिलखी।

मंटू बिगड़ा, 'कोई पुरानी कसर निकाल रहे हो। किसी दिन तुम पर भी बीतेगी।'

'आग लग जाय इनकी छाती में! इनकी हो जाय ऐसी गति—' इसके आगे हरको ने जो कुछ कहा, वह रौरे में डूब गया।

मंटू के पक्षपाती और विरोधी—सब—उठ खड़े हुए और चिल्ला-चिल्लाकर एक-दूसरे को बुरा कहने लगे। हाथापाही की नौबत आती देखकर हरको रोटियों की थाली लिए भीतर चली गई।

परंतु हाथापाही की नौबत आने नहीं पाई, क्योंकि कुत्ते झपटे और पत्तलों को रोंदते हुए रोटियाँ लेकर चलते बने!

झगड़ा शांत हो गया। कुछ कुत्तों को मारने के लिए दौड़े, कुछ हँस पड़े। मंटू क्रोध और परिताप में खिन्न।

थोड़ी-सी देर बाद वहाँ टहल आ गया।

'यह क्या गधापन है तुम लोगों का?' उसने आते ही भर्त्सना की।

वे सब उसके आसपास आ गए। पल-भर सोचकर टहल ने एक पुराना अस्त्र हाथ में लिया, 'तुम लोगों ने अन्न गुरु का अपमान किया! बहुत बुरा किया!!'

विरोधियों के आचरण में दुराग्रह या मूर्खता के सिवाय और कुछ था नहीं, उस पर अन्न गुरु का अपमान! जो उन्हीं के उजर उठाने के कारण हुआ। टहल ने समझाया तो अपनी भूल-चूक सुधारने के लिए तैयार हो गए। अधिकांश दाल-भाजी नष्ट हो गई थी और काफी रोटियाँ। पत्तलें मंटू के घर में बहुत थोड़ी रह गई थीं। खिसियाया हुआ वह इतना था कि नाई के यहाँ से दूसरी पत्तलें लाया नहीं। बाहर की पत्तलों को हटाकर भीतर की बची हुई लाई गईं; जितनी दाल-भाजी और रोटियाँ बची थीं, उसे काम

चलाया गया। एक-एक पत्तल पर तीन-तीन चार-चार बैठ गए—मंटू के अभी-अभी के विरोधी उसके पक्षपातियों के साथ! हरको ने प्रसन्नता के साथ परोसा। टहल खाने-पीने की छुआछूत नहीं मानता था। भूख न होने पर भी एक रोटी माँग ली और रास्ते में खड़े-खड़े खाने लगा।

खाते-खाते एक पंच, जिसने पहले उजर उठाया था, बोला, 'टहल बाबू का भला हो, इन्होंने अच्छा निबटा दिया।' वह नहीं चाहता था कि मंटू के मन में चुभता रहूँ।

टहल ने सोचा—मैंने नहीं निबटाया, उन कुत्तों ने निबटाया!

मंटू की गाँठ में जितनी सामग्री थी उससे और ठंडे जल की पूरकता से पंगत समाप्त हो गई। टहल ने सहकारी समिति की तारीख और समय बतलाकर सबको उसकी बैठक में आने के लिए बुलाया।

□

टहलराम के घर निश्चित तारीख और समय पर बाँगुर्दन समिति की बैठक हुई। बटोले प्रधान, टहल मंत्री और सहकारी विभाग का वही कर्मचारी पदाधिकारियों में उपस्थित थे—खजांची दमरू जेल में था। सनेही, बनमाली और देशराज साथ-साथ आए—छदामी पीछे। विक्रम नहीं आया। पुरुष पौर में बैठे और स्त्रियाँ पौर के दरवाजे से दिखाई पड़नेवाले आँगन की छपरी में।

खर्चा और जरूरी मदों को काटने के बाद देखा तो बाँटने के लिए मुनाफा बहुत थोड़ा बचा। पैदावार टहल के खेतों के चक में अच्छी हुई थी, उससे कम बटोले की बिखरी जोत में और सबसे कम उस परती में जो बटोले को अदालत से मिली थी और जिस पर ट्रैक्टर चलाया गया था।

बटोले और अन्य सदस्यों के निजी खेतों में कहीं अधिक पैदावार हुई थी।

सभी कुछ-न-कुछ कह रहे थे, केवल सनेही और टहल चुप थे।

सबके कहने की तुक एक ही थी—फसल तो मजे की थी, पर उस रात के पानी ने चौपट कर दिया!

'न पैदावार अच्छी हुई और न अकेले पानी ने चौपट मारा,' टहल बोला, 'यदि उसी मन से काम होता जिस मन से निजी खेतों पर किया गया तो पैदावार अच्छी होती और पानी बरसने के पहले खलिहान उठ जाता।'

बटोले ने हँसी में बात दबाई, 'यह लो! भगवान् पर किसका काबू? अगर पानी पहले बरस पड़ता तो भी यही होता। इसलिए तो अपने तरफ की खेती को आकाशीवृत्ति कहते हैं।'

अर्थात् ऐसी खेती जो मेह, धूप, आँधी, कीड़े-मकोड़ों और जंगली जानवरों की सनक और मरजी पर निर्भर हो—विशेषकर, आकाश की बरसात और धूप की सनक पर।

जब यह चर्चा कुछ ठंडी पड़ी, सनेही ने कहा, 'परती जिमीन में पैदावार सुहाना में भी कम हुई है। अधिकांश रकबा समिति को परती भूमि का ही मिला है, जैसाकि यहाँ की समिति को। मरी बछिया बाम्हन को! उससे क्या होना था?'

टहल बोला, 'मैंने तो अपना पूरा समूचा चक लगा दिया यहाँ की समिति को।'

'तिल-भर भूमि भी निजी खेती के लिए नहीं रखी,' घाटीवाली ने आँगन से ही जोड़ा।

सनेही ने कहा, 'आपने बहुत अच्छा किया। देशराजजी ने भी उस दिन एक बढ़िया और रकबा आगे के लिए लगा दिया है।'

देशराज ने हिसाब लगाया, 'जो कि टहल बाबू के चक से कई गुना बड़ा है।'

'सबका सब लगा दीजिए, तब हो जाएँगे हम और आप एक-से।' टहल ने काट किया।

'तब भी अंतर रहेगा।' बनमाली हँसा।

बटोले ने इस चर्चा को आगे नहीं बढ़ने दिया। बोला, 'अब तो आगे की सोचनी चाहिए। जो कुछ हुआ, सो हुआ। भाग्य पर किसी का बस नहीं।'

खर्चे में सबसे बड़ी कलम ट्रैक्टर के खर्चे की थी, फिर मजदूरों की मजूरी की। यह कैसे कम हो, इस पर विचार होना था, खर्चे काटकर पहला महत्त्व मुनाफे की बाँट को मिलना अनिवार्य हुआ।

बटोले ने कहा, 'जो सुहाना में हुआ वही यहाँ भी होना चाहिए।' आँगन की ओर मुँह करके पूछा, 'क्यों चाची, ठीक है न?'

घाटीवाली ने उत्तर दिया, 'सबका सब दे दो तो भी पूरा नहीं पड़ेगा।'

बटोले पुरुषों के सम्मुख हुआ, 'पचहत्तर प्रतिशत ठीक है?'

टहल ने कहा, 'मुनाफे के बाँट का यह सिद्धांत ही गलत है। मेरी राय में तो अब तक सही सिद्धांत नहीं अपनाया गया। फी एकड़ कुछ रुपए नियुक्त कर दिए जाएँ।'

'पच्चीस रुपए एकड़ और काम करनेवालों को भत्ता,' भीतर से घाटीवाली की आवाज आई।

समझी हो या न समझी हो, हरको ने समर्थन किया, 'ठीक तो है।'

वह घाटीवाली के पास बैठी थी।

टहल हँसा।

'माताजी, इतने का तो कुल गल्ला ही नहीं बैठेगा।'

'तो मैं नहीं चाहती इस अमिति-समिति को। हम वैसे ही भले।' घाटीवाली झुंझला गई।

सनेही ने सलाह दी, 'काम अच्छा है। जब उसे हाथ में लिया है तो चलाना ही चाहिए–'

घाटीवाली ने टोका, 'चाहे भूखों मरने की नौबत आ जाए?'

सनेही कहता गया, 'नहीं माँजी, ऐसा नहीं होगा। यह पहली साल है, किसानों ने जिस परती को अन्-उपजाऊ भूमि समझकर बरसें हुई छोड़ दिया था, वह इस साल जोती-बोई गई। उसी पर खर्च बहुत हुआ और पैदावार हुई कम। अगले साल उसमें बहुत अच्छी फसल होगी, क्योंकि बंधी पड़ चुकी है। लोग आप सरीखी लगन से काम करेंगे तो सभी को बहुत लाभ होगा। यह जरूर है कि लोग निजी खेती जितनी कम करें उतना ही अच्छा होगा।'

बटोले को निजी खेती से संतोषजनक लाभ नहीं हुआ। अगली साल उसी की परती में, जिसके अब चौकोर खेत बन गए थे, फसल लहलहाएँगी। खर्चा कम होगा; फायदा मिलेगा दूसरों को! इसमें निजी खेती हो तो वाह!

बोला, 'पचहत्तर फी सदी ही रखिए। अगले साल की अगले साल से लगी। यदि अगले साल भाग्य से बढ़िया फसल आई तो सरकार को अन्न बेचकर रुपया बाँट लेंगे।'

सबको मानना पड़ा। देशराज के चेहरे पर ताने की मुसकान आई। उसने आँख गड़ाकर टहल की ओर देखा। टहल का मुँह लाल हो गया। भूमि-स्वामी हिस्सेदारों को हिस्सों के रुपयों पर भी प्रतिशत मिला, जैसा अन्य हिस्सेदारों के लिए तय हुआ।

खर्चे कम करने की बात उठी।

टहल ने कहा, 'ट्रैक्टर का उपयोग जरूरी है और मजदूरों की दर कम नहीं की जा सकती—'

घाटीवाली ने टोका, 'आग लगाओ ट्रैक्टर में। पुराने काल में क्या उन्हीं से खेती होती थी?'

टहल प्रतिवाद करना चाहता था, सनेही बीच में बोल उठा, 'माँजी गलत नहीं कह रही हैं। जब बहुत जरूरत पड़े और बिना ट्रैक्टर के काम चलता न दिखे तभी उसे काम में लाया जाए। पुराने चलन और नई तरकीबों के हेल-मेल से ही अपना काम सफल होगा, और कोई मार्ग व्यावहारिक और लाभदायक नहीं जान पड़ता।'

देशराज ने कहा, 'जब तक सिंचाई का साधन हाथ नहीं लगता तब तक नया-पुराना सब यों ही रहना है।'

टहल बोला, 'ललिता नदी का बाँध पूरा होने को है। नहर जल्दी आएगी।'

मंटू ने कहा, 'मजदूरोंवाली बात फिर रही जाती है। दस आना रोज कम है, उसको भी कम कर दिया तो आफत आ जाएगी। वैसे ही तो मजदूर मिलते नहीं, फिर तो गाज ही टूटेगी।'

मजदूर मेंबरों ने तुरंत हाँ की।

टहल की उमंग जागी, 'मैं तो कहता हूँ, बारह आना रोज से कम नहीं मिलना चाहिए

जो दर सुहाना में चालू है।'

बनमाली ने सावधान किया, 'यहाँ बारह कर दिए तो सुहाना में चौदह कर देने पड़ेंगे।'

'और मुझे एक रुपया रोज भुगतान पड़ेगा,' देशराज ने सोचा।

बटोले ने प्रधान पद की निभाई, 'फिर यहाँ चौदह आने और वहाँ एक रुपया! कोई हद भी तो हो। आखिर भूमि के मालिकों और जिन्होंने रुपए देकर समिति के हिस्से मोल लिए हैं उन्हें भी तो कुछ मिलना चाहिए, नहीं तो काम कैसे चलेगा?'

'दस आना रोज ही ठीक है।' घाटीवाली बोली।

टहल ने कहा, 'मेरी समझ में यदि मजदूर मेंबरों को पैदावार में सोंझिया बना लिया जाए तो किसी को नहीं अखरेगा।'

इस पर भूमि-स्वामी राजी नहीं हुए।

मंटू ने सुझाया, 'मैं एक छोटी-सी बात कहता हूँ—मजदूरों को जिमीन के मालिक अपने-अपने खेत में, जो उन्होंने कापटी-समिति को लगाई है मजूरी न देकर, बटियारा बना लें; बटियारों के लिए अच्छा रहेगा और मालिकों को भी फायदा रहेगा; मजूरी की दर कम-बढ़ नहीं करनी पड़ेगी और समिति खर्च के भार से न दबने पाएगी।'

बटोले ने तुरंत समर्थन किया, 'यह ठीक है, बिलकुल ठीक। हम लोगों की मिल्कीयत बची रहेगी और मजदूरों का पेट भरेगा।'

मजदूरों ने भी 'ठीक है, ठीक है' कहा।

टहल ने इस प्रणाली का दोष बताया, 'मजदूरी के दिनों में ये लोग खाएँगे क्या? और इससे व्यक्तिगत खेती कम नहीं होगी, उससे बढ़ावा ही मिलेगा।'

'दोनों हाथ लड्डू नहीं खाए जा सकते।' बनमाली ने आलोचना की।

बटोले ने समस्या हल की, 'जैसे दूसरे बटियारे पेट भरते हैं, वैसे ही ये भी भर लेंगे। अटक पड़ने पर हम लोग खवाई के लिए अन्न देंगे।'

एक मजदूर बोला, 'हमारे पास तो गरमियों के लिए ही खाने को अन्न नहीं है। मजदूरी भी कोई नहीं। हमारा क्या होगा?'

सनेही ने कहा, 'नहर खुदती आ रही है, उस पर काम मिलेगा। न मिले तो भू-स्वामियों को खवाई के लिए अन्न अवश्य देना चाहिए।'

टहल ने अपना दृष्टिकोण फिर प्रस्तुत किया, 'समिति की सारी भूमि का मालिक समिति को बना दिया जाए, सब कोई काम करे, घंटा के हिसाब से यथा-योग सबको दिया जाए, खर्चा काटकर जो कुछ बचे उसको, जिसका जैसा काम रहा हो उस हिसाब से, बाँट दिया जाए—'

उसने बात पूरी नहीं कर पाई कि बटोले बोला, 'यह तो फिर वही बात हुई। भूमि अंधे

की लाठी और लंगड़े की बैसाखी है। समिति को भूमि का मालिक बना देने के बाद भूमि-स्वामी, समिति से अलग होने पर, अपने साथ क्या लेता जाएगा? क्या नीबू-निमक चाटेगा?'

सनेही ने एक पुराना दोहा सुनाकर बहस को शांत करना चाहा—

'राम झरोखा बैठ के सबका मुजरा लेंहि।
जाकी जैसी चाकरी ताकों तैसा देंहि।।'

इस पर लोग प्रसन्न तो हुए परंतु बहस नहीं रुकी। टहल को अपनी बात पूरी करनी थी—

'नियम बना दिया जाए कि इस्तीफा देनेवाले समिति को त्यागने पर भूमि को वापस न ले सकेंगे। भूमि का दाम कूत लिया जाए। जितना दाम बैठे उसे समिति के हिस्सों में परिवर्तित कर दिया जाए। इस्तीफा देनेवाले को उन हिस्सों के रुपए लौटा दिए जाएँ। विरासत के झगड़े, आपसी बाँट के मसले इत्यादि भी इस प्रथा से सुलझाव पा जाएँगे—रुपए बँट जाएँगे या समिति के हिस्से, यदि ऐसे लोग समिति से इस्तीफा न देकर उसमें बने रहें।'

'बात तो सिद्धांत की कही,' सनेही बोला, 'लेकिन व्यवहार की निगाह से डग उठाना ज्यादा भला होगा। कोई भी बड़ा और व्यापक सिद्धांत एक साथ लागू नहीं किया जा सकता। जब जैसा और जितना ठीक दिखलाई पड़ा, उसके साथ कदम मिलाकर बढ़ते चले गए। अभी-अभी जो हल मंटू भाई ने सुझाया है, कुछ अंशों में कुरूप होते हुए भी अपनाने लायक है। अनुभव स्वावलंबी बनाता है। इस योजना में आगे जैसे ही कोई खुटका पाया कि बदल दिया।'

मंटू की बात स्वीकृत करनी पड़ी। वह अपनी सूझ-बूझ पर फूल गया। टहल को अपनी हार खटक गई।

'अब मजदूरों को बोगस?' मंटू ने दूसरी सूझ पेश की।

देशराज, सनेही, और टहल भी, अंग्रेजी शब्द 'बोनस' के इस रूप पर, जिसको सुहाना की बैठक में उसी ने सिरजा था, मुसकरा पड़े।

मजदूरों को बोनस—भत्ता—उतना ही मिला जितना सुहाना समिति में घोषित किया गया था—अर्थात् पाँच प्रतिशत!

देशराज ने व्यंग्य किया, 'आपका शब्द बड़ी फुर्ती से प्रचार पा गया! और हमारा अनुकरण भी!!'

टहल ऊपर मुसकराया, पर भीतर-भीतर कुढ़ गया। प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने पर भी उसने मजदूरों के प्रति उन्मुख होकर प्रश्न किया, 'तुम लोग पाँच रुपया सैकड़ा मुनाफे पर राजी हो?'

मंटू जल्दबाज था, बोला,–'हाँ, हाँ, क्यों नहीं? कहो भाइयो, कहो।'

उनमें से किसी ने हामी का सिर हिलाया, किसी ने कहा, 'राजी क्यों न होंगे? जो कुछ मिल जाए वही बहुत है।'

बटोले ने आदेश दिया, 'लिख लो कि पास हो गया और आगे बढ़ो। इधर-उधर की बातों में देर होती ही जाएगी।'

टहल को कार्यवाही की पुस्तक में दर्ज करना पड़ा।

लिखने के बाद तीखे स्वर में बोला, 'हमारा जीवन सहकारी संस्थाओं के बिना नहीं बढ़ सकेगा। उनमें भी मुख्य है सहकारी खेती-किसानी। इसकी सबसे बड़ी दुश्मन है निजी खेती और बिखरी जोत। इसका बंद करना बहुत ही जरूरी है। हम सुहाना के जिमींदारों की नकल नहीं करेंगे। हमको अपने गाँव में व्यक्तिगत खेती को समाप्त करके चकबंदी करनी ही पड़ेगी।'

'मेरी तो सदा यही राय रही है। सुहाना में अपनी अलग खिचड़ी का पकाना बंद नहीं किया जा सका तो यहाँ जरूर कर दिया जाना चाहिए।' सनेही ने कहा।

अपने छोटे-छोटे बढ़िया खेतों का समूह, यद्यपि बिखरा हुआ, परती का वह लंबा-चौड़ा रकबा जिस पर बंधी पड़ चुकी थी और जो लोहे की नोकों और धारों से मुलायम कर डाला गया था, बटोले की आँखों के सामने घूम गया। जो परती 'मरी बछिया' जैसी थी अब व्रज की दुधार गाय होनेवाली है! वह गई और गाँठ की बढ़िया जिमीन और दे दो! किसी दिन इन लोगों ने बैठक जोड़कर पास कर दिया कि समिति को छोड़ने पर भूमि वापस नहीं ली जा सकेगी तो सब स्वाहा! किसी दिन न पटी तो मैं तो बंधीवाले उस बड़े खेत को निजी खेती में वापस ले लूँगा, भले ही उन छोटे-छोटे खेतों को समिति में लगा दूँ।

बटोले ने विरोध किया, 'टहल बाबू, यह पृथ्वी पल-भर में स्वर्ग नहीं बन जाएगी। और फिर देखा किसने है कि स्वर्ग है कैसा? सुनते ही आए हैं न? अगले साल को रख छोड़ो अपनी इस धुन को।'

'क्यों? अभी क्या हो गया है? अच्छा सो हमेशा अच्छा!' टहल ने कहा।

देशराज ने टाँका लगाया, 'आज यहाँ कर लो, अगले साल हम लोग सोचेंगे।'

सोचेंगे! करेंगे नहीं!! यह मुझे डुबोना चाहता है। बटोले झल्ला गया, 'हम नहीं करेंगे इसे पास! अगर आप लोग नहीं मानते तो हम आज, अभी, समिति से अलग होते हैं। देते हैं इस्तीफा इसी पल!'

कोलाहल मच गया। मंटू बटोले की हाँ-में-हाँ कर रहा था।

एक बोला, 'बटोले को ताव बड़ी जल्दी आ जाता है।'

पौर के दरवाजे पर खड़ी होकर घाटीवाली चिल्लाई, 'बटोला समिति को छोड़ देगा

तो हम मरे थोड़े ही जाते हैं!'

हरको उसके बगल में थी। उसने अपना गुबार निकाला, 'बड़े धरमेसुरी हैं न! इन्हीं पर तो टिका है सारा संसार।'

बटोले खड़ा हो गया। उसके पैर काँप रहे थे। 'इस्तीफा नहीं लिखते हो तो घर से भेज दूँगा।' बटोले बाहर जाने को हुआ।

'ओ हो हो! जैसे हम तुम्हारा रिन खाए हों!' घाटीवाली फिर चीखी।

टहल ने हाथ जोड़कर विनय की, 'माताजी, माताजी!' और बटोले का कंधा पकड़ लिया। कहा, 'दादा, जरा-सा बैठो, ऐसी ज़ल्दी मत करो।'

बटोले का कंठ भर्रा गया था। बोला, 'फिर कभी बात करूँगा, अभी जाने दो।'

देशराज मुसकरा रहा था। टहल के कलेजे में ज्वाला-सी धधक गई; होंठ सूख गए। होंठों पर जीभ फेरकर टहल ने उससे अनुरोध किया, 'एक मिनिट ठहर जाओ। बाकी कार्यवाही को किसी अगली बैठक के लिए मुल्तवी किए देते हैं।'

सनेही भी खड़ा हो गया, 'ठीक है, मुल्तवी कर दीजिए।'

बटोले ठहर गया। बाकी कार्यवाही मुल्तवी कर दी गई। तारीख और समय नियुक्त करते टहल ने सनेही की ओर देखा।

सनेही ने कहा, 'कल मुझे अवकाश नहीं, परसों सवेरे की गाड़ी से घर जा रहा हूँ। दवाएँ लानी हैं और थोड़ा-सा काम है। एक हफ्ते में लौटूँगा।'

सनेही की सुविधा और बटोले की इच्छा के अनुकूल तारीख और समय की नियुक्ति हो गई।

: ३५ :

बाँगुर्दन समिति की बैठक के दूसरे दिन लगभग दूसरे पहर बाघराज मोटर से सुहाना आया। भोजन के उपरांत देशराज, अंजना और बाघराज हवेली के एक भीतरी कमरे में जा बैठे। वह अफीम की पेटियाँ लेने के लिए आया था। बुलाया ही इसीलिए गया था। रुपए साथ ले आने की सूचना भेज दी गई थी। बाघराज केवल एक पेटी 'माल' के भुगतान लायक रुपया ले आया था।

उसने कारण बताया, 'मैं तो पूरे रुपए लाना चाहता था, पर मिल न सके। पुराना सब बड़ी महारानी साहब—मेरी माताजी—के पास है। आयु के साथ-साथ उनका धनमोह भी बढ़ता गया है। मजबूरी है। जैसे ही माल खपा, रुपया आ जाएगा और तभी हिसाब हो जाएगा।'

अंजना की मदीली मुसकानें और नशीली चितवनें बेकार गईं, देशराज को भासित हुआ।

अंजना ने पूछा, 'कालीसिंहजी कहाँ हैं इन दिनों?' क्योंकि माल का जल्दी या देर से खपना उन्हीं के गिरोह पर निर्भर था।

'यहीं कहीं जंगल-पहाड़ों में हैं। मेरे यहाँ आने की बात उन्हें मालूम है। काम में विलंब नहीं होगा। अभी तक जितनी देर हुई है वह आप लोगों की तरफ से ही हुई है।'

'खैर, कुछ देर लगानी पड़ी। पूरा रुपया आ जाता तो हम लोग फिर बाहर निकल जाते।'

'बहुत-बहुत मजबूरी है। जितना ले आया हूँ उतने से और बाकी अपने पास से, आपको काम चलाना पड़ेगा। पहले का होगा ही और फसल घर आ गई है—'

'लेकिन लगान तो नहीं मिलता जिसकी काफी बड़ी रकम होती थी,' देशराज ने कहा, 'अनाज खाने खर्च के लिए चाहिए। उससे जो बचे वह बहुत नहीं बैठेगा। पहले का रुपया बैंक में भेज दिया। बड़ी रकम का वहाँ से निकालना असंभव है, क्योंकि मियादी अमानत में जमा है, चलतू हिसाब में ज्यादा नहीं है। उधार खाते रुपया उठाऊँ तो बैंक आनाकानी कर सकता है। इसके अलावा न जाने कितने प्रकार के संदेह खड़े हो जाएँ।'

थोड़ी देर दोनों की विवशता की बात चलती रही। अंत में तय हुआ कि बाघराज दो पेटियों का माल ले जाए, अंजना और देशराज बाघराज के लाए रुपए और कुछ अपनी गाँठ के लगाकर यथासंभव अधिक माल लावें और बरसात आरंभ होने के पहले खपाकर लेने-देने का हिसाब साफ कर लें।

अब बाघराज ने अंजना के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त किया, 'आइए न नाहरगढ़ जल्दी, गरमियों में बहार रहती है। आपके गायन से बहुत दिन हुए जब कान शुद्ध किए थे।'

'अभी हो जाए?' देशराज ने प्रस्ताव किया।

'मुझे दिन-दिन में ही लौट जाना है—हाँ, दस-पाँच मिनिट की कोई बात नहीं। इतनी देर तो ठहर सकता हूँ।' बाघराज ने कहा।

अंजना ने जमुहाई ली और अपनी असमर्थता प्रकट की, 'भोजन के उपरांत आलस्य आ रहा है।'

अपने बक्स में अफीम भरकर बाघराज चलने को हुआ।

देशराज ने हँसकर सुझाया, 'राजा साहब, आप बड़ी महारानी साहब को किसी तरह रुपया देने के लिए राजी कर लें तो बड़ा काम बने।'

'कोशिश करूँगा, पर अभी कोई आशा नहीं दिखलाई पड़ती।'

जब बाघराज चला गया, तीसरा पहर समाप्त नहीं हुआ था।

देशराज सोचता था—कमबख्त बड़ा कंजूस है!

: ३६ :

दिन में तीसरे पहर गरम हवा चल उठी थी। महुए पत्ते डाल चुके थे और उनमें अर्धविकसित फूलों के गुच्छे लग चुके थे—सवेरे तक चू-चूकर अपनी महक फैलाते रहते थे और दिन में रह-रहकर टपकते रहते थे। आमों के पत्तों में होकर हरे-हरे फल झाँक उठे थे।

धूप से बचने के लिए साफे पर भी एक मैली-कुचैली मोटी चादर लपेटे, जो कंधों को भी छिपाए हुए थी, विक्रम, बगल में चादर के नीचे एक हाथ से पोटली सँभाले और दूसरे में लंबी लाठी लिए जंगल में तेजी के साथ घुसता चला जा रहा था। लगभग दो मील भीतर गया होगा कि घनी झुरमुटों में से छाया में बैठे चीतल और चौसिंगे आहट लेते ही इधर-उधर भागे। उनके यकायक निकल पड़ने पर वह चौकन्ना हुआ। फिर आगे बढ़ा। एक मील और गया होगा कि साल, सेजा और सागौन की सघन ऊँची कुंजों में होकर एक गहरा नाला मिला। थोड़ी ही दूर एक पहाड़ी थी। नाले में उतरने के लिए पगडंडी थी। वह किनारे पर खड़े होकर इधर-उधर देखने लगा।

नाले की दूसरी ढी से आवाज आई—

'विक्रम!'

'मैं ही हूँ।' विक्रम ने कहा।

फिर आवाज आई, 'चले आओ। सब ठीक है न?'

'बिलकुल ठीक,' विक्रम ने उत्तर दिया और नाले में चला गया। उधर एक पेड़ पर से एक व्यक्ति उतरा। पीठ पर बंदूक और कारतूस कसे था। विक्रम को बंदूकवाला नाले के किनारे-किनारे, जो टेढ़ा-मेढ़ा जाकर पहाड़ी को चीरकर निकल गया था, ले जाकर पहाड़ी के छोर पर ठहर गया। नाले की तली में वहाँ एक दह-सा बन गया था। बंदूक-वाले ने दह की कगार पर खड़े होकर कूका लगाया।

पेड़ों की एक घनी कुंज में से बारह-तेरह हथियारबंद निकल पड़े—जैसे कुंज ने उगल दिए हों। जो सबसे आगे था उसको विक्रम ने दूर से ही जुहार किया। यह कालीसिंह था।

विक्रम ने बगल में से पोटली निकाली और उन लोगों के सामने रख दी। पोटली में से कम-से-कम दस सेर पूड़ियाँ निकलीं और पलाश के दोने में आम की चटनी।

कालीसिंह ने खाने के लिए आग्रह किया।

उसने थोड़ी-सी पूड़ियाँ और चटनी ले ली। बोला, 'अब मैं अपने ढोरों को देखूँ और साँझ के पहले घर पहुँच जाऊँ। आज रात—'

कालीसिंह ने खाते-खाते कहा, 'याद है। तुम जाओ।'

विक्रम चला गया। ढोरों के खोजने में उसे समय नहीं लगा और न इकट्ठे करके हाँक

ले आने में कठिनाई हुई। ढोर उसके इशारों पर चलते थे, उन्होंने भी गिरोह-सा बना रखा था।

संध्या होते-होते विक्रम गाँव में आ गया। मार्ग में सनेही का मकान पड़ता था। सनेही दरवाजे पर था। उसने वैसे ही कहा, 'बड़ी जल्दी गए और आए!'

विक्रम थोड़ा-सा अकचका गया।

'सवेरे रोटी नहीं बाँध ले गया था। खाने आया और लौट पड़ा। ढोरों के ढूँढ़ने में थोड़ी देर लग गई।'

'अजी तुम्हारे ढोर तो बहुत सधे हुए हैं।'

सनेही जरा हँसा। विक्रम चला गया।

दो घंटे पीछे गाँव में सन्नाटा खिचने लगा। महुएवाले टपकते फूलों की रखवाली के लिए, महुओं के नीचे जा पहुँचे। वहीं सूखे पत्ते इकट्ठे करके आग जलाई और रात-भर के लिए जंगली जानवरों से फूलों की रक्षा का बीमा करके सो गए।

गाँवों में गरमियों में चहल-पहल कुछ अधिक देर तक रहती है, पर आधी रात होते वृक्ष-पल्लवों की खरभराहट और कुत्तों के भोंकने के सिवाय और कोई शोर नहीं रहता।

बाँगुर्दन में कुत्ते यकायक बहुत भोंके, भागे और एक ने काँय-काँय की जैसे किसी ने पत्थर मारा हो।

नाकेबंदी करने के बाद कुछ हथियारबंद टहलराम के मकान पर चढ़ने का प्रयत्न करने लगे और कुछ बटोले के मकान पर।

घाटीवाली को आहट मिल गई। वह चिल्लाई, 'कौन?'

कुछ क्षण आहट बंद रही। घाटीवाली ने चुपचाप टहल को जगाया और जलघरे से आँगन की छपरी पर, छपरी पर से पौर की पलानी पर जा पहुँची। सावधानी से झुककर उसने जो कुछ देखा उससे एक क्षण के लिए उसके हाथ-पैर ढीले हो गए। टहल उसके पीछे आया। घाटीवाली का साहस इकट्ठा हुआ। समझने में देर नहीं लगी कि कुछ चोर चढ़ आने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसने उनके हथियार नहीं देख पाए।

घाटीवाली ने खपड़ों की दनादन मार शुरू कर दी। बिना निशाने के निशाने बैठे। जिनके माथे, नाक, कंधे या पीठ पर पड़े उनके मुँह से चीख और कराह निकली और भद-भद गिरने या भागने का शब्द हुआ। टहल ने अपनी माँ का अनुसरण किया और उससे भी अधिक खपड़े बरसाए। वे दोनों खपरैल पर से उतरकर आँगन में आ गए और इतने चिल्लाए-पुकारे कि बाँगुर्दन में तो क्या, सुहाना तक में आवाजें पहुँचीं। उधर बटोले और उसके घर के लोग चिल्ला रहे थे। फिर बाँगुर्दन में घर-घर से चिल्लाने की आवाज आने लगी। कुत्ते तो भोंक ही रहे थे।

घाटीवाली के मना करने पर भी टहलराम घर से बाहर निकल पड़ा। उसके पुकारने पर और लोग भी लाठियाँ, कुल्हाड़ियाँ लेकर दौड़ पड़े। बटोले किवाड़ बंद किए रहा।

हथियारबंद चोर—या डाकू—भागे। गाँववालों ने उन पर पत्थर फेंके। उन्होंने बंदूकें चलाईं—दाएँ, बाएँ, ऊपर, पीछे। और तो किसी को नहीं लगी, पर टहल घायल होकर गिर पड़ा। बंदूकों के दागे जाने पर पीछा करनेवाले झिझके और रुक गए। हथियारबंद भाग गए। कुत्ते उन्हें पछियाते हुए बेतहाशा भोंकते रहे।

कुछ ही क्षण उपरांत जब गाँववाले झुंड बाँध-बाँधकर इकट्ठे होने लगे, टहल की कराहों का शब्द उनके कानों में पड़ा। वह बटोले के द्वार के सामने रास्ते में पड़ा हुआ था। लोग चिल्लाए। बटोले लालटेन लेकर बाहर आ गया।

टहल धूल और खून में लथपथ था। जाँघ से रक्त का सोता बह रहा था। अभी अचेत नहीं हुआ था।

'घर—माँ के पास।' उसके मुँह से धीमे स्वर में निकला।

बटोले ने तुरंत चारपाई निकाली। लिटाकर लोग ले गए। घाटीवाली देखते ही मूर्च्छित होने को हुई। टहल के मुँह पर मुसकान आई—जैसे मुरझाई हुई घास पर ओस की बूँद।

बोला, 'माँ! माँ!! मैं अच्छा हूँ। डाकूओं का मुकाबला किया—डॉक्टर—'

डॉक्टर सनेहीलाल को बुला लाने के लिए तुरंत बहुत-से लोग दौड़े, बटोले भी गया।

सनेही जाग रहा था। इतना हल्ला हुआ था कि शायद ही कोई सो रहा हो—बच्चे तक जागकर रो रहे थे।

लोगों के पुकारते ही सनेही बाहर आ गया। उन्होंने संक्षेप में समाचार सुनाया। डॉक्टर ने दवा और रुई-पट्टी ली।

राजदुलारी ने कहा, 'मैं चलूँ?'

'नहीं, तुम यहीं रहो।'

सनेही उन लोगों के साथ चला गया। जब टहल के घर पहुँचा तब उसे चेत में पाया। घाव का निरीक्षण किया। गोली जाँघ के मांसल भाग को फोड़कर निकल गई थी। दोनों छेदों से खून बह रहा था। बिसूरती हुई माँ को सनेही ने वहाँ से हटा दिया।

घाव का उपचार करने के बाद बोला, 'तुरंत मेरे घर ले चलो। वहाँ एक से दो हो जाएँगे हम। न मालूम किस दवा की कब जरूरत पड़ जाए, मैं यहाँ सबकी सब नहीं लाया हूँ। ला भी नहीं सकता था।'

घाटीवाली एक कोने में से सिसकी, 'मैं भी चलूँगी—मेरा लाल—'

अर्द्धस्फुट स्वर में टहल ने कहा, 'घर—पर—'

'हम सब अभी मरे नहीं हैं। हम रहेंगे घर पर,' गाँववाले बोले।

सनेही के साथ गाँववाले टहल को चारपाई पर लिटाकर धीरे-धीरे ले गए। घाटीवाली भी गई।

डॉक्टर और राजदुलारी ने बड़ी ममता के साथ देखभाल की। रक्त का स्राव तो बंद हो गया—पट्टियों के कारण दिखाई नहीं पड़ता था—परंतु टहल अचेत हो गया।

घाटीवाली बार-बार कहती थी, 'मेरा रक्त कहीं से भी निकालकर भर दो मेरे लाल के शरीर में। बचा लो डॉक्टर बेटा मेरे लाल को।'

अंजना और देशराज भी जाग पड़े थे।

अंजना ने कहा, 'वे ही होंगे ये। या और कोई गिरोह आ गया!'

'नहीं, वे ही होंगे,' देशराज बोला।

'आज किस पर?'

'सवेरे देखा जाएगा।'

'यदि वे ही हैं तो अच्छा नहीं हुआ। आज ही राजा साहब आए और लौटे—और यह हो गया!'

'सवेरे देखा जाएगा।'

देशराज बाहर नहीं निकला।

सनेही, राजदुलारी और घाटीवाली का सवेरा ज्यों-त्यों करके हुआ।

पौ फटते ही डाकुओं के आक्रमण और टहल के घायल होने का समाचार फैल गया। किसी ने तो यहाँ तक कह दिया कि टहल मर रहा है।

बड़े सवेरे सनेही के मकान के सामने भीड़ लग उठी। देशराज, बनमाली—विक्रम भी आए। विद्यार्थी बहुत संख्या में—टहल के स्कूल के—उनमें से कई रो रहे थे। सबसे अधिक दुखी जनक था। सनेही ने किसी को टहल के पास नहीं जाने दिया।

टहल की अवस्था खराब हो रही थी।

चौकीदार द्वारा थाने में सूचना भेज दी गई।

सनेही ने देशराज से कहा, 'पुलिस के आने और फिर उसके द्वारा टहल को सदर के अस्पताल भेजने तक बहुत समय लग जाएगा। मेरे पास एक्स-रे नहीं, और भी कुछ ऐसा सामान है जो सदर अस्पताल में सहज ही मिल जाएगा। यदि किसी तरह इन्हें इसी समय वहाँ भेज दिया जाए तो बहुत अच्छा रहेगा। मैं साथ जाने को तैयार हूँ।'

'वैसे बच तो जाएँगे?' देशराज ने चिंता प्रकट की।

डॉक्टर ने उत्तर दिया, 'कह नहीं सकता। खून बहुत बह गया है। हालत खराब है। प्रयत्न करना चाहिए।'

'मैं अपनी मोटर से लिए चलता हूँ।'

'बहुत-बहुत धन्यवाद। थाने पर होते हुए चले चलेंगे।'

'ठीक है।'

देशराज मोटर लेने के लिए चला गया।

राजदुलारी ने सनेही से पूछा, 'कब तक लौट आओगे?'

'इनके निस्संकट हो जाने के बाद। संभव है दो सप्ताह लग जाएँ।' सनेही ने उत्तर दिया।

'मैं भी चलूँगी। डॉक्टर के साथ नर्स का रहना अनिवार्य है।'

'अस्पताल में नर्सों की कमी नहीं है।'

'और न डॉक्टरों की!'

उस खिन्नता में भी सनेही के होंठों पर आनंद की कुछ रेखाएँ खिल गईं।

बोला, 'चलो, जरूर चलो।'

साथ चलने और अस्पताल में बने रहने का घाटीवाली का हठ स्वाभाविक था। सनेही ने उसे भी तैयार होने के लिए कह दिया।

वह बोली, 'घर से थोड़ा-सा आटा बाँध लाऊँ, वहाँ सबका काम चलेगा।'

'नहीं माँजी,' राजदुलारी ने समझाया, 'थोड़े से कपड़ों के सिवाय रुपया-पैसा, आटा-वाटा कुछ मत ले चलो। वहाँ हम लोग तो हैं और हमारा घर। क्या मैं आपकी नहीं हूँ?'

रोते-रोते घाटीवाली की आँखें सूज गई थीं और रात-भर में चेहरे पर मकरजाले-सी झुर्रियाँ छा गई थीं। फिर रो पड़ी।

थोड़ी देर में तैयार होकर वे सब देशराज की मोटर से सदर के लिए चल दिए। मोटर बड़ी थी। थोड़ा-सा कष्ट सहकर निर्वाह कर लिया।

चौकीदार के पहुँचने के पहले ही ये लोग थाने में पहुँच गए। रिपोर्ट लिख ली गई। थानेदार ने अचेत टहल और उसके घाव को ऊपर से देख लिया। ये लोग सदर चले गए और पुलिस बाँगुर्दन।

दोपहर के पहले टहल सदर अस्पताल में प्रवेश पा गया। अविलंब एक्स-रे हुआ। हड्डी बच गई थी, कुछ मांसपेशियाँ और नसें कट गई थीं। उपचार होने के बाद भी वह अचेत रहा। घाटीवाली को अस्पताल में ही डेरा मिल गया। उसके खाने-पीने की व्यवस्था सनेही ने अपने घर से कर दी। ठहरे तो सनेही और राजदुलारी अपने घर, परंतु टहल की निरंतर देखभाल का उन्होंने व्रत कर लिया और जुट गए।

सिविल सर्जन ने बताया कि टहल की हालत बहुत नाजुक है। देशराज घाटीवाली को कुछ रुपए देना चाहता था, परंतु उसने नहीं लिए। देशराज लौट पड़ा। दूसरे दिन कुशल समाचार लेने राघवन आया। उस समय टहल अचेत था।

: ३७ :

पुलिस ने बाँगुर्दन आते ही घटना-स्थल का निरीक्षण किया। बटोले के घर के सामने

गली की धूल टहल के रक्त से अब भी गीली थी, जहाँ सूख गई थी वहाँ गाँठें पड़ गई थीं। फिर टहल के घर तक धार-सी चली गई थी। खपरैल का निरीक्षण किया तो कई खपड़ों पर रक्त की काली बूँदें पाईं। ये डाकूओं की हैं जिन पर घाटीवाली और टहल ने खपड़ों की वर्षा की थी। पुलिस ने उल्लास के साथ कहा और जनता आह्लादमय हो गई। डाकू किस दिशा में गए, इसका पता लगाते-लगाते पुलिस गाँव के बाहर आई। मार्ग में चले हुए कारतूसों की खोलियाँ पड़ी मिलीं। एक पगडंडी पर फिर वैसे ही रक्त की बूँदें दिखाई पड़ीं। पुलिस ने परिणाम निकाला—कई डाकू घायल हो गए हैं और एकाध कुछ अधिक। पता लगाते-लगाते मालूम हो गया कि डाकू जंगल की ओर गए हैं। पुलिस थोड़ी संख्या में थी, इसलिए जंगल में ज्यादा दूर नहीं घुसी। जनता में धँस पड़ने की वांछा थी—घाटीवाली और टहल ने बंदूकवालों के सिर खपड़ों से फोड़े और हमने लाठियों से मार भगाया! पुलिस कच्ची पड़ गई, नहीं तो जंगल-पहाड़ों में ही डाकुओं का भुर्ता कर डालते!! उनकी निर्भीक उमंग के ठंडे होने में जरा देर लगी।

'डाकू शायद बदला लेने के लिए फिर आवें, जब आवें तब फिर जौहर दिखलाना। अभी मुकाबला करने में उनकी सिरे पर रहेगी, क्योंकि वे आड़-ओट लेकर कारतूसी बंदूकें चलाएँगे और तुम सबका ढेर कर देंगे।' थानेदार ने समझाया।

बटोले बोला, 'ठीक कहते हैं आप। आगे हम लोग इन उत्पातियों से अपनी रक्षा कैसे करें, सवाल अब यह है।'

थानेदार ने बतलाया, 'पुलिस की एक चौकी इन दोनों गाँवों के लिए रहेगी। तुम लोग एक रक्षक दल बनाओ जिसकी टोलियाँ रात में फेरियाँ लगाया करें। फिर चोर-डाकुओं की हिम्मत नहीं पड़ेगी।'

लोगों में उत्साह था, इस सुझाव को स्वीकार किया। जनक ने सबसे पहले भरती होने की बात कही—उसी समय देशराज मोटर लिए आ गया। सदर से लौटा था कि उसे मालूम हो गया, पुलिस अभी गाँव में है। तुरंत थानेदार के पास आया।

बटोले ने टहल की बावत पूछा।

टहल के अस्पताल-प्रवेश, एक्स-रे और उपचार इत्यादि की बात बताने के बाद उसने कहा, 'डॉक्टर लोग कहते हैं कि हालत बहुत नाजुक है।'

'बच तो जाएँगे?' जनक ने पूछा जो मोटर के पीछे-पीछे भागता आया था।

देशराज ने उत्तर दिया, 'कह नहीं सकते, आशा तो करनी ही चाहिए।'

जनता में विषाद छा गया।

थानेदार ने टहल की प्रशंसा की, 'बड़ा बहादुर है। उसने न केवल डाकुओं की मरम्मत की, बल्कि खदेड़ भी डाला। गाँव के लोग भी जवाँमर्द हैं जो जान हथेली पर रखकर बदमाशों के पीछे पड़ गए।'

फिर उसने रक्षक दल के संगठन की चर्चा की और शीघ्र पुलिस चौकी बिठलाने की।

देशराज ने कहा, 'दोनों गाँवों के हथियार रखवा लिए गए! मेरे तक!! जब हो-हल्ला हुआ, मैं जाग पड़ा था। हथियार गाँठ में होते तो सुहाना के हम सब और यहाँ के बंदूकवाले भी दौड़ पड़ते। फिर क्या मजाल थी कि डाकू इस तरह निकल जाते! दो-चार की लाशें बिछ जातीं और कुछ पकड़ लिए जाते। सब लोग जानते हैं कि जब उस रात धरनीधर पर डाका पड़ा, मैं और बनमाली दौड़े आए थे। डाकुओं को भागते गैल नहीं मिली।'

बहुत से लोग हथियारों के लिए चिल्ला पड़े। थानेदार बोला, 'जिला मैजिस्ट्रेट ने इन दोनों गाँवों को झगड़ालू घोषित करके हथियार रखवा लिए हैं। अब रात की जवाँ-मर्दी को देखकर शायद वापस कर दें। कोशिश कीजिए।'

'हम लोग कोशिश करें! जब रक्षक दल बन गया तो कोशिश करेंगे ही, पर आप भी तो हम सबकी सहायता करिए।' जनक बोल उठा, 'कम-से-कम बाँगुर्दनवालों को तो हथियार मिलना ही चाहिए।'

'हाँ-हाँ,' बहुत से बाँगुर्दन-वासियों के कंठ से निकला।

थानेदार के मन में उठा—रात में महुए के फूलों की रखवाली की, सवेरे बीनकर लाए और घर के आँगन में सूखने के लिए फैला दिए; दिन में स्त्रियाँ रखवाली और बीनने के लिए चल दीं। जब फूल सूख गए, भूनकर या उबालकर खा लिए। ऐसे लोग बंदूकें खरीदेंगे कहाँ से? और कहीं डाकुओं ने घेर लिया तो बंदूकों से हाथ धो बैठेंगे। पर—पर, इतने दुबले-पतले होने पर भी हैं हिम्मती!!

थानेदार ने कहा, 'जो कुछ मेरे बस का है, मैं कसर नहीं लगाऊँगा। गाँव में कोई झगड़ा भी नहीं रहा दिखता, इसलिए जिला अफसर को बंदूकें लौटाने में शायद बाधा न जान पड़े।'

'नए लाइसैंस भी मिलने चाहिए,' जनक बोला।

'खरीदोगे कहाँ से?'

'जान बचाने के लिए अपने पेट काटकर।'

थानेदार हँस पड़ा, पर जनता को जनक की बात बहुत अच्छी लगी।

थानेदार ने कहा, 'तुम तो नाबालिग हो, लाइसैंस तुम्हें तो मिलने से रहा।'

जनक तपाक से बोला, 'सेना में हमारे ही गाँव के एक मेरी आयु से कम में भरती हो गए थे जो पैंशन लेकर आनेवाले हैं। उन्होंने क्या बिना हथियार के निशाना लगाना सीखा होगा? मैं अठारह साल का होनेवाला हूँ। तब तक दूसरों के हथियार से सीखूँगा और मौका आने पर एक नहीं दस डाकुओं का सामना कर डालूँगा।'

थानेदार की जिज्ञासा पर देशराज ने बताया कि टहल के स्कूल का एक गरीब विद्यार्थी है।

जनक ने फिर कहा, 'मुझे न मिले, पर ये तो बहुत से हैं जो नाबालिग नहीं हैं और जिन्होंने हमारे मास्टर साहब के नेतृत्व में डाकुओं के छक्के छुड़ा दिए। इन्हें तो मिलना चाहिए।'

थानेदार ने देखा, विद्यार्थी वाचाल है; देशराज से बात करने लगा।

'मुझे विश्वास है कि अब की बार डाका माल ले जाने की नियत से नहीं पड़ा, बल्कि किसी बदले की भावना से डाला या डलवाया गया था।'

देशराज का रंग फीका नहीं पड़ा।

'मालूम तो ऐसा ही पड़ता है; परंतु इसी एक निष्कर्ष पर पहुँचना उचित नहीं जान पड़ता। बटोले घर-बारवाले हैं और टहल भी साधन-संपन्न हैं।'

'हो सकता है, क्योंकि इस दरिद्र जिले के प्रचंड डाकू कभी-कभी अनाज और रोटियों तक के लिए डाका डालते सुने गए हैं। पुलिस हर एक पहलू पर विचार करेगी और सावधान रहेगी। यह लगभग तय समझिए कि पुलिस चौकी स्थापित होगी और दोनों गाँवों का एक रक्षक दल बनेगा।'

'बन तो गया,' जनक बोला।

थानेदार ने कहा, 'हाँ भाई, और तुमने उसमें सबसे पहले भरती कराई; नहीं भूलूँगा।'

बटोले ने पूछा, 'पुलिस चौकी कहाँ रखी जाएगी?'

थानेदार ने उत्तर दिया, 'सुहाना में।'

'हमारे गाँव में क्यों नहीं?'

'सुहाना दूर नहीं है। देशराजजी अपना एकाध मकान रहने के लिए दे देंगे। जरूरत पड़ने पर समिति-भवन भी काम में लाया जा सकता है। इस गाँव में कोई ऐसा मकान नहीं है।'

पुलिस चौकी के लिए देशराज को अपना एक कच्चा मकान देने पर राजी होना पड़ा। उसने अपने हथियारों की वापसी की बात उठाई।

थानेदार ने कहा, 'आपको बड़े अफसरों से कहना पड़ेगा। मुझसे पूछा जाएगा तो यथाशक्ति सहायता कर दूँगा।'

पुलिस चली गई।

दो-तीन दिन के बाद ही सुहाना में पुलिस चौकी आ गई और रक्षक दल का संगठन आरंभ हो गया। देशराज और अजंता को बाहर जाने का संकल्प कुछ समय के लिए स्थगित करना पड़ा।

: ३८ :

टहल को पाँचवें दिन चेत आया। आँखें खोलते ही पहले राजदुलारी को देखा। मुँह से

पहला शब्द जो निकला वह था—'माँ!'

'मेरे लाल! मेरे लाल!! मुझसे बढ़कर तुम्हारी माँ वह है!!!' बाँहें फैलाकर घाटीवाली दौड़ी।

राजदुलारी ने रोक लिया, 'धीरज—माताजी—धीरज से काम लो। बात मत करना, भला।'

घाटीवाली रुक गई, जैसे किसी नदी का प्रवाह पहाड़ के सामने थम जाए।

सनेही ने टहल के सिर पर हाथ फेरा। उसने अपने दुबले हाथों से सनेही का हाथ पकड़ लिया।

'डॉक्टर साहब—'

'बात मत करो।'

'डाकू भाग गए?'

'चुप-चुप!'

'माँ—'

राजदुलारी ने घाटीवाली को सामने कर दिया। वह रो रही थी। टहल की आँखें छलछला आईं।

'बस, हटो माँजी यहाँ से, नहीं तो नुकसान हो जाएगा।' सनेही ने कहा।

घटीवाली तुरंत पीछे हट गई। राजदुलारी ने टहल के आँसू अपनी साड़ी के छोर से पोंछ दिए।

'शांत पड़े रहना भला।' राजदुलारी ने उसके सिर पर हाथ फेरा।

सनेही ने सर्जन को सूचना दी। उसने आकर निरीक्षण किया।

प्रसन्न होकर बोला, 'अब कोई खतरा नहीं। दो-तीन हफ्ते में चलने-फिरने योग्य हो जाएँगे।'

घाटीवाली उसके पैरों पर गिरने को हुई। सर्जन ने निषेध किया, 'डॉक्टर सनेहीलाल और श्रीमतीजी को धन्यवाद दीजिए। इन्होंने बहुत सेवा की है। मैं कहूँगा कि दिन और रात एक कर दिए।'

घाटीवाली सनेही के पैरों की तरफ झुकी। सनेही ने तुरंत पकड़ लिया। बोला, 'हमको नरक में न ठेलो माँजी, मैं तुम्हारा बड़ा लड़का हूँ और टहल छोटा।'

'मरीज को बातचीत न करने दीजिएगा,' सर्जन सावधान करके चला गया।

राजदुलारी टहल के सिरहाने कुरसी पर बैठ गई।

'मैं हूँ यहाँ; माँजी, तुम अपना काम देखो—हमारे लिए खाना पकाओ।'

घाटीवाली ने गद्गद होकर कहा, 'घर का आटा लाने दिया होता तो उसी में से पकाकर खिलाती।'

मुश्किल से हँसी रोककर राजदुलारी ने 'हूँ' की।

टहल के कंपित कंठ से निकला, 'भाभी माँ!'

'सो तो ठीक है, पर चुपचाप पड़े रहो।'

फिर टहल ने बातचीत नहीं की।

सर्जन ने मैजिस्ट्रेट को सूचना दी। मैजिस्ट्रेट ने आकर पूछा, 'यदि बयान देने योग्य शक्ति उसमें हो तो अंतकाल का बयान लिख लूँ?'

सर्जन ने बताया, 'बच गया है, पर बयान नहीं दे सकेगा और न अभी लेना चाहिए। उसकी माँ का बयान हो ही चुका है।'

मैजिस्ट्रेट चला गया।

एक सप्ताह में टहल अच्छी तरह बोलने लगा। उस समय सरकारी समाचार मिला कि कालीसिंह के मारने या पकड़वा देनेवाले को पाँच हजार रुपया इनाम दिया जाएगा; टहल को एक बंदूक भेंट करने की भी सूचना आई।

: ३९ :

पश्चिमी हवा कई दिन तक लगातार चली। गरमी तीखेपन पर आई और उसके साथ लू। पहाड़ और जंगल तक दिन में भभक उगलने लगे। रातें जरूर ठंडी थीं।

रात के नौ-दस बजे होंगे। गाँव में थोड़ी-बहुत चहल-पहल थी। बनमाली अभी सोया न था। पौर का दरवाजा बंद करके आँगन में लेट गया। ठंडी हवा का झोंका आया और उसे झीम आई थी कि चौंक पड़ा। ऐसा लगा जैसे किसी ने पौर के भीतर से किवाड़ों की साँकल खोली हो। पौर के एक सिरे पर कोठा था जिसमें उसका भूसा भरा हुआ था। वहाँ से सर्रसर्र और खसखस की ध्वनि सुनाई पड़ी। उँह, चूहों के पकड़ने में बिल्ली लगी होगी। आँख बंद कीं और सोने के लिए करवट बदली थी कि वह सर्रसर्र-खसखस और बढ़ी। कहीं डाकू आज मेरे ऊपर तो नहीं आ टूटनेवाले हैं। ओफ! वह अपनी बंदूक को भूल गया। खपरैल की तरफ देखा। वहाँ कुछ नहीं था और न वहाँ से आवाज आ रही थी। फिर उसी कोठे से सर्रसर्र। यह चूहे-बिल्ली की पैंतरेबाजी का शब्द नहीं है। लाठी उठाकर पौर के आँगनवाले दरवाजे से जा चिपका। अभी तो गाँव में चहल-पहल है। यदि कोई गड़बड़ हुई तो बहुत से लोग दौड़ पड़ेंगे, चौकी से पुलिस आ जाएगी। कहीं डाकू न हों! नहीं, डाकू नहीं हो सकते। यह तो पौर में ही कोई है। फिर खपरैल की ओर दृष्टि दौड़ाई। तारे छिटके हुए थे। एक बड़ा तारा आकाश की कोर को छोड़कर ऊपर उठ आया था। पर उसकी झिलमिल से पौर के अँधेरे में कुछ नहीं टटोला जा सकता था। अब की बार और जोर की सर्रसर्र। कान लगाकर सुना तो जान पड़ा जैसे कोई भूसा बाँध रहा हो।

एकदम चिल्लाया, 'कौन?'

आहट तुरंत बंद हो गई और लगा जैसे कोई भाग रहा हो।

'दौड़ियो! बचाइयो!! चोर है!!! बदमाश है!!!!'

भागनेवाला पौर में ठिठक गया।

बाहर से कई आवाजें आईं, 'क्या है भैया बनमाली? क्या है?'

'अरे कोई चोर है, जल्दी आओ।' बनमाली चीखा।

पौर में से कातर स्वर में कोई बोला, 'हा-हा भैया! हा-हा!! मुझे पकड़वाना मत। तुम्हारे पैर पड़ता हूँ।'

'कौन हो?'

'मैं हूँ छदामी। तुम्हारे हा-हा खाता हूँ।'

'अच्छा! यह कहो कि भूसा चुराने आए थे!!' बनमाली बोला।

'भैया, गाय भूखों मर रही थी, सो लेने आ मरा। चाहे जो डाँड़ कर लो, पर पकड़वाओ मत।' उसने कहा।

'और कोई साथ है?'

'नहीं, कोई नहीं। मैं ही अकेला आया था।'

'घर के भूसे का क्या किया?'

'कुछ गाय-बैलों ने खा लिया, कुछ हमने बेच खाया।'

'आँगन में आओ।'

छदामी काँपता हुआ आँगन में आ गया।

'यहीं बैठ जाओ।'

'मालिक, पकड़वाना मत।'

'चुपचाप बैठे रहो, नहीं तो पकड़वाऊँगा। आए कैसे थे?'

'साँझ के बाद ही आ छिपा था पौर के कोने में। साँकल खोलकर भूसा भरा और जाने को ही था कि—'

'कि मैं आ धमका। तुमने समझा होगा कि कोई क्या लेगा? जानते नहीं कि मैं अकेला दस-पाँच को तो यों ही मार भगाने का दम रखता हूँ?'

दरवाजे पर कुछ लोगों के आने की आहट मिली।

'मैं तुम्हारे पैर पड़ता हूँ,' छदामी ने फिर कहा।

'चुपचाप बैठे रहना, मैं अभी आता हूँ।'

बनमाली गया, किवाड़ खोले और मुहल्लावालों के पूछने पर बोला, 'खपरैल पर खड़बड़ हुई तो मैंने सोचा डाकू न आ गए हों, इसीलिए चिल्लाया। जान पड़ता है कि बनबिलाव था।'

मुहल्लेवाले लौट गए। बनमाली साँकल चढ़ाकर आँगन में आ गया।

छदामी को डाँड़ भुगतना पड़ा–

उसने जो पंद्रह रुपए लिए थे उनके पच्चीस लिखने पड़े और एक अलग कागज पर, भूसे की चोरी का इकबाल, तीसरे कागज पर अँगूठे का निशान बनाना पड़ा, आनेवाले चुनाव में अपना और अपने प्रभाव के सब लोगों का वोट देने के वचन का!

'यदि जरा भी गड़बड़ की तो ये तीन हथियार हैं मेरे पास।'

'नहीं करूँगा, भैया।'

: ४० :

बनमाली की पुकारों पर देशराज अपने फाटक पर आ गया था। जब उसका निपट भ्रम मालूम हुआ तो उपहास करके लौट आया।

'कालीसिंह का गिरोह तो कहीं बहुत दूर होगा?' अंजना ने कहा।

देशराज बोला, 'उसका डर तो सिर पर छाया रहता है इन लोगों के।'

'उधर का काम करा लिया हो उसने तो हिमालय की ओर हो आवें; कोई समाचार नहीं आया! ब्योपार के दिन हैं, फिर बरसात आ जाएगी। कब तक ठहरे रहोगे?'

'मुझे तो यहाँ रुकना ही पड़ेगा। कुंजीलाल के मुकद्दमे की तारीख आ रही है; इधर नहर की खुदाई का काम भी बढ़ता चला आ रहा है। अपने खेतों के लिए नक्शे में रेखाएँ तो खिंचवा दी थीं, पर मेरे यहाँ न रहने पर अदला-बदली हो सकती है, इसलिए अभी यहाँ बना रहना जरूरी मालूम पड़ता है।'

'तो मुझे अकेली चली जाने दो। अपने कार्यकर्ता तो उस ओर हैं ही, काम चलाती रहूँगी। एक-दो सप्ताह पहाड़ पर भी रह लूँगी। तुम साथ होते तो सभी परिस्थितियों में मन खूब रमता, पर तुम्हारे लिए बेबसी।'

'कब जाना चाहती हो?'

'कल ही जा सकती हूँ। काम चलाने के लिए रुपए हैं ही।'

'जी बहुत चाहता है तुम्हारे साथ चल पड़ूँ, नहर के नक्शे की भी इतनी परवाह न करता; लेकिन कुंजीलाल की पैरवी के लिए रह जाना पड़ेगा। चल दिया तो सोचेगा कि मालिक मझधार में छोड़ गए।'

'गाँव में अब भी कोई आशंका है तुम्हारे लिए?'

'दिखलाई तो नहीं पड़ती। टहल अच्छा हो रहा है। उसके आने पर शायद कोई आंदोलन उठे। रक्षक दल जोर पकड़ेगा। उस पर भी निगाह रखनी है।'

अंजना का कोई भाव जैसे यकायक जाग पड़ा हो–बोली, 'मैंने भी बहुत-सी स्त्रियाँ देखीं, परंतु यह राजदलारी बड़ी विलक्षण लगी। उस दिन संगीत समारोह के लिए मैं

स्वयं बुलाने गई, ऐसी परदेवाली बनी कि नहीं आई! अब देखो तो फिरती होगी वहाँ सदर अस्पताल में डायन की तरह मारी-मारी!! और यह सनेही भी क्या है—ऐसा चेहरा-मोहरा बनाता है जैसे कोई करोड़पति हो।'

'मैंने अपने मकान से कभी का हटा दिया होता, पर अपना और नौकरों-महींदारों का इलाज सस्ते में कर देता है, इसलिए बनाए हूँ।'

अंजना दूसरे दिन लखनऊ की ओर चली गई।

□

नाहरगढ़ के राजभवन की एक खुली छत पर बाघराज, संध्या के दो-तीन घड़ी पीछे, बैठा हुक्का पी रहा था। तारों की छाया के नीचे ठंडी वायु लहरें ले रही थी। नीचे की तरफ एक दिशा से मंद जन-रव सुनाई पड़ रहा था। दूसरी दिशा से जंगली जानवरों की बोलियाँ उस रव को वेध-वेध देती थीं।

ड्राइवर आया। वह बाघराज का विश्वासपात्र प्रियजन था।

ड्राइवर ने सूचना दी, 'सरकार, कालीसिंहजी पधारे हैं।'

'भेज दो,' बाघराज ने कहा।

कालीसिंह आ गया। बाघराज ने टॉर्च का उजाला किया। कालीसिंह सिर पर पट्टी बाँधे था। मुजरा करके बैठ गया।

'कैसी तबीयत है?' बाघराज ने पूछा।

उसने उत्तर दिया, 'ठीक नहीं हुआ हूँ। घाव से पीव जारी है। वैसे पुरता जा रहा है। जंगली बूटी से कोई लाभ नहीं हुआ, आपने जो दवा दी थी, उससे हुआ है।'

'कुछ समय और लगेगा। आँख बहुत बच गई।'

'लाल बनी रहती है, और तब तक बनी रहेगी जब तक टहलुआ के टुकड़े-टुकड़े नहीं कर डाले।'

'देखा जाएगा। अभी तो इलाज पर ध्यान दो।'

'सो तो है ही सरकार, पर मैंने दुनिया-भर के देवी-देवताओं की कसम खा ली है कि जब तक ब्याज-त्याज समेत बदला नहीं चुका लिया, चैन न लूँगा। मेरे कई साथी घायल हो गए। इस घाव के कारण कोई काम नहीं कर पा रहा हूँ।'

'सुहाना में पुलिस चौकी कायम हो गई है सो तुम्हें मालूम ही है। पुलिस अब अधिक तत्परता दिखला रही है। उस ओर आँखें बंद करके मत जाना।'

'इन दिनों कुछ नहीं करूँगा। एक-दो महीने घाव के बिलकुल अच्छे होने में लग जाएँगे। तब तक बरसात आ जाएगी। बरसात के बाद देखूँगा।'

'बरसात के बाद उसे नहीं, अपने काम को देखना। उन दिनों माल पर माल आएगा, जिसके खपाने के उपाय सावधानी के साथ लगातार जारी रखने पड़ेंगे। अब तो अगली

गरमी तक ऐसे गुमसुम हो जाओ कि पुलिस और दुनिया समझे—कालीसिंह अपने गिरोह समेत या तो समाप्त हो गया है या किसी दूसरे देश में चला गया है।'

कालीसिंह सोचने लगा।

'सोचते क्या हो?' बाघराज ने कहा, 'मैं यह नहीं कहता कि तुम अपनी उतनी बड़ी कसम को गंगाजी में बहा आओ, यह चाहता हूँ कि गाँठ में पूँजी काफी करके फिर कसम को निभाओ।'

'जो हुकुम।'

'हाँ, यही ठीक है।'

राजा ने कालीसिंह को हुक्म दिया। वह थोड़ा-सा हटकर पीठ करके पीता रहा। जब पी चुका, बाघराज ने पूछा, 'बंदरगाह की तरफ से कोई समाचार आया?'

उसने उत्तर दिया, 'इस चोट के कारण काम ठिकाने से न हो सका। पुराने आदमी इधर-के-उधर हो गए। नयों को बनाना-साधना पड़ा। दो-चार दिन में समाचार आता ही होगा।'

'उधर वे दोनों सुहाना में पड़े हुए हैं। किसी-न-किसी कारणवश बाहर नहीं जा सके। खैर!'

'इधर के समाचार के लिए तो उन्हें नहीं रुकना चाहिए था।'

'नहीं, कुछ मुकद्दमे लग गए हैं।'

□

छः-सात दिन पीछे देशराज को बाघराज के एक निजी आदमी द्वारा समाचार मिला कि उन दोनों पेटियों का माल बंदरगाह से विदेश भेजे जाने के पहले पकड़ लिया गया है; बड़ी बात यह हुई कि वह आदमी बच निकला जिसके कब्जे में माल था।

देशराज सन्न हो गया। सुरूप मुख की रेखाएँ विकृत हो गईं। अंजना देखती तो शायद सोचती—बड़ा बद-शकल है। वह बिलकुल अकेला था। कोई पास नहीं, जिसे जी की व्यथा सुनाता। यह माल पकड़ा गया तो आगे का भी खतरे में है। कहीं हरी पेटियों में माल दे दिया होता तो उधर अंजना के लिए भी बड़ा भारी संकट खड़ा हो जाता। इधर मैं भी न बचता। घर में माल रखा है, इसका क्या करूँ? हो सकता है कि सब झूठ हो। बाघराज या कालीसिंह ने माल पचा लिया हो। लेकिन पहले कभी नहीं किया। तो क्या हुआ? अब कर सकता है। शायद दोनों ने मिलकर हड़प कर लिया हो। क्या भरोसा? अब क्या किया जाए? कोई दूसरा साधन टटोलूँ? कोई और दिखता भी तो नहीं। शायद धोखा न दिया हो। मैं जाऊँ नाहरगढ़? लेकिन फायदा? पत्र तो बाघराज के हाथ का ही लिखा हुआ है। फाड़ डालूँ या अंजना के लौटने तक रखे रहूँ? फाड़ ही डालना चाहिए। ओफ! हजारों का माल एक पल में हाथ से गायब हो गया!! और

भविष्य अंधकारमय दिखता है। परंतु साहस बनाए रखना चाहिए।

साहस बाँधते-बाँधते भी देशराज को कमरे की बत्ती का प्रकाश नहीं दिखाई पड़ रहा था।

: ४१ :

जैसे-जैसे टहल स्वस्थ होता गया, सनेही सुहाना आने-जाने लगा। राजदुलारी एक बार उसके साथ आकर फिर अस्पताल चली गई और घाटीवाली के साथ टहल की शुश्रूषा के लिए बनी रही।

सनेही उस दिन सुहाना में ही था जब सवेरे देशराज ने उसे बुला भेजा।

सुरूप चेहरे की आकर्षक आँखों के नीचे स्याही देखकर सनेही को आश्चर्य हुआ।

'क्या बात है?' सनेही ने पूछा।

'डॉक्टर साहब, कुछ दिन से तबीयत खराब रहती है। आप तो इन दिनों यहाँ रहे ही नहीं—'

'आपको तो मालूम ही है कि टहल की देख-भाल के लिए सदर अस्पताल में था।'

'हाँ-हाँ, सो आपने बहुत अच्छा किया। मेरे जी में आपके लिए बहुत आदर है। डॉक्टर तो बहुत हैं, पर मानवीयता आपमें जैसी देखी, वैसी अन्यत्र नहीं पाई। आप मेरी बात में बनावट न समझें।'

'आपकी बहुत कृपा है। आप ही ने इस गाँव में पेट भरने और थोड़ी-सी सेवा करने का अवसर मुझे दिया। बहुत कृतज्ञ हूँ। कैसे बुलाया?'

'पेट में गड़बड़, सिर में दर्द, हाथ-पैर में थकान—यह सब कई दिन से चल रहा है। आज रात नींद बिलकुल नहीं आई। हृदय में धड़कन है। परेशान हूँ, इसलिए कष्ट दिया।'

सनेही ने उसका बारीकी के साथ निरीक्षण किया और कहा, 'धड़कन की चिंता मत करिए। कुपच और किसी चिंता के कारण हुई है। बहुत से लोग इसे हृदय रोग का प्रारंभ कह देते हैं। मैं नहीं मानता। साधारण परहेज और थोड़े से नियम-संयम से चलिए, बहुत शीघ्र फिर ज्यों-के-त्यों।'

'कोई दवा?'

'कोई भी नहीं।'

देशराज ने फीस में दस रुपए के नोट देने चाहे। उसने एक भी नहीं लिया।

बोला, 'फीस किस बात की? वैसे भी आपके पास आना चाहता था। आ ही रहा था कि बुलावा पहुँचा।'

'यह तो ज्यादती है, डॉक्टर साहब।'

'बिलकुल नहीं। यदि लूँगा तो जरूर अपने साथ ज्यादती करूँगा।' सनेही मुसकराया।

देशराज जरा-सा हिला।

'आप सरीखा मित्र जिसे मिल जाए वह धन्य है,' देशराज ने कहा। कुछ और भी कहना चाहता था कि सनेही की भाव-भंगी, आँखों की वह रेखा याद आ गई जिस पर अंजना ने कटाक्ष किया था—ऐसा चेहरा-मोहरा बनाता है जैसे कोई करोड़पति हो! इस समय भी उसके चेहरे पर कुछ उसी तरह की झलक थी। परंतु उसने घमंड की तो कोई बात नहीं कही। फिर वैसा चेहरा-मोहरा क्यों? मुझे संयम से काम लेना चाहिए, अधिक प्रशंसा की पात्रता का उसने अभी काम भी ऐसा क्या किया है? मैं मकान का किराया नहीं लेता, वह इलाज सस्ता करता है। परंतु आज फीस बिलकुल नहीं ली!

बोला, 'आप कोई बात कहनेवाले थे न, डॉक्टर साहब?'

'जी हाँ,' सनेही ने मिठास के साथ कहा, 'नहर आ रही है, परंतु यहाँ सब खेतों को पानी मिलने की सुविधा अप्राप्य हो रही है।'

'नक्शे में मेरे और बहुत से लोगों के खेतों के लिए कुलिया आने की रेखाएँ तो खिच गई हैं।'

'उन रेखाओंवाली कुलियों से बहुत थोड़े रकबे की सिंचाई हो सकेगी। सहकारी समिति के ही कई खेत रह जाएँगे। सरकारी बजट में जितनी गुंजाइश है उसी के भीतर, स्वभावतः काम होगा। सभी खेतों में पानी पहुँचाने के लिए जरूरत है कि या तो हम आपस में चंदा करके नहर विभाग को रुपया दें, या अपना परिश्रम दें।'

फिर चंदा! वह भी जब घाटे-टोटे के बादल सिर पर मँडरा रहे हैं!!

'अपने गाँव में चंदा देनेवाले हैं कितने? और रुपया भी बहुत-सा चाहिए। जिसे नहरवाले बेभाव खर्च करेंगे।' देशराज ने असमर्थता व्यक्त की।

सनेही ने विकल्प दिया, 'परिश्रम तो है गाँववालों के हाथ में।'

'यह ठीक रहा, पर मुझसे मतलब?'

देशराज ने कहा, 'हाँ, सो तो है। लेकिन लोग तो इतने निकम्मे हैं कि दिन-रात तमाखू फूकते रहेंगे, परिश्रम के नाम पर कूल्हने-काँखने लगेंगे।

'कई जगह लोगों ने श्रमधन की लागत लगाई है। यहाँ भी संभव है।'

'जहाँ लगाई है वहाँ अफसरों के दबाव से। यहाँ कैसे?'

'हम सब कुदाली-फावड़े पकड़ें—अर्थात् मैं और आप—निकल पड़ें और चिपट जावें तो पीछे नहीं रहेंगे।'

'आप!'

'सबसे पहले मैं।'

'मजदूर सेंतमेंत कर पाएँगे?'

'सेंतमेंत नहीं। महुए-चने खानेवाले को इन दिनों छः आना रोज भी छः-सात घंटे काम करने का मिल जाए तो वह काम करेगा।'

देशराज ने भौंहें चढ़ाईं।

सनेही कहता गया, 'पर वास्तव में मिलेगा उसे चार आना-छः आना और भी। इन आनों को उसके हिसाब में जमा किया जाएगा। इकट्ठा हो जाने पर इससे सहकारी समिति के हिस्से उसे खरीदकर दे दिए जाएँगे जिन पर उसे मुनाफा मिला करेगा। व्यक्तिगत खेती करनेवाले और सहकारी समिति के सदस्य—सब—इससे लाभ उठा सकते हैं।'

'है तो अच्छा। सफल हो जाए तो क्या कहने! पर दिखती कठिनाइयाँ हैं सफलता में।'

'कठिनाइयाँ न हों तो जीवन ही क्या? कठिनाइयों के सामने झुक जाना असली कठिनाई और बाधा है।'

देशराज की आँखों में उसकी कठिनाइयों का चित्र घूम गया। उत्साह की कोंध-सी आई।

बोला, 'आप ठीक कहते हैं।' कुछ सोचने लगा। मन में एक चाह उठी—कहीं यह आदमी मेरे अधिक निकट होता, इसके हृदय में मेरे लिए कुछ स्थान होता।

सनेही ने उसके उत्साह के स्वर में अपनी उमंग की झाँईं पाकर कहा, 'आप सोचते होंगे कि मजदूरों के लिए छः आने-आठ आने भी कहाँ से आएँगे? सो मैंने उसका प्रबंध कर लिया है।'

'क्या?'

'जितने गैर-मेंबर मजदूर होंगे उन सबको सहकारी समिति का मेंबर बना लिया जावेगा। दस रुपए का एक हिस्सा; पहली किस्त के लिए ढाई रुपया-भर चाहिए। इस पर जिला बैंक आठ गुना तक देगा। एक मजदूर की चालीस-पैंतालीस दिन की मजदूरी निकल आई। उस पर काम उन्हीं का, दूसरों का नहीं। औजार नहर विभाग दे देगा। सौ व्यक्ति भी कंधा दे गए तो महीने-सवा महीने में काम हो जाएगा।'

'काम शुरू करिए, मैं साथ दूँगा; पर कुदाली-फावड़ा तो एकाध दिन ही चला सकूँगा।'

'प्रारंभ के लिए ही अनिवार्य है। जहाँ संवेग की लहर उत्पन्न हुई कि फिर अबाध गति से चलती रहेगी।'

देशराज ने समाचार-पत्रों में पढ़ा था कि मंत्री भी दो-चार मिनिट के लिए फावड़ा-खुरपी चला देते हैं; मैं आधे घंटे चला दूँगा। लोग हँसेंगे तो मैं भी उनके साथ हँस दूँगा।

'मजदूरों का स्वभाव कामचोरी का हो गया है, निगरानी की बहुत जरूरत पड़ेगी।'

'निगरानी करनेवाले कुछ अपने होंगे, कुछ नहर विभाग के। आप देखेंगे, मजदूर कितने उत्साह के साथ काम करते हैं, कामचोरी नहीं होगी।'

फाटक के बाहर मोटर की भर्र-भर्र सुनाई पड़ी। उतरकर सहकारी अफसर राघवन आया।

थोड़ी देर तक उसी प्रसंग पर चर्चा चली। 'मुझे बड़ा हर्ष है, राजा साहब। आप लोगों के साथ कुदाली-फावड़ा चलाने मैं भी आ जाऊँगा। कब आरंभ करेंगे?'

सनेही ने उत्तर दिया, 'टहलराम के घर आते ही। तब तक योजना का रंग-रूप ठीक किए लेते हैं।'

'कब तक आने की आशा है?' राघवन ने पूछा।

'दस-बारह दिन से अधिक नहीं लगेंगे।'

सनेही चला गया। राघवन बैठा रहा।

जब दोनों अकेले रह गए, राघवन उसकी ओर झुका और बोला, 'आपके व्यवहार से मैं बहुत प्रभावित हूँ। सदर में एक बात सुन आया हूँ। प्रार्थना है कि आपके कानों तक ही रहे।'

देशराज चौंका। हृदय धड़का। गला सूख गया।

'ऐसी क्या बात है, राघवन साहब?'

'पुलिस आपकी निगरानी करेगी—'

देशराज का चेहरा और भी फीका पड़ गया। माथे की नसें तड़क गईं।

'क्यों? मैंने लखनऊ में उस दिन जो भाषण दिया था, क्या उसे जिला अफसरों में से किसी ने नहीं पढ़ा? अन्य जिमींदार सरकार के विरुद्ध चाहे जो कर रहे हों, मैं तो साथ ही दे रहा हूँ।'

'यह मुझे नहीं मालूम।'

'और किसी की निगरानी की बात सुनी आपने?'

धड़कन और बढ़ी। उसे भासा—राघवन अंजना और बाघराज का नाम लेगा।

राघवन ने कहा, 'और किसी की नहीं सुनी।'

देशराज सँभलने का पूरा प्रयास करके बोला, 'ये जो गाँव में लड़ाई-झगड़े हुए उन्हीं का परिणाम होगा। कारिंदे पर मुकद्दमा चल रहा है। उस बिचारे की पैरवी तो करनी ही पड़ेगी।'

'अवश्य करनी चाहिए, आपका अनुचर है। और जहाँ तक मैंने सुना है, उसका कोई अपराध भी नहीं।'

राघवन जलपान करके अपने काम से चला गया।

निगरानी क्या अफीम-व्यवसाय के सिलसिले में है? या—या इन डकैतियों के कारण? अंजना और बाघराज को सावधान कर दूँ। पर अफीम-व्यवसाय के सिलसिले में नहीं हो सकती। माल पकड़ा गया, किंतु मालवाला बच निकला। तो फिर दूसरी बात होगी। मेरा वास्ता था कितना टहलवाली घटना से? इंसपैक्टर मिले तो पता चले। अब तो सनेही को कुछ अधिक निकट लाने की जरूरत है—देशराज ने सोचा।

तीसरे दिन उसने सुना कि इंसपैक्टर का तबादला हो गया है और वह चला भी गया।

: ४२ :

जैसे-जैसे टहल स्वस्थता की ओर बढ़ा, कुशल-समाचार लेने के लिए सदर के कई लोग आए—बंदूकधारी डाकुओं को खपड़ों से मार भगाया इसने और इसकी बुड्ढो माँ ने। परंतु उसे देखने के लिए भीतर कोई नहीं आने पाए। बनमाली आया और समाचार लेकर लौट गया। फिर गाँव का एक जत्था आया—बटोले, मंटू, जनक और उसके कुछ सहपाठी। टहल बिस्तर में बैठने लगा था और चोटवाली जाँघ को सिकोड़ने-फैलाने भी लगा था। जब उसने सुना तो उन लोगों को बुला लेने का हठ किया।

सर्जन ने निषेध किया, 'कदापि नहीं।'

सनेही ने अनुमोदन किया।

'क्यों?'

'क्योंकि हमारा नियम है, जिसका आधार स्वास्थ्य के वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। आप तो पढ़े-लिखे हैं।' सर्जन ने कहा।

टहल खिन्न होकर रह गया। घाटीवाली उनसे मिलने चली गई। जैसे कोई देवी-देवता की पूजा करता है उस प्रकार उन लोगों ने उसके पैर छुए। घाटीवाली ने उनके आँसुओं को अपने आँसुओं का आशीर्वाद दिया।

जब भावना स्थिर हुई, घाटीवाली ने कहा, 'रोटी बनाए देती हूँ, आटा बहुत रखा है।'

वे लोग हँस पड़े।

'माँजी, हम तो घर से इतना बाँध लाए हैं कि खा लें और लौटा ले जाएँ।'

मंटू बोला, 'माँजी, भुने हुए महुए, चना, गुड़ और चिरोंजी का ऐसा बढ़िया कूटा लाया हूँ कि थोड़ा-सा तुम भी खा लो।'

'जरूर खाऊँगी, एक मुट्ठी-भर, बस।'

'और एक मुट्ठी मेरा भी,' बटोले ने आग्रह किया। फिर उसका गला भर आया, 'तुमने और भैया ने उस रात अपने प्राण गदेली पर रखकर न बचाया होता तो बटोला और उसका घर-भर आज मसान की राख में होता।'

घाटीवाली ने जैसे ही उन लोगों का दो मुट्ठी कूटा ग्रहण किया, जनक ने अपनी

पोटली खोली और हठ करने लगा, 'थोड़े से खुरमे मेरे; बेझरे के हैं—नमक-मिर्च-मशालेवाले।'

घाटीवाली को खुरमे लेने पड़े। कूटा और खुरमे अंचल के छोर में बाँध लिए। फिर गाँव की बातें हो उठीं।

उन लोगों ने घाटीवाली को सनेहीलाल की वह योजना सुनाई जो उसने देशराज को बताई थी।

घाटीवाली ने गद्गद होकर कहा, 'सनेही और राजदुलारी की सराहना हजार मुँह से भी नहीं की जा सकती। मेरे तो अब दो लड़के हो गए। सनेही जो कुछ कहेंगे, हम सब होड़ लगाकर करेंगे। नहर के लिए खुदाई तो क्या, पहाड़ खोदने को भी कहेंगे तो उसे भी खोद डालेंगे।'

'जरूर, जरूर,' वे सब उत्साह से भर गए।

बटोले बोला, 'वे जो कुछ करते हैं, हम सबके हित के लिए करते हैं। उनके कहने में चलना अपना धर्म है।'

जनक ने पूछा, 'मास्टर साहब घर कब तक आएँगे?'

'पंद्रह दिन की देर और है,' घाटीवाली ने बताया।

जनक ने रक्षकदल के संगठन और उसमें सबसे पहले अपने भरती होने की बात सुनाई।

घाटीवाली ने मुसकराकर कहा, 'तुम्हें तो उछलने-कूदने के लिए चाहिए न कुछ।'

जनक की उमंग बढ़ी।

'माँजी, कवायद-परेड भी होगी। अपने गाँव के लटोरेसिंह फौज से पेंशन लेकर हाल में ही आए हैं। बड़े भले हैं। वे सिखलाएँगे। किसी दिन बंदूक भी मिलेगी।'

घाटीवाली बोली, 'टहल को बंदूक सरकार देगी, ऐसा सुना है। उससे तुम सब सीख लेना।'

वे सब हर्ष में फड़क गए।

घाटीवाली ने असीसा, 'सुखी रहो। सदा हरियाते रहो।'

बटोले ने कहा, 'माँजी, गाँव-भर आप सबके दर्शनों के लिए ललक रहा है।'

'आएँगे बेटा, हम सब जल्दी आएँगे। बुरे दिन निकल गए।' घाटीवाली ने आश्वासन दिया।

'और भी अच्छे दिन लाने के लिए जब मास्टर साहब घर आकर हम लोगों से काम कराएँगे तब माँजी की और भी अधिक असीसें कमाएँगे।'

उन लोगों के चले जाने पर घाटीवाली टहल के पास आई। उससे गाँववालों की बातें और सनेही की योजना की सूचना को सुनकर टहल खिल गया।

'दादा,' अब वह सनेही को इसी तरह संबोधित करने लगा था, 'दादा, आप यह सब कर आए और मुझे एक फूटे अक्षर में भी न सुनाया!'

सनेही हँस पड़ा।

'अभी हुआ ही क्या है! वहाँ पहुँचकर जब दौड़-दौड़कर काम चलाओगे तब वह काम ही बोल उठेगा बड़े समूचे शब्दों में।'

'क्या एक दिन ऐसा आएगा जब मैं दौड़ सकूँगा।'

'अरे भाई दौड़ना क्या, छलाँगें भरोगे, कबड्डी खेलोगे!'

'कब तक?'

'दो-तीन दिन तुम्हें खड़ा नहीं होने देंगे। उसके बाद चलना, फिरना, दौड़ना, सब।'

टहल को लगा, उसके भीतर की शक्ति यकायक सजग हो गई है।

घाटीवाली एक कोने में खड़ी होकर आँचल से आँखें पोंछने लगी।

सनेही ने देशराज को भी अपनी योजना में सँजो लेने की बात बताई।

टहल गंभीर हो गया।

बोला, 'दादा, कुछ ऐसे मनुष्य हैं जो सुधर ही नहीं सकते, कुछ ऐसे हैं जो बिगड़ ही नहीं सकते, और कुछ ऐसे हैं जो सुधारे या बिगाड़े जा सकते हैं। देशराज को पहली असाध्य श्रेणी में समझिए।'

सनेही फिर हँसा, 'अच्छा भाई, तुम्हारा वर्गीकरण ही ठीक सही, पर अपनी हानि ही क्या है यदि देशराज मजदूरों के साथ कुदाली-फावड़ा पकड़ ले?'

टहल मुसकरा गया—

'तमाशा तो अच्छा रहेगा।'

घाटीवाली ने कहा, 'हाथ में फफोले पड़ आएँगे।'

टहल की मुसकान और भी विकसित हुई, 'दादा जो कुछ भी न करा डालें, थोड़ा है।'

राजदुलारी आ गई। कहा, 'भोजन तैयार है, माँजी।'

'मुझे न दोगी उसमें से कुछ, भाभी?'

'न तुम्हारे डॉक्टरी पदार्थ मैं लूँगी, न तुम्हें अपने दूँगी।'

घाटीवाली ने अपने आँचल की गाँठ खोलकर कहा, 'गाँव के ये पदार्थ तो लोगी बहू?'

'ऐं! ये सब कहाँ से ले आईं, माँजी?' राजदुलारी को आश्चर्य हुआ।

घाटीवाली ने गाँववालों के आने और इस भेंट के देने का समाचार सुनाया।

'इसमें से थोड़ा-सा प्रसाद मुझे भी।' राजदुलारी ने कहा।

'और मैं क्या छोड़ दिया जाऊँगा?' सनेही ने हाथ पसारा।

टहल बोला, 'भाभी, रत्ती-भर ही सही, पर मुझे भी दिलवा दो।'

राजदुलारी ने हँसकर धुतकारा—

'अरे हिष्ट! अपने दादा से तो पूछो।'

सनेही ने घाटीवाली से कहा, 'माँजी, इस अमूल्य भेंट को जहाँ-का-तहाँ बाँध लीजिए। सर्जन आ जाएगा तो मुझपर नाराज होगा, और आपकी यह भेंट जब्त हो जाएगी।'

घाटीवाली ने जल्दी से गाँठ बाँध ली।

वे तीनों भोजन करने के लिए जाने लगे।

सनेही बोला, 'मैं तुम्हें एक और भोजन दिए जाता हूँ, टहल।'

'क्या?'

'एक उपन्यास। लेटे-लेटे पढ़ना।'

'अच्छा।'

घाटीवाली और राजदुलारी के साथ सनेही चला गया। कुछ पल बाद एक पुस्तक ले आया।

कह गया, 'मन लगे तो पढ़ते रहना। नहीं तो भोजन करने के उपरांत संक्षेप में कहानी सुना दूँगा। फिर उस पर चर्चा करेंगे।'

टहल ने थोड़ी देर पुस्तक पढ़ी और रखकर करवट ले ली।

सनेही भोजन से निवृत्त होकर आया।

'पुस्तक अच्छी नहीं लगी या आँखें पथराने लगी थीं?'

'आँखें तो नहीं पथराईं, आप लोगों ने पढ़ने की अनुमति न दी होती तो छूता भी नहीं। पुस्तक में सामंतवाद की उपासना देखते ही मन उचट गया। वर्ग-संघर्ष, मजदूर-क्रांति या विकासोन्मुखता की कहानी होती तो अवश्य पढ़ डालता।'

'संक्षेप में कहानी सुनाता हूँ। फिर उस पर चर्चा करेंगे। सुनने में भी मन न लगा तो तुम्हें नींद आ जाएगी। है न?' सनेही हँसा।

टहल भी हँसा। बोला, 'सुनाइए, सुनाइए, दादा। कहानी तो जो कुछ होगी सो होगी ही, आपकी व्याख्या, जिसके द्वारा आप नूतनता का बढ़िया रंग देते हैं, बड़ी रोचक होगी।'

सनेही ने कहानी सुनाई जिसका सार यह है—भारतीय इतिहास के मध्ययुग के पिछले भाग में एक पराक्रमी राजा हुआ था। उसने अपने समय की धर्म-परंपरा, संस्कृति और ललित कलाओं की रक्षा की। बहुत प्रजा-वत्सल था। धर्म, कला और प्रजा की रक्षा करने में मारा गया। स्त्रियों तक ने मरते-मरते उस रक्षा में राजा का साथ दिया था। विस्तार के साथ कहानी सुनाने में सनेही को आधे घंटे से ऊपर लग गया।

टहल ने मुसकराकर कहा, 'है न इसमें सामंतवाद की उपासना और पुनरोद्धार की भावना?'

'तुम्हें कुछ रोचक लगी या नहीं?'

'रोचक तो है। उस जमाने का चित्र खींच दिया गया है जिसमें मन लौटकर भुलावे में पड़ जाता है। इसी को, दूसरे शब्दों में, पलायनवाद भी कह सकते हैं।'

'मैंने अपनी व्याख्या का कोई रंग चढ़ाया?'

'अब चढ़ाएँगे?'

'नहीं चढ़ाऊँगा। एक बात पूछता हूँ—तुम उस काल में उस राजा की जगह होते तो क्या करते?'

उसे डाकुओं पर खपड़े फेंकने की बात भूल ही कैसे सकती थी? बोला, 'वही करता जो उसने किया; शायद कुछ और अधिक मेटने-मिटाने की सोचता।'

'और उस घटना का हाल अपनी कल्पना द्वारा वर्तमान का कोई लेखक लिखता तो आज तुम्हें कैसा लगता?'

'तो वर्तमान का लेखक उस हाल को लिखे ही क्यों? आजकल की समस्याएँ क्या कम हैं उसकी कलम के लिए? परछाहियों के पीछे दौड़ने की जरूरत?'

'आजकल की समस्याओं के हल करने योग्य प्रचुर मात्रा में स्फूर्ति और शक्ति देने के लिए उसे परछाहीं के पीछे दौड़ना नहीं कह सकते। एक बड़ा आकर्षक ढंग वह भी है।'

'हाँ, शक्ति तो मिलेगी, लेकिन पुराने को फिर से खड़ा कर देने की।'

'थक तो नहीं गए हो?'

'बिलकुल नहीं, दादा। बात करने में मन लग रहा है।'

'तुम्हें बाँगुर्दन की खंडित मूर्तियाँ, प्राचीन खंडहर, क्यों अच्छे लगते हैं? उनकी यदि कोई लेखक कहानी रचकर खड़ी कर दे तो क्या वह बुरी लगेगी?'

टहल हँस पड़ा।

'वह सब अच्छा लगता है, पर उन मूर्तियों को फिर से खड़ा कर देने या उसकी कहानी लिखने या पढ़ने के पहले अपने लोगों की रोटी-कपड़े की फिकर करूँगा।'

एक दिन वह बड़े भोर उन्हीं मूर्तियों और खंडहरों के पास से टहलता हुआ निकला था, तब क्या सोचा था? उसे स्मरण हो आया।

सनेही ने कहा, 'भरपूर रोटी-कपड़े का प्रबंध हो जाने के बाद?'

'फिर वह, और, और भी कुछ।'

'उन मूर्तियों ने कभी कोई भाव मन में जगाया? जगाकर ऊपर उठाया?'

टहल मुसकराया।

'हूँ-ऊँ, आप तो मुझे हराना चाहते हैं।'

टहल के चेहरे पर बच्चों का जैसा भोलापन छा गया।

'छोटे भाई से हार जाना ज्यादा पसंद करूँगा। बातें ही तो कर रहे हैं। थोड़ी देर में

माँजी और तुम्हारी भाभी आई जाती हैं, फिर कुछ और चर्चा होगी; तब तक मन लगे तो थोड़ी-सी और सही,' सनेही ने कहा।

'जरूर दादा, जरूर।'

'कल-कारखानों से घोर और अधिक घोर उत्पादन को खपाने की प्रतिस्पर्द्धा, एक-दूसरे से घृणा, डाह, भय और हिंसा—ये ही सब आज अपने सामने हैं। विज्ञान और हिंसा की जोड़ी बन गई है। सब देशों में परिणाम—नए-नए विनाशकारी हथियारों का सृजन, युद्ध पर युद्ध। विज्ञान और हिंसा की जोड़ी को तोड़े बिना मानव को चैन नहीं मिलने का। इस जोड़ी के तोड़ने की समर्थता रखनेवाला साहित्य—उपन्यास, नाटक, गीत, कविता, कुछ भी हो वही—हितकर है।'

'तो आपकी सुनाई उस कहानी में यह कहाँ है? उस कहानी में अपनी बान पर मर मिटने की बात है न?'

'हाँ, राजा के राज्य-विस्तार की ही कथा होती तो तुम्हारा कहना ठीक बैठता। इसको तो सामंतवाद की उपासना या पुनरोत्थानवाद नहीं कह सकते। वह तो अहिंसा का एक रूप है।'

'अब आ गए न आप अपनी व्याख्या के रंग पर?'

'अरे भाई, मैं किसी व्याख्या पर नहीं आया हूँ। मान लो, विज्ञान और हिंसा की जोड़ी तोड़ डाली गई और विज्ञान तथा अहिंसा की शांति की जोड़ी गठ गई। तो उस भविष्य के काल में यदि तब का लेखक आज के किसी क्रांतिकारी के त्याग-तपस्या का कोई हाल आकर्षक ढंग से लिखे और उससे पाठक को शक्ति और स्फूर्ति मिले, तो क्या उस कहानी को पुनरोत्थानवाद कहा जाएगा?'

'आप धीरे-धीरे अहिंसावाद पर आ रहे हैं जो मेरे मन में सदा खुटका पैदा करता है।'

अब की बार सनेही को हँसी आई। बोला, 'जिस तरह सेवा शब्द का व्यापक दुरुपयोग हुआ है उसी तरह इस शब्द का भी गलत उपयोग हुआ है। एक शराब बेचनेवाले का किस्सा सुना है? दस-पंद्रह दिन हुए जब पत्रों में छपा था।'

'मैंने नहीं सुना, आप सुनाइए।'

समाचार ऐसे प्रदेश के एक नगर का था जहाँ नशा-बंदी हो गई है। एक शराब बेचनेवाले ने शराब बनाकर दिन-दहाड़े पियक्कड़ों को मुफ्त पिलानी शुरू कर दी कि जिससे उसे पुलिस आकर पकड़ ले और वह बोतल-बिरादरी का आदर-सम्मान पा जाए। शराब पिलानेवाले ने अपने इस कर्म को सत्याग्रह का नाम दिया!

सनेही ने कहा, 'वह शराब बेचनेवाला भी कहता था कि मैं तो अहिंसावादी हूँ।'

दोनों हँस पड़े।

जब हँसी थमी, सनेही बोला, 'मैंने जो बात उठाई थी अब उसका एक उदाहरण देता

हूँ। मान लो, कोई अच्छा काम करते-करते मैं मार डाला जाऊँ और मेरे ऊपर कोई लेखक घटा-बढ़ाकर कहानी लिख डाले तो क्या उसे किसी वाद-विवाद की उपासना कहा जाएगा?'

टहल बिस्तर पर बैठ गया। कुछ क्षण चुप रहा।

'मैं अब लड़ पड़ूँगा, दादा,' उसने कुछ तीखे स्वर में कहा।

'किससे लड़ेगा रे? अपने दादा से?' घाटीवाली बाहर से बोली; राजदुलारी उसके पीछे-पीछे आ रही थी।

सनेही ने मुसकराकर बात पाटी, 'और किससे लड़ेंगे? महुए-चने लेकर तुम चल दीं उधर, इधर ये मेरे सिर आ गए।'

राजदुलारी ने आकर कहा, 'तुम्हारा आद-वाद चल रहा होगा कोई। न चैन लेते हो, न चैन लेने देते हो। यहाँ अस्पताल में भी वही सब!'

घाटीवाली ने समझा कोई झंझट हुआ है। विषाद की एक रेखा चेहरे पर आई।

टहल ने तुरंत सनेही का साथ दिया, 'नहीं भाभी, वाद-विवाद कुछ नहीं था। ये एक उपन्यास पढ़ने को देकर खाना खाने चले गए। मेरा मन नहीं लगा। जब लौटे तो उस पर बातचीत हुई। मैंने कहा, कोई दूसरा हलका-फुलका-सा ला दीजिए तो बोले, इसी को पढ़ना पड़ेगा। न तो तुम गाँव का वह प्रसाद मुझे दोगी और न दादा कोई आसूसी-जासूसीवाला उपन्यास पढ़ने को देंगे। इसीलिए मैंने कह दिया कि लड़ पड़ूँगा। इतने में तुम आ गईं और लड़ाई बंद हो गई।'

टहल लेट गया। घाटीवाली के मन को समाधान मिल गया। लड़का है, कमजोर हो गया है, इसलिए जरा-सी बात पर चिढ़ गया। उसने सोचा।

राजदुलारी के चित्त में उन दोनों में से किसी की भी बात नहीं जमी, पर उसने कोई प्रश्न नहीं किया।

घाटीवाली ने कहा, 'घर चलकर खा लेना जितने महुए-चने खाने हों। अगर अपने दादा से किसी बात पर कभी लड़े तो इतनी मार लगाऊँगी कि हाँ।'

टहल हँस पड़ा, बोला, 'तो मैं भाभी के पास न दौड़ जाऊँगा, फिर कैसे मारोगी?'

'मैं भी चाँटे लगाना जानती हूँ। माताजी का साथ दूँगी; जैसे तुम अपने दादा का साथ देते हो।'

राजदुलारी ने कहा और निमिष मात्र तरेरी दृष्टि द्वारा सनेही की भर्त्सना की जैसे कह रही हो—यह समय किसी तरह की भी बहस उठाने का नहीं है। सनेही समझ गया, परंतु उसकी मुसकान ज्यों-की-त्यों बनी रही।

राजदुलारी सिरहाने बैठकर टहल के सिर पर हाथ फेरने लगी।

टहल बोला, 'माँजी, इस चोट से एक बड़ा भारी लाभ यह हुआ है कि मुझे डॉक्टर

साहब सरीखे बड़े भाई और भाभी सरीखी माँ मिल गईं। जब चलने-फिरने योग्य हो जाऊँगा, दौड़-दौड़कर दादा के साथ काम करूँगा।'

'और मुझसे यदि कोई काम बिगड़ गया तो दो ठौ खपड़े मार देना, फिर मैं रख दूँगा तुम्हारा नाम खपड़ा बहादुर!'

वे सब हँस पड़े।

'आपको मालूम है भाभी, दादा गाँव जाकर क्या रचना रच आए हैं?'

'मैं तो आज रसोई रचने में लग गई थी, मुझे महुए-चने के समाचार के सिवाय और कुछ नहीं मालूम।'

टहल ने संक्षेप में सनेही की योजना सुनाई और कहा, 'देशराज के भी हाथ में दादा कुदाली-फावड़ा पकड़ाएँगे। वादा ले आए हैं।'

'और वह फिल्मी परियों की जैसी वेशभूषावाली क्या करेगी? कुदाली-फावड़े की ध्वनि के साथ क्या कोई गत गाएगी-बजाएगी?' राजदुलारी ने व्यंग्य किया।

सनेही बोला, 'अच्छी चीज को जरा कुढंगपने से पेश करती है अंजना। आजकल सुहाना में है भी नहीं।'

'होगी, क्या करना है।' घाटीवाली ने कहा।

'जिकर छोड़ो,' राजदुलारी बोली।

: ४३ :

धूप धरती को सेंकने लगी और लू ऐसी जैसे जलते अवे से लौ छूट रही हो। छोटे नालों का पानी कभी का सूख गया था और किनारों पर घास नाम को भी न रही। ललिता नदी में पानी था, पर धार पतली पड़ गई थी। सरकारी जंगल के नाले में पानी था, लेकिन ढोर पानी पीने वहाँ नहीं जा सकते थे। ललिता नदी के किनारे दुबले-पतले पशुओं के झुंड के झुंड छूटे फिर रहे थे। दिन में वहाँ दूबा के डंठल चबाते रहते और रात में गाँव के बाहर सूखे पत्ते चाटकर वहीं बैठ जाते। अधिकांश गाएँ दूध देती नहीं थीं कि उन्हें कोई बाँधे-छोड़े। बैलों को अवश्य पानी और कुछ चारा उनके मालिक दे देते थे। चारा था जंगल के बड़-पीपल इत्यादि के पत्ते। ये भी हर किसान को निरंतर नहीं मिल पाते थे।

मैदानों के पलाश के फूल झड़ चुके थे। अब वे चमकीले हरे पत्तों से छा गए। ललिता नदी के किनारे इन पेड़ों के बिखरे पुंज अब भी बड़े-बड़े लाल फूल टपका रहे थे कि जिनकी राशि नीचे फैली हुई थी, मानो अपने ब्याह की बारात सजा रहे हों। महुओं से फूल टपक चुके थे। अब वे धूप और लू को चिनौती-सी देते हुए नए जीवन की दमकदार पत्तियों से लहलहा उठे थे। उधर पलाशों की [illegible] सूखा कत्थईरंग, इधर ऊँचे

पूरे महुओं और दिग्गज पाखरों के बैंगनी रंग के किसलय—मानो प्रकृति की नई लहर के अपनाने में होड़ लगा रहे हों। और उनके नीचे करोंदी के छोटे-छोटे झाड़, जिनकी हरे पत्तों से ढकी हुई कँटीली टहनियों में घुंघची के आकारवाले छोटे-छोटे फल चिपके हुए-से थे।

गाँव के मजदूरों के लिए काम नहर खुदाई का मिल गया था। नहर दोनों गाँवों की ऊँची भूमि पर से निकलकर आगे के गाँवों में दूर तक जानी थी। खुदाई ऐसे स्थान पर पहुँच गई जो अन्य गाँव में पड़ता था और सुहाना-बाँगुर्दन से दूर था। अब इन मजदूरों के लिए खुदाई का काम न रहा।

नाला उस ऊँची भूमि के नीचे से पौर की आकृति में निकलकर धीरे-धीरे चौड़ा होता हुआ उन दोनों गाँवों के बीचोंबीच जन्म के स्थान से ही टेढ़ा-तिरछा चला था और वहीं से इसने छोटे-छोटे भरके काट डाले थे। नाले के आसपास के विस्तृत क्षेत्रफल में नहर नहीं आ सकती थी। एक खेत भरके के इस तरफ तो दूसरा उस तरफ। एक विशेष स्थल पर पुलिया बाँधी जाय उस क्षेत्र में तो छोटी-छोटी कुलियों द्वारा नहर का पानी पहुँचे। परंतु इन कुलियों के खोदने का काम सुहाना और बाँगुर्दन के निवासियों का था न कि नहर विभाग का। क्योंकि नक्शे के अनुसार नहर को आगे चलते जाने की पड़ी थी, और, नहर के नक्शे या बजट में कई वर्ष तक उस पुलिया या उन कुलियों के लिए गुंजाइश हो ही नहीं सकती थी।

सनेहीलाल ने कुछ दिन पहले इन्हीं कुलियों की खुदाई और पुलिया के बनाने की योजना तैयार की थी। मजदूरों को नहर खुदाई में मजूरी खासी मिलती रहती थी। काम था पराया! उस गरमी में शरीर ने मन का और मन ने शरीर का जितना साथ दिया, उतना मजदूरों ने कर दिया। अब तन-मन दोनों, थके से लगते थे; क्योंकि कुछ पैसे पल्ले में भी तो पड़ गए थे। कुछ दिनों तक सनेहीवाली योजना के कार्य का आरंभ न भी हो तो कोई बात नहीं। और फिर उसमें 'कपटी समिति' की कुछ पेच-पाच भी है! सामने आएगी तब देखा जाएगा। मजदूर सोचते थे।

एक दिन गाँव में खबर आई कि टहल बिलकुल चंगा हो गया है और कल आ जाएगा। विद्यार्थियों, बटोले, मंटू और उनके साथियों में एक लहर-सी छहर गई। इन लोगों ने टहल का स्वागत करने के लिए हरे पत्तों से प्रवेश-द्वार सजाने और घर-घर बंदनवार लगाने की बात उठाई। विक्रम ने कानाफूसी की—कौन-सा बड़ा रन जीतकर आ रहे हैं।

दूसरे दिन टहल के मुहल्ले में बंदनवार टँग गए—बटोले और मंटू ने अपने घर से आरंभ किया और अन्य स्थानों में विद्यार्थियों ने टाँग डाले।

जनक और उसके साथियों ने एक खंडहरवाले घूरे पर छोटा-सा द्वार बनाया और

उस पर बंदनवार लटकाया। बंदनवार के ऊपर अखबार की रद्दी के कागज पर हाथ से मोटे अक्षरों में लिख दिया—'इसको सुधारना-बनाना है।' गाँव के पटवारी ने देखा तो कहा—'कितने मूरख हैं ये लड़के! इनको अब यही सब तो सिखलाया जा रहा है!'

सुहाना में देशराज, बनमाली और सनेही के मकानों पर और आस-पास थोड़ी-सी सजावट हो गई। देशराज ने उन लोगों को स्टेशन से लाने के लिए अपनी मोटर भेज दी।

वे सब चौथे पहर की गाड़ी से आकर संध्या के पहले बाँगुर्दन पहुँच गए। स्वागत करने के लिए वहाँ देशराज और बनमाली भी आ गए थे। नर-नारियों और बच्चों की भीड़ लग गई। कुछ में आह्लाद था और सभी में गोली का घाव देखने की उत्सुकता। जनक आग्रह के साथ घूरेवाला बंदनवार दिखलाता गया।

टहल को फुरेरू आ गई—'यह लड़का भी क्या अजीब है!' और हँसा। सनेही ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा—'चिंता न करो, आ रहा है दिन जब तुम्हारे ही हाथों सुधारें बनाएँगे।'

भीड़ में से उतरती अवस्था का एक तगड़ा फौजी आया। पुरानी खाकी वरदी पर चिप्पियाँ और तमगे लगाए था।

बोला, 'इसको और इसके साथियों को कवायद-परेड सिखला रहा हूँ। हमारा गाँववाला किसान-मजदूर न जाने क्यों शरमाते हैं।'

मंटू ने फौजी का परिचय दिया, 'अपने ही गाँव के लटोरे—लटोरेसिंह हैं। फौज से लौट आए हैं।'

लटोरेसिंह ने मिलाने के लिए हाथ बढ़ाया। टहल, सनेही इत्यादि ने हाथ मिलाया।

'हम बहुत-सी लड़ाइयाँ लड़ा है, घायल हुआ है,' उसने लड़ाइयों के नाम देने आरंभ किए थे कि बटोले ने कहा, 'अभी तो घर चल रहे हैं। पैर में कमजोरी है, बातों के लिए दिन पड़े हैं।' घर आने पर घाव दिखाते-दिखाते और डाकेवाली घटना के संबंध में प्रश्नों का उत्तर देते-देते टहल थक गया।

सनेही ने पूछा, 'उस योजना के संबंध में कब इकट्ठे हों?'

'जितनी जल्दी हो सके,' देशराज ने आतुरता प्रकट की, 'क्योंकि कुंजीलाल के मुकद्दमे की तारीख पास आ रही है। सदर में मुझे कई दिन लग जाएँगे।'

बातचीत के लिए दूसरे दिन की संध्या का समय रखा गया। स्थान टहल के घर के सामने का मैदान।

राजदुलारी टहल की माँ के पास थी।

'माँजी, अब खाऊँगी उस आटे की रोटी जो उस दिन दे रही थीं।' राजदुलारी हँसी।

[illegible]वाली ने उसे गले लगा लिया, 'बेटी, तुम्हारी ही दी हुई रोटी है।'

राजदुलारी सनेही के साथ देशराज की मोटर से घर चली गई। देशराज और बनमाली पैदल गए।

मार्ग में बनमाली ने कहा, 'चुनाव भी कम्बख्त इन दिनों होने को हुआ! मारे तपन के घर से निकला नहीं जाता।'

'दिन-भर पंखा-टट्टी में रहता हूँ तो भी पसीना आता रहता है। इस समय तो शरीर भुना जा रहा है।' देशराज ने ऋतु की शिकायत की।

'कुछ भी हो, चुनाव में आपको थोड़ा-सा परिश्रम करना ही पड़ेगा। टहल और बटोले तो गाँव में समाज और पंचायत में चुन लिए जाएँगे, पर अंडबंड आदमी न आने पावें।'

'करना ही पड़ेगा भाई कुछ-न-कुछ,' देशराज ने बिना उत्साह के समर्थन किया।

अन्य लोग टहल के घर बहुत देर तक बैठे रहे। सबने उसकी पूछते-पूछते अपनी-अपनी कहानी अधिक सुनाई।

उदेता गड़रिया बोला, 'भैया, छदामी की जनी तो बड़ी चुड़ैल है। मेरा नन्हा पड़ा बीमार। झड़वाने के लिए उसे बुला ले आया। कालीमाई पर चढ़ाने के लिए मेरी एक बकरी ले गई। चार दिन बाद देखूँ तो उसके घर! मौका पाते ही मैं उसे ले आया। फिर आई वह मेरे ऊपर। बोली—बकरी तो मैया की हो गई। मैंने उससे कहा—मेरे बगर में मैया की होकर तो रहेगी; जैसी तुम्हारे यहाँ, वैसी मेरे यहाँ—कोई दूसरी बात है? तो गाली देती चली गई!!' टहल ने अपनी हँसी दबा ली।

दूसरे ने अपनी कहानी सुनाई—'अरे वह चिटलुआ है न हमारे घर के पीछे, उसने मेरे चबूतरेवाले नीम की आधी डालें काटकर अपने बैलों को डाल दीं और कहीं जा छिपा। झूठी नहीं कहूँगा, मैंने एक-एक लाठी उन दोनों बैलों को मारी। तो उसने एक दिन मेरे बैलों को इतना पीटा, इतना पीटा कि वह लँगड़ाने लगा है।'

टहल ने पूछा, 'टाँग टूट तो नहीं गई?'

'नहीं, टूटी तो नहीं है। इमलौसे की जड़ बाँध दीं है।'

तीसरा अपनी कहने को उकता रहा था—'इन नाइयों की तो देखो भैया, पंचायत कर ली है कि हमारी जातवालों की हजामत नहीं बनाएँगे; तो हमने भी तय कर दिया है कि बाल-बच्चा जनाने के लिए हमारे यहाँ से कोई उनके यहाँ नहीं जाएगा, ब्याह-बारात में उनके यहाँ हम लोग बाजे नहीं बजाएँगे, जब वे देवता पूजने जाएँगे तब हम रमतूला नहीं फूँकेंगे।'

'इन सब झंझटों को दूर करने की कोशिश करेंगे हम तुम सब,' टहल ने अलसाए स्वर में कहा।

जब सब चले गए, तब टहल सोने के लिए लेट पाया।

नींद जल्दी नहीं आई। अस्पताल में सब काम ठीक समय पर होता था। माता, सनेही और राजदुलारी का इकट्ठा स्नेह-भरा बरताव और कहाँ यहाँ का वही मुरझाया हुआ-सा वातावरण! हाँ, उसमें कुछ सजीव रेखाएँ भी थीं—जनक, बटोले, मंटू—। देशराज में वह उत्साह तो नहीं दिखा जिसकी प्रतीति सनेही दादा की बातचीत से उत्पन्न हुई थी। मजदूर अच्छी तरह से बोले। हरको की आँखों में आँसू क्यों आ गए थे? सद्भावना—यदि यह लड़की कुछ पढ़-लिख जाय तो बहुत काम करे। माँजी पढ़ा सकती हैं। भाभी तो हैं! अन्य स्त्रियों को भी पढ़ी-लिखी बना देंगी। भाभी क्या हैं जैसे दुर्गा देवी, यानी ऐसी ऊँची नारियों को हमारे यहाँ जैसा कहा जाता है वैसी। बड़ी धूल उड़ रही थी। लोग जिन मुसकानों के साथ आए थे उनके साथ लौटे नहीं, इनके चेहरों पर मुसकानें कैसे खेलती रहें? कल इस समय अस्पताल में था—क्या कर रहा था मैं?—

घाटीवाली स्त्रियों को बिदा करके आई।

'बेटा, अभी सोए नहीं?'

'नींद नहीं आई। अब सो जाऊँगा।'

'अभी आती है नींद।'

घाटीवाली ने सिरहाने बैठकर उसके सिर पर हाथ फेरा कि नींद आने लगी।

: ४४ :

टहल तड़के ही उठ बैठा और घूमने के लिए धीरे-धीरे तालाब पर गया जहाँ प्राचीन मूर्तियाँ और खंडहर थे। तालाब के बीच में और किनारे के नीचे दो गड्ढों में ही थोड़ा-सा पानी भरा हुआ था, उन गड्ढों के आस-पास कीड़ों से बिलबिलाता कीचड़ था। उस स्थान पर बहुत दिनों के उपरांत आया था, इसलिए ममता दुगुने वेग के साथ लौटी। उन पर से आँख सूखे हुए तालाब पर फिरी। इनके फूटे हुए बाँध की मरम्मत हो सकती है। हम लोग करेंगे। निश्चय ही करेंगे। सनेही की बात याद आई। क्या इन मूर्तियों ने भीतर की शक्ति को फिर से सजग कर दिया है और मुझे उठा दिया है? मूर्तियाँ बहुत सुंदर हैं। बनानेवालों की परम श्रद्धा और कुशलता की प्रतीक। पर मेरे सिद्धांत के लिए शक्ति इन्होंने नहीं, इस सूखे तालाब के फूटे हुए बाँध ने दी है। उन मूर्तियों पर फिर दृष्टि गई। क्या कारीगर थे! कैसे हाथ थे उनके!! और आज वह दिन है जब मोटे-झोटे हल-बखर तक भद्दे बनाए जाते हैं। करघे तो यहाँ बढ़िया बना ही नहीं पाते।

लौटकर घर होते हुए सनेही के यहाँ गया। वहाँ मरीजों की भीड़ थी।

सनेही ने ज्यादा चलने-फ़िरने से मना किया, क्योंकि एक पैर में अभी कुछ लँग थी।

'[illegible] दादा, आप तो उस दिन कहते थे कि घर पहुँचने पर दौड़ने-उछलने लगोगे!

'तो मैंने यह कहाँ कहा था कि तुम आज भोर से ही कूद-फाँद शुरू कर देना?' सनेही हँस पड़ा।

वही स्वच्छ हँसी! वैसा ही गाढ़ा सनेह जैसा अस्पताल में इससे मिलता था।

जो वहाँ थे उन्होंने देख लिया कि दोनों एक-दूसरे के अधिक निकट हो गए हैं।

राजदुलारी के पास भी बहुत थोड़ी देर ठहरा, क्योंकि वह सनेही की सहायता में संलग्न थी; फिर रसोई पकानी थी।

राजदुलारी ने डाँटा—'उन्होंने कहा होगा कि घर पहुँचकर दौड़ते फिरना, मैं कहती हूँ कि धीरे-धीरे परिश्रम बढ़ाओ, नहीं तो याद रखना—'

टहल को चाँटोंवाली याद आ गई।

'अच्छा भाभी, अच्छा।' और हँसकर चला गया। बहुत-से लोग दोपहर के पहले तक टहल के पास आ गए। किसी ने कोई दु:ख रोया, किसी ने कोई।

विक्रम की शिकायत कई लोगों को थी। उस पर उनका संदेह था—डाका इसी ने डलवाया, क्योंकि बटोले और टहल—दोनों—को वह अपना परम शत्रु समझता रहा है। उनके कान तक वह कानाफूसी भी पहुँच गई—कौन-सा बड़ा रन जीतकर आ रहे हैं! टहल ने ऊपर से उपेक्षा की परंतु भीतर बात गड़ गई।

विक्रम से कुछ लोग दो कारणों से अप्रसन्न थे—एक तो इनके खेतों में उसने कभी-न- कभी पसर चराई थी, दूसरे, उसके पास अन्य लोगों की अपेक्षा ढोर अधिक संख्या में थे! डाह की जलन!!

: ४५ :

साँझ होने में देर थी। लू सपाटे के साथ चल रही थी। सनेही छतरी लगाए टहल के घर आया।

'अरे, इतनी धूप में दादा!'

'छतरी जो साथ थी। सोचा, कुछ बातें कर लें। इसके पहले आने का अवकाश नहीं मिला। लोगों के जमा होने पर कोई कुछ कहेगा, कोई कुछ। हम दोनों कार्यवाही का निर्धार और निखार कर लें, तो काम सुगम हो जाएगा।'

'जरूर! मुझे क्यों नहीं बुलवा लिया?'

'इसलिए कि बैठे-बैठे कहीं खुद लँगड़ाने लगूँ?'

दोनों हँस पड़े।

सनेही ने कहा, 'पहली बात तो यह कि देशराज को आज की बैठक का प्रधान बनाएँगे।'

'जी नहीं, आपको बनना पड़ेगा। बहुत-से लोगों का संदेह है कि कालीसिंह डाकू से

देशराज और विक्रम मिले हुए हैं।'

'कोई प्रमाण तो है नहीं।'

'जनता की बुद्धि को प्रमाण की जरूरत नहीं पड़ती, वह बिना प्रमाण के भाँप लेने की शक्ति रखती है।'

'फिर भी उसके साथ इसी जनता का बहुत-सा अंश है। बिना प्रमाण के, कम-से-कम हम लोगों को, ऐसा संदेह नहीं करना चाहिए। पुलिस उसकी निगरानी कर उठी है, जनता के संदेह का आधार शायद यही हो। हम लोगों की शंका के लिए यह पर्याप्त नहीं है। पहले तो हर मनुष्य को शुद्ध समझो, फिर सावधानी बरतते हुए जाँचते रहो, और जैसा उसे पाते जाओ, वैसी राय बनाते जाओ। और फिर, मैं उससे अभी-अभी कहकर आया हूँ कि तुम्हें प्रधान बनाएँगे।'

टहल खिलखिला पड़ा, 'वाह दादा! धन्य हो!! बहस खतम। आगे चलिए।'

सनेही ने भी उसकी हँसी का साथ दिया।

'भाई, बात यह है कि एक हिस्से की पहली किस्त का रुपया अधिकांश मजदूर दे तो सकते हैं, क्योंकि नहर खुदाई में उन्होंने कुछ जोड़ लिया है, परंतु मुझे शंका है, और इस शंका के लिए मेरे पास प्रमाण है, कि वे देंगे नहीं। दे भी दिया तो बैंक से रुपया देर में मिलेगा। बैंक के कुछ डायरेक्टर दकियानूसी हैं। पहली किस्त के दिए गए रुपए पर आठ गुना नहीं देंगे, परसों मैंने सदर में बात की थी। कम रुपया और वह भी देर में मिलेगा तो काम को शुरू कब और कैसे कर पाएँगे? तुम्हारे वीरत्व और त्याग की छाप अभी बनी हुई है—ठहरो, टोको मत,—इसका उपयोग अविलंब होना चाहिए। मजदूर मुफ्त सेवा का काम एकाध दिन ही मन लगाकर कर सकेंगे, फिर उसका नाम न लेंगे। चाहिए है काफी रुपया तुरंत। यदि मजदूरों ने हिस्से की चौथाई का रुपया न दिया तो अपने किसी कोष से जमा करके धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा उनसे वसूल कर लेंगे। मजूरी उन्हें रोज मिलनी चाहिए, भले ही वह नकदी में कम हो। इस कोष के लिए देशराज को साधना है।'

'क्या वह चंदे में इतनी बड़ी रकम दे देगा?'

'वह क्या, कोई भी न देगा। हलके ब्याज पर उधार ले लेंगे। जैसे ही बैंक से रुपया आया कि उसका वापस कर दिया। मैं उससे बात कर आया हूँ। नहरवालों से बात हो ही चुकी है। औजार उनसे मिल जाएँगे।'

'देशराज कुदाली-फावड़ा तो चलाएगा न?'

'बिलकुल तय है। मजदूरों को पराक्रम की उत्तेजना चाहे उससे न मिले, पर हँसी जरूर मिलेगी।'

'दादा, कहीं ऐसा न हो कि मजदूर पूँजीवाद की ओर खिसक जाएँ जो कि सामंतवाद

का उत्तराधिकारी है, क्योंकि हमारा साधारण जन युगों की अज्ञानता, जड़ता और शिथिलता में जकड़ा हुआ है। उसका यह कुलक्षण सामंत युग की ही देन है।'

'इस कुलक्षण के उत्पन्न करने में सामंत युग या सामंती का थोड़ा-सा ही अपराध है। और भी कई कारण हैं। जैसे धर्म की विकृतियाँ—पर इनकी चर्चा इस समय व्यर्थ होगी। अब तो, परछाहीं की तरफ न देखकर अब तो—।'

सनेही मुसकराया और टहल हँसा।

सनेही कहता गया, 'अब तो हम लोगों को प्रण करना है कि अपने भीतर ऐसा स्वभाव उत्पन्न करें जो कठिनाइयों पर हँस दे और हाथ में लिए कार्यों को समाप्त करके ही दम ले।'

'तभी दादा इस धूप और लू में निकल पड़े! देशराज के यहाँ कितनी देर रहना पड़ा?'

'लगभग दो घंटे।'

'बनमाली के यहाँ भी गए होंगे?'

'नहीं गया। देशराज से काम था, वह है भी कुछ अधिक सहज-गम्य। बनमाली सक्रिय होते हुए भी नकारात्मक भावनावाला आदमी है। सहकारी समिति का मंत्री होने पर भी सहयोगहीन। समाज के ऐसे सक्रिय और बुद्धिजीवी जन जो विनाश-संकलन की ओर अधिक झुके रहते हैं, साधारण जनता की जड़ता और शिथिलता के वातावरण में हमारे-तुम्हारे मार्ग के सबसे बड़े विघ्न हैं। और अपनी गति साँप-छछूँदर की जैसी हो रही है। सहना-निभाना पड़ेगा।'

'क्या बनमाली को और भी कोई पद देना है?'

'पद देंगे भी तो वह न लेगा, क्योंकि छाया में बैठकर भी अफसरी करेगा तो लू के तमाचे खाने पड़ेंगे। अब जो भी पदाधिकारी होंगे, उन्हें भी मजूरी देने की व्यवस्था करेंगे। इस लोभ में आकर काम कर जाए तो कर जाए।'

'रक्षकदल के पदाधिकारियों को भी!'

'नहीं, क्योंकि वह काम मजूरी नहीं है। वह तो वीरता का शिक्षालय है और वीरता की कीमत कूतनेवाले खपड़ों से डाकुओं को मार भगानेवाले ही हो सकते हैं, न कि डॉक्टर!'

फिर हँसी।

'वाह दादा! उसका जिकर न किया करो। वह सब कुछ न था। किसी धुन में कर गया।'

'तो माँजी से पूछूँगा, क्योंकि वीरता की जननी उन खपड़ों की कीमत जरूर जानती होंगी जो उन्होंने फोड़े और फुड़वाए थे। तीन-चार आने पैसे लेकर मन मना लेना बस।'

'दादा! दादा!!' टहल सनेही से लिपट गया। दोनों भावमग्न हो गए।

जब शांत हुए, सनेही ने कहा, 'अब दूसरी प्रकार की सूरवीरी का क्षेत्र सामने है। वह समय और शक्ति से सीमित नहीं है। डग-डग पर सब्र की सँभाल, उखड़ती हुई दम का साधना, टूटती हुई आशा का जोड़ना, विरोध को अपने रस में पचाना, अकस्मात् निराशा का कड़वा घूँट पी लेना, सुनसान-वीरान अकेली यात्रा में थके-माँदे पैरों का बढ़ाते जाना—यह सब शायद रोज-रोज का अनुभव हो जाए, इन अनुभवों पर भी बने रहना है अपनी धुन के नशे में मस्त, ऐसी मस्ती जो कभी उतरे नहीं।'

टहल ने सनेही को उत्साह की इतनी तेजी में कभी नहीं देखा था।

'आप जहाँ ले चलेंगे, चलूँगा।' उसने कहा।

'नहीं जी, सोच-समझकर काम करते रहना है। बुद्धिजीवी कहलानेवाले लोगों तक में संपत्ति संग्रह, आपा-पंथी, परंपरानुगमन, दूसरों की आवाज का बिना सोचे-विचारे अनुकरण का आज के घंटे तथा वर्तमान युग की माँगों और कानून की मजबूरियों का, परस्पर निस्तब्ध संघर्ष चल रहा है। इसीलिए मैंने सहकारी मार्ग का सहारा पकड़ा है। यह दोनों ओर के खाई-खड्डों से बचता हुआ चलता है। जहाँ वह ले जाए वहाँ चलना है।'

'पर उसमें दोष भी बहुत-से हैं।'

'हैं—मैं मानता हूँ; जैसे सरकारी अफसरों का लगातार दखल जिससे अपने यहाँ का जन-मन ही बहुत छड़कता है और दूर रहना चाहता है; परंतु जैसे ही श्रमधन की पूँजी इकट्ठी हुई कि स्वावलंब की मात्रा बढ़ जाएगी और सरकारी दखल घट जाएगा; फिर वह दखल हमारी मनचाही सहायता का रूप पकड़ लेगा।'

'यह तो हो जाएगा, पर सहकारी योजना में निजी खेती, मेंबरों को भूमि वापस लेने का अधिकार और इस्तीफा देकर सही-सही भूमि को अपने साथ उठा ले भागने का हक—'

'इनके सिवाय और भी कई दोष राहु-केतु की तरह सहकारी खेती को ग्रसे हुए हैं और श्रमधन को सनीचर लगने का भय है।'

'फिर, हम-तुम काहे के लिए हैं जो इन कुग्रहों से मुक्ति न दिलावें? है वही बात—डग-डग पर धैर्य की सँभाल—'

घाटीवाली ने आकर टोका, 'जहाँ तुम दोनों बातूनी इकट्ठे हुए कि गरमी और लू तुम्हारे हाथ जोड़ने लगी।'

सनेही ने कहा, 'तो गरमी और लू का कैसा अच्छा इलाज ढूँढ़ निकाला है हम दोनों ने!'

घाटीवाली ने एक और इलाज बताया, 'मैंने कुछ तैयार किया है। उसे खा लो तो

गरमी और लू भाग खड़ी होगी। साँझ होते ही बातों की हाट-सी लगनी है, उसमें खाना-पीना सब भूल जाओगे। उठो, धोओ हाथ-मुँह।'

: ४६ :

साँझ होते ही देशराज के घर से दो बड़े-बड़े फर्श आ गए और टहल के घर के सामनेवाले मैदान में बिछा दिए गए। फिर एक मेज और चार-पाँच कुरसियाँ आईं। मेज पर देशराज की गैस बत्ती प्रकाश के लिए रख दी गई। सबसे पहले बच्चे आकर फर्श पर धमाचौकड़ी मचाने लगे।

एक बोला, 'रामलीला होगी।'

दूसरे ने कहा, 'नहीं, सीता, राम, लक्षमन तो हैं ही नहीं; रामलीला नहीं होगी, नाच होगा सुहानावाली का।'

कुछ बच्चे एक-दूसरे पर धूल फेंक-फेंककर रामलीला के किसी अंग पर खेल चलाने लगे।

सनेही और टहल ने आकर लड़कों को फर्श पर से हटा दिया।

'चारपाइयाँ निकलवा लो, उन पर बैठेंगे। मेज-कुरसी का तमाशा अपनी बात का साथ नहीं दे सकेगा।'

टहल ने चारपाइयों का प्रबंध किया। बच्चे उनका कोई उपयोग करनेवाले ही थे कि देशराज, बनमाली और सुहाना के बहुत-से लोग आ गए। उन्हीं की भीड़ के साथ बटोले, मंटू और बाँगुर्दन की जनता आ मिली। कोई फर्श पर बैठ गया, कोई खड़ा रहा। स्त्रियाँ भी आईं और गैस बत्ती के तेज प्रकाश की यात्रा से काफी दूर एक मकान के पास खड़ी हो गईं।

चारपाइयों की तरफ संकेत करके देशराज ने पूछा, 'ये किसके वास्ते हैं? सोना तो किसी को है नहीं?'

'नहीं, जागते-जागते रहने के लिए। आप प्रधान होंगे, इसलिए आप कुरसी पर। हम लोग बैठेंगे चारपाइयों पर।'

भीड़ में से लटोरेसिह आया, उसी पुरानी वरदी में—मेले-ठेलों के लिए वह उसके जीवन का अंग बन गई थी।

बोला, 'राजा साहब बैठेंगे कुरसी पर और डॉक्टर साहब?'

टहल के मन में उठा—बिचारा सिपाही है न—राजनीति से दूर—इसलिए देशराज को आज भी राजा कहता है।

सनेही ने कहा, 'मैं नहीं बैठूँगा कुरसी पर।'

'जब आप सब चारपाइयों पर बैठेंगे तो मैं भी किसी चारपाई को पकड़ लूँगा,'

देशराज बोला।

निदान कुरसियाँ खाली पड़ी रहीं। वे सब चारपाइयों पर बैठ गए। अधिकांश लोग फर्श पर बैठकर बातें करने लगे, कुछ खड़े-खड़े शोर करते रहे। स्त्रियाँ चुप थीं—कम-से-कम उनकी आवाज नहीं सुनाई पड़ रही थी।

सनेही ने देशराज से कहा, 'सभा-समितियों की बैठकों की एक प्रथा है कि कुछ लोग भाषण दें, उन पर श्रोताओं की सम्मति ली जाए, फिर थोड़ा-सा गाँठ में बाँधकर और बहुत-सा वहीं खोकर, घर चल दें। यहाँ के लिए यह प्रणाली उपयुक्त नहीं जान पड़ती। अपने सामने आज एक ही प्रसंग है। उस पर कोई थोड़ा-सा बोले। फिर जिसके मन में जो आवे, बातचीत और सवाल-जवाब करे।'

'बड़ा हल्ला मचेगा, डॉक्टर साहब। व्यवस्था बिगड़ जाएगी।'

'इससे डरना नहीं चाहिए। इस प्रणाली के द्वारा आगे का कार्यक्रम बनाने में सुविधा मिलेगी और बहुत-से संगी-साथी सहज ही साथ लग जाएँगे।'

टहल को यह सुझाव पसंद आया।

बनमाली भाषण देने के लिए आया था। उसने प्रतिवाद किया, 'मीटिंग क्या होगी, कुँजड़ियाना बन जाएगा।'

'जी हाँ, ऐसा कुँजड़ियाना कि जिसमें आपको सब तरह के साग, मेवे इत्यादि भी मिल जाएँगे। आपका भाषण होगा, इसका इतमीनान दिलाता हूँ।' सनेही मुसकराया।

बनमाली अपने साफ-सुथरे कुरते की आस्तीन पर उँगली फेरने लगा।

सनेही ने कहा, 'कार्यवाही आरंभ कर देनी चाहिए,' और उसने तुरंत गुल-गपाड़े को कम किया। फिर देशराज को प्रधान बनाने का प्रस्ताव किया। टहलराम ने समर्थन।

देशराज को आश्चर्य हुआ, टहल ने समर्थन किया!

सनेही ने अपने छोटे-से भाषण में सहकारी सिद्धांत का लाभ समझाया और अपनी योजना बताई। देशराज और टहल को विशेष तौर पर संबोधित करके उसने कहा, 'अकेली भूमि, अकेली पूँजी और अकेले श्रम से कुछ नहीं होता। इन तीनों की खटपट नहीं होनी चाहिए, इनका समन्वय होना चाहिए।'

इसी समय धरनीधर और विक्रम आकर पीछे खड़े हो गए। इनको बुला लिया गया और वे एक चारपाई पर आ बैठे। लोगों में खुसफुस होने लगी।

बनमाली व्याख्यान देने के लिए छटपटा रहा था, खड़ा हो गया और बोल बैठा, 'प्रधान महाशय, देवियो और भाइयो।' सनेही की योजना के संबंध में तो उसने कहा ही, वोट के महत्त्व और चुनाव के विषय पर भी बोला। उधर जैसे ही उसने 'देवियो' और 'भाइयो' कहा, स्त्रियों के कान परस्पर बातचीत की ओर फिर गए।

'अरी तू कौन-सी देवी है री?—काली, चंडी, मुंडी, कौन-सी?'

'तू होगी—चुड़ैल कहीं की!'

'अरी तुझे तो किसी मंदिर में थाप दें तो बनमाली तेरी आरती उतारता फिरेगा।'

'वह निपूता इतना चालाक है कि उलटी मेरी हँसुली-पटेली उतार ले जाएगा।'

मंटू ने बटोले के कान में कहा, 'इसको अपने गाँव के वोट न मिलें तब बात है।'

प्रधान की ओर मुँह किए हुए ही बटोले धीमे स्वर में बोला, 'चाहे जहाँ दाल-भात में मूसलचंद बन जाता है। लेकिन गुट्ट बनाने में एक नंबर है।'

बनमाली ने अपना व्याख्यान समाप्त किया, 'इसलिए देवियो और भाइयो! सब मिलकर काम करो। एकाध दिन बाद ही हम सब कुदाली-फावड़ा पकड़ेंगे और श्रमदान की ऐसी पूँजी इकट्ठी करेंगे कि उसके सामने अन्य सब पूँजियाँ कमजोर पड़ जाएँगी।'

देशराज ने रिवाजी ताली बजाई। कुछ तालियाँ और बजीं। फिर जो बच्चे एक जगह खड़े-खड़े चुप्पी के कारण परेशान हो रहे थे, देर तक तालियाँ पीटते रहे।

बनमाली धरनीधर के पास जा बैठा।

'ठीक रहा न?'

'हाँ-हाँ, वाह!' बिना किसी रस के धरनीधर ने कहा।

सनेही ने श्रोताओं को बातचीत और प्रश्न करने के लिए उकसाया। पहले तो लोग कुछ झिझके, फिर जैसे तूफान आ गया हो।

एक ने बात उठाई—

'नहरवाले बारह आने से लेकर एक रुपया रोज तक, जो जैसा काम करे, देते थे; गाँव में जो दर चालू है कम-से-कम वह तो दी जाए। छः आने रोज में पेट नहीं पल सकता।'

दूसरे ने कहा, 'मिट्टी का तेल, नमक, गुड़, दियासलाई भी तो नहीं आएगी इतने थोड़े पैसों में।'

तीसरा बोला, 'एक आना तो तमाखू के लिए चाहिए। बहुत महँगी हो गई।'

सनेही ने समझाया, 'मैं पहले कह चूका हूँ और अभी-अभी बतलाया कि छः आने रोज नहीं हैं, बल्कि अखीर में बारह आने का पड़ता बैठेगा।'

एक ने पूछा—

'कैसे? हमें तो बतलाओ; हमने तो ये सब बातें आज ही सुनी हैं।'

टहल ने उत्तर दिया, 'सहकारी खेती समिति का कम-से-कम एक हिस्सा सबको खरीदना होगा। जिनके पास जिमीन है उनके लिए हिसाब है फी एकड़ पर एक हिस्से का दस रुपया; जिनके पास नहीं है उनका एक हिस्सा भी उतने ही का। पहली किस्त ढाई रुपए की। फिर हर साल ढाई रुपया, जब तक दस रुपए पूरे न हो जाएँ। ये ढाई रुपया पहले ले लिया जाएगा। जो न दे सकें उनकी मजूरी में से छः आने रोज काटकर पहली किस्त का रुपया जमा कर लिया जावेगा। समिति के मेंबर हो जाने के कारण

उन्हें साल-साल अपने-अपने रकम के अनुसार मुनाफा मिलता रहेगा और समिति के काम का प्रबंध करने में उन्हें हक रहेगा।'

वह नहीं समझा।

'घर में एक कमानेवाला और चार खानेवाले, काम कैसे चलेगा?'

मंटू बोला, 'बात अच्छी है। हम तुम्हें समझा देंगे। यहाँ कुछ लोग कह रहे हैं कि छः आना रोज न काटा जाए। बल्कि चार आना काटा जाए। आठ आने मिल जाएँ तो घर का काम चलता जाएगा।'

सनेही ने कहा, 'दो दरें हैं—एक दस आना रोज, दूसरी बारह आना; जो जितना करे, उतना पावे। चार आने ही काटने की बात मान लेते हैं। जिनकी दर दस आने की होगी, उन्हें छः आना ही मिलेंगे।'

इस पर मर्मराहट हुई। एक स्त्री ने वहीं से पूछा, 'हमको क्या मिलेगा?'

'जो जैसा करेगी, वैसा पाएगी। किसी को पुरुष के बराबर, किसी को उससे कम,' उत्तर मिला।

मर्मराहट बढ़ी।

एक चिल्लाया, 'तो कोई भूखों मरेगा और किसी को मौज पटेगी। उधर तो आप लोग कहते फिरते हैं कि सब एक समान हैं, सबको एक-सा दो, इधर ये बातें!'

दूसरा—'भगवान् भले, जो सबका पेट भरते हैं। कुदाली तो आज चलानी पड़ेगी, कल की किसने जानी!'

सनेही बोला, 'ठीक है भाई, ठीक है; काम करे या न करे, भाग्य के भरोसे बैठा रहे, भगवान् परोसते रहेंगे! कहा भी है—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करें न काम;
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम!

'सो मौज करते रहो पट्ठे!'

इस पर लोग हँस पड़े। तर्क और युक्ति का जो प्रभाव न पड़ता वह इस असंगत पाठ का पड़ गया।

एक ने कहा, 'खाना मिल जाता है तो कपड़े की कमी। दोनों मिल गए तो नमक, तेल, तमाखू के लिए तरसते रहते हैं। यह कष्ट मिट जाए किसी तरह हमारा। हम काम करने और समिति के काम को आगे बढ़ाने के लिए तैयार हैं।'

'तो जिसको जब जैसी जरूरत पड़े, बतलाते रहो; उस जरूरत को पूरा किया जाएगा—नमक, तेल, तमाखू, दियासलाई, गुड़ वगैरह में मजूरी चुकाई जाएगी।' सनेही ने एक ढंग निकाला।

'ठीक है, ठीक है,' कई कंठों से निकला।

सनेही ने एक दोहा कहा—

'जाको जब जैसी अटक सो तब तैसो पाय,
राज काज ऐसे चले तो सुराज कहाय।'

टहल की स्मृति में उसके प्रिय सिद्धांत का एक वाक्य उभरकर समा गया—हर एक को उसकी आवश्यकता के अनुसार मिलना ही चाहिए। सोचा—उस सिद्धांत का आरंभ हुआ, उसके मुँह से यकायक निकल पड़ा—'वाह दादा!'

लोग इस पर चौंके नहीं, क्योंकि सभी कह उठे थे—'बहुत ठीक, बिलकुल ठीक।'

टहल ने पूरा जोर लगाकर आग्रह किया, 'तो बढ़ो आगे और लिखाओ दादा की श्रमधन-पल्टन में नाम।'

लटोरेसिंह सबसे आगे आया, 'हमारा नाम लिखेगा दादा, जो हमसे उमर में छोटा है; पर जब सब दादा कहता है तो हम भी दादा कहेगा।'

'इसको क्या हो गया है, राम!' घाटीवाली ने हरको से कहा जो उसके निकट दरवाज़े पर चिपकी-सी बैठी थी।

'सिपाही है कहीं का।' हरको बोली।

'अरे इसी गाँव का है; मुझसे कम उमर का है। मजदूरी किया करता था। बोलना भी नहीं जानता था। फिर फौज में भरती हो गया, बरसों से नहीं आया। अब तो ठाठ ही दूसरे हैं। पैसा पास में हो गया है और बोली भी कैसी अजूबी हो गई है इसकी।'

सनेही ने उसका नाम लिखने के बाद डेढ़ सौ के लगभग नाम और लिखे। मंटू ने हरको का नाम लिखवाया और जोर से बोला, 'हरको का नाम लिख लिया गया है, और जनी भी लिखवावें।'

कई स्त्रियों के नाम लिखे गए।

सनेही बोला, 'आगे जिस किसी को नाम लिखवाना हो, टहल भाई के पास चले आना।'

देशराज और बनमाली के नाम उनके कहते हुए भी कि कर ही क्या सकेंगे, सनेही ने दर्ज कर लिए।

अंत में बात आई एक हिस्से के खरीदने की पहली किस्त के रुपए की, तो मंटू, बटोले और अन्य थोड़ों के सिवाय सबने हाथ खींच लिया। बनमाली को बुरा नहीं लगा—बनते ही टूट जाए यह घोटाला तो अच्छा रहे!

'आपसे प्रार्थना है कि हमारी आर्थिक सहायता करें,' सनेही ने देशराज से अनुरोध किया।

देशराज को स्मरण नहीं रहा, बोला, 'चंदा देने से मजबूर हूँ डॉक्टर साहब।'

'चंदा नहीं राजा साहब, उधार दीजिए पाँच हजार रुपए, उधार। समिति के कोष में

आपकी अमानत जमा रहेगी। उस पर ब्याज मिलेगा,' सनेही ने हँसकर कहा। उसके मुँह से 'राजा' शब्द का संबोधन पाकर देशराज की बाँछें खिल गईं। सनेही ने थोड़ा जोर और लगाया—

'देखिए, यदि उधार पर नहीं देते तो लोग कहेंगे—ये तो समाज-शोषक हैं और न जाने किन बातों पर रुपया फूँकते रहते हैं। जब आप सबसे पहले कुदाली-फावड़ा पकड़ेंगे तब उस काम के जारी रखने की लाज भी तो आपके ही हाथ है।'

देशराज ने थोड़ा-सा सोचा और पाँच हजार रुपए उधार देने का वचन दे दिया। सनेही ने हर्षमग्न होकर घोषणा कर दी। लोगों ने समझा—दान किया है।

'अब की बार देखें किस पर डाका पड़ता है।' धरनीधर की कल्पना में आया।

बटोले बोला, 'कुछ मुझे भी कहना है।'

देशराज ने कहा, 'अवश्य।'

नाम लिखानेवाले खड़े, बैठे, चलते-फिरते बातें कर रहे थे।

बटोले चिल्लाया, 'भाइयो, हमारी भी एक बात सुनो।'

भीड़ को शांत किया गया। लोग जहाँ-तहाँ बैठ गए।

बटोले ने कहा, 'खेती मैं भी करता हूँ और तुम सब करते हो; पर हम थोड़े से लोग कुछ उद्यम भी करते हैं : लुहार, बढ़ई, कुम्हार अपना-अपना करते हैं और हम कपड़े का काम। पेट-भर रोटी मिल जाए तो बहुत समझो, पर इससे काम नहीं चलता। खेती-किसानी के बढ़ाने की बातें तो तय हो गईं, हम लोगों के रोजगार बढ़ाने के लिए भी कुछ होना चाहिए।'

'हो रहा है और सामने आएगा। तुम्हें नए कल-पुर्जे दिए जाएँगे, जिनकी सहायता से ज्यादा माल तैयार कर सको और अच्छा भी ऐसा कि कल-कारखाने के मुकाबले का ठहरे। कुटीर-उद्योगों की सहायता के लिए सरकार पैसा देगी। हम उससे लेंगे। विश्वास करो। इन उद्योगों के सिवाय साबुन का बनाना, रस्से भाँजना, शहद की मक्खियों का पालना, लुहारी का कारखाना स्थापित करना जिसमें अच्छे औजार तैयार हो सकें, तिलहन की पिलाई और गुड़ बनाने की घानियाँ इत्यादि और—और अच्छे मुरगे-मुरगियों को बाँटा जाएगा जिनसे बड़े-बड़े अंडे हासिल होंगे—'

स्त्रियाँ हँस पड़ीं।

'ओ भगवान्! अंडे!! डॉक्टर है, बहुत खाता होगा।'

'देशराज, बनमाली, टहल—सब गुमसुम खाते होंगे!'

सनेही ने अपनी गलती सँभाली—'यानी जिनको जो पसंद हो, उसे वह काम दिया जाएगा। पर बनेगी सबकी एक सहकारी समिति। पंचायत को बढ़िया साँड़, अच्छे बकरे, भेड़ इत्यादि भी सुपुर्द किए जाएँगे जिनसे पशुओं की नस्ल सुधरे।

उदेता गड़रिया बोला, 'इन्हीं बकरे-बकरियों के खाने को तो चारा नहीं है, उनके लिए कहाँ से आएगा?'

उसकी बात बहुतों को अच्छी लगी, पर एक ने हँसकर उसे उजागर किया, 'अरे वैसे ही लगा है। सब ऐसे ही चलता रहता है।'

'अरे भाई, भगवान् की जैसी मरजी होगी वैसा होगा।'

'सबके दाता राम!' सनेही हँसा।

पर उदेता न माना, 'हमारी बात उड़ा दी, काँस उखाड़ डाला गया, अब कहीं कुछ बचा नहीं। बताओ, ढोर-बकरी क्या खाएँ?'

बनमाली ने परिहास किया, 'ट्रैक्टर नाहक चलवाए। बकरे-बकरियाँ जंगल की मशीनगनें हैं, इन्हें छोड़ देते काँस पर। ये बिचारी पलती रहतीं और किसान मगन हो जाते।' लोग हँस पड़े। उदेता दुबक गया। सोचने लगा—यह बनमाली भी क्या है! कभी कुछ कहता है, कभी कुछ!!

सनेही ने कहा, 'नहर के आते ही चारे-पानी का अटूट इंतजाम हो जाएगा, घबराओ मत।'

टहल ने अपनी कही, 'सबको पढ़ा-लिखा बनाने की भी योजना है। हम लोग रात की पाठशाला खोलेंगे, मुफ्त शिक्षा देंगे।'

'सोएँगे हम कब?' एक आवाज आई।

टहल बोला, 'गपशप और तमाखू की बैठकबाजी में से थोड़ा-सा समय निकाल लेना।'

'अब एक बात और सुनो,' सनेही ने ध्यान आकृष्ट किया, 'हर शनिवार या मंगलवार की साँझ लोग जगह-जगह रामायण पाठ, रामधुन इत्यादि ढोलक-मजीरे के साथ किया करेंगे क्योंकि अपने अच्छे काम बढ़ाने के लिए यह बहुत आवश्यक है।'

टहल नीचा सिर किए कुछ सोचने लगा।

बटोले ने कहा, 'कबीर साहब की बानी भी।'

'जरूर, जरूर, पर होना चाहिए बिना अंतर के। वैसे तो लोग घर-घर रामायण, कबीर साहब की बानी इत्यादि का पाठ करते हैं, पर अब उसे मिलकर करना चाहिए। सब काम मिलकर करने का पुन्न ही कुछ और है।'

'जीवन बहुमुखी है और अनेक तरह के रंगों से भरा हुआ। पूरे समूचे विकास के लिए जरूरी है कि लोकगीतों और लोक-नाचों को भी बढ़ावा दिया जाए।' टहल ने कहा।

कई आदमियों ने एक साथ कहा, 'हाँ-हाँ, ठीक है।' वे तमाखू पीने और घर जाने की उकताहट में थे।

स्त्रियों में हँसी का तूफान-सा आ गया।

'अरे! ये तो सब बड़े रँगीले हैं।'

'एक कहता है–मुरगियाँ पालकर बड़े-बड़े अंडों का ढेर लगाओ। दूसरा कहता है–गाओ, बजाओ, नाच नाचो!!'

'डॉक्टर रसिया है। उसने टहल से कहलवाया है, होड़ बदती हूँ जो बात उलटी निकले। खुद तो रामायन और कबीर साहब की बात कहकर चुप हो गया; टहल से यह रँगीली बात कहला दी!'

'रँगे सियार हैं, रँगे सियार!'

स्त्रियों की बातें पुरुषों के कानों में नहीं पड़ीं। उनमें रस की झलक देखकर टहल अपने सुझाव की सामयिकता पर प्रसन्न हो गया।

'तो अब चलें न? लोग खिसकते जा रहे हैं। कार्रवाई सब हो ही चुकी है।' देशराज ने कहा।

'रुपए, देशराजजी रुपए,' धरनीधर ने कहा, जो अभी तक चुप बैठा हुआ था।

'और दो शब्द आपके मुँह से,' सनेही ने अनुरोध किया।

धरनीधर की बात पर देशराज की आँखें करारी पड़ गईं।

'हाँ साहब, रुपए। आप सरीखा थोड़े ही हूँ जो जरा-से झंझट पर समिति छोड़कर भाग गए!' देशराज ने चुटकी काटी।

'फिर आ जाऊँगा,' धरनीधर ने उसकी उपेक्षा की।

'हम सब आपका स्वागत करेंगे।' सनेही बोला और देशराज से विनय की, 'बड़ी कृपा होगी यदि रुपए जल्दी दे दें।'

'कल दे दूँगा।'

'अब की बार चैक दीजिएगा। डॉक्टर साहब नकदी की जोखिम सिर पर न लेंगे। है न डॉक्टर साहब ठीक?' धरनीधर ने बदला लिया।

टहल ने दूसरी दिशा में मुँह फेर लिया। देशराज लाल पड़ गया। कारिंदे का मुकद्दमा, पुलिस की निगरानी, उसके अफीम के धंधे की गड़बड़–सब एक साथ कल्पना में घूम गईं।

सनेही ने सोचा –'चैक तो वे देंगे ही। नगद पाँच हजार रखता कौन है देहात में अपने घर? हाँ लेन-देन करनेवालों की बात और है। उन्हें हर घड़ी रुपए की जरूरत जो पड़ती है।'

देशराज ने अपने रोष और विषाद का दमन किया। बोला, 'चैक कल दे दूँगा।'

'बहुत-बहुत धन्यवाद। हम सब आपके कृतज्ञ हैं। पूँजीवाले सहकारी कार्यों की यदि इसी तरह सहायता करते रहें तो किसी को भी शिकायत नहीं करनी चाहिए।' सनेही ने सराहना की। देशराज ने अपने दो शब्दों में सबको सहयोग का आश्वासन दिया,

कुदाली-फावड़ा चलाने की बात कही और कहा कि कारिंदेवाला मुकद्दमा समाप्त होते ही गाँव में रहकर अपने बस-भर काम करेगा, 'आप सबकी कृपा चाहिए।' इन शब्दों पर उसने कुछ अधिक बल दिया, 'क्योंकि वह मुकद्दमा सामने था और विशेषतः इन्हीं दो गाँवों के गवाह बयान देने को थे!

लोगों के चलते-चलते सनेही ने कहा, 'देशराजजी के चैक के रुपए जिला बैंक में जमा कर दिए जाएँगे; वहाँ से, जब जैसी जरूरत पड़ी, धीरे-धीरे मँगाता जाऊँगा। पहले नए मेंबरों के हिस्से की किस्त का रुपया जमा करवा दूँगा, फिर मजूरी बाँटने के लिए मँगाता जाऊँगा।'

लटोरेसिंह ने लोगों को रोक लिया, 'हमने अभी तक कुछ नहीं कहा क्योंकि फौज का आदमी है जो कम बोलता है और काम बहुत करता है। रक्षकदल को सँभाले बिना यह सब कुछ नहीं होगा। सबको उसमें भरती माँगना होगा, कवायद-परेड से कायदे का बरतना आएगा, कोई फैल-फुट्ट नहीं होने पावेगा। सब लोग सब किसम का काम कदम मिलाकर करेगा। बस।'

लोग जाते-जाते रुक गए। जनक और उसके सब साथी।

रक्षकदल का काम नया था और लोगों के मन का। सनेही ने प्रस्ताव किया, 'टहल भाई को रक्षकदल का कप्तान और लटोरेसिंहजी को ड्रिल मास्टर बनाया जावे।'

टहल बोला, 'कप्तान दा—द—डॉक्टर साहब को बनाया जाए। मैं तो उनकी नांयबी करूँगा।'

यही तय हुआ।

बनमाली ने कहा, 'कार्यकर्ता सहकारी के और रक्षकदल के अवैतनिक होंगे या उन्हें कुछ भत्ता दिया जाएगा?'

सनेही और टहल की आँखें मिलीं और अलग हो गईं।

'सहकारी के पदाधिकारियों को उनके काम की नाप-तौल के हिसाब से मजूरी मिलेगी। रक्षकदल के लोग स्वयंसेवक सिपाही हैं—' सनेही ने वाक्य पूरा नहीं कर पाया।

जनक चिल्लाया, 'हमको कुछ नहीं चाहिए—पैसा नहीं—केवल कुछ बंदूकें चाहिए, जिनकी सहायता से हम चोर-डाकुओं के छक्के छुड़ा सकें।'

लोगों का धीमा पड़ता हुआ उत्साह फिर सतेज हुआ। तमाखू पीने की वांछा न जाने किस कोने में चली गई। टहल की बाँहें फड़क उठीं।

सनेही ने देशराज को अनुप्राणित करने के लिए कहा,—

'क्या अब भी घर जाने की जल्दी है?'

'नहीं डॉक्टर साहब, इसके लिए तो रात-भर बैठा रह सकता हूँ।' देशराज ने

संतुलित स्वर में उत्तर दिया।

लटोरेसिंह ने एक युद्धक्षेत्र का नाम लेकर कहा, 'हम घायल हो जाने पर भी सोलह घंटे मशीनगन चलाता रहा, जब दुश्मन को बिछा दिया, हम तब बेहोश हुआ। बस।'

विद्यार्थियों ने उमंग से भरकर तालियाँ पीटीं। लटोरेसिंह का सीना फूल गया और वरदी पर टँके हुए चिप्पे और पदक ऊँचे उठ गए।

टहल को फुरेरू आई जो चोटवाली जाँघ पर जाकर रुक गई। टहल को लगा जैसे कुछ आँस रहा हो। उसे दबाने के लिए होंठ कसे।

सनेही बोला, 'टहल भाई और मैं अपने लटोरेसिंहजी और विद्यार्थियों से आशा करते हैं कि वे हमारे सहकारी कार्यों में भाग लेंगे और उनका नेतृत्व करेंगे।' लटोरेसिंह की तरफ आँख घुमाकर कहा, 'आप सब हमारे काम को लैफ्टराइट! लैफ्टराइट!! कराएँगे।'

लटोरेसिंह ने उसी क्षण करा दिया, 'सब जवान खड़ा हो जाओ।'

विद्यार्थी तपाक से और अन्य लोग लजाते-शरमाते खड़े हो गए।

सनेही बोला, 'आज से आपकी आपस की शत्रुता, निंदाचार, बेईमानी, दूसरे को नुकसान पहुँचाकर अपना भला करने की भावना इत्यादि बुरी बातों के छोड़ने के लिए त्याग इत्यादि अच्छे कामों की लैफ्टराइट करने और कराने का काम तुम लोगों के हवाले ज्यादा रहेगा।' फिर सनेही ने भावमय ऊँचे पैने स्वर में गाते हुए कहा—

'धर्म चुपके से कहता है कि उठ कर डाल कुछ;'

युवक बोला—'कमर कस ली है मैंने देख लो!'

सनेही ने इस पद्य को दुहराया। लहर-पर-लहर दौड़ी। टहल को अवगत हुआ, एक जाँघ नहीं, दोनों में चोट लगी होती तो भी परवाह न थी।

धरनीधर और बनमाली ने भी रक्षकदल में अपने नाम लिखाए।

विक्रम से कहा गया।

'दिन-भर ढोरों में रहता हूँ, साँझ होने पर घर लौट पाता हूँ। मेरे बस का नहीं,' विक्रम ने इनकार कर दिया।

'और न जाने डाँग में इन्हें कितने काम लगे रहते हैं। इनकी गतमत भगवान् ही जाने,' बटोले ने फबती कसी।

विक्रम को अपने टूटे हाथ की कसक नहीं भूली थी—

'तुम्हें बहुत भरी हो तो निबट लो किसी दिन। तुम्हारे दोनों हाथ न तोड़े तो मेरा नाम विक्रम नहीं।'

लगता था जैसे दोनों भिड़ते ही हैं।

खटाक-खटाक कदम रखता हुआ लटोरेसिंह बीच में आ गया—

'ए! ए!! हम कहता है, खबरदार! हट जाओ, नहीं तो हम अपना जवान बुलाएगा।'

बटोले की इतने ही में विजय हो गई, विक्रम को घर चले जाना पड़ा। जनक और उसके साथियों की उघड़ी आस्तीन फिर कलाई पर पहुँच गईं।

देशराज ने सोचा—यह अच्छा नहीं हुआ, कसमसाकर रह गया। टहल ने अपने भीतर के हर्ष को वहीं छिपा लिया। सनेही ने अपनी खटक मिटाई—

'यज्ञ के आरंभ में कोई-न-कोई विघ्न न आवे तो वह यज्ञ ही क्या? हम सब एक-दूसरे के साथ प्रीति का ब्योहार करते हुए चलेंगे, इसको हमें नहीं भूलना है।'

जमाव समाप्त हो गया। फर्श, मेज, कुरसियाँ, खटियाँ जहाँ-की-तहाँ पहुँचा दी गईं। विद्यार्थियों के साथ कुछ लोगों ने उसी समय से संलग्नतापूर्वक काम करने की ठान ली।

घर पहुँचने पर देशराज के मन में एक विकल्प उठा और तुरंत विलीन हो गया—'यदि कालीसिंह को किसी हिकमत से पकड़वा दूँ तो पाँच हजार रुपए हाथ लग जाएँ।'

यह विचार मेरे मन में क्यों उठा! वह सोचता था? वाहियात बात! उसने विकल्प को वहीं मसल दिया।

: ४७ :

दूसरे दिन देशराज ने सनेही को पाँच हजार की चैक समिति में अपनी अमानत जमा करने के लिए भेज दिया और रुक्का लिखवा लिया। सनेही ने समिति की ओर से जिला बैंक में जमा करके मजूरी और नई भरती के मेंबरों की पहली किस्त देने लायक रुपया वापस लेकर रख लिया। चार दिन के बाद कुलियों की खुदाई ठाठ के साथ आरंभ हो गई। शंख, झालर और रमतूलों की ध्वनियों ने नर-नारियों के उत्साह का घोष किया। पहले दिन लगभग दो सौ नर-नारी आए। काम के घंटे भोर के छः बजे से दस बजे तक और साँझ के चार से साढ़े छः तक—गरमियों के कारण केवल साढ़े छः घंटे। मजदूरों को सहज लगा। हलदी का टीका कलाई पर लगवाकर पहली कुदाली देशराज ने चलाई। बाँहों की मांसपेशियों की नसें जो भीतर ही रमी हुई थीं, फड़क गईं और ऊपर उठने लगीं। दस-पाँच हाथ चलाए कि माथे से पसीना चूने लगा और हाँफे के मारे नथुने फूल उठे। मजदूर हँस पड़े। देशराज ने हँसने के लिए हाथ थाम लिया। जितनी हँसी पाने और देने की आशा करके आया था, उतनी नहीं ले-दे सका।

हाँफते हुए बोला, 'अब तो करो शुरू।'

सनेही ने कहा, 'आप घंटे-आध घंटे रोज इसी तरह हाथ-पैर चलावें तो आपकी मांसपेशियाँ नसों से जकड़कर उभर आवें।'

देशराज की हँसी बढ़ी, 'माफ कीजिए, मेरे लिए तो यहाँ तक टहलते आने का व्यायाम ही काफी है।'

फिर सनेही, टहल, बनमाली, लटोरेसिंह, बटोले इत्यादि ने भी कुदाली-फावड़ा चलाने का रिवाज निभाया और मजदूर जुट पड़े। रिवाजी कुदाली-फावड़े थोड़ी ही देर साथ दे सके। सनेही ने टहल के औजार सबसे पहले रखवा दिए। वे सब एक जगह इकट्ठे होकर आगे काम चलवाने के विषय पर बात करने लगे। इनमें नहर विभाग के कर्मचारी भी थे जिनको अपने औजारों की निगरानी और काम के निर्देशन के लिए भेजा गया था।

'मजदूरों से काम लेने के लिए तगड़े आदमी रखे जावें, नहीं तो वे घंटा गुजारी करेंगे और साँझ को मजदूरी माँगेंगे उतनी ही जो तन-मन लगाकर काम करनेवालों को दी जावेगी।' बटोले ने कहा।

नहर कर्मचारी ने समर्थन किया, 'ठीक कहते हैं ये। कामचोरों का हाथ हम कहाँ-कहाँ पकड़ते फिरेंगे? दो सौ मजदूर जो हैं।'

मजदूरों की दुबली-पतली बाँहों की मोटी नसें सवेरे की किरणों और पसीने की झलझलाती बूँदों में फूल-फूलकर चपल हो रही थीं।

'ये जितना परिश्रम करते हैं उतना तो नहीं पाते।' टहल के होंठों तक आया, पर उसने बाहर निकलने नहीं दिया।

काम करानेवालों की पालियाँ बना ली गईं और उनके कार्य का क्रम नियुक्त कर लिया गया। विद्यार्थियों की पाली का नेता जनक रहा और सारे कार्य-संचालकों के ऊपर लटोरेसिंह। जो जितनी देर काम करावे, अनुपात में उसे साधारण दर से दुगुनी मजूरी।

लटोरेसिंह ने कहा, 'हम कवायद-परेड से काम शुरू करेगा, पर उतने समय का कुछ नहीं लेगा। कवायद होगा भी थोड़ी ही देर।'

विद्यार्थियों को कुदाली-फावड़े के काम में उतनी रुचि नहीं थी जितनी कवायद-परेड में। लटोरेसिंह की बात पर प्रसन्न हुए।

टहल समान दर रखने के पक्ष में था, सनेही दुगुनी दर देने के पक्ष में। बहुमत ने उसी की बात मानी—योग्यता की असमानता को मान्यता दी गई।

दस बजे छुट्टी हुई। चार से काम फिर लग गया। निरीक्षकों की पाली बदली। सनेही, टहल इत्यादि चौथे पहर के काम के समय नहीं आए। विद्यार्थियों की जो पाली आई, उसमें उतनी रुचि नहीं थी जितनी पहले पहर दिखाई पड़ी थी।

: ४८ :

महीने-भर काम चलते-चलते दो सौ मजदूरों के सत्तर-पचहत्तर के लगभग रह गए। दस दिन की मजूरी में से जहाँ हिस्से की पहली किस्त का ढाई रुपया कटा कि ढीले पड़ गए। काम भी दस-बीस दिन का ही रह गया था।

गरमी इतनी पड़ रही थी कि दिन के पहले ही पहर लू चलने लगती थी। आकाश में धूल की चादरों के तन जाने से धूप कुछ हलकी लगने लगी थी। अब बादलों के टुकड़े मँडराते हुए दिखाई पड़ने लगे। आनेवाली वर्षा के ये पहले चिह्न थे।

उस दिन प्रातःकाल सनेही और देशराज को पहली पाली का कार्यारंभ कराने आना था। पहले सनेही आया। उसके आते ही विद्यार्थियों की टोली ने सैनिक प्रणाम किया। रोज का काम था। कुछ लोगों ने उसके पैर छुए। सनेही को यह सब अच्छा लगने लगा था। मजदूर काम पर लगा दिए। अपना काम देशराज को सौंपकर सनेही चला गया। उसे चार-पाँच मील दूरी के एक गाँव में कुछ मरीजों को देखने जल्दी जाना था।

देशराज ने कुछ दूरी से देखा कि जनक जिन छः-सात मजदूरों के पास खड़ा काम करा रहा था वे काम न करके किसी बहस में उलझे हुए हैं। उसने जनक को बुलाया। जनक ने आकर उसे प्रणाम नहीं किया।

'तुम्हारे कवायद-सारजेंट ने क्या तुम्हें यही सिखलाया है? प्रणाम का शिष्टाचार करना चाहिए था,' देशराज ने चेताया।

लटोरेसिंह ने यह सब सिखाया था, पर लड़के उसकी बातों को उतना ही मानते थे जितनी से उन्हें खेल का आनंद मिलता था।

'कर चुके कप्तान साहब को। कहिए क्यों बुलाया?' जनक ने उपेक्षा के साथ पूछा।

देशराज ने सह लिया।

'मजदूर काम क्यों नहीं कर रहे हैं?'

'लड़ पड़े थे, मैं समझा-बूझा रहा था कि आपने बुला लिया।'

'क्या बात थी?'

'एक मजदूर ने एक चमारिन मजदूरनी से हँसी-दिल्लगी की। हरको ने डाँटा-फटकारा। उस पर बहस हो पड़ी।'

'हँसी-दिल्लगी या और कुछ?'

'जब आ रहा था रास्ते में मजदूर ने उसका हाथ पकड़ लिया था, यहाँ दिल्लगी करने लगा।'

'बात तो कुछ नहीं है—होता रहता है—'

'कैसे होता रहता है? मैं उसे निकाल देने के लिए जा रहा हूँ। कुछ और सजा भी दूँगा।'

'हमारे बिना पूछे नहीं कर सकते।'

'कर सकता हूँ। मैं विद्यार्थियों की टोली का सरदार हूँ और टहलरामजी के नीचे काम करता हूँ। और कोई काम?'

ऐसे बोलता है जैसे मैं इसका मातहत हूँ!—देशराज ने सोचा। जरा दूर जगनू को जल्दी-जल्दी आते देखा।

'मैं काम करने जाता हूँ। यहाँ खड़ा-खड़ा बातें कहता-सुनता रहा तो वहाँ कोई बखेड़ा खड़ा हो जाएगा,' कहकर जनक चला गया।

जगनू ने एक जरूरी पत्र देशराज के हाथ में दिया। उसने खोलकर जरा-सा देखा और चिल्लाकर जनक को बुलाया। वह लौट पड़ा। ताव में था।

'फिर किसी जवाब की तलबी है क्या?' जनक झल्लाया।

क्रोध में फड़कते होंठों देशराज ने कहा, 'जरूरी काम से घर जा रहा हूँ। यहाँ का किसी से सँभलवा लेना,' और वह जगनू के साथ चला गया।

जनक जब अपनी टोली के मजदूरों के पास पहुँचा तो देखा कि एक मजदूर हरको की कलाई पकड़े उसे मारने पर तुला हुआ है और हरको अपना बचाव करती हुई उसे पीटने के लिए हाथ चला रही है; दूसरे मजदूर दो पक्षों में बँट गए हैं और कुछ दूरी पर काम करनेवाले अन्य मजदूर काम छोड़कर तमाशा देख रहे हैं। जनक के पहुँचते ही मजदूर ने हरको का हाथ छोड़ दिया और लड़ाई गंदी गालियों के आदान-प्रदान में बह उठी। इतने में मंटू दौड़ता आ गया। जैसे ही हाथा-पाई पर नौबत आई, लोग बीच में पड़ गए। पंचायत करना तय पाया—उसी समय, एक बड़े छायादार पेड़ के नीचे।

सब मजदूर काम छोड़कर आ गए। नहर के कर्मचारियों का कर्तव्य केवल खुदाई के आकार-प्रकार बताने का था, न कि काम लेने का। वे भी छाया में जा पहुँचे।

पंचायत शुरू हो गई और होती रही। पता लगा कि मजदूर ने चमारिन मजदूरनी के साथ रास्ते में छेड़छाड़ की और अब यहाँ हँसी-दिल्लगी कर रहा था।

मंटू ने कहा, 'यह विक्रम का आदमी है।'

वह मजदूर भी दमंग था, उसके साथ कुछ और आदमी थे। बोला, 'झूठ बकते हो।'

पंचायत ने निर्णय किया कि चमारिन मजदूरनी उस मजदूर का काला मुँह करे—वहीं, उसी समय, और—

जनक ने आदेश दिया, 'हरको उसे गिनकर पाँच जूते लगाए।'

हरको प्रसन्न हुई। हाथ में जूता लेकर आगे बढ़ी। जैसे ही वह मजदूर और उसके साथी हरको को रोकने के लिए आगे आए, वह झिझक गई। मंटू ने उस मजदूर को जूते लगाने शुरू कर दिए।

वह मजदूर और उसके साथी थोड़े थे, इसलिए थोड़ी-सी लड़ाई के बाद पस्त हो

गए। जनक भी उस मजदूर की मारपीट करना चाहता था। चमारिन से कहा, 'लगा दो इसके मुँह पर स्याही।'

एक विद्यार्थी ने उसकी गदेली पर अपनी दवात से स्याही डाल दी जिसे वह मजदूरों की हाजिरी लिखने के लिए लाया था। मजदूरनी अपमान करनेवाले के मुँह पर थोड़ी-सी ही स्याही लगा पाई। जनक ने स्वयं न पीटकर मजदूरनी के भी हाथों दो जूते उसके अपमान करनेवाले को लगवा दिए!

इसी-इसी में छुट्टी का समय हो आया। घर जाते समय कुछ मजदूर कह रहे थे कि बात बढ़ी नहीं सो अच्छा हुआ, नहीं तो एक-आध कत्ल फिर हो जाता।

'जोधा का कत्लवाला मुकद्दमा तो अभी तय नहीं हुआ है, एक और खड़ा हो जाता।'

'जूतों से कत्ल नहीं हुआ—और हो जाता तो हो जाता। विक्रम के पुछलग्गे की इतनी हिम्मत !'

साँझ के समय काम करने के लिए बहुत थोड़े से मजदूर गए।

□

अप्रकट अर्थों और बँधे संकेतों की भाषा में अंजना की चिट्ठी हिमालय के एक ठंडे स्थान से आई थी। उसने लगभग मन-भर अफीम इकट्ठी कर ली थी जिसे वह बीच बरसात में सुहाना लाना चाहती थी, क्योंकि देशराज ने अपने ऊपर निगरानी होनेवाली बात बता रखी थी।

बाघराज के पास वह उस 'माल' को नहीं ले जाना चाहता था जो उसने हवेली में छिपा रखा था—कहीं संदेह में नंगाझोरी ली जाए। यहीं बाघराज को बुला लूँ, पर उसने रुपए न दिए तो भी ठीक न रहा, क्योंकि माल देने से इनकार न कर सकूँगा। बाघराज शायद आवे ही नहीं। उसे निगरानी का हाल मालूम है। नाहरगढ़ से हिलना नहीं चाहता है। पूर्व-दक्षिण के बंदरगाह के निकट से काफी वजन की अफीम पकड़ी जा चुकी है। मध्य भारत के प्रदेशों की पुलिस बहुत चौकस है। जिन दो-दो लाख रुपयों के जमा करने की आकांक्षा में पड़कर यह रोजगार चलाया गया था वह तो दूर रहा, उलटे, सारी संपत्ति, इज्जत और जान गड्ढे में पड़ने का भय सिर पर!

देशराज उस दिन बहुत परेशान रहा। कारिंदे के मुकद्दमे की पेशी का दिन पास आ रहा था। इन्हीं दो गाँव के अधिकांश गवाहों के बयान पर मुकद्दमे का निर्णय होना था। वह सनेही और टहल का साथ देने का प्रयास करता रहता था। ये अहसान चुकाएँगे और जब पुलिस उनके संग-साथ देखेगी जिनके ऊपर डाका पड़ा था, तब एक दिन उसे पीछा छोड़ना पड़ेगा। देशराज को भरोसा होने लगा।

उस रात कई स्थानों पर कहीं रामायण का और कहीं कबीर साहब की बानी का पाठ होना था। देशराज उस बैठक में गया जहाँ सनेही और टहल को आना था। टहल,

जनक और मंटू पहले आ गए, सनेही जरा पीछे आया।

सनेही ने आते ही जनक को डाँटा, 'तुम्हें अपने किए पर शरम आनी चाहिए। उसने जितना अपराध किया था उससे कहीं अधिक दंड दिया गया। दिन-भर का काम चौपट करवा दिया। संध्या तक के लिए ठहर जाते, यहाँ हम लोग न्याय करते। बन गए एक ही मिनिट के भीतर जज साहब।'

जनक के मुँह से कुछ-का-कुछ निकला, 'मैंने किया ही क्या है—ठीक तो किया।'

'ठीक किया! बदतमीज कहीं का!!'

ऐसे कोप में सनेही को पहले कभी नहीं देखा गया था।

देशराज मन-ही-मन प्रसन्न हुआ।

टहल ने जनक के निर्णय और कार्य में ऐसी कोई बात नहीं पाई थी कि जिसके लिए जनक को इतनी डाँट-फटकार का पात्र समझता।

'क्या हो गया है इन्हें जो इतना बिगड़ रहे हैं?' उसने मन-ही-मन प्रश्न किया और कहा, 'जाने दीजिए दादा, लड़के हैं।'

देशराज ने ऊपर से हाँ-में-हाँ मिलाई, 'हाँ डॉक्टर साहब, जो हो गया सो हो गया। लड़के हैं, अभी समझ की कमी है।'

रामायण इत्यादि के पाठ में आरंभ की अपेक्षा अब कम लोग आने लगे थे। दिन-भर के थके, रात में रोटी खाई, चिलम पी और सो गए। पाठ में आ गए तो झीमते-झीमते थोड़ा-सा सुन लिया और फिर वहीं कहीं निद्रादेवी की गोदी में। पर उस समय खासी भीड़ थी।

सनेही ने कहा, 'इन लड़कों का तो दिमाग कुछ ऐसा खराब हो गया है कि आगे-पीछे की सोचते ही नहीं।'

मारे क्रोध के जनक भन्ना गया। सनेही ने बदतमीज और न जाने क्या-क्या कह डाला! और इस देशराज ने सवेरे का बदला निकाला, नासमझ कह-कहकर!! दाँत पीसने लगा।

रामायण का पाठ आरंभ हो गया। प्रसंग था लंकाकांड का, वह स्थल जहाँ रामचंद्र रावण को समाप्त करने के लिए स्वयं आगे आते हैं, विभीषण उनके लिए रथ का आयोजन करता है और श्रीरामचंद्र कहते हैं—

सौरज धीरज तेहि रथ चाका, सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका।
बल बिबेक दम परहित घोरे, छमा कृपा समता रजु जोरे।।
ईस भजनु सारथी सुजाना, बिरति चर्म संतोष कृपाना।
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा, बर बिग्यान कठिन कोदंडा।।
अमल अचल मन त्रोन समाना, सम जम नियम सिलीमुख नाना।

कवच अभेद बिप्र गुर पूजा, एहि सम बिजय उपाय न दूजा।।
सखा धर्ममय अस रथ जाकें, जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें।।

पाठ की समाप्ति पर सनेही ने उस प्रसंग की बात श्रोताओं के मन में दृढ़ता के साथ बिठाने के लिए चर्चा बढ़ाई। टहल असहमत हुआ।

'अंत में रावण सरीखे दुष्ट पर रामचंद्रजी को हथियार ही उठाना पड़ा। उस सिद्धांत से काम न चल सका। वह सिद्धांत तो उसके सामने झुकनेवाले ही के लिए काम में लाया जा सकता है।'

मंटू बोला, 'आज जो बदमाश सवेरे पीटा गया, उसे एक छोटा-सा रावण ही समझना चाहिए।'

'क्या मूर्खता की बात करते हो!' सनेही चिड़चिड़ाया, 'कहाँ तुलसीदासजी की रामायण और कहाँ तुम्हारे गाँवों के ये गंदे पचड़े!'

टहल प्रतिवाद की कोई बात कहते-कहते रुककर थोड़ा-सा झूमने लगा। जनक ने समझ लिया कि 'मास्टर साहब' विरुद्ध हैं।

उसके मन की तली में जो बात भड़भड़ा रही थी वह उसने कह डाली, 'तुलसीदास सामंतवादी हैं, पुनरुत्थानवादी—'

'चुप गधे!' सनेही कड़का, 'टहल भाई, क्या यही सब सिखलाते रहते हो इन छिछोरे छोकरों को?'

टहल भड़क उठा। उसे लगा जैसे उसका सोया हुआ ज्वालामुखी विस्फोट करना चाहता हो। आँख से चिनगारी-सी छूट पड़ीं, पर उसने अपना दमन कर लिया। नीचा सिर किए हुए उसने कहा, 'नहीं दादा, ऐसा नहीं है। आपका भ्रम है।'

'भ्रम है! हूँ!!' सनेही एक क्षण चुप रहा। देशराज ने अपना अवसर पाया, 'मैं आप सबके हाथ जोड़ता हूँ, अपने धर्म के काम में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। छोड़िए चर्चा। कल से फिर अपना वह सहकारी काम सँभालें जो अब थोड़ा-सा ही बाकी रह गया है।'

और लोगों ने कहीं इसकी और कहीं उसकी विनती की। ठंडक आने में देर लगी। जनक उठकर चला गया।

थोड़ी देर बाद सनेही उँगलियों से अपने माथे की मालिश करते-करते भर्राए हुए स्वर में बोला, 'मुझे न मालूम आज क्या हो गया?'

टहल के होंठों पर फीकी मुसकान आई।

'होगा दादा। हम सब मानव ही तो हैं। चलिए, अब घर जा सोवें।'

सनेही टहल पर पहले जैसे स्नेह की अभिव्यक्ति का प्रयत्न करता हुआ चला गया। सब लोग तितर-बितर हो गए।

टहल को देर में नींद आई। दादा को अवश्य कुछ हो गया है। अधिकार का बरताव

करते-करते इन्हें दर्प आ गया है। ये और ग्रंथ जिस चीज को अहंकार कहते हैं शायद यही इनमें समा रहा है। देशराज का अहंकार घटे और इनका बढ़े, यही एक अचरज की बात है! उसने विश्लेषण किया।

□

दूसरे दिन सनेही और टहल ने जनक को सँभाल लिया और काम फिर चलने लगा।

टहल के पैर की लँग नहीं के बराबर रह गई थी, कष्ट की स्मृति लुप्तप्राय हो गई थी। साथ ही सनेही और राजदुलारी के स्नेह के स्मरण भी क्षीण पड़ने लगे। उसे अपने सिद्धांतों के विश्वास से अधिक प्रेरणा मिलने लगी और अवगत होने लगा कि जो कुछ हुआ और होगा उसमें मेरा हाथ कम नहीं है।

पाँच-छः दिन पीछे जोधा के कत्ल का मुकद्दमा हुआ। गवाहों के बयान से दमरू का जितना अपराध प्रमाणित हुआ, उतने के अनुसार उसे छः महीने की कैद मिली। कारिंदा बरी हो गया। देशराज ने पैरवी की थी। कारिंदा तो कृतज्ञ था ही, दमरू और उससे सहानुभूति रखनेवालों को भी भासा कि देशराज ने कुछ-न-कुछ सहायता अवश्य की है। सुहाना लौटने पर देशराज ने देखा कि उसका प्रभाव पहले की अपेक्षा बढ़ गया है। उसने विक्रम का संपर्क कम कर दिया। आशा बँधी कि अटक पड़ने पर दूसरे दल के लोग मँड़राए भले ही रहें, मेरे ऊपर कभी खुलकर गरजें-बरसेंगे नहीं। पर निगरानी के सिलसिले में यह जो पुलिस का प्रेत छाया की तरह पीछे-पीछे चलता है इससे पीछा कब छूटेगा? निश्शंक होकर काम नहीं कर सकते—तिल बराबर भी चूके कि अंजना और लगभग सारे सहयोगियों के साथ वहीं जाना पड़ेगा जहाँ दमरू भेजा गया है! देशराज को यह कठिनाई बहुत खटकती थी।

: ४९ :

आँधी, धूल के बवंडर, सूखे पत्ते और कँटीली झाड़ियों के सूखे काँटे समेट-समेटकर इधर-उधर बरसाने-बिखेरनेवाले तूफान कम हो गए। भोर से साँझ तक आकाश में चढ़ी हुई धूल और फैले हुए बादलों के कारण किरण कम तीखी लगने लगी और लू कान गरम करनेवाली न रही।

असाढ़ का पहला पखवारा निकल गया। भूरे-साँवले बादलों के पुंजों में बढ़ती हो गई। पहाड़ों की ढाल और चोटी पर खड़े लंबे-लंबे पेड़ गड़े हुए बड़े-बड़े खूँटों जैसे दिखाई पड़ने लगे; छितराई हुई धूल और फैली हुई भाप से ढके हुए ऐसे लगते थे जैसे त्राहि-त्राहि कर रहे हों।

उतरते असाढ़ के तीन-चार दिन ही निकले थे कि नहर से पानी लाने का कुलियों की खुदाई का काम समाप्त हो गया। थके हुए मजदूर और कार्य-संचालक उन कुलियों को

देख-देखकर वैसे ही प्रसन्न हो रहे थे जैसे चित्रकार अपने किसी चित्र की सही रूपरेखा बनाकर संतोष पाता है; और वे उस घड़ी की कल्पना करके मोदमग्न थे जब उनकी खोदी हुई कुलियों में छलछल करता हुआ पानी बहेगा; जैसे चित्रकार निकट भविष्य के किसी दिन, अपनी बनाई उस रूपरेखा में भरे हुए विविध रंगों के देखने की आशा और प्रतीक्षा में स्पंदित हो जाता है।

कार्य-संचालकों के मन में एक बात और समाई—हर एक की धारणा थी कि मैंने कराया यह काम, मैं न होता तो कुछ भी नहीं हो सकता था। सनेही के भी मन की गहराई में अहंकार जा बैठा।

संध्या के पहले पश्चिम से उठते हुए गुबार ने सूर्य के आकार को अस्पष्ट कर दिया। लगता था जैसे रात के अँधेरे का संचय पूर्व दिशा से न होकर इस दिशा से होगा।

साँझ के पहले ही सनेही ने सुहाना आकर टहल से कहा, 'कार्य की सफलता के लिए परमात्मा को धन्यवाद देने के लिए आज रात को रामायण पाठ होना चाहिए।'

टहल मुसकराया।

'परमात्मा को धन्यवाद देने के लिए या अपने श्रम की सफलता को धन्यवाद देने के लिए? किसी भी सफलता के उपलक्ष्य में जो धन्यवाद दिया जाता है वह जन-विनोद है और उसका असली नाम है सफलता को धन्यवाद देना।'

कुछ समय से उन दोनों में छोटी-छोटी-सी बात पर बहस हो पड़ती थी, परंतु झंझट की दिशा में नहीं जाती थी। टहल को अपने सिद्धांतों की बात ज्यादा याद आने लगी थी।

'कुछ भी सही। जनता के मन को उससे शक्ति मिलेगी,' सनेही ने टहल के वाद को पचा लिया।

'हर एक स्वच्छ विनोद से जनमत सशक्त होता है। लोकनृत्य और लोकगान का आयोजन क्यों न किया जाए?'

'इन दिनों! किसी त्योहार के दिन देखा जाएगा।'

'थोड़ा-सा आयोजन आज भी हो सकता है।'

'अच्छी बात है। कह देखो लोगों से।'

रामायण पाठ के प्रबंध में देर नहीं लगी। लोकनृत्य और लोकगान के लिए कोई राजी नहीं हुआ।

'हो कैसे! आँधी के साथ पानी भी आता दिखता है। उसका स्वागत करने के लिए भगवान् की कथा बाँची जानी चाहिए, नाचें-गाएँगे सावन में जब सब तरफ हरियाली छा जायगी।'

टहल की योजना के असफल होने पर सनेही को बुरा नहीं लगा।

रामायण गान थोड़ी ही देर हुआ था कि जोर से आँधी आई। गान बंद कर देना पड़ा।

जनक ने कहा, 'भगवान् को इस समय अपनी कथा पसंद नहीं है।'

टहल के मन में आया—यदि नाच-गान हुआ होता तो जनता लहरा उठती और आँधी के साथ नाचती हुई तन्मय हो जाती।

सनेही को जनक की उस दिनवाली झड़प याद आ गई।

टहल जो कुछ सिखाता है वही तो बक देता है यह छोकरा, उसने सोचा।

बिजली की चमक के साथ कड़क हुई और मेह की बूँदें आईं।

सब लोग सिमटकर एक जगह हो गए।

सनेही ने कहा, 'भगवान् ने काम को सफल करवा के आज अपनी बूँदों द्वारा हम सबको आशीर्वाद भी दिया है।'

टहल बोला, 'और धूल-भरी आँधी के थपेड़ों के जरिए सचेत भी किया है कि जो जितना काम करे, उसे उतना दो। अब ये सब समिति के मेंबर हो गए हैं। हिस्से की रकम पर इन्हें जो कुछ मिले, उसके ऊपर भत्ता इतना जुड़ना चाहिए जो इनकी जरूरतों को पूरा करे।'

बादलों का गड़गड़ाना बढ़ा और आँधी भी इतनी तेज कि घरों के खपड़े उलटने-पलटने लगे। लगता था कि वृक्ष उपटकर उड़ जाएँगे। बूँदें घनी हुईं और बौछार फिकने लगीं। बहस आगे न चल सकी। पानी मूसलाधार बरसने लगा। खपरैल में से इन सब पर टप-टप हो उठी।

सनेही ने कहा, 'ऐसे ही बरसता रहा तो घर नहीं पहुँच पाऊँगा।'

टहल बोला, 'डॉक्टर—दादा, यहाँ भी तो घर ही है।'

'हाँ-हाँ, सो तो है ही।' पर सनेही के मन में टहल के घर रह जाने का अनुराग उत्पन्न न हुआ।

आधा घंटा बरसने के बाद पानी बंद हो गया और आँधी हलकी पड़ गई। हवा में बहुत ठंडक आ गई। वे सब एक नई उमंग से भर गए।

'जानवर प्यासों मरने लगे थे, अब नाले में पानी जहाँ-तहाँ तो जाएगा और चरने के लिए कुछ हरियाली मिल जाएगी।' एक ने कहा।

सनेही ने दूसरी बात छेड़ी, 'इस नाले ने खेतों की अच्छी मिट्टी को काट-काटकर बहा दिया है और भरके कर दिए हैं। जैसे ही समय मिले, अब की बार इन भरकों के मुँह बंद करने का काम हाथ में लेंगे। ठीक है न?'

टहल ने हामी भरी।

बटोले बोला, 'यह काम तो बरसात बाद जाड़ों में होगा। इन दिनों तो हल-बखर और खरीफ की फसल की बोहनी पर जुटना पड़ेगा।'

मजदूरों को थकान का स्मरण हो आया।

एक ने कहा, 'यह तो बहुत दूर की बात है। और फिर करेंगे क्या इन भरकों में?'

'खेत खराब होने से बचेंगे और भरकों में पेड़ लगाएँगे।'

सनेही ने उत्तर दिया।

एक किसान बोला, 'ताल खुदा नहीं, मगर उतराने लगे?'

कुछ मजदूर हँस पड़े, 'बिरछों की रखवाली कौन करेगा? इतना बड़ा जंगल तो खड़ा है, भरकों में पेड़ लगाने से क्या होगा?'

तारे छिटक आए, लोगों को अपने-अपने घर जाने की पड़ी थी, इसलिए बात वहीं रह गई।

: ५० :

आकाश में काले-पीले बादलों के छपके मँडरा रहे थे और सूर्य के इर्द-गिर्द भाप छाई हुई थी। पानी जो बरसा उसने धूल को बहानेवाले छोटे-छोटे पौरे बना दिए और न जाने कहाँ विलीन हो गया। आँखों को जलानेवाली धूमरी टौरियों पर से पानी थोड़ा-थोड़ा रिस रहा था जो कह-सा रहा था कि हम कभी बरसे थे।

सूखे हुए पोखरों की सूखी घास के रूखे चकत्तों में से नुकीले हरे-हरे अंकुर निकल पड़ने के लिए उमगने लगे।

किसी-किसी बादल के टुकड़े से पतली-पतली बूँदें पड़ रही थीं। अधझुलसी प्यासी भूमि मुँहबाए-सी, जैसे नन्हे-नन्हे हाथ-पैर फेंककर रोते हुए बालक ने यकायक अपनी माँ को देखा हो—रोना बंद, आँखों की बरौनियों पर आँसू की बूँद, रूखा चेहरा, उस पर माँ की उत्सुक, मृदुल मुसकान जो उस कमरे-भर में छा गई हो जहाँ सिसकता हुआ बालक था और मुसकानोंवाली माँ आतुरता के साथ आ गई थी।

खेतों की ऊपरी मिट्टी गीली हो गई थी और नाले के पथरीले गड्ढों में पानी बिलम गया। मिट्टी के ढेलों और पथरीले पोखरों से सोंधी-सोंधी गंध आकर किसान को सचेत कर रही थी—हल-बैल सँभालो और बीज बोने की तैयारी करो! किसान के सामने 'अभी या कभी नहीं' वाली अनंत समस्या थी। निज का बीज थोड़े से ही किसानों के पास था। जिनके पास नहीं था वे बीज और खवाई के लिए इधर-उधर दौड़ पड़े। कुछ को घाटीवाली ने दिया—शर्त सवाई की। उसी शर्त पर बटोले और दो-एक किसान-साहूकारों ने थोड़े-से किसानों की आवश्यकता पूरी की। जिसको और कोई आसरा न मिला वे देशराज के अन्न गोदाम पहुँचे। कारिंदा विक्रम को रियायती दर पर बीज दे चुका था। दूसरों ने भी कुछ रियायत चाही। देशराज के अधिकतर खेतों में रबी की फसल की जाती थी, खरीफ के लिए अपर्याप्त बीज होने के कारण कारिंदा तन गया। मुकद्दमे से बरी हुए एक पखवारे से ऊपर हो चुका था, इसलिए स्मृति पर से उसकी

कुरेद झड़ चुकी थी।

'विक्रम के साथ रियायत और हमारे साथ यह ओछापन!' एक उखड़ पड़ा। यह उनमें से था जिन्होंने नहर की नालियों की खुदाई के काम में सनेही और टहल का साथ पाया था। कारिंदा के लिए यह भाषा नई थी।

'बदमाश कहीं का! कैसे बोलता है रे?' कारिंदे को क्रोध आ गया।

'बदमाश तुम और तुम्हारे सात पुरखे! जबान चलाई तो अच्छा न होगा।'

'डाका डालने आया है क्या यहाँ?'

'डाका डालो और डलवाओ तुम और विक्रम। न दो बीज तो क्या हम मर जाएँगे?' मारपीट की नौबत आई थी कि कुछ लोग बीच में पड़ गए। बहुत शोर हुआ। देशराज आ गया।

'क्या बात है?' उसने पूछा।

कारिंदे ने अपना रंग देकर बात सुनाई।

विक्रम ने व्याख्या की, 'मालिक, आपने और आपके मित्रों ने इन उजड्डों को सिर पर चढ़ा लिया है, उसी का फल है कि ये लोग आते तो हैं रिन लेने और दिखलाते हैं लाल-पीली आँखें। यह कहता है कि हम और आप डाके डलवाते हैं! देखो तो इस बेईमान को।'

देशराज के चेहरे पर रंग आया और गया। वह किसान अदम्य था। रिवाजी 'मालिक' का संबोधन करके उसने देशराज से कहा, 'कुंजीलाल के मामले में हम लोगों ने मदद न की होती तो इन्हें काला पानी होता। रह गए विक्रम, सो किसी दिन अंटे पर बिना चढ़े न रहेंगे।'

इस फटियल किसान में इतना साहस! यह सब इसमें कहाँ से आ गया? देशराज के मन में द्वंद्व मच गया। अपने को दमित करके उसने कुंजीलाल कारिंदे द्वारा सबको रियायती दर पर अनाज दिलवाया।

जब सब चले गए, कुंजीलाल की आँखें डबडबा आईं, बोला, 'मालिक, अब मुझसे काम नहीं होगा।'

देशराज ने सांत्वना दी, 'जमाना बदल गया है, भाई। फूँक-फूँककर कदम रखना है।'

'तो या तो मुझे छुट्टी दीजिए, या लेन-देन का यह काम बंद कर दीजिए। इस कोयले की दलाली में कुछ नहीं रखा है। क्यों व्यर्थ ही काला मुँह कराऊँ?'

'मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकता। बीज खवाई का काम बंद कर दो। अपने महींदारों और विक्रम सरीखे लोगों के सिवाय और किसी को भी न दो।'

कुंजीलाल ने स्वीकार किया। मैं डाके डलवाता हूँ! जब यह जरा-सा आदमी इतनी बड़ी बात बेधड़क कह गया तो और न जाने [illegible] हैं! इतना सब

किया तो भी वह बात इन पर अब तक ऐसी छाई हुई है!!! मरे-गले आदमियों में इतनी हिम्मत!!! कैसे निभाव होगा? वह सोच रहा था।

: ५१ :

फैली हुई भाप और बादलों के घने बिखरे टुकड़े आकाश में दिन-भर फैले रहते, पर रात में सब साफ। मेह की बूँद का नाम नहीं। ज्वार, उड़द, मूँग और बाजरे की बोहनी हो गई। अंकुर निकल आए। कहीं उन्हें नजर न लग जाए तो किसानों ने खेत के बीच में या पेड़ पर फूटी काली हँड़ियों के डिठोने लगा दिए। जिन्होंने यहाँ-वहाँ आम की गुठलियाँ गाड़ दी थीं उन्होंने मुसकराकर देखा कि गुठली की गोई में डंठुल ऊपर निकल आया है और उस पर धागों जैसी दो-तीन लपेटें हैं। डंठुल लाल, डेढ़ अंगुल के लगभग ऊँचा। उसकी लालिमा वसंत में निकलनेवाले आम्र किसलय के रंगवाली। एक दिन आएगा जब यह पौधा हो जाएगा और एक दिन पेड़, जब इसमें से मंजरी फूट पड़ेगी और फल लगेंगे!

किसान पानी बरसने की प्रतीक्षा करने लगा। चुनाव स्थगित हो गया, इसलिए चुनाव में रुचि रखनेवाले भी पानी की बाट जोहने लगे।

सावन लग गया। पानी का नाम नहीं। एक दिन संध्या समय पश्चिमी क्षितिज पर बादलों की गहरी लाली दिखाई पड़ी। संध्या के समय यह लाली बढ़ी। इखरे-बिखरे बादलों की लंबी बाँहें नभ में फैल गईं। ऐसा जान पड़ा जैसे किसी बुड्ढे ने अपनी लंबी खिर-बिरीं दाढ़ी मेहँदी से रचाई हो। अब पानी बरसेगा, लोग कह उठे। आधी रात के समय चाँदनी का प्रकाश फैल गया—बादल का एक टुकड़ा भी नहीं। सुनसान रात की चाँदनी में पवन के हिलोड़ों में शीशम और नीम की कोमल कोंपलें अपने में झूम-सी रही थीं। हे राम! क्या पानी टल गया? किसान चिंतित था।

एक शुक्रवार के दिन कुछ घने बादल दिखाई पड़े और शनिवार तक रहे। एक सयाने ने उत्साह के साथ कहा, 'शुक्रवार की बदरिया रहे शनीचर छाय, ऐसा बोले भड्डरी कि बिन बरसे नहिं जाय।' परंतु रविवार के दिन फिर बादल का एक छिटका भी न रहा।

आधा सावन निकल गया। पानी कहीं नहीं। ललिता नदी के बाँध के भीतर प्रचुर भंडार। हवा के सर्राठों के नीचे चपल जलराशि। नहर खुदी पड़ी थी, परंतु बाँध के द्वार खुल नहीं सकते थे। इधर-उधर के भूखे-प्यासे ढोर इस बाँध के आस-पास आकर रमने लगे—और मरने लगे। कोई ऐसी बीमारी फैली कि जिसने पशुओं का संहार कर डाला। गाँवों के आस पास तो और भी दुर्गति थी। चील-कौए मँडराने लगे और जहाँ-तहाँ गाय-बैलों-बछड़ों और भैंसों के ढाँचे दिखाई पड़ उठे। पशु-चिकित्सक आए, पर कुछ न कर सके। ज्वार-बाजरे के कोमल अंकुर, आम की गुठली के

पीक—सब झुलस गए। किसान रो पड़ा।

जोशी के पत्रे ने धोखा दिया, सयानों की पुरानी कहावतें बेकार गईं। काली माई और अनेक देवी-देवताओं, गोंड़ बाबा, ठाकुर बाबा, इत्यादि की पूजा शुरू हो गई। अनेक बकरे और मुरगे बलिदान हुए। फिर भी पानी न बरसा!

तब बाँगुर्दन के तालाब पर स्थित एक देवी की मूर्ति की पूजा के लिए दोनों गाँवों का जलूस निकालना निश्चित किया गया। सनेही, टहल इत्यादि से इस जलूस की अगवानी के लिए कहा गया।

सनेही ने इनकार कर दिया, 'इन जलूसों को मैं व्यर्थ समझता हूँ। घर में बैठकर परमात्मा से प्रार्थना करो और आगे के लिए पक्की छातीवाले बनो।'

राजदुलारी ने फुसलाया, 'चले भी जाओ, घंटे-दो घंटे की तो बात ही है। आखिर इन सबको अपने संग में लगाए रखना है न!'

'मैंने यदि अपने भीतरवाले का संग छोड़ दिया तो फिर इनको अपने संग रखने के लिए मेरे हाथ में क्या रहा?'

टहल एक कुँए के पास से निकला। बीस-पच्चीस कदम फासले पर खाद-कूड़े का ढेर लगा हुआ था। धूप की तेजी के कारण ढेर में से दुर्गंध और भाप निकल रही थी।

टहल ने कहा, 'कितनी गंदगी फैला रखी है, यहाँ?'

'सारी बीमारियों का खजाना तो यह है!! गाँव के बाहर न जाने क्यों नहीं लगाते?'

हरको और एक स्त्री कुएँ पर पानी भर रही थी।

हरको बोली, 'ना समझी जो भरी हुई है गाँव में।'

वह स्त्री तड़की, 'तुम हो बड़ी लच्छमी! और ये बड़े लच्छमा!! जुगों से जो होता आया है उसे मिटा दें!!!'

'हो कैसी! वे तो अच्छी बातें सिखलाते हैं, तुम यों ही बड़बड़ा पड़ीं!!' हरको की युद्ध कामना जाग्रत हुई।

'आय हाय! बड़ी अच्छी बातें सिखलाते हैं!! जब देखो तब देवी-देवताओं की निंदा। इसी कारन तो पानी नहीं बरसता, ढोर मर रहे हैं और अब आदमियों पर आनेवाली है।'

टहल वहाँ से चुपचाप चला गया।

बटोले मिला तो उसने सुझाया, 'जलूस में जरूर चलना। बनमाली और धरनीधर, यहाँ तक कि देशराज और बिकरमा भी, जा रहे हैं।'

'और दादा—डॉक्टर साहब?'

'उन्होंने नाहीं कर दी है। वे डॉक्टर हैं, उनकी पट जाएगी। तुम न जाओगे तो लोगों के मन में तुम्हारे खिलाफ बहुत रिस जागेगी, कुएँ पर किसी स्त्री से तुम्हारा बतबढ़ाव हो आया है?'

'नहीं तो।'

'वह कहती फिर रही है कि टहल ने गलियारे पर खड़े होकर देवी-देवताओं को गालियाँ दी हैं।'

'बिलकुल झूठ। मैंने तो किसी के लिए कुछ नहीं कहा है।'

'जलूस में शामिल होने के लिए क्या कहते हो?'

टहल चक्कर में पड़ गया। जनता की अज्ञानता और जड़ता, अपने विज्ञानवाद की विश्वसनीयता और सिद्धांत की दृढ़ता आपस में जोर से जा टकराईं। परंतु जनमन को हर हालत में अपनी गाँठ में बाँधे रखने की भावना ने आँखें तरेरीं। बनमाली, धरनीधर और देशराज जनता को अंत में कहाँ ले जाएँगे? और यह विक्रम! ओफ!!

टहल ने सिर झुका लिया—

'मैं साथ रहूँगा।' टहल के स्वर में उत्साह नहीं था।

सुहाना और बाँगुर्दन के नर-नारियों का जलूस बाजे-गाजे के साथ निकलकर बाँगुर्दन के तालाब पर गया और उसने देवी की पूजा यथारीति की। क्या इन मूर्तियों ने इस तरह की पूजा और उस तरह के बलिदान की कभी अपेक्षा की होगी? वे खंडित होने पर भी मुसकरा रही हैं! अवश्य ही यह मुसकान उपेक्षा और व्यंग्य की है। दादा नहीं आए! मैं भी न आता तो क्या हो जाता? जनमन! उन्होंने न सोचा होगा इस जनमन के संबंध में कुछ? क्या मुझे छोटा कर देने के लिए नहीं आए हैं? नहीं। तो क्यों नहीं आए? कुछ उचाई पर से हैं। खैर! यहाँ आने का कुछ उपयोग तो कराऊँगा ही।

इस पूजा-अर्चा के बाद भी दस-बारह दिन तक पानी नहीं बरसा। सावन निकल गया। भादों लग गया। बंधीवाले खेतों में ज्वार के पौधे थे, और कहीं भी फसल का चिह्न तक न बचा था।

एक दिन टहल ने समाचार-पत्र में ऋतु का भविष्य पढ़ा—पानी बहुत जोर के साथ बरसने को आ रहा है। उसने गाँव में समाचार फैलाया।

एक बोला, 'क्यों नहीं बरसेगा? देवी-देवता की पूजा यों ही थोड़े चली जाएगी।'

टहल न समझा सका।

तीन-चार दिन बाद प्रातःकाल के समय पानी-भरे बादल आ गए। टिमटिमाता उजेला जगमगा-जगमगा जाता था और अँधेरा डिगमगा-डिगमगा जा रहा था। हवा के झोंके में वहाँ की चीजें कभी छोटी और कभी बड़ी जान पड़ने लगती थीं—अँधेरा और उजेला अपने-अपने को, मानो बढ़ाने के प्रयत्न में हाँफ रहे हों।

फिर पानी बरसा प्रचंडता के साथ, और बरसता रहा। देवताओं ने कृपा की। हमारी आह-कराह सुन ली। जनता के मन में उठा।

इतना बरसा कि नदी-नाले एक हो गए। बंधीवाले खेत इतने भर गए कि ज्वार के

पौधों पर एक-एक हाथ पानी। ट्रैक्टर की जुताई हुई थी। बोनेवालों ने समझ लिया कि एक महीने तक पानी की भराई से पार नहीं पा सकेंगे और यह फसल चौपट हो जाएगी।

अब बीज और खाने के लिए अन्न कहाँ से आवेगा? सनेही और टहल ने दौड़-धूप की। कुछ देशराज से मिल गया, परंतु उतने से क्या होना था? राघवन ने सरकार को पुकारा। वहाँ से अन्न आया, तब पूरा पड़ा।

: ५२ :

भादों उतरते-उतरते पानी बरसता रहा। कुँआर के पहले सप्ताह तक साधारण बूँदाबाँदी रही, फिर आकाश स्वच्छ हो गया और धूप नरम लगने लगी। मलेरिया और नाना प्रकार के ज्वरों का प्रकोप हुआ। सनेही और राजदुलारी ने लगातार सेवा करनी आरंभ कर दी। वह अपने सिद्धांत के अनुसार उस सेवा का थोड़ा-सा मूल्य लेता था—लोगों को वह मूल्य नहीं अखरता था। टहल पछताया था—मैंने डॉक्टरी क्यों न पढ़ी? डॉक्टर होता तो इतना भी न लेता! उसने देखा कि जनमत का उस प्रकार साथ न देते हुए भी सनेही सबसे अधिक जनप्रिय हो रहा है!! और उस दिन उसे आश्चर्य हुआ जब सुना कि अंजना लौटकर बीमार आई और सनेही ने चिकित्सा का कोई मूल्य नहीं लिया! क्या कारण हो सकता है? सनेही से वह कुछ दूर पड़ गया था, इसलिए कारण न पूछ सका।

हिमालय की श्रेणियों पर भी बहुत जोर की वर्षा हुई थी। वहाँ उस समय भी बरस रहा था जब कुँआर के आरंभ में यहाँ बंद हो गया। अंजना वहाँ से चली आई और यहाँ सनेही के इलाज से शीघ्र निरोग होने लगी। केवल दुर्बलता रह गई थी।

वह अपने साथ पेटियाँ नहीं लाई थी। जिस दिन आई, बहुत अस्वस्थ थी। पेटियों या माल के संबंध में देशराज ने उस समय कुछ नहीं पूछ पाया। सोचता था, कहीं सुरक्षित स्थान में रख आई होगी।

उसके स्वस्थ होते ही बात चली। देशराज बहुत उत्सुक था।

अंजना ने बड़े गद्देदार कोच पर लेटे-लेटे दुःख-भरे स्वर में बताया, 'सारी-की-सारी चीज हाथ से निकल गई! बड़ा नुकसान हुआ!!'

'ऐं! क्या हुआ? कैसे हुआ?'

'और इसी कारण मैं बीमार पड़ गई। चार पेटियों में माल था। पचास-साठ हजार तो भी बनते, लेकिन किस्मत पलट गई।'

देशराज हक्का-बक्का रह गया। आँख में केवल प्रश्न था।

अंजना ने कहा, 'गरमी के मध्य में माल-संग्रह का काम करीब-करीब निपट चुका था। इकट्ठा करके भिन्न-भिन्न [illegible] मेरे पास ले

आने का काम अपने प्रधान एजेंट को सौंपकर मैं पहाड़ पर चली आई। जिस होटल में ठहरी थी उसका मैनेजर कुछ अलग-विलग-सा रहनेवाला व्यक्ति है। उसको साधने के लिए मैंने मित्रता स्थापित करने की कोशिश की। बरसात के पहले बहुत से बहानों से कुल मिलाकर लगभग दो मन माल मेरे पास आ गया। मैं फूली नहीं समा रही थी–' अंजना का गला काँप गया और सिसकियाँ आ गईं। देशराज ने देखा, इसमें वह कोई सरूपता नहीं जो छः महीने पहले थी। गड़े पत्थर-सा कुरसी पर बैठा था–केवल आगे की बात जानने के लिए उत्सुक–नीचे सिर को एक हाथ से पकड़ लिया।

संयत होने पर अंजना ने आगे की बात बताई, 'होटल मैनेजर और मेरे बीच बरताव साधारण अच्छा था। एक दिन उसे यकायक अपनी ओर खिचते हुए पाया। मैंने सोचा, हो-न-हो कई सप्ताहों की रंगीनियों का नतीजा है। मैनेजर को अपनाए रखना जरूरी था, क्योंकि पुलिस अफसरों के आने-जाने की सूचना उससे सहज मिल सकती थी। मैंने बहुत जल्दी भाँप लिया कि मैनेजर मेरे ऊपर इतना मुग्ध नहीं है जितना मेरे सामान की कपालक्रिया करने पर। तो मुझे उसके एक नौकर को सँभालना पड़ा। उसको सिनेमा जगत् में काम देने का लोभ दिया और प्रेम भी दरसाया।'

अंजना दम लेने के लिए ठहरी। देशराज की आँखों के सामने होटल मैनेजर के साथ बरती गई 'रंगीनियों' के चित्र इतनी देर नहीं थमे जितनी देर मैनेजर के प्रयत्न का होनेवाला परिणाम–

अंजना बोली, 'नौकर ने एक दिन बतलाया कि पुलिस को मेरे ऊपर अफीम व्योपारी होने का संदेह है और मैनेजर को बारीक निगरानी करने और माल का पता देने के लिए नियुक्त किया गया है। मुझे मैनेजर का डर नहीं था। डर इस बात का था कि कहीं पुलिस न घुस पड़े और माल समेत पकड़ ली जाऊँ। तुम्हारी याद में बहुत तड़पी। पुरानी तरकीबें काम नहीं दे सकती थीं, इसलिए उस नौंकर के साथ प्रेम के ढोंग को बढ़ाया और एक रात उसे सामान सहित लेकर होटल से चल दी। वह नौकर रेलगाड़ी के ऊँचे दर्जे के एक छोटे डिब्बे में मेरे साथ अकेला रहना चाहता था, तो मैं होशियारी काम में ले आई। मामूली सामान के साथ मैं जनाने डिब्बे में जा बैठी और फलों से ढकी माल की पेटियाँ उस छोटे डिब्बे में नौकर के साथ रखी रहने दीं; जानती थी कि यह मेरी फाँसों में इतना जकड़ा हुआ है कि सामान लेकर भागेगा नहीं–और फिर उसको पता भी नहीं था कि पेटियों में फलों के सिवाय और क्या है।'

अंजना के हिलकियाँ आ गईं।

देशराज ने कहा–जैसे किसी मशीन का घिसा हुआ पुर्जा घर्राया हो, 'फिर?'

अंजना कुछ क्षणों में अपने को संयत करके बोली, 'फिर, फिर जैसे ही सवेरे गाड़ी बरेली स्टेशन पर पहुँची, पुलिस आ गई। पानी की फुहार पड़ रही थी, मैं सोई हुई थी।

किसी ने झटका-सा देकर जगाया—उस डिब्बे में सामान आपका है?

'मैंने आँखें मलते-मलते धड़कते कलेजे को सँभालकर कहा—'नहीं तो।' पुलिस कई यात्रियों की तलाशी लेकर नौकर के डिब्बे में पहुँची थी। उससे पूछा तो उसने सामान को अपना बताया। पेटियाँ खोली गईं। फलों से ढकी अफीम निकल पड़ी! तब नौकर ने बतला दिया कि सामान मेरा है। नौकर गिरफ्तार कर लिया गया। मुझे भी उतारकर हवालात में कर दिया गया। नौकर अपने बचाव के लिए मेरी चिरौरी कर रहा था, पर मैं तो कह चुकी थी कि सामान मेरा नहीं है। मैंने दृढ़तापूर्वक बयान दिया कि मैं नौकर को पहचानती तो हूँ, पर और कोई वास्ता नहीं। तब उस दो कौड़ी के आदमी ने मुझे बुरी-बुरी गालियाँ दीं। खैर, सहनी पड़ीं। मुकद्दमा चला। मैं बरी हो गई; नौकर को सजा हुई। यह सब सह लिया; लेकिन वह नुकसान कलेजे को टूक-टूक कर रहा है। बहुत बीमार पड़ गई थी; यहाँ तो कुछ स्वस्थ होकर आई।'

देशराज पीला पड़ गया। अंजना ने उसे धीरज दिलाया, 'घबराना नहीं चाहिए, मुझे देखो, इतना सब भुगत लेने पर भी जीवित हूँ। दो-चार महीने चुप बैठो—फिर निकल पड़ेंगे। हाँ, क्षेत्र कोई दूसरा चुनना पड़ेगा। बाघराज यदि अपने इलाके में कहीं इसकी गुपचुप खेती कर उठे तो अपने कंधे हमेशा हलके बने रहें।'

देशराज ने इसी सुझाव का एक बार विरोध किया था। दो पेटियाँ मध्य भारत के निकटवाले समुद्र-तट पर से पकड़ी जा चुकी थीं। यहाँ पुलिस उनकी निगरानी कर रही थी। दो पेटियाँ हवेली में रख छोड़ी थीं। निगरानी बढ़ेगी, घटेगी नहीं। और फिर गाँववालों का अब भी वह हाल है! देशराज के मन में ये सब बातें उथल-पुथल कर घूम रही थीं। उसने नाहीं का सिर हिलाया था कि सनेहीलाल के आने का समाचार जगनू ने दिया।

सनेही ने आकर अंजना को देखा और देशराज को भी। देशराज का होश ठिकाने न था।

सनेही ने विश्लेषण किया, 'कोई बात नहीं। बदलती हुई ऋतु का प्रभाव है। देवीजी को आज सवेरे बहुत अच्छा छोड़ गया था। इस समय तापमान बढ़ गया है।'

सनेही बिना बुलाए आया था। साधारण शिष्टाचार की बातों के उपरांत देशराज उसे लौटाना चाहता था। सनेही को फीस नहीं लेनी थी, कुछ बात करनी थी।

बोला, 'देवीजी, आपको नहीं मालूम, इन्होंने कड़ी गरमियों में यहाँ हम सबकी कितनी सहायता की।'

अंजना ने कुतूहल प्रकट नहीं किया। देशराज ने अपने होंठों पर मुसकान लाने का प्रयास किया, परंतु फीकी बनी रही। वे दोनों चुप रहे।

सनेही उत्साह में था—'हम लोग अब [illegible] को कुछ नया-सा रूप देंगे,

झगड़ों की एक जड़ खतम हो गई। छदामी, बटोले, बनमाली इत्यादि का झगड़ा जिन भूमि-खंडों के संबंध में था, जमींदारी उन्मूलन की अंतिम घोषणा के बाद समाप्त हो गया। वे सब रकबे किसी के नहीं रहे। परती होने के कारण गाँव पंचायत के हो गए और सहकारी समितियों में लगा दिए जाने के कारण अब वे सहकारी कृषि के हो जाएँगे।'

देशराज की अन्यमनस्कता कुछ कम हुई। सहकारी समिति का काम अब बढ़ेगा; मेरी निजी खेती को अब और अधिक उत्कर्ष मिलना चाहिए, और यह व्यवसाय? यह तो गड्ढे में जाता दिखता है। ऐसे ही चला जाएगा!

बोला, 'अच्छा है। आप सहकारी कार्य बढ़ाने में खूब लगे हुए हैं।' पिछली बात असंगत थी परंतु सनेही उमंग में था। उसे अच्छी लगी।

'आपकी रुचि भी सहकारी कार्य की दिशा में बढ़ती चली जा रही है। आपकी सहायता से नहर की नालियाँ खुद गईं। उससे भी बढ़कर कुछ काम और है।'

'क्या?'

'नाले के भरकों का मुँह बंद करना है जिससे मिट्टी आगे धुलने-पुँछने और कटने से बच जाय। नए-पुराने कुटीर उद्योगों की स्थापना और उन्नति; गाँवों की सफाई; शिक्षा, स्वरक्षा इत्यादि। टहल को जो बंदूक इनाम में दी जानी थी वह आ रही है, उससे रक्षकदल को विनोद और उत्तेजन मिलेगा।'

देशराज जरा-सा चौंका।

'समाचार तो बहुत दिन हुए तब मिल गया था, बंदूक अब आ रही है! किसी दफ्तर में कागज दब गए होंगे। जब उखड़े तब बड़े लोगों को याद आई।'

'जो कुछ भी हुआ हो। मैं तो लंबे धीरजवाला आदमी हूँ। बंदूक गरमियों में आ जाती तो मनचले युवकों का मन खुदाई के काम में कम लगता। फिर सावन-भादों में न वह होता, न यह और आपकी सहायता व्यर्थ जाती—'

'मैंने किया ही क्या और कितना है?' देशराज ने अपनी ऊब को विनय में प्रकट किया।

'नहीं राजा साहब, आपने बहुत किया और अब करेंगे।'

'अब! अब, क्या करूँगा?' राजा साहब के संबोधन का कोई उत्साहजनक प्रभाव देशराज के मन पर नहीं पड़ा। क्षण के एक छोटे से खंड में सामने खड़ी हुई विपत्तियों का पहाड़ आँखों में घूम गया।

अंजना कराही।

सनेही ने उस पर ध्यान न देकर तुरंत कहा, 'आपकी जो अमानत, पाँच हजार रुपए की जमा है उसके उठा लेने की मियाद बढ़ा दीजिए, और, आगे आनेवाले कामों में; जैसे—भरकों के मुँह मिट्टी से बंद करना, गाँव का स्वास्थ्य-सुधार, कुटीर उद्योग

इत्यादि में—जरा-सा हाथ लगा दीजिए।'

'जो कुछ बन पड़ेगा, करूँगा, बढ़ा दूँगा मियाद।' देशराज ने जरा चैन की साँस ली।

सनेही अंजना से स्वास्थ्य की थोड़ी-सी बात करके चला गया। भविष्य के अंधकार में देशराज को विपत्तियों का पहाड़ और भी बड़ा दिखाई पड़ने लगा, और खाई-खड्डे और भी अधिक गहरे।

अंजना ने धीरज धराने के लिए कहा, 'कोई राह निकालेंगे।'

देशराज टूटते स्वर में बोला, 'हाँ-आँ; अभी तो अकल काम नहीं कर रही है। शायद अंत में खेती का सहारा पकड़ना पड़े···।'

'अभी कोई निश्चय मत करो। जैसे बने, काफी रुपया इकट्ठा करना है और—और, अंत में वह बात—ब्याह करके आनंद के साथ जीवन बिताने की—मत भूलो।' अंजना मुसकराई।

पर उस मुसकान में न कोई मद था, न विनोद। देशराज को वह खींचातानी जैसी लगी। यह कब तक उस तरह के प्रणय स्वाँग करती रहेगी? होटल के नौकर के साथ भी वही सब! कौन-सी हँसी हँसी होगी? कौन-कौन-सी मुसकानों का अभिनय किया होगा? ओफ! फिर भी कुछ हाथ न लगा!! और यदि माल बचाकर ले आती तो आती तो उसी नौकर के साथ, फिर क्या होता? यहाँ वह नौकर हावभावों से निराश होकर क्या न कर बैठता? ओफ! ओफ!!

: ५३ :

दशहरा का त्योहार आ गया। घर-घर जवारे बोए गए। जिनकी गाँव में बिस्वे-भर भी जिमीन नहीं थी, उन्होंने भी बोए। देखते थे अंकुर कंच हरे, पीले और लंबे हैं या नहीं। गहरे वसंती रंग के हुए तो बस—आगे की फसल दुर्गा माई अच्छी देंगी। ढेरों जानवर मरे, असंख्य जन बीमार पड़े, खरीफ की फसल नहीं के बराबर हुई, अन्न-कष्ट हुआ, इस सबकी काली काई चित्त पर से हट गई। शरद् के स्वागत में शारदा और दुर्गा के गीत गाए और भविष्य की धुन में फिर लग गए। दीपावली जैसे आती रही है, आई और मन की मौज को कुछ ओज देकर चली गई। सरकारी फार्म, निजी और सहकारी खेतों में बीज बो लिया गया। केवल वे खेत अभी पड़े थे जिनमें बँधियों के पड़ जाने के कारण पानी भरा हुआ था। बटोले की वह परती जो उसने पिछले साल बाँगुर्दन सहकारी में डाली थी, बँधियोंवाली थी। इनमें पानी भरा था। उनका स्वामित्व न बटोले के हाथ में रहा और न छदामी के। अब गाँव की पंचायत जिन्हें दे दे। परंतु पंचायत समितियों के रजिस्टर से निकालकर, व्यक्तियों को नहीं दे सकती थी। फिर भी वे बड़े-बड़े चौखूँटे खेत छदामी और बटोले के कहलाए जा सकते थे। दोनों सोचते थे

कि क्या इन्हें समितियों से निकालकर निजी खेती में जमाया जा सकता है? दोनों संशय में थे। नहीं जानते थे कि समितियों में अनजाने ही भीतर-भीतर कुछ शक्ति आ गई, यद्यपि उनका रूप ऊपर से जर्जर दिखाई पड़ता था। उन शक्तियों के कारण वे खेत समितियों के रजिस्टरों में से हिल नहीं सकते थे।

सनेही ने भरकों की मुँह-भराई के लिए प्रयत्न आरंभ कर दिया। गरमियों में नहर-नालियों की खुदाई का अनुभव उत्साह को प्रेरित कर रहा था।

टहल को लेकर एक दिन सनेही निकल पड़ा। लोगों को जगाया। किसी को ज्वर, किसी को खाँसी, किसी को कुछ और किसी को कुछ। सनेही ने देखा, जिन्हें कोई भी व्याधि नहीं थी वे भी मुँह फेर गए।

काम करने के लिए मजबूर करने की कोई विधि रचे बगैर—बिना किसी-न-किसी फार्मूला आफ कंपलशन के—काम नहीं चलेगा।

टहल ने चिढ़कर कहा, 'जवारों की चहल-पहल और दीपावली की मनमौजी कूँद-फाँद के समय न इनको जूड़ी थी और न खाँसी! पैसे मिलेंगे, आगे का भविष्य बनेगा, फिर भी इतनी सुस्ती!'

सनेही ने कहा, जैसे अँधेरे में कुछ टटोल रहा हो—

'काम के लिए मजबूर करके मिहनत कराने की विधि का पुराना नाम बेगार है, और नया नाम सेवा। यह समझा-बुझाकर और कभी-कभी धमकाकर भी कराई जाती है। अंतर बहुत कम। किसी लौ की प्रेरणा पर त्यागवाली सेवा चलती है, पर वह टिकाऊ नहीं होती। पुरस्कृत सेवा ही टिकाऊ हो सकती है और उसी के बल-भरोसे वह लौ टिकाऊ बनती है। इसी पुरस्कारवाली सेवा का आसरा पकड़ना चाहिए।'

टहल का ध्यान कहीं और था।

कुछ क्षण बाद सनेही बोला—

'बटोले और मंटू को साथ ले लें, शायद वे लोग उनकी आँतों में से असली बात का पता ला सकें।'

बुलाने पर मंटू और बटोले अनमने होकर साथ लगे। पहले तो मजदूरों ने इनसे भी मनगिरी बातें कीं, फिर खुल पड़े।

'मजूरी रुपया रोज से कम नहीं लेंगे और उसमें से एक पैसा भी न कटने देंगे।'

'हिस्सों की क़िस्त का रुपया काटना ही है तो बोंगस (बोनस) में से ले लेना।'

'सहकारी समिति से हमको मिलता ही कितना है? बटिया पर रखने की शर्त तय हो जाय तो हम काम करने को इसी घड़ी तैयार हैं।'

'पर ऐसा नहीं होना चाहिए कि दो पसलीवाले को भी एक रुपया रोज और बाईस पसलीवाले को भी उतना ही।'

बटोले को एक बात सूझी—

'हमारी परतीवाले में हो जाना बटिया—जितने चाहो उतने।'

'और इसी शर्त पर हम टहल बाबू के खेतों पर काम करेंगे। बटिया लेंगे, मजूरी नहीं लेंगे।'

सनेही ने टहल को लक्ष्य करके बटोले से कहा, 'परती पंचायत की हो गई है और बहुत शीघ्र समिति उसकी मालिक हो जाएगी, बटिया का चलन आगे चलकर निजी खेती को बढ़ावेगा, सहकारी उमंग को मिट्टी में मिला देगा।'

'और डॉक्टर साहब,' टहल 'दादा' का संबोधन न करते हुए बोला, 'यह चलन समष्टि की भावना की अवहेलना करके व्यक्ति के महत्त्व को बढ़ावेगा। वर्ग-संघर्ष, जिसका मैं उपासक हूँ, रुक जाएगा।'

सनेही चिड़चिड़ा पड़ा, 'फिर कर पड़ोगे नारों, प्रतीकों, रंगों और झंडों की पूजा! साधनों में बँधकर रह जाओगे, साध्य कहीं दूर जा पड़ेगा। जिस वर्ग-संघर्ष के द्वारा तुम समूहवाद को, जिसे साम्यवाद का अलंकार पहनाए बैठे हो, गाँव और देश में लाना चाहते हो, वह समूहवाद और व्यक्ति की स्वतंत्रता, एक पाँत में नहीं बैठ सकते। भेड़ों का समूह एक डंडे से हाँका जा सकता है, परंतु मानव समाज की हँकाई ऐसे नहीं हो सकती।'

टहल भभका। इन्होंने जी की जलन मेरे ऊपर निकाली! वह कुछ कहना ही चाहता था कि बटोले बोला, 'काम की बात करिए। आपकी बहस न मैं समझता हूँ और न ये लोग। बटिया की बात मुझे पसंद आई।'

टहल की भभक ने दूसरी रास्ता पाई, 'तो सारे निजी खेतों को क्यों नहीं समिति को सौंप देते? घर में बटिया और समिति में भी वही! और फिर परती का वह बड़ा खेत, जिसकी जुताई समिति ने ट्रैक्टरों से अपने पैसे के जरिए करवाई, किसी का भी निजी नहीं हो सकता जिसमें बटिया की शर्त का फायदा उठाया जा सके।'

बटोले से न सहा गया—

'समिति हमारा और हमारी संतान का जनम नहीं कटेगी। वह डली तुम्हारी हुक्का निगाली! ले लो मेरा इस्तीफा!! हम ऐसे ही भले।'

टहल की चोटी तक ज्वाला की लौ जा छूटी—और, फिर नीचे जा पहुँची। अवाक् रह गया। क्या यह वही बटोले है?

गोली का घाव खाई जाँघ पर हाथ सहसा पहुँचकर रह गया।

सनेही की विजय हुई। अहंकार मुसकान की टोपी लगाकर होंठों पर आ गया।

'अरे टहल भाई,' सनेही ने कहा, 'न तो गए-गुजरे सतयुग को आज की ही घड़ी में घसीटकर पूरा-समूचा बिठलाया जा सकता है और न अपने पूर्वाग्रहों के रचे स्वप्निल

कल्पित, स्वर्ग को खींचकर नाक के नीचेवाले क्षण में सामने की जिमीन पर खड़ा किया जा सकता है। समझ से काम लो—जो बन आवे सहज में, ताही में चित दे।'

मजदूरों की भीड़ उनके निकट आ गई। उन्होंने समझा कोई बखेड़ा उठने-बैठनेवाला है।

सनेही ने टहल को अपने कंधे से लगाकर कहा, 'तुम समझे कोई झगड़ा है! हमारी इनकी ऐसी बातें तो होती ही रहती हैं।'

टहल सनेही के कंधे से हटकर बोला, 'अच्छा भाई, बटिया ही सही। काम तो चले किसी तरह।'

मंटू चुपचाप खड़ा, उपयुक्त अवसर की खोज में था—

'भलों के झगड़े समझौते में खतम होते हैं, बुरों के एक-दूसरे के मिटाने में। बटोले की बँटियावाली बात मान ली गई। टहल बाबू की बात ये मानेंगे—समिति को नहीं छोड़ सकेंगे।'

बटोले ने बैठे स्वर में कहा, 'मैं अपने निजी खेत समिति में नहीं लगाऊँगा, चाहे कुछ हो जाए; हैं ही कितने? रह गई वह परती सो देखूँगा समिति उसे कैसे पचाए लेती है।'

सनेही ने सँभाला, 'मैं पूछता हूँ, आम खाने से मतलब या गुठलियाँ गिनने से?'

एक मजदूर काफी चालाक था। उसने, मानो, सबकी तरफ से रुकी गाड़ी को ठेला, 'अरे तो मान तो लिया डॉक्टर साहब, टहल बाबू ने। मजदूरों को ज्यादा मजदूरी और अन्न दिलवाने के पक्ष में सदा से रहते आए हैं।'

दूसरा उससे भी कुछ बढ़कर था—

'हम पूछते हैं, भरकों के मुँह बंद करके करोगे क्या? उनमें खेती तो होने से रही।' वह जानता था कि भरकों के मुँह भर देने से खेतों का काटना बंद हो जाएगा, पर वह उन लोगों की धुन को सान पर चढ़ाना चाहता था, मजूरी एक रुपया रोज और समिति में बँटाई पर अनाज का हिस्सा—उसे पक्का करना था।

सनेही और टहल को अपनी उमंग सान पर चढ़ानी पड़ी—

'बहुत जरूरी है। खेतों को आगे की बरबादी से बचाना है। भरकों में पेड़ लगावेंगे जैसे नीम, शीशम, सीताफल, खजूर, शहतूत, आँवला, इमली, कैथ, बेरी, महुआ वगैरह जिन्हें गरमियों में पानी नहीं देना पड़ता।'

'अरे भाई, पूरी मजूरी लो, फसल पर बटिया का अनाज़ और भत्ता। और क्या चाहते हो?'

'नितप्रति की अटकें पूरी होती जावें—मिट्टी का तेल़, कपड़ा, तमाखू, और क्या? जैसे नहर-नालियों की खुदाई के दिनों में होता था।'

'हाँ, हाँ, जरूर। जो जैसा और जितना काम करेगा, उतना पावेगा। सब धान बाईस

पंसेरी नहीं तौला जावेगा।'

दूसरे दिन से ही आरंभ करने का निश्चय कर लिया गया। तगड़े मजदूर उत्साह में थे। टहल की छुट्टी थी—दूसरे दिन रविवार था।

सनेही टहल को अपने घर ले गया। मरीजों से निबटकर घर से चला था, इसलिए बिठलाने का अवकाश था। राजदुलारी भीतर थी।

सनेही ने कहा, 'तुमने इन लोगों की जवारों की चहल-पहल और दीपावली की मनमौजी कूद-फाँद की बात कही थी। कभी सोचा कि ऐसा क्यों होता है?'

'ढीले-ढाले शासन-युग में मानव की प्रकृति।'

'बिलकुल असंगत। यह क्यों नहीं मान लेते कि अदृष्ट के प्रति अज्ञेय—जान-पहचान में और विश्लेषण में न आ पानेवाली—श्रद्धा का समय-समय पर जागरण और उसकी उकसाई हुई स्फूर्ति जो सब तरह की बीमारियों और सुस्तियों के ऊपर भी सवार हो-हो जाती है?'

'अध्यात्मवाद? अध्यात्मवाद न? आप आजकल बहस बहुत करने लगे हैं।'

'न भाई, बहस के लिए नहीं लिवा लाया हूँ। बहस ही करनी होती तो—ह! ह!! ह!!!—तो पैवलाव नाम के तुम्हारे मान्य विदेशी से शुरू करता, जिसके सिद्धांत प्राणी विज्ञान शास्त्र में तो सर्वमान्य हैं—'

'परंतु—?'

'परंतु, मनोविज्ञान के क्षेत्र में संदेह उत्पन्न करनेवाले। उसी से शुरू करता। हर साल यहाँ का मानव इन उत्सवों को मन के ओज के साथ मनाता आया है। जहाँ से यह ओज उत्पन्न हुआ है उसके सही रूप को पकड़कर चलें तो अन्य विषयों के लिए भी स्वभाव के बनने में देर नहीं लगेगी। और, जहाँ स्वभाव बना कि काम करने-कराने के लिए मजबूर करने की कोई भी विधि—फार्मूला ऑफ कंपलशन—काम में नहीं लाना पड़ेगा।'

'जैसे?'

'ऐसे—वेद शब्द का चाहे ये अर्थ तक न जानते हों, परंतु है वह इन्हें मान्य, उसके दो-तीन वाक्य समझाकर रटा दो। आँखें खुल जाएँगी और काम करते रहने की बान पड़ जाएगी। यह भी एक फार्मूला है, लेकिन फार्मूला ऑफ कंपलशन से कहीं अच्छा।'

टहल हँस पड़ा, 'भौतिकवाद को हराने की, अध्यात्मवाद की वही पुरानी चाल। ढोंग की पूजा कराने का ढंग!'

'सो नहीं है। साथ मिलकर चलो, मिलकर बोलो, मिलकर पदार्थों का भोग करो—यह सब क्या ढोंग है? अगर वे सब हमारे-तुम्हारे चिल्लाने से नहीं जागते तो उनके कान पर शंख क्यों न फूँकें? लेकिन तुम्हें यहाँ का शंख पसंद नहीं है, बाहर की

बिगुल अच्छी लगती है।'

टहल को बुरा लगा।

'आप और आपके अध्यात्मवादी भौतिकवादियों को अहंकारी कहते हैं—'

'अहंकार ने तो भौतिकवाद को जन्म ही दिया है।'

'जी नहीं, उसका पिता विज्ञान है। मैं तो कहूँगा कि अध्यात्मवाद में जितना अहंकार है, उतना भौतिकवाद में कदापि नहीं।'

'वाद-विवाद को ठंडा करनेवाला एक नुस्खा मैंने तैयार किया है। यदि फुरसत हो तो सुनाऊँ?' राजदुलारी ने यकायक आकर कहा और मुसकराई।

'अरे! तुम क्या खड़ी-खड़ी सुन रही थीं?' सनेही ने हँसकर आश्चर्य प्रकट किया।

यह वही मुसकान है, वही गदेली, जिसने माँ बनकर अस्पताल में फिर से जीवन दिया था।

'क्या है भाभी? क्या है वह नुस्खा? सुनाइए।' टहल बोला।

'रूप छोटा-सा, प्रभाव बहुत बड़ा। चटपटी पकौड़ियाँ, हींग की पुट दी हुई बढ़िया दही के साथ।' राजदुलारी ने कहा।

वे सब विनोदमग्न हो गए। पकौड़ियाँ आईं और उन्होंने अपना काम किया।

'अच्छा दादा, वही सही। आजमाइए अपनी सूझ को।' कहकर टहल चला गया।

राजदुलारी ने पूछा, 'कौन-सा अहंकार बढ़ा?—अध्यात्म का या भौतिकवाद का?'

सनेही खिलखिला पड़ा।

'छोटा भाई नहीं हरा पाया तो तुम्हारी चुटकी पछाड़ने के लिए आ कूदी।'

राजदुलारी भी हँस पड़ी।

'तुमसे सुनी बातें ही तो कभी-कभी दुहरा देती हूँ।'

हँसी का हिला-डुला वातावरण जब जरा थमा, सनेही ने कहा, 'कल हम वेदमंत्रों की ध्वनि से अपने काम का आरंभ करेंगे। तुम चलोगी साथ?'

'मैं रास्तों में गायत्री नहीं गाती। घर का काम और फिर तुम्हारे मरीज जिन्हें तुम मेरे जिम्मे छोड़ जाते हो, मेरे लिए क्या कम हैं?'

'कुछ काम तो कर ही जाता हूँ। कल के बाद अधिक ध्यान दूँगा, विश्वास दिलाता हूँ। अपनी देवी से यह जो प्रसाद कभी-कभी पा जाता हूँ, वह मेरा एक बड़ा संबल है।'

राजदुलारी ने बात बनाई, 'अब पकौड़ियाँ उस दिन, जब मेरे जी में आएगा।'

उन दोनों में कभी झगड़ा नहीं होता था, क्योंकि वे अकेले में भी कभी एक-दूसरे का अपमान नहीं करते थे।

दूसरे दिन सनेही और टहल ने स्वस्थ मजदूरों का एक दल बनाया और काम करने के लिए चल पड़े। देशराज और बनमाली को भी साथ ले लिया। लटोरेसिंह ने उन सबको

व्यवस्था का रूप दिया। सनेही ने मजदूरों को छोटे-छोटे-से कुछ वाक्य याद करा दिए और अर्थ समझा दिया। मजदूरों के मन को भाया।

उन सबके आगे सनेही बोलता हुआ चला—संगच्छध्वं सं वदध्वं, सहनौभुनक्तु, समानी मुषा सह वो अन्न भागी:।' मजदूर गलत-फलत उच्चारण करते हुए, उत्साह के साथ कुदाली-फावड़े हिलाते-उठाते चले जा रहे थे। सनेही के मन में उठता था—मैंने यह लहर उत्पन्न की है, मेरा उठाया हुआ यह संवेग स्थिर रहेगा, मेरा यह विधान—टहल चुप था। उसके अभिमान को धक्का लग रहा था।

: ५४ :

कड़ाके का जाड़ा पड़ने लगा था। चौथा पहर लगते ही सूर्य की किरणें इतनी नरम जैसे चैत की चाँदनी। नाहरगढ़ महल के एक कमरे के ऊँचे चौथे द्वार से बाघराज की पीठ और कालीसिंह के चेहरे पर किरणें पड़ रही थीं। कालीसिंह के माथे के कोने से लेकर कान तक खपड़े के घाव का गहरा मटमैला चिह्न किरणों में भूरा-भूरा-सा दिख रहा था।

'तो देशराज को चिट्ठी का यही उत्तर दिए देते हैं कि रुपए का अभी कोई इंतजाम नहीं है, माल रखे रहें; जब सुभीता होगा या तो हम उठा लावेंगे या वह ले आवें।'

बाघराज ने एक पत्र मेज पर रखते हुए कहा, 'अंजना को यक्ष्मा हो जाने का संदेह है। घंटे-भर के लिए हम हो आते तो कैसा रहता?'

'जैसी मर्जी,' कालीसिंह उपेक्षा के साथ बोला, 'आपका जाना ठीक नहीं जान पड़ता, और न उन लोगों का यहाँ आना, आप ही ने कहा था।'

'खैर, न जाएँगे। संगीत समारोह होना ही है। उसमें वे दोनों आ जाएँगे।'

'महीने-दो महीने की तो बात ही है। तब तक फसल कट जाएगी। जैसे इतने दिनों वे वहाँ और आप यहाँ चुपचाप बैठे रहे, वैसे दो महीने और सही। इस बीच में अगर अंजना मर गई तो टंटा साफ हो जाएगा और कोई दूसरा अच्छा काम करनेवाला मिल जाएगा—'

'तुम तो बेकार की बात करते हो। बड़े-बड़े खिलाड़ी तक चूक जाते हैं। अंजना तो गजब की है। वह नहीं चूकी। उसकी गलती से काम नहीं बिगड़ा।'

'जो हुकुम। देशराज रुपया चाहता है। कहता है कि बिना नकदी के काम एक डग भी आगे नहीं चलेगा। दो पेटियाँ भी तभी देगा, जब रुपए उसके हाथ पड़ जाएँगे। उसने जो और बातें लिखी हैं, वे ऊल-जलूल हैं। सार की बात यही है। रुपया कहाँ से आवेगा?'

बाघराज ने राजसी सिर हिलाया। 'चिट्ठी का उत्तर भेज दूँ, फिर बतलाऊँगा।'

उसने कहा।

बाघराज ने उत्तर लिखा और ड्राइवर को बुलाकर दे दिया। ड्राइवर उत्तर लेकर चला गया और दरवाजे की बगल में खड़ा हो गया।

बाघराज ने अपनी योजना बताई, 'फसल पर बड़ी महारानी साहब पचास हजार रुपया देंगी। इन रुपयों में से कुछ संगीत सम्मेलन पर खर्च किए जाएँगे, या यों कहें कि संगीत सम्मेलन पर लागत लगाई जावेगी। बड़ी-बड़ी शौकीन गायिकाएँ कीमती गहनों से मड़ी आवेंगी। सम्मेलन चार-छः दिन तक चलेगा। अंजना तब तक स्वस्थ हो जावेगी और वही आकर सर्वश्रेष्ठ नाचने-गानेवालियों को पुरस्कार बाँटेगी...' इसके बाद बाघराज ने बहुत धीमे स्वर में कुछ देर तक कालीसिंह से जो कुछ कहा, वह ड्राइवर ने नहीं सुन पाया।

कालीसिंह हँसा। चमकती छोटी आँखों के पैनेपन और उस हँसी के मेल की भयानकता को बाघराज ने सहज ही पचा लिया।

कालीसिंह बोला, 'खूब जिए, जीती रहे, अंजना। पर वैसी गलती फिर कभी करे तो उसका गला काट दिया जाय,' कहकर कालीसिंह गंभीर हो गया, और अब उसके चेहरे पर उतना भयावनापन न रहा।

बाघराज ने कहा, 'दो-तीन महीने में संगीत-सम्मेलन का विज्ञापन भी काफी हो जाएगा। सरकार और उसके अधिकारियों का ध्यान फिसल जाएगा कि कब, क्या और कैसे करें।'

कालीसिंह की दृष्टि द्वार से दिखाई पड़नेवाले दूरवर्ती पहाड़ों की ऊँची-नीची श्रेणियों पर गई। पहाड़ों के नीचे बसे हुए गाँवों से उठता हुआ धुआँ समानांतर रेखाओं में फैल गया था। कालीसिंह की भौंहें सिकुड़ गईं, एक हाथ की उँगलियाँ घाव के निशान पर पहुँच गईं। दाँत भींचकर बोला, 'और सरकार के संगीत-सम्मेलन के बाद मैं अपना बदला चुकाऊँगा, फिर भले ही बैरागी बनकर कहीं लोप हो जाऊँ। उन लोगों की बंदूकें और कवायद-परेड को धूल न चटाई तो सरकार के कदमों की कसम—'

बाघराज ने संकेत से आगे की बात कहना वर्जित कर दिया।

□

उसी साँझ और धुएँ की उन्हीं समानांतर रेखाओं के पीछे बाँगुर्दन में कुछ युवकों को लटोरेसिंह कवायद-परेड करा रहा था। टहल की बंदूक थी, और चार व्यक्तियों को लाइसेंस वापस मिल गए थे। युवकों में सुहाना के भी कुछ थे। वे सब उत्साह के साथ बंदूकों को हथिया रहे थे। जिसको मिल जाती, वही मगन होकर सोचता कि डाकुओं, लुटेरों और देश के अन्य वैरियों को मैं अकेला ही मार भगाऊँगा! सनेही, टहल, मंटू, बटोले, बनमाली इत्यादि सभी को यह लग रहा था। निशानेबाजी गाँव के बाहर हो

रही थी, पर उन्हें अवगत हो रहा था जैसे किसी रणक्षेत्र में हों!! सनेही के मन में आया—मुझे भी लाइसेंस मिल जाए, और इनमें से कइयों को, तो गाँव में उत्साह और अनुशासन की लहर आ बसे। टहल की कल्पना में उठा—सरकार न जाने लाइसेंस देने में इतनी कंजूसी क्यों करती है। काफी हाथ पड़ जावें तो क्रांति करा दूँ! तुरंत मन में आ गया—शायद सरकार इसीलिए लाइसेंस देने में कंजूसी करती है, परंतु यह तो जनतंत्र है।

सूर्यास्त के पहले ही कवायद-परेड बंद कर दी गई और हथियार सँभाल लिए गए। फिर हुई कबड्डी जिसके फुरतीले दाव-पेंचों ने भीतर की बची-खुची कालोंच को पोंछ डाला—जिसे चोट लगी वह भी हँस पड़ा!

रात हो जाने पर भी इनमें से कई का जी चाहता था कि थोड़ा-सा और खेलें, परंतु लटोरेसिंह और सनेही ने सारे अनुष्ठानों को समय से सीमित कर दिया था, इसलिए दूसरे दिन की प्रतीक्षा में घर चले गए। वहीं एक अखाड़ा भी था। दो-तीन को कुश्ती का शौक था। वे कुश्ती का अभ्यास करने लगे।

'ब्यालू के बाद आज टहल की बारी है, प्रौढ़ पाठशाला में पढ़ाने की,' सनेही ने बताया।

रात्रि में पाठशाला खोल ली गई थी। शिक्षितों को बारी-बारी से एक घंटे रोज पढ़ाना पड़ता था।

टहल ने कहा, 'वयस्क लड़कियों और हरिजनों के पढ़ाने के लिए, जो दिन में अवकाश नहीं पाते, मैंने घर पर ही पाठशाला खोल ली है। आज वहीं जाना पड़ेगा।'

'तो जनक तुम्हारी पाली साध देवे।'

'मैं नहीं जाऊँगा, मुझे और भी काम है।' जनक ने सनेही को कोरा जवाब दे दिया।

'यह लड़का नहीं सुधरने का,' सनेही क्षुब्ध स्वर में बोला, 'और अपने साथियों को भी ले डूबेगा। कोई और है जो टहल की पाली को साध दे?'

टहल चुप रहा। बनमाली ने हाँ भरी। पढ़ाने गया। कभी-कभी जाता रहा, परंतु पढ़ाता कम था, अपने अनुयायियों की संख्या बढ़ाने में अधिक चित्त देता था।

: ५५ :

सुहाना में राजदुलारी ने स्त्रियों की पढ़ाई का काम जारी रखा। दे पाती थी वह घंटा-आध घंटा ही, पर देती थी इतना समय नित्य नियम से।

बाँगुर्दन में टहल पढ़ाता तो रात में लगभग नित्य ही, परंतु कभी दस-पाँच मिनिट और कभी दो-दो घंटे। हरको भी पढ़ने आती थी। उसके होंठों पर मुसकान फिर आ गई थी। वह नित्य नहीं आती थी, और प्रायः कदाचित् अकस्मात्, ऐसा हुआ कि जिस रात

वह नहीं आई, टहल ने कम समय दे पाया।

स्त्रियों में कानाफूसी शुरू हो गई—इन दोनों के बीच कुछ होनेवाला है। स्त्रियाँ ऐसे मामलों में शीघ्र ही सही-गलत निष्कर्ष पर पहुँच जाती हैं। घाटीवाली की शंका जागी, परंतु उसने जहाँ-की-तहीं सुला दी—टहल इस तरह के आचरण के परे है।

टहल पढ़ाते-पढ़ाते बोला, 'कुछ मशीनें ऐसी आ गई हैं जो गाँव के भीतर लगाई जावेंगी।'

'गाँव में काँस तो है नहीं जो उखाड़ा जावे! क्या घरों को रोंदने आई हैं?' हरको ने हँसकर कहा। उसके ऊपरी दाँतों के बीच की खोल टहल को बुरी नहीं लगी।

'अरी नहीं हरको! कपड़ा बुनने और तेल पिलाई की मशीनें हैं। बुनकरों और तेलियों के रोजगार को उन्नति मिलेगी।' टहल ने जरा-सा उसकी तरफ देखकर, फिर अन्य स्त्रियों की ओर आँख घुमाते हुए समझाया।

'आटा चक्की क्यों नहीं लगाते? पीसते-पीसते मेरे तो हाथों में ठट्टें पड़ गई हैं। देखो।' हरको ने अपने दोनों हाथ पसारे। टहल ने दृष्टि फेरी। उसकी आँखों में निहोरा लखते ही निगाह नीची कर ली। भरी देह की कोमल गदेलियों में ठट्टों को देखकर उसका मन चाहा कि उँगलियों से टटोलूँ, परंतु वह रह गया। कुछ स्त्रियों ने एक-दूसरी की ओर ताका।

'आटा चक्की भी लगेगी। राघवन आ गए हैं। आए तो बहुत समय बाद हैं, पर यहाँ काम चालू करने तक रुकेंगे। लुहारी का भी कारखाना खोला जा रहा है जिसमें अपने यहाँ के लुहार आसपास के गाँव तक के लिए अच्छे-अच्छे औजार बना सकेंगे,' टहल ने कहा।

इस चर्चा में स्त्रियों का मन नहीं रमा।

एक बोली, 'तो आज की पढ़ाई बंद?'

'नहीं, नहीं। एक जरा-सी बात और—मैंने अपने स्कूल में साबुन बनाना सिखलाना आरंभ किया है। तुम लोग भी सीखो। अपने साबुन से मैले-कुचैले कपड़े धोकर साफ रखा करो।'

हरको ने कहा, 'मैं सीखूँगी।'

टहल की बात पर अन्य स्त्रियाँ सकुचकर हँस पड़ीं।

घाटीवाली ने टोका, 'पढ़ाना हो तो पढ़ाओ, खिल-खिल ठिल-ठिल बहुत हो चुकी।'

एक स्त्री ने हरको के कान में धीरे से फूँका, 'कह दो कि हम भी अभी साबुन बनाना सीखेंगे।'

हरको ने आँख तरेरी। टहल लिखाने-पढ़ाने में लग गया।

□

रबी की फसल हरी-भरी और ऊँची-पूरी थी। पौधों में दाने पड़ने लगे। सरकारी फार्म और निजी खेती की ज्यादा देखभाल और सहकारी कृषि की निगरानी में लगभग वही ढीलापन। विक्रम अवश्य अब उतनी आजादी के साथ पसर नहीं चरा पाता था। सबकी आँखें उस पर थीं। बहुत ही थोड़े लोग उसके पक्ष में थे। देशराज भी किनारा काटने लगा था। परंतु उसके ढोर, सरकारी जंगल और उसका घर तो साथ थे, उसे किसी की परवाह न थी। देशराज की दी हुई परती हाथ की नहीं रही थी। वह सब सुहाना सहकारी में थी परंतु घर बैठे मुनाफा मिलते रहने की आशा थी। बाँगुर्दन के अपने शत्रुओं—टहल, बटोले, मंटू इत्यादि से उसे वैर भुनाना था। यह भाव उसके मन को शक्ति देता रहता था। उसके शत्रु अब निर्भय थे—हमारे पास बंदूकें हैं, इसने कोई बदमाशी कराई तो बिछा देंगे।

यह भाव संध्या की कवायद-परेड के समय बहुत सतेज रहता था, पर दिन में नित्य प्रति समस्याओं के सामने उतना ही निस्तेज।

□

बटोले हाट-बाजार में अपने हाथ से बुने कपड़ों की गठरी लादकर ले जाता था। पड़ता बहुत कम बैठता था। इस काम को करते खेती बढ़ाने की सोची तो खेत थोड़े से। जिस परती पर बड़ी-बड़ी बँधियोंवाले चौखूँटे खेत बन गए थे उसका स्वामित्व खतरे में। घर पर ग्राहक कपड़ा लेने आवे तो लागत में भी खोट। मशीनें लगा दी गई थीं, देखें ये क्या करती हैं?

राघवन ने समझाया, 'मशीनों की बुनाई से जो कपड़ा तैयार होगा उससे काफी लाभ होगा; मन को मत गिराओ।'

'सूत वक्त पर नहीं मिलता। सरकार भेजती है तो बीचवाले न जाने कहाँ कोर-कसर लगा देते हैं।'

'मैं बीचवालों के सिर पर रहूँगा, कोर-कसर नहीं लगने पावेगी।'

'इतने दिनों कहाँ थे आप?'

'क्या बतलाऊँ भाई बटोले। एक काम के साथ नौ और लगा दिए गए। उनमें उलझा रहा। अब नहीं होगा, क्योंकि सरकार ने उन कामों के लिए दूसरे अफसर कर दिए हैं।'

बटोले का मन नहीं भरा। थोड़ी देर सरकार की आलोचना—यानी गाली प्रदान—करता रहा।

बोला, 'मिलों-कारखानों के कपड़े के मुकाबले में हमारा रुजगार कैसे ठहरेगा?'

'तुम लोगों को ललिता के बाँध से बहुत जल्दी सस्ती बिजली मिलेगी। काम चलाने-सिखाने के लिए जानकार आएँगे और यहाँ रहेंगे।'

'मिलों को भी तो वही सस्ती बिजली मिलेगी और, जानकारी की वहाँ कमी ही

क्या है?'

'तुम लोगों की बनाई धोतियों, साड़ियों और तौलियों इत्यादि को मुनाफे के साथ बेचने के लिए मिलों में इन कपड़ों का बनाया जाना कम कर दिया जाएगा। खपत और बिक्री के लिए सहकारी साधन होंगे, जिम्मेदारी हम लोगों की। दलालों से कोई वास्ता नहीं रहेगा। अनाज बिक्री के लिए भी यही पाटी काम में लाई जावेगी।'

इस पर बटोले ने बड़े चाव के साथ अपनी बड़ी परती के भविष्य के संबंध में प्रश्न किया।

राघवन ने हँसकर कहा, 'तुम्हारे हाथ में रहे या न रहे, तुम्हारी समिति में तो है। तुम्हें मुनाफा मिलता रहेगा। भूमि या खाने-कमाने के साधन को अपनी मुट्ठी में किए रहने का मोह इसलिए घर किए रहता है कि बुरे दिनों में किसका सहारा पकड़ेंगे? अब उसकी चिंता न अपने लिए करनी चाहिए और न संतान के लिए। सहकारी समिति अमर, तुम्हारा काम अजर और उनसे मिलनेवाला मुनाफा अजर और अमर।'

'अपना निज का भी तो कुछ होना चाहिए।'

'वह सब अपना है, पराया नहीं है। बिलकुल अपना ही कुछ रखना है तो साग-भाजी और फलदार पेड़ों के बाग-बगीचे लगाओ। मिलकर चलो, मिलकर। अब तो एक ही नारा जबान से बाँध लो—मिलो या गलो।'

'यह तो सब ठीक है, लेकिन नए-नए कामों के लिए पैसा कहाँ से आवेगा?'

'पैसा मिलेगा। सरकारी योजना में है। हम देंगे। चिंता मत करो। बस एक बात याद रखो—मिलो या गलो। और दूसरी आम खाने से मतलब या गुठलियाँ गिनने से?'

सनक में आकर राघवन बहुत कुछ कहकर चला गया। आम खाने और गुठलियाँ न गिननेवाली कहावत बटोले ने सनेही से भी सुनी थी। कुछ गुदगुदी देने लगी।

□

नियुक्त तिथि पर ललिता नदी के बाँध से नहर में पानी लाने के उत्सव का उद्घाटन किया गया। उद्घाटन करनेवाले और उसका तमाशा देखनेवाले सब स्थिर आनंद की चुहल में थे। पानी नहर में पड़ा और कहीं तेजी के साथ, कहीं धीमी गति से आगे बढ़ा। राघवन समारोह से छुट्टी लेकर जल्दी-जल्दी सुहाना-बाँगुर्दन आया। पानी जब गतिवान हो जाता है तो लगता है जैसे कोई प्राणी हो। उसके आने का समाचार पहले से मिल गया था। गाँववाले नहर पर जहाँ-तहाँ जा खड़े हुए। उनको अपनी खोदी हुई नालियों द्वारा उन खेतों में पानी की उस सजीवता को लाना था जिससे पौधे आनंदविभोर हो जाते हैं और उनका दाना दुगुना मोटा पड़ जाता है। यदि नालियाँ न खोदी गई होतीं तो समिति के ये खेत पड़े रह जाते और उसके बट्टे-खाते में ही दर्ज रहते।

पानी के आते ही लोग उछल पड़े जैसे जल की सजीवता से उनके अपने प्राणों के लिए तत्काल कुछ हो पाया हो।

कई कंठों से निकल पड़ा—'सिचाई की खेती, बंदूक जैसा हथियार। इससे हारा करतार! थोड़े-से रकबे में भी बहुत अन्न उपजाया जा सकेगा!!'

फिर सनेही की सराहना हुई। जानते थे कि उसी के हठीले दिग्दर्शन के कारण नालियाँ खुदी थीं और उन खेतों की सिचाई होनेवाली थी। सनेही के अहंकार को भी बल मिला—मैंने कराया यह सब! फिर राजदुलारी का प्रश्न याद आ गया—अहंकार कौन-सा बड़ा : अध्यात्म का या भौतिकवाद का? उसकी दृष्टि पास खड़े हुए टहल पर गई। उसको भी लोग धन्यवाद दे रहे थे, पर उतना नहीं जितना सनेही ने पाया था। सनेही ने सोचा, यह अध्यात्म का अहंकार नहीं है, कठिनाइयों पर विजय पाने का मोद है!

राघवन ने पीछे से आकर सनेही के कंधे पर हाथ रखा। 'डॉक्टर साहब, आपको और आपके उत्साही दल को मेरी भरपूर बधाई।' फिर राघवन ने टहल को भी बधाई दी।

राघवन ने घूम-फिरकर सनेही और टहल से कहा, 'भरके भी आप लोगों ने पूर दिए! खूब किया!!'

'थोड़े से और रह गए हैं।' सनेही बोला।

राघवन उमंग में था, 'वे भी पुर जाएँगे। बाँगुर्दन के तालाब की मरम्मत का ठेका दे दिया गया है। सरकार का पूरा ध्यान, आप लोगों की लगन और तपस्या के कारण, इन दोनों गाँवों की ओर आकृष्ट हुआ है। रुपया-पैसे की कमी नहीं रहेगी। जी खोलकर खर्च करिए। आप लोगों पर शासन का बहुत विश्वास है।'

सनेही के अहंकार ने मन के एक कोने में छिपे-छिपे धीरे-से कहा—बंदूक का लाइसेंस ले लो और दूसरों को दिलवाकर अधिक-से-अधिक नाम कमाओ।

सनेही बोला, 'हम लोग तालाब की मरम्मत भी इसी तरह कर लेते, लेकिन खैर, ठेका हो गया सो अच्छा ही हुआ। अब हम सड़कें सुधारने, बनाने, गाँव की सफाई, पानी, सोखा गड्ढों, सार्वजनिक खाद, खाइयों, शौच-कूपों इत्यादि और परलोक सुधार की बातों पर भी ध्यान देंगे। क्यों टहल भाई?'

'जी हाँ,' टहल के स्वर में उमंग की ऊँचाई न थी।

राघवन कहता रहा, 'मुझे अचंभा होता है कि आप लोग अपना घरू काम करते रहते भी, इन सब बातों के लिए कहाँ से समय निकाल लेते हैं!

'दूसरे गाँवों में कहीं आप सरीखे एक-एक ही होते तो थोड़े से समय में ही हम सबका चाहा हुआ नया युग आ जाता। नर-नारियों के लिए रात्रि पाठशाला खोल ली! रक्षकदल का काम [illegible] है!! कुटीर उद्योगों का उत्साह के साथ आरंभ

हो गया–'

सनेही बीच में बोला, 'हमने साथियों के लिए अनिवार्य कर दिया है कि कोई-न-कोई छोटी-मोटी दस्तकारी हर एक सीखें।'

राघवन ने टहल को बढ़ावा दिया, 'आपने साबुन बनाने का काम शुरू करके बहुत ही अच्छा किया–'

टहल ने आह भरके टोक दिया, 'वह काम एक हफ्ते चला और फिर बंद हो गया। लोगों को रुचा ही नहीं।'

'तो क्या हुआ? पीछे पड़े रहिए, एक दिन उनकी रुचि में सदा के लिए आ बसेगा।' राघवन बोला।

सनेही ने कहा, 'मैं इन्हें यही समझाता रहता हूँ कि जिस काम को पकड़ो उसके पीछे हाथ धोकर पड़े रहो।'

फिर वही बड़प्पन की बात! टहल को अच्छी नहीं लगी।

'हूँ' करके राघवन से पूछा, 'आप भी तो न जाने कितने समय बाद यहाँ आए हैं, बतलाइए कब लौटेंगे, बरस-भर में? छः महीने में?'

उसने हँसकर उत्तर दिया, 'नहीं टहल बाबू, आगे ऐसा नहीं होगा। अन्य कार्यों में लगा दिया गया था। अब तो यहीं करने को है।'

□

सनेही और टहल ने गाँव की सफाई का भी काम हाथ में लिया–सप्ताह में एक बार। इसमें विद्यार्थियों के सिवाय और बहुत कम लोगों ने साथ दिया। अपने घर का कूड़ा-कचरा पड़ोसी के घर के सामने छिपे-लुके डाल देना मामूली बात थी। इसमें कुछ कमी आई। कूड़ा खाद के एक ढेर में डाला जाने लगा था, जो गाँव-बाहर था। खाद के ढेर थे अब भी सबके अलग-अलग और बहुतेरों के तो घर के सामने ही। पानी सोख्ते गड्ढे भी बनाए गए।

उस दिन गाँव की सफाई का काम सुहाना में होना था–पुलिस चौकी के सामने से जाकर देशराज और बनमाली के मकानों तक। जनक ने यहाँ काम करने से इनकार कर दिया–'ये लोग अपने हाथ से काम करें, हम पुलिस के नौकर नहीं हैं।'

सनेही ने झाड़ना शुरू किया ही था कि पुलिसवालों ने उसे विनय के साथ रोक दिया और खुद काम करने लगे।

जनक हँसा। पुलिसवालों की आँखें लाल हो गईं।

देशराज के घर के सामने लड़कों ने शोर मचाया–उससे जरा-सा ही कम जो उन्होंने साल-भर पहले सत्याग्रह की आड़ में मचाया था। सनेही और बनमाली ने झाड़ू लगाई। टहल पीछे हट गया। देशराज निकल आया। 'यह क्यों, डॉक्टर साहब!'

उसने कहा।

'आपको और इन सबको चेताने के लिए,' सनेही चिढ़े हुए स्वर में बोला।

'मैं सौगंध खाता हूँ कि इस मुहल्ले में सदा सफाई रहेगी,' देशराज ने सौगंध खाई और उसके नौकर सफाई के काम पर लग गए।

'यह कुछ नहीं। अपने हाथ से करना चाहिए,' सनेही ने सावधान किया।

'हाँ, हाँ, देशराजजी अपने हाथ से करें, जैसे हम करते हैं।' टहल पीछे से चिल्लाया।

लड़के बौखला उठे, 'नौकरों से मत कराओ, अपने हाथ से करो! जिमींदारी मुरदाबाद!!'

'चुप!' सनेही गरजा। सनेही को इतनी जोर के साथ बोलते पहले कभी किसी ने नहीं सुना था, 'बेहया कहीं के!! काम करना हो तो ठिकाने से करो, वरना अपने घर जाकर चीखो।'

सब सन्न-से रह गए।

देशराज ने मीठी बातों से वातावरण को ठंडा किया। चाय पीने के लिए उन सबको बुलाया। पर चाय का समय नहीं था; किसी ने स्वीकार नहीं किया। काम निबटने पर सब चले गए—सनेही को देशराज ने रोक लिया।

'आपको हाथ का कुछ काम अवश्य करना चाहिए,' सनेही ने व्याख्यान के स्वर में कहा।

'कर रहा हूँ। खेती पर बहुत ध्यान दे रहा हूँ। खेतों में विलायती खाद दिया था, नहर का पानी मिल जाने से फसल बहार पर है।'

'थोड़े समय उपरांत ही भूमि कमजोर पड़ जाएगी।'

'देखूँगा। अंजना का निरीक्षण करिएगा? पहले से बहुत स्वस्थ है। फसल कटने के बाद नाहरगढ़ में होनेवाले संगीत सम्मेलन में जाएगी। उसकी तैयारी की धुन में हैं।'

'अच्छा!'

: ५६ :

पूरने के लिए थोड़े से ही भरके और रह गए थे। सहकारी समिति मजूरी पर और अधिक रुपया खर्च करने में असमर्थ थी। लोगों का मन भी नहीं लग रहा था, यद्यपि भरकों की ऊपरवाली भूमि समिति की थी; उसमें एक दिन नहर का पानी आना था और प्रचुर मात्रा में अन्न मिलने की आशा थी। इस पर पड़ी ठेकेदार को बाँगुर्दन तालाब की मरम्मत के लिए मजदूरों की जरूरत। ठेकेदार मजूरी की दर बढ़ाने को तैयार, क्योंकि फसल कटने के दिन आ रहे थे, जब मजदूर ढूँढ़े भी न मिलेंगे।

उसे बाधा थी—सनेही और टहल का अनुशासन और उन लोगों का भी दबाव, जो

गाँव में दर का बढ़ाना पसंद नहीं करते थे। फिर भी सब बातों की एक सीमा होती है। उस सीमा को ठेकेदार पहचाननेवाला ही था कि उसने प्रस्ताव किया—'तीन-चार दिन की बात और रह गई है, भरके पुराई में थोड़े से आदमी अपने लगाए देता हूँ; जैसे ही यह काम समाप्त हुआ कि फिर तालाब की मरम्मत पर यहाँ के मजदूरों को मजदूरी की इसी दर पर जुटा दूँगा, इधर के थोड़े से टोटे को उधर समझ लूँगा; काम तो अवधि के भीतर हो जाएगा।'

पहले दिन काम मजे में चला। दूसरे दिन सनेही, टहल और जनक की पाली पड़ गई। ठेकेदार मजदूरों से काम करा रहा था। लड़कों ने कवायद-परेड उतनी नहीं सीखी थी जितनी हुकूमत करना। शेखी और कर्कशता का दौरा आने लगा था।

ठेकेदार ने एक मजदूर को डाँटा, 'बार-बार तमाखू पीता है, कामचोर कहीं का! चिलम फोड़कर फेंक दूँगा, अगर छुई तो।'

'फोड़ोगे तो! मेरे क्या हाथ-पैर नहीं हैं?'

ठेकेदार को क्रोध आ गया। मारने के लिए झपटा। मजदूर से गुत्थमगुत्था हो गई। जनक दौड़ पड़ा। उसने बीच-बचाव तो कम किया—ठेकेदार पर दो-तीन हाथ छोड़ दिए। ठेकेदार के भी आदमी दौड़ पड़े। हो-हल्ला और मारपीट शुरू हो गई। सनेही और टहल दूर थे। दौड़कर आ गए। ठेकेदार का एक आदमी पुलिस चौकी पर दौड़ा गया। सनेही और टहल झगड़े की आग को बुझाने का प्रयत्न करते रहे।

जनक पर भी घूँसे और थप्पड़ पड़े। ठेकेदार और जनक दोनों क्रोध में पागल से हो गए थे। टहल का अनुशासन और सनेही का आतंक काम नहीं कर पा रहा था। ठेकेदार और जनक फिर से जूझ पड़ने के लिए अकुला रहे थे। गालियों का लेन-देन तो चल ही रहा था।

ठेकेदार का आदमी पुलिस के दो सिपाहियों को लेकर आ गया।

'यह है वह छोकरा!' ठेकेदार का आदमी चिल्लाया।

'हम इसे पहचानते हैं,' एक पुलिसवाले ने कहा, 'बहुत ठीक है। चाहे जिससे लड़ बैठता है।'

पुलिसवाले उस दिन की बात नहीं भूले थे जब जनक ने चौकी के सामने झाड़ू लगाने से गर्व के साथ इनकार कर दिया था और उन्होंने सनेही के हाथ से झाड़ू लेकर खुद पकड़ी थी।

'जबान सँभालकर बोलना, नहीं तो मुँह तोड़ दूँगा। छोकरा तू, तेरा बाप!' जनक सिपाही पर तड़का।

'बस! बस!! अपने को काबू में रखो जनक!!!' सनेही ने फटकारा।

'सिपाही आपका कौन है जो इससे कुछ नहीं कहते?' जनक के स्वर में दबने का कोई

लक्षण नहीं आया।

टहल धीरे से बोला, 'रहने दो जनक। शांत रहो।' पुलिसवालों ने जनक को पकड़ने की कोशिश की। जनक ने हाथ-पैर चलाए—पुलिसवालों पर लात और थप्पड़ पड़े, एक की वरदी भी थोड़ी-सी फट गई। सिपाहियों ने यम का रूप धारण किया। सनेही और टहल ने उन्हें मुश्किल से संयत कर पाया। सिपाही जनक को चौकी पर पकड़ ले गए। जमानत देने की बात चली तो उन्होंने कह दिया कि अपराध असाधारण है, कचहरी से भले ही जमानत हो जाए, यहाँ नहीं हो सकती। देशराज और बनमाली को बीच में डाला गया। उन्होंने अपनी क्रियाओं द्वारा मामले को दबाने का उपाय किया, परंतु पुलिस ने नहीं माना। काम बंद हो गया। लड़के चौकी के चारों ओर घूमने लगे। मना करने पर भी नहीं मानते थे। पुलिस बंदूकें ताने सन्नद्ध थी कि सदर जानेवाली मोटर लॉरी आई। पुलिस ने उसको रुकवा लिया। साँझ होने पर लड़कों की भीड़ हट गई। दो सिपाही जनक को लेकर लॉरी में जा बैठे। लॉरी चल दी। सिपाही और जनक थोड़ी देर बाद ठंडक में आ गए।

थानेवाले पुर पर पहुँचते ही सिपाहियों ने जनक को उतारा। रात हो गई थी, थाने की हवालात में छोड़कर उन्हें सुहाना लौटना था, फिर चाहे थाने के पहरेदार जनक को इसी लॉरी से सदर ले जावें, चाहे दूसरे दिन की लॉरी से।

जनक ने लॉरी से उतरकर टूटे-धीमे स्वर में कहा, 'पेशाब करनी है।'

एक बोला, 'ऐसे वहाँ बोलते-बरतते तो तुम्हारी यह दुर्गति न होती,' और उसे खोल दिया।

मूत्र-त्याग के लिए जनक थोड़ी दूर जा बैठा। सिपाहियों की आँख उस पर थी। परंतु उनकी आँखों ने कुछ ही क्षण पीछे देखा कि जनक ने उचाट मारी और लॉरी में उतरने-चढ़नेवालों के आगे-पीछे से अदृश्य हो गया! सिपाही दौड़े, चिल्लाए। कुछ दूर तक जनक की विलीन होनेवाली टेढ़ी-तिरछी रेखा दिखाई पड़ी, फिर कुछ नहीं। हाथ मलते रह गए। थाने में दिन की घटना और इस भाग निकलने की रिपोर्ट की। सुहाना की दिशा में सिपाही छूटे। ढूँढ़-खोज होती रही, परंतु वह नहीं मिला।

दूसरे दिन मामले की सूचना सदर में भेजी गई। जनक की गिरफ्तारी के लिए सौ रुपया इनाम घोषित हुआ।

जनक का कोई पता नहीं। टहल उसके लिए बहुत चिंतित था। सनेही को भी दुःख था। जनक के घरवाले उसके लिए बिसूरते रहे थे।

उन्हीं दिनों दमरू कैद काटकर आ गया। उसे ज्वर था। गाँव में उसके आने की कोई खुशी नहीं। मंटू रुष्ट, हरको ने बिलकुल मुँह फेर लिया जैसे दमरू कोई रोगीला कुत्ता हो! अदालत ने उसे कत्ल के अपराध से [illegible] के अपराध में [illegible]

महीने की कैद का दंड दिया था, परंतु जात-बिरादरी ने उसे कत्ल ही माना। हुक्का-पानी, मिलना-जुलना सब बंद। आते ही रोटी के लाले पड़ने लगे। बटोले ने साहस किया तो गाँव-बाहर दूर अपने खेत की रखवाली पर रख लिया। उसे यांत्रिक करघों के चलाने-चलवाने से खेती के काम के लिए कम अवकाश मिल रहा था। दमरू वहीं ज्वर में पड़े-पड़े रोटी की गुजर पर रखवाली का काम करने लगा।

'क्या अपने काम का यही अंत होना था?' जनक की ढूँढ़-खोज और दमरू के इस बहिष्कार से दुखी होकर टहल ने एक दिन सनेही से घर जाकर कहा।

गंभीरता के साथ उसने उत्तर दिया, 'जोश को सँभाले रहे तो विफलता की यह कड़ी सफलता की कड़ी का एक जोड़ ही बनेगी। जैसे समय अनंत है वैसे ही काम भी अनंत है। आओ, हम तुम काम की अगली कड़ी को पकड़ें।'

उस दुर्घटना के हो जाने के बाद से कवायद-परेड, खेल-कूद इत्यादि सब शिथिल पड़ गए थे।

'दादा,'—बहुत दिनों पीछे टहल ने उसे यह संबोधन किया था—'दादा! वह छोकरा मूर्ख होते हुए भी उतना बुरा तो नहीं है।'

'हमारे यहाँ के छोकरे विचलित और पथ-भ्रष्ट बहुत हो गए हैं। इनका सुधारना बहुत जरूरी है।'

'अब की बार मिल जाय तो उसे आप बेंत लगाना, परंतु अपने भीतर उसे स्थान दिए रहना।'

टहल का गला भर आया और आँखों में आँसू छलक आए। सनेही ने टहल के कंधे पर हाथ रखा। कुछ कहना चाहता था, पर न कह सका।

'दादा, उस दिन जब सिपाहियों के सामने आपने उसे डाँटा तब वह आपके साथ भी गँवारी से पेश आया था। क्या आप उसे माफ नहीं करेंगे? उसका कोई नहीं है। न मालूम जीवित है या मर गया।'

टहल के आँसू बह पड़े। हिलकी आ गई। वह सनेही के घुटनों की ओर झुका। सनेही ने पकड़कर छाती से लगा लिया। उसकी आँखों में भी बड़ी-बड़ी बूँदें उमड़ आई थीं।

राजदुलारी धीरे से आकर एक तरफ खड़ी हो गई।

'बस टहल, बहुत हो चुका। लड़कपन में मैं उससे ज्यादा गँवार और बुरा था। जनक तो बुरा है ही नहीं,' सनेही ने कहा।

'तुम्हारे लड़कपन का कुछ सबूत तो मैं दे सकती हूँ,' राजदुलारी धीरे से आकर बोली, 'अरे यह क्या! गंगा-यमुना का संगम हो रहा है क्या?'

सनेही ने कहा, 'बिना सरस्वती की सहायता के गंगा-यमुना का संगम अधूरा रहता है।'

आँखों में आँसू, होंठों पर मुसकान, गले में कंप। सनेही और टहल अलग-अलग हो गए।

'भाभी! मेरी माँ से बढ़कर माँ!! दादा से कह दो कि आगे मुझे चाँटे चाहे भले ही लगा दिया करें, पर च्यूँटियाँ न लिया करें।'

'बस टहल, मुझे मेरे अहंकार की याद मत दिलाओ।'

'आपका अहंकार! नहीं, मुझमें ज्यादा है।'

राजदुलारी ने व्यंग्य किया, 'तुम्हारा भौतिकवादी अहंकार तो जान पड़ता है कि गल गया—' और रुककर सनेही की ओर मुँह करके मुसकराई।

सनेही आँसू पोंछकर हँस पड़ा।

'टहल, इन सरस्वतीजी ने उस दिन ठीक कहा था कि अध्यात्मवाद का अहंकार भौतिकवाद के अहंकार से बड़ा होता है।'

'यदि किसी वाद को सिंगारना-सजाना है तो मैं यह चली, क्योंकि मैं आज पकौड़ियों की रिश्वत नहीं दूँगी किसी भी वाद को।'

'एक वाद की बात तो तुमको सुननी ही पड़ेगी, सरस्वतीजी,' सनेही ने साँस भरकर कहा, 'अपने भीतर बसे हुए किसी भी सिद्धांत या वाद के हुकुम पर चलते रहने का अभ्यास ही विवाद और बखेड़े उत्पन्न करता है। वह अमरबेल की तरह छाया रहता है और सारी शक्ति को सोखता रहकर वादी को निर्जीव बना देता है। मैं आगे उसके हुकुम पर न चलकर विवेक से काम लूँगा। सबसे बड़ी और सत्यानासी अमरबेल यही जान पड़ती है।'

'मैंने गाँठ बाँध ली,' उत्साह-भरे स्वर में टहल बोला।

'मैंने तुमसे पहले बाँध ली,' सनेही ने कहा।

राजदुलारी की मुसकान में फूटा, 'मैं पकौड़ियाँ तब खिलाऊँगी जब देख लूँगी कि ये गाँठें खुल नहीं सकतीं। एक गाँठ और बाँध लो—जनक की खोज और अधिक तत्परता के साथ कराओ।'

: ५७ :

ठंड उतार-चढ़ाव पर आ गई। अलसी, गेहूँ, चना गदरा उठे। सूर्यास्त होने में थोड़ा विलंब था। विक्रम सतर्कता के साथ सरकारी जंगल से ढोरों को इकट्ठा करके पानी पिलाने के लिए नाले में उतरा। किनारे की एक झुरमुट में खरखराहट हुई। विक्रम को विश्वास था कि झुरमुट में बनरखा नहीं हो सकता। एक क्षण ध्यान लगाकर बोला, 'निकल भी आओ। खाना, तमाखू, जो आज्ञा हो, ले आऊँ,' और हँसा।

उसकी धारणा थी कि कालीसिंह का कोई गिरोही निकल पड़ेगा, परंतु सामने आ

गया जनक! नंगे पैर, फटे कपड़े, बाल बिखरे, चेहरा सूखा हुआ। विक्रम को आश्चर्य हुआ। चेहरे पर रोब आ गया।

'तुम यहाँ कैसे? तुम्हारे ऊपर तो सौ रुपया इनाम है?'

'हाँ है। सुना है।' क्षीण स्वर में कहकर जनक उसके निकट आकर खड़ा हो गया। बोला, 'अब सहा नहीं जाता। दो दिन से खाने को नहीं मिला है।'

विक्रम सोचने लगा।

'तुम तो बड़े तेज थे! क्या हो गया तुमको?'

'मैं बड़ा गधा था। कुछ खाने को मिल जाए तो आदमी बन जाऊँ।'

एक क्षण सोचकर विक्रम ने कहा, 'यहाँ तो खाना आ नहीं सकता। घर क्यों नहीं चले जाते?'

'पुलिस पकड़कर मार लगावेगी।'

'मेरे घर आ जाओ रात में। खाना खाकर जहाँ चाहो, चले जाना।'

'पकड़वा तो नहीं दोगे?'

'अरे नहीं! तुम लोगों ने मुझे जैसा समझ रखा है, वैसा नहीं हूँ।'

'अच्छी बात है। रात होने पर आऊँगा। यह जो एक झोंपड़ी खेत के पास टीले पर से देखी थी, उसमें कौन है?'

'कोई डर की बात नहीं। खेत बटोलवा का है, रखवाली के लिए दमरुआ पड़ा रहता है। बहुत करके ज्वर में है। जरा-सा किनारा काट के आ जाओगे तो वह नहीं देख सकेगा।'

'अच्छा।'

विक्रम ढोरों को लेकर ताकते-झाँकते निकल गया। जनक भी आड़-ओट लेते हुए जंगल के किनारे आ गया। सूर्यास्त के समय उसने देखा कि विक्रम के कुछ ढोर खड़ी फसल चरते हुए निकल गए। उसके सूखे खून में गरमी आ गई। फिर अपनी असमर्थता का स्मरण करके रह गया।

रात हो जाने पर वह उस झोंपड़ी के पास आया। भीतर कोई काँख रहा था। हो न हो यह दमरू है, जनक ने सोचा और अँधेरी झोंपड़ी में घुस गया।

'कौन है रे?' मरे से स्वर में काँखनेवाले ने कहा।

'मैं हूँ। भूख लग रही है। है कुछ?'

'कौन?'

'जनक। जनक। तुम्हारे गाँव का जनक।'

'भैया जनक, मैं दमरू हूँ। गाँव-भर का बुरा दमरू, खाने को मेरे पास कुछ नहीं है। पुलिस तुम्हारे पीछे पड़ी हुई है। कहीं भाग जाओ।'

'कहाँ जाऊँ? इधर-उधर मारा-मारा फिरता रहा हूँ। अब कहाँ जाऊँ?'

'तो रात-भर यहीं पड़े रहो भैया। ठंड लग जाएगी तो नहीं बच पाओगे।'

'पर हाँ, खाना कहाँ से आवे?' जनक ने कहा।

दमरू उठ बैठा। काँखते-काँखते बोला, 'कहो तो तुम्हारे घर से माँग लाऊँ; लेकिन गाँववाले तो मुझे भूत-प्रेत समझने लगे हैं।' उसने अपने बहिष्कार और जात-पाँत के दंड की बात सुनाई।

यह वही दमरू है जो बाघ की तरह दहाड़ा करता था! और वह विक्रम कैसा मिनमिना रहा था!!

जनक ने अपने घुटनों पर सिर रख लिया और सोच-विचार में पड़ गया।

'तो मैं जाऊँ भैया जनक?' दमरू ने कराहते हुए पूछा।

'न,' जनक ने तुरंत सिर उठाया, 'न। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा।' जनक को अपने भीतर यकायक शक्ति की लहर अवगत हुई।

'मेरे साथ! मेरे साथ चलने की अटक ही क्या है? देखो, पकड़े न जाना। शरीर में वैसा बल होता तो जहाँ कहते तुम्हें वहीं अपने कंधों पर रखकर ले जाता, पुलिस-वुलिस की जरा भी परवाह न करता।'

'मुझे साथ लेकर चलो। पुलिस की बिलकुल परवाह नहीं है, चौकी पर ले चलो। खाना वहीं आ जाएगा। तुमको इनामवाले सौ रुपया मिल जावेंगे। कुछ रुपए से पाँत-पंगत देकर बिरादरी में मिल जाना, बाकी से और काम चला लेना।'

'ऐं! कहते क्या हो, भैया जनक!' दमरू चक्कर में पड़ गया। दोनों में नाहीं और हाँ की होड़-सी लग गई। अंत में दमरू परास्त हो गया। दोनों चल पड़े। जनक ने सोचा—विक्रम के घर जाता तो खाना मिलता चाहे न मिलता, मैं पकड़ा अवश्य जाता और इनाम उसे मिलता।

थोड़ी देर में वे चौकी के सामने जा खड़े हुए।

जनक ने दमरू को आगे बढ़ाया, 'कह दो, कह दो कि मैं जनक को पकड़ लाया हूँ।'

दमरू की हिम्मत नहीं पड़ रही थी। जनक ने धकेला। एक सिपाही चौकी के बाहर निकल आया। चिल्लाया, 'कौन है रे?'

रुँधे काँपते गले से दमरू बोला, 'मैं हूँ दमरू।'

'क्या फिर कोई कत्ल किया?'

पीछे से जनक ने टेहुनी गड़ाई। दमरू ने और भी गिरे स्वर में कहा, 'जनक भैया को पकड़ लाया हूँ—यानी—'

जनक आगे आ गया।

'यानी-व्यानी कुछ नहीं। दमरू मुझे पकड़ ले आए हैं। अब आप मेरा जो कुछ करना

चाहें, कर डालें।' उसके स्वर में क्षीणता न थी।

'अच्छा! अच्छा, आओ इधर।'

जनक छाती ताने बढ़ गया। अन्य सिपाही निकल आए। किसी ने उसकी मारपीट नहीं की। परंतु हवालात में कर लिया। घर समाचार भेज दिया गया। टहल खाना लेकर चौकी के भीतर चला गया। जनक के त्याग को देखकर वह हर्ष से भर गया था।

बाहर से विक्रम ने बुलाया। एक सिपाही बाहर गया।

विक्रम ने कहा 'जनक को फँसाने जा रहा हूँ। वह मेरे घर आएगा। दो-तीन सिपाही मकान घेरने के लिए आ जाएँ।'

'चुप चोट्टे! जनक आ गया। चौकी में बंद है। भाग जा। तुझसे तो वह कत्ल करनेवाला दमरू भला जिसने साफ-साफ सब कह दिया।'

विक्रम कुढ़कर चला गया।

थोड़ी रात गए सनेही आया। जनक के सिर पर हाथ फेरते गद्गद हो गया।

'टहल भाई, यह है अपना व्यावहारिक अध्यात्म! आज जनक मुझसे बड़ा हो गया!'

'मैंने किया ही क्या है? पेट-भर खाने को मिल गया, नहीं तो भोर न जाने क्या होता।' धीमे स्वर में जनक बोला।

'आगे तुम अपनी कमाई से हम सबको पोसोगे,' सनेही ने कहा।

टहल का गला भर आया—'यदि अहंकार न करेगा तो आपके चरणों में बैठकर बहुत कुछ सीख सकेगा।'

जनक बोला, 'सजा काट आने पर मन लगाकर सीखूँगा।'

'कहीं तुम्हारी जगह मैं जा सकता सजा काटने—' सनेही ने कहा। सिपाही हैरान थे।

: ५८ :

मुकद्दमे के लिए जनक दूसरे दिन सदर भेज दिया गया। उसी दिन बनमाली को समाचार मिला कि स्वतंत्रता के युग में जिन्होंने कष्ट झेले थे उनमें के वर्तमान असमर्थों को खेती के लिए भूमि दान की जाएगी। सनेही के पास भी सूचना भेजी गई। उसने तत्काल इनकार कर दिया।

बनमाली सरकारी फार्म के अधिकारी के पास पहुँचा, क्योंकि सरकारी फार्म में बाहर से आए हुए विस्थापितों और राजनीतिक पीड़ितों को दिए जाने लायक रकबे थे और अधिकारी की सिफारिश पर अच्छा-सा रकबा मिल सकता था।

बनमाली ने अपने त्यागों की गिनती गिनाई। अधिकारी उसे पहले से जानता था। बोला, 'पहले विस्थापितों के लिए भूमि अलग करनी है, फिर गाँव के उन लोगों के लिए जिनके पास रंचमात्र भी नहीं है।'

'मेरे पास नहीं के बराबर समझिए। जो परती देशराज से मिली थी वह छदामी की बनकर समिति की हो गई। अपने खेत समिति में लगा चुका हूँ। निज की खेती के लिए गाँठ में अब कुछ नहीं रहा।'

'कुछ ऐसे हैं जिनके पास इतनी भी भूमि नहीं। पहले उनको मिलनी चाहिए। उनसे बचे तब किसी और को। सरकार निश्चय करनेवाली है कि अपने फार्म से पचास-पचास एकड़ भूमि सुहाना और बाँगुर्दन की सहकारी कृषि समितियों को देगी।'

बनमाली को ताव आ गया। समझ गया कि इसी की सिफारिश पर समितियों को सरकारी भूमि मिल रही है। उतनी बढ़िया!

'आप सरीखे लोग त्याग-तपस्या का मूल्य आँक ही नहीं सकते। मैंने क्या-क्या नहीं खोया! आप सरीखे अफसरों ने ही सरकार को बदनाम कर रखा है। नौकरशाही के इसी तरह के पुर्जे ही सरकार की मशीन को नहीं चलने देते।'

'आप सरीखे लोग सरकारी मशीन के पहियों में डंडा अड़ा देते हैं, इसलिए नहीं चल पाती वह,' अधिकारी भी क्षुब्ध हो गया, 'एक डॉक्टर सनेहीलाल हैं जिन्होंने इंच-भर भी भूमि लेने से इनकार कर दिया है, और हम सबकी मदद भी करते रहते हैं।'

बनमाली का पारा और गरम हुआ, 'मैं शहीद हूँ और आप केवल एक नौक़र। मैं देखूँगा।'

'मैं पहले ही देख चुका हूँ। कहिए तो गिनाऊँ आपके शहीदी करिश्मे—एक बार चोरी में—दूसरी बार—'

'खबरदार!' बनमाली के मुँह से फेन निकल पड़ा।

बहुत होगा, नौकरी से अलग ही न कर दिया जाऊँगा, अधिकारी के मन में आया। परंतु बनमाली चला गया इसलिए झगड़ा वहीं रह गया।

बनमाली सोचता था—यदि मेरी बात न सुनी गई तो किसी भी सरकारी संस्था से संबंध न रखूँगा, सहकारी समिति को भी लात मार दूँगा।

□

आई हुई फसल के सुनहरे दानों को देखकर बनमाली ने तय कर लिया कि अभी समिति को नहीं छोड़ूँगा और जब छोड़ूँगा तब उसे ऐसा करके छोड़ूँगा कि कभी पनपे ही नहीं, क्योंकि चाहे मेरी कटे या न कटे, सरकारी अफसरों की नाक तो जड़ से कट जाएगी जो समिति पर जान देने का तमाशा करते फिरते हैं!

धरनीधर से उसे सहयोग की आशा न थी क्योंकि वह अपने पल्ले समेटकर छोटी-मोटी साहूकारी में तल्लीन हो गया था—युग आते हैं और चले जाते हैं, पर हम बने रहते हैं; न लोगों की फजूल खर्ची कम होगी और न हमें कोई हिला सकेगा। उसका यह विश्वास था।

गरीबों और संपत्तिवालों, साहूकारों और रिनियों, सहकारी समिति के भूमिधरों और मजदूरों की निगाह फसल पर थी जो कटने को आ गई। फसल कटने लगी। चैतुये निकल पड़े। गत वर्ष की दुर्घटना की हलकी-सी स्मृति-भर रह गई थी।

देशराज की फसल अच्छी आई। सहकारी समितियों की भी बुरी नहीं थी। जंगली जानवरों और गाँव के ढोरों के उजाड़ने पर भी बहुत बची हुई थी। कटनी के बाद अनाज ख़लिहान में आ गया। कब दाँयँ हो और अन्न घर में रख लें, सभी की कामना थी।

नाहरगढ़ में होनेवाले संगीत-सम्मेलन की तिथि निकट आ रही थी। अंजना को जल्दी पड़ रही थी। देशराज भी चाहता था कि दाँयँ हो जाए और अनाज गोदाम में पहुँच जाए तो अफीम की दोनों पेटियाँ नाहरगढ़ ले जाऊँ और रुपया लाकर निश्चय कर लूँ कि अफीम व्यवसाय में आगे हाथ डालूँ या खेती को ही चैन के जीवन का निमित्त बनाऊँ। कटे पूले जल्दी-जल्दी सुखवाकर उसने दाँयँ करानी आरंभ कर दी। गत वर्ष के ओले-पानी का कड़वा अनुभव लोगों को याद था, इसलिए सभी ने आतुरता के साथ दाँयँ चढ़ाई।

भूमिधरों को निजी खेती की चिंता पहले थी। सहकारी के मजदूर सदस्य, मजूरी में अनाज पाने के लोभ से, सहकारी खलिहान की उपेक्षा कर रहे थे। सनेही और टहल को जितना समय मिलता था उतने में इसकी देखभाल बारी-बारी से कर रहे थे। एक दिन किराए के बैलों द्वारा, बहुत थोड़े समय में दाँयँ कराने का निश्चय कर लिया। एक खलिहान पर दो जोड़ी बैल ऐसे आए जो आपस में फूँसा-फाँसी करने लगे। किसकी जोड़ी प्रबलतर है, इस प्रसंग पर जोड़ीवालों में दुंद हो पड़ा।

एक बोला, 'हमारी जोड़ी तुम्हारी को ओंधा कर देगी।'

दूसरे ने कहा, 'हमारी तुम्हारी को धूल चटा देगी।'

होड़ बदी गई और बैल छोड़ दिए गए। बैल लड़ पड़े। एक ने दूसरे को रगड़ा और खदेड़कर भगा दिया। इतने में वहाँ सनेही आ गया।

उसने भर्त्सना की, 'मजूरी काटी जाएगी। समय नष्ट कर रहे हो।'

विजयी बोला, 'कट जावे। बात तो सिरे रही।' फिर वे काम में लग गए।

सनेही कुछ और फटकार देनेवाला था कि सोचकर रह गया—इनकी हिंसा को कोई मार्ग चाहिए, एक ने दूसरे का सिर नहीं फोड़ा, यही क्या कम है?

: ५९ :

नाहरगढ़ में होनेवाले संगीत-सम्मेलन की तिथि सिर पर आ गई, परंतु देशराज के खलिहान से अनाज गोदाम में न पहुँच पाया। अनाज तो गोदाम में कारिंदा पहुँचा ही देगा, उधर से जब लौटेंगे तो दो पेटियों की अफीम से हलके होकर और उसका दाम जेब

में रख के। फिर अंजना का हठ। उन्हीं दिनों सहकारी समिति की वार्षिक बैठक होनी थी। देशराज ने नाहरगढ़ जाने का निश्चय कर लिया।

संध्या तक नाहरगढ़ पहुँच जाना था, तैयारी में लग गया। उसी समय सूचना मिली कि जनक छूटकर आ गया है। बिना जमानती वारंट था, इसलिए मुकद्दमे के फैसले तक जेल में रहना पड़ा था। मैजिस्ट्रेट ने केवल चेतावनी देकर छोड़ दिया। उसके त्याग की असली बात छिपी नहीं रही। इसलिए इतना सस्ता छूटा। दमरू को इनाम के सौ रुपए मिल गए।

देशराज ने सोचा, बाँगुर्दन होता हुआ नाहरगढ़ जाऊँ। जब वह अंजना को लिए मोटर से बाँगुर्दन गया, गाँव में उल्लास का प्रवाह-सा पाया। कवायद-परेड की तैयारी हो रही थी। टहल, सनेही, बटोले इत्यादि वहाँ सब थे।

देशराज मोटर से उतरकर उन लोगों के पास गया। किसी भी तुक की परवाह न करके लटोरेंसिह ने उसे फौजी प्रणाम किया। जनक हाथ जोड़कर उसके पास आ खड़ा हुआ। देशराज ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

जनक ने कहा, 'उस दिन की अभद्रता के लिए क्या आप मुझे क्षमा कर देंगे जब मेरे गुरुजन तो हाथ में झाड़ू लिए थे और मैं बकबक कर रहा था?'

'एक दिन जब मैं हाथ में झाड़ू पकड़ूँगा तभी उसका मार्जन होगा,' देशराज मुसकराया।

सनेही ने उसकी मुसकान में उस क्षण कुछ ऐसा आकर्षण अवगत किया जैसा पहले कभी नहीं किया था।

बोला, 'इन्हीं लड़कों के भीतर तो हमारे देश की वह पुरानी रसायन छिपी है।'

अन्य लोगों के शिष्टाचार की समाप्ति पर जनक ने मोटर में बैठी अंजना को नमस्ते की। वह चाहती थी कि इस ठौर से कब पीछा छूटे। चेहरे से प्रकट हो रहा था जैसे बीमार हो।

मंटू ने बटोले के कान में धीरे से कहा, 'वहाँ नाचने जा रही है यह!'

'चुप! चुप!! टहल या सनेही सुन लेंगे तो मुफ्त में फटकार खानी पड़ेगी।'

संभव है, सहकारी समिति की बैठक के दिन तक न लौट पाऊँ तो सनेही बैठक कर लें और आवश्यक कार्य निबटा लें —इस प्रसंग की चर्चा करके देशराज मोटर लेकर चला गया और सूर्यास्त के पहले ही नाहरगढ़ पहुँच गया। उस रात सम्मेलन का उद्घाटन होना था।

☐

मधुमास और उसकी वधू वसंत ऋतु, नीम, करोंदी और चाँदनी की महकें। नाहरगढ़ से रंगीनी थिरक रही थी। दूर-दूर से आई हुई नर्तकियाँ और गायिकाएँ अपने

सुरूप को विविध प्रसाधनों से सजाए चुहुल कर रही थीं। उनको देखकर अंजना को अपनी रूपरेखाओं को सँवारने की धुन चढ़ आई। किस कलावंती में कितना गुण है और किसको क्या पुरस्कार मिलना चाहिए, इसका निर्णय उसे और देशराज को करना था—अर्थात् अकेली उसे ही। तो संगीत कला की जानकारी में वह सबसे बढ़-चढ़कर थी ही। सुरूपता और सजावट में भी उन्हें मात न दी तो बात ही क्या रही। उसके चेहरे पर सुर्खी आ गई। मैं बीमार नहीं थी। डॉक्टर सनेहीलाल भी कहा करता था। उसने कहीं पढ़ा या सुना था कि यौवन मन की स्थिति है। मन फड़कने लगा।

कलावंतियाँ तितलियों जैसे रंग-बिरंगेपन में थीं। बहुत-सी फिल्मों में वे जैसी दिखाई जाती हैं उनसे किसी भी बात में कम नहीं। अपने जजों को मोटर से उतरते देखकर उनकी थिरकनों में कमी आ गई। जब देखा कि बाघराज उन दोनों का शील के साथ स्वागत कर रहा है, तब उन्होंने भी अपना अभिनंदन लहराया। बाघराज और वे दोनों बहुत समय उपरांत मिले थे, पर इस प्रसंग पर चर्चा उस समय नहीं हुई।

रात्रि के समय सजीला रंग-मंच हंडों की रोशनी से जगमगा उठा। संगीत-समारोह का आरंभ हो गया। यह एक सप्ताह तक चलना था। ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा—सभी प्रकार के गायन कार्यक्रम में रखे गए थे और सभी प्रकार के नृत्य। पाँच-पाँच हजार से लेकर एक-एक हजार रुपए तक के पारितोषिक थे।

कलावंतियों के वस्त्र तो बहुमूल्य थे ही, वे मोती, हीरा, जवाहर के सोने के जड़ाऊ गहने भी पहने थीं।

गायन की मधुरता के साथ चटक-मटक और लोच-लचक की भी प्रतिद्वंद्विता-सी हो रही थी। अंजना को लगा, मैं इनसे भी अच्छे करतब दिखला सकती हूँ और समय आने पर दिखलाऊँगी। सहसा एक आह उठी और दबी—चार पेटियाँ यों ही हाथ से निकल गईं, परंतु उसमें मेरा कोई दोष नहीं था।

उस दिन के कार्यक्रम की समाप्ति पर बाघराज, अंजना और देशराज एक कमरे में इकट्ठे हुए। उनमें उस दिन की घटनाओं की बात चली। कालीसिंह का भी प्रसंग आया।

बाघराज ने कहा, 'कहीं छिपे पड़े हैं, बहुत दिन से नहीं मिले। जरूरत पड़ने पर बुलाए जा सकते हैं।'

फिर दो पेटियों में लाई गई अफीम का विषय छिड़ गया। देशराज बोला, 'बहुत नुकसान हो चुका है। यहाँ से अब की बार काफी रुपया साथ ले जाना पड़ेगा। उत्तर का क्षेत्र बदलना पड़ेगा और मालवे का क्षेत्र हथियाना पड़ेगा।'

'इधर के प्रदेशों में मुझे कोई नहीं पहचानता होगा,' अंजना ने कहा और अपनी सहज मदीली चितवन बाघराज पर फिराई।

'यह संगीत समारोह आगे के काम की पहली कड़ी है। रुपया पूरा ले जाइए। और कुछ ऊपर से भी। सुहाना में उस दिन मुझे सलाह दी गई थी कि बड़ी महारानी साहब से रुपया लूँ, तो मैंने पचास हजार ले लिए। इस सम्मेलन पर जो कुछ खर्च होगा, आगे वह सब वसूल हो जाएगा, इसलिए अब खर्च की कोई चिंता नहीं।'

वे दोनों उत्साहमग्न हो गए।

अंजना मुसकान में होकर मोती जैसे दाँत चमकाती हुई बोली, 'मैं पहले ही समझ गई थी, इस सम्मेलन के उद्देश्य को। जब चीज बटोरने के लिए मालवे में निकलूँगी तो संगीत के हवाई जहाज पर बैठकर। ये रहेंगे मेरे साथ बाजा बजाने के लिए।'

यानी साजिंदा! जीवन में पहली बार उसको यह उपाधि खटकी। बोला, 'शायद मैं साथ न रह सकूँगा। गले में पड़ी पुलिस-फाँस कट जाय, तब बाहर का विचरण हो सकेगा मनमाना।'

बाघराज भी जानता था।

दो पेटियों की अफीम की बात चल पड़ी। देशराज ने अपने ठहरने के कमरे में से उठाकर दोनों पेटियाँ बाघराज के हवाले कर दीं।

अंजना ने कहा, 'सम्मेलन की समाप्ति पर चार-छः दिन के लिए सुहाना चली जाऊँगी। डॉक्टर भी तो देखें कि एक सप्ताह के भीतर ही मैं कितनी बदल गई हूँ। आजकल अपने रोजगार की फसल का मौसम है। सुहाना से अकेली यहीं आ जाऊँगी। फिर यहाँ से मालवे के क्षेत्र की यात्रा और—'

'हाँ, हाँ,' बाघराज ने सहमति प्रकट की।

'और मैं इधर सुहाना में नित्य नए रूप रखनेवाली प्रगति और खेती-बाड़ी को अपना अंग बनाकर उस फाँस के कटवाने की फिकर करूँगा।'

बाघराज भी नहीं चाहता था कि देशराज नाहरगढ़ आए-जाए या अंजना के साथ मालवे की यात्राओं में रहे।

'यहाँ की पुलिस का क्या हाल है?' देशराज ने पूछा।

बाघराज ने उत्तर दिया, 'चिंता मत करिए। आप एक सप्ताह मजे में रह सकते हैं।'

'हाँ, फिर सुहाना में—'

: ६० :

बनमाली अपनी पौर के चबूतरे पर तकिया से टिका हुआ हुक्का पी रहा था और छदामी नीचे बैठा था।

कुछ देर पहले से बातचीत चल रही थी। बनमाली ने छदामी को चिलम देकर कहा, 'जो कुछ मैंने कहा है उसकी गाँठ बाँध लेना, और मेरा नाम जाहिर न हो, भला। वैसे मैं

डरता भी नहीं।'

'अच्छा मालिक, और वह रुक्का?' चिलम फूँकते हुए छदामी बोला।

'यार मेरे, क्यों जान छोड़े देते हो! रुक्के की फिकर मत करो; ठिकाने से रखा है,' कहकर बनमाली ने द्वार की ओर देखा। माल विभाग का एक निम्न कर्मचारी आ गया। आगत-स्वागत के बाद बनमाली ने उसे बीड़ी-दियासलाई दी।

कर्मचारी बीड़ी पीते-पीते बोला, 'आपके गाँव में खंबेवाले लैंप लगेंगे। गाँव शहर-सा जान पड़ेगा। पानी सोखे, नालियाँ-वालियाँ हो ही गई हैं, सड़क कुट जाय तो क्या कहना। पर या तो गाँव पर टैक्स लगावे पंचायत या सब लोग अपना सारा काम छोड़कर अपनी-अपनी मिहनत देवें। एक ही बात। पर है ठीक, बहुत ठीक।'

'काहे की ठीक? मरे जाते हैं हाथ मिहनत और टैक्स के मारे।' छदामी ने कहा।

'यह कौन है?' कर्मचारी ने पूछा।

'अपना ही है, बिलकुल अपना आदमी। परेशान है बेचारा। इसके सामने आप बिलकुल खुल के बात कर सकते हैं।'

'इन लोगों को मालूम है कि चकबंदी होनेवाली है? किसी के हाथ लगेंगे बढ़िया खेत और किसी के मत्थे पड़ेंगे घटिया ही घटिया। उस पर लगान ड्योढ़ा! पर अपने को क्या करना है। नाप-तौल की, कागज में दर्ज कर लिया, फिर अपने घर। अच्छा है जो कुछ न हो उठे।'

'सब जानते हैं, पर गाँव में फूट जो है। एक हो जावें तो न टैक्स लगे और न मुफ्त की मिहनत करके हाथ में ठट्टें पड़ें।'

छदामी ने हुक्के पर चिलम रख दी। बोला, 'इससे तो जिमींदारों की बेगार भली थी। रास्ते पर हम अकेले चलते हों तो उसे सुधारते-बनाते फिरें। कूड़ा साफ करो! नालियाँ काटो!! यह करो, वह क़रो!!! नाकों दम आ गया है। अब हमारे पुरखों के खेत मिटाने को फिर रहे हैं।'

बनमाली ने सुझाया, 'तो इन्हें लिखा क्यों नहीं देते कि चकबंदी नहीं करानी है। शाम को समिति की बैठक है, उसमें कह देना, बस।'

'लिख तो हम सब लेंगे, पर ऐसा करो कि साँप मर जावे और लाठी न टूटे। दो-एक खेतों की चकबंदी करा देना, बाकी से इनकार कर देना। मैं साध लूँगा।'

'जो कुछ आप और ये ठीक समझें, सो करो।' छदामी ने कहा।

'सब हो जाएगा, पर भाई, हमारे भी पेट लगा है; बाल-बच्चे हैं। सरकार तो ऐसी अंधी-बहरी है कि क्या कहूँ। आप ही कहिए बनमालीजी, आपसे बढ़कर देश में हैं कितने शहीद? मुझे कोई गिनाए तो जानूँ। पर हाय रे भगवान्, इनके लिए किसी के कान पर जूँ तक न रेंगी!' कहकर कर्मचारी ने छप्पर पर निगाह उठाई।

'देखिए तो आप, मैं क्या-क्या करता हूँ,' बनमाली बोला, 'इन सबके दाँत खट्टे न किए तो मेरा नाम नहीं। और भाई छदामी, इनके घर खेती तो होती नहीं। कुछ सत्कार कर देना तो काम बन जाएगा।'

छदामी ने हामी भरी। कर्मचारी ने विषयांतर किया।

'यहाँ बिजली आएगी! ह! ह!! ह!!! मानो उस पर टैक्स लगेगा ही नहीं। घर में नहीं हैं दाने अम्माँ चलीं भुनाने! खेतों में बिजली के खंबे गाड़े जाएँगे। चकबंदी हो जाने पर जिसके खेत में ये सनीचर खड़े कर दिए जाएँगे, उसके खेत में हल तो चलेगा क्या, बैल भी न घुसने पावेंगे। बैल ने कंधा या सींग रगड़े नहीं कि वह सनीचर भन्नाया और नहर या बिजली के अफसर ने मुकद्दमा चलाया। और, आपने सुना कि जिनके खेतों पर मशीनों से बँधियाँ डाली गई हैं उनसे चार रुपया फी एकड़ हर साल जल-कर लिया जावेगा? पानी भरेगा खेतों में इंद्र देवता का, टैक्स लेंगे नहर मुहकमेवाले। और, हे भगवान्, हमारे देश में लगान की जितनी दर है, उतनी दुनिया के किसी कोने में नहीं। उस पर भी और बढ़ेगा!'

छदामी झल्लाया, 'हम मर जाएँगे तब हो पावेगा यह सब!'

□

देशराज की हवेली के आँगन में संध्या के पहले ही सहकारी समिति की बैठक हुई। एक विशेषता थी, बाँगुर्दन समिति की वार्षिक बैठक भी यहीं और उसी समय रखी गई। अपना-अपना निश्चय लिखते-भर जाना था। देशराज की अनुपस्थिति में सनेही को बैठक का प्रधान बनाया गया। बाँगुर्दन समिति का प्रधान बटोले था ही।

पहले जात-बिरादरी के झगड़े तय करके सहकारी चर्चा का मार्ग स्वच्छ किया गया—नाइयों-बसोड़ों का झगड़ा, दमरू का बहिष्कार इत्यादि। उन्हें कुछ दान-पुण्य करना पड़ा, दमरू के सिर पर पंगत खिलाने का खर्चा रहा।

तो भी, बिरादरी के ये झगड़े कम दामों में सुलझाए गए, क्योंकि सभी जातियों के लोग सहकारी समिति में थे और उनकी पंचायत में अधिक उदारता को गुंजाइश मिली। फिर खर्च, बीज, सहकारी मालगुजारी और रक्षित कोष के लिए रुपए अलग करके सनेही ने प्रस्ताव किया, 'बीमारी और अन्य विपत्तियों के आ पड़ने की हालत में मेंबरों की सहायता के लिए एक कोष अलग रख लेना चाहिए।'

यह जल्दी से स्वीकृत हो गया। बाँगुर्दन समिति ने भी इसे अंगीकृत किया।

दूसरा प्रस्ताव—'चक़बंदी बिना विलंब के कर ली जावे।'

सनेही ने इसके लाभ समझाए। विवाद हो पड़ा।

छदामी ने कहा, 'किसी के एक जगह इकट्ठे अच्छे खेत और किसी के एक ही जगह इकट्ठे बुरे खेत। फिर उनमें गाड़ेंगे बिजली के खंबे। मैं कभी नहीं मानने का।

'खेत तो आ जाएँगे समिति की मालिकी में, पैदावार पाते रहोगे। कोई झंझट नहीं। आम खाने से काम या गुठलियाँ गिनने से?' टहल बोला।

और सनेही ने छदामी से हँसकर पूछा, 'किसने बहकाया है तुम्हें?'

'ओ हो! जैसे पढ़ों-लिखों ने ही समझदारी का ठेका लिया हो। मैं सब जानता हूँ।' छदामी ने जानकारी का सिर हिलाया।

'जानते हो दादा, यह मंत्र किसने कान में फूँका है!' टहल ने कहा।

बटोले बोला, 'कोई कहे या न कहे, मैं बतलाता हूँ—ये छोटे-छोटे सरकारी अफसर लगाया करते हैं ऐसी सुरंगें। मुझ ही को बहकाया था, पर हम लोग तो चकबंदी का लाभ समझ गए हैं, इसलिए अवश्य करायँगे।'

बनमाली ने वोट के लिए आग्रह किया। छदामी के साथी बनमाली का मुँह देखने लगे। टहल खिलखिला पड़ा।

सन्नेही ने राय गिनीं तो वे लोग न इधर न उधर। प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। बाँगुर्दन समिति में सर्वसम्मति से। अब समस्या आई मुनाफा बाँटने की। सनेही इसे सबसे पीछे लेना चाहता था, परंतु वह बीच में आ गई। बनमाली ने इसे उठाया।

जिन्होंने अपने खेत समितियों में लगा रखे थे उन्होंने प्रति एकड़ के हिसाब से पैदावार बँटवानी चाही। फिर भूमिहीन मजदूरों के लिए क्या बचता जो बहुसंख्यक थे? समस्या ने गहरी उलझन का रूप पकड़ा। मजदूर उखड़ पड़े।

गरमियों में हमने लू खाते और पेट काटते नहर की नालियाँ खोदीं, कुँआर-कातिक की गरमी में भरके पूरे। सड़क हम बनावें, हाथ मिहनत की जहाँ जरूरत पड़े हम पेले जावें। मुनाफा बँटाई के बखत जिमीनवाले कहें कि हमें दे दो पचहत्तर फी सदी! हमने छोड़ी समिति। लाओ हमारे हिस्सों के रुपए।'

कम-से-कम पचास मजदूर तुरंत इस्तीफा देने के लिए अड़ गए।

एक ने चिनौती दी, 'कर लेना खेती बिना मजदूरों के।'

बनमाली मुसकराया, 'तुम लोग इस्तीफा दोगे तो मैं भी समिति को छोड़ दूँगा।'

जिमीनवाले बिगड़ पड़े, 'मजदूरी न करोगे तो खाओगे क्या? तुम इस्तीफा दे दो। हम भी छोड़ देंगे। रोज की किलकिल से बचे। जैसे पहले खेती करते थे, वैसे ही फिर कर उठेंगे। मजदूरों का घर भर दो, फिर बचता ही क्या है? उन्होंने मजदूरी बढ़ा दी, चोट हमारे ऊपर पड़ी। हम खेत वापस लिए लेते हैं, फिर लेवें मुनाफे में अन्न। देखें कहाँ से लेते हैं।'

बनमाली बोला, 'दोनों की बात में सार है। असल में समिति का ढंग ही कुढंगा है। ऐसे नहीं चल सकती। टूट जाए तो किसी का कुछ नहीं बिगड़ता।'

सनेही खिलखिला पड़ा।

'टहल भाई, एक पूँजीवाद पैसेवालों का है, दूसरा राजनीतिवालों का। कोई उसे केंद्रित करना चाहता है, कोई संगठन और तोड़-फोड़ के द्वारा इसे,' सनेही ने कहा।

बनमाली तिलमिला गया। जनक हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, 'समितियाँ टूटने के लिए नहीं बनी हैं। डॉक्टर साहब और मास्टर साहब बेलौस हैं। इनकी राय पर छोड़ दो। वे जो कुछ निर्णय करेंगे, सबके लिए लाभदायक होगा।'

बनमाली ने आतंक जमाने की कोशिश की, 'तुम अभी बच्चे हो, किसी भी समिति के मेंबर नहीं। बोलने का हक नहीं है, बैठ जाओ।'

जनक की भौंह तन गई, परंतु सनेही और टहल के संकेत पाकर बैठ गया।

उसकी बात का कुछ प्रभाव पड़े बिना न रहा।

सनेही ने कहा, 'परिश्रम और उसके फल को आपस में जोड़नेवाली कोई कड़ी तो होनी चाहिए।'

बटोले ने अपना अनुभव सुनाया, 'हमने तो अपनी निजी और समिति में लगाई खेती में भी बटियारे कर लिए हैं, कोई झगड़ा नहीं रहा।'

सनेही और टहल जानते थे कि भविष्य के लिए इस प्रणाली में भी सहकारिता के लिए संकट है—

निजी खेती की नई जड़ें निकलेंगी—परंतु एक विचार में संतोष था—जो लोग साथ हैं वे तो साथ रहेंगे ही, जो खिलाफ हैं वे मँडराते भले ही रहें, गरजें-बरसेंगे तो नहीं। सनेही ने समझौते का मार्ग पकड़ा—

'भूमिवाले मेंबर अपनी भूमि का लगान सरकारी दर पर ले लें; हर एक की भूमि की कीमत कूत ली जावे और उस कीमत को समिति के हिस्सों में फैलाकर उतने हिस्सों पर मुनाफा बाँट दिया जाए। मजदूर मेंबरों को हिस्सों पर मुनाफा मिलेगा और भूमिधरों को भी।'

छदामी बोला, 'मजदूरों के हिस्से हैं ही कितने?'

बनमाली ने रोड़ा अटकाया, 'मैं भी यही कहनेवाला था। भूमिधरों को रकबों के हिसाब से मुनाफा दिया जाना चाहिए और मजदूरों को उनके हिस्सों पर; ऊपर से बोनस।'

मजदूर मेंबरों ने सोचा, सनेही की बात में सार है, बनमाली अपने स्वार्थ की कह रहा है। उन्होंने सनेही के सुझाव का समर्थन किया।

बटोले बोला, 'चकबंदी हो जाने के बाद हम अपने सब निजी खेत समिति में डाल देंगे। दो-दो जगह ध्यान बाँटना व्यर्थ है।'

'शाबाश!' टहल उमंग में चिल्लाया, 'अभी क्यों नहीं लगा देते? चकबंदी तो होवेगी ही।'

बटोले राजी हो गया। टहल उससे लिपट गया।

'मैं समिति से इस्तीफा दे दूँगा,' बनमाली ने अनिश्चय के स्वर में कहा।

सनेही ने मिठास के साथ वर्जित किया, 'अभी नहीं। कार्यवाही पूरी होने के बाद कहिएगा।'

'समितियाँ टूटेंगी नहीं,' जनक ने चुटकी ली।

सनेही ने झंझट बढ़ने नहीं दिया–

'भाइयो, मैं बहुत घमंडी हो गया था। टहल भाई और जनक से मैंने बहुत सीखा है–'

'अरे! अरे!! आप यह क्या कहते हैं!!!' टहल ने तो कहा ही, और भी कई कंठों से निकला।

सनेही कहता गया, 'समिति में एक बिना लिखा-पढ़ा नियम होना चाहिए कि यदि कोई गलती करे तो उसे मानं ले और कह डाले। अपनी ही छानबीन करते रहना अपने को बढ़ाने का बड़ा अच्छा नुस्खा है।'

एक मजदूर बोला, 'हम तो समिति को नहीं छोड़ेंगे, चाहे कोई कुछ कहे।'

सनेही ने कहा, 'क्यों छोड़ो? समिति की निजी भूमि ही इतनी हो गई है कि सबकी गुजर हो सकती है। और फिर भरकों के पुर जाने से नए-नए खेत बनते चले जावेंगे। खजूर के पेड़ों से गुड़, महुआ इत्यादि से फल-फूल भी जल्दी मिल सकेगा। शहद की मक्खियाँ पालेंगे, जिनसे घर बैठे शहद मिलेगा। जब शहतूत के पेड़ लग जावेंगे तब रेशम पैदा करने का भी काम चल पड़ेगा–'

बनमाली ने आवाज कसी, 'कल्पना का स्वर्ग है।'

'कल्पना का नहीं, यथार्थ का स्वर्ग है।' सनेही ने उत्तर दिया।

'आप तो आगे की कार्यवाही चलाएँ। ये तो कहते ही रहेंगे,' बटोले बोला।

बनमाली ने देखा कि उसकी पराजय होनेवाली है।

सनेही ने कहा, 'हर एक मेंबर के लिए जरूरी होगा कि किसी-न-किसी दस्तकारी का काम सीखे। फजूलखर्ची बंद करनी होगी। आपस में कोई भी लेन-देन नहीं कर सकेगा।'

बटोले को खटका, परंतु किसी ने उजर नहीं की। बात मान ली गई।

सनेही ने प्रस्ताव किया, 'लिखने-पढ़ने और निगरानी का काम करनेवाले मेंबरों को साधारण मजूरी का दुगुना दिया जावे, मजूरी के घंटे उनसे आधे।'

टहल ने विनय के साथ विरोध किया, 'ज्यादा है, दादा।'

सनेही मुसकराया, 'भारत से बाहर के कुछ देशों में तो तिगुना तक दिया जाता है।'

बनमाली बोल उठा, 'कम है।'

अंत में सनेही की बात मान ली गई।

उसने अपने लिए कहा, 'परंतु मैं उतना नहीं लूँगा, जो दर स्वीकृत की गई है उसकी आधी लूँगा। जितने घंटे काम करना चाहिए उतने से कम काम किया तो उसी हिसाब से मजूरी भी कम। और, यह नियम सबके लिए लागू होगा।'

जनक ने बनमाली से पूछा, 'आपने क्या निश्चय किया—समिति में रहेंगे या इस्तीफा देंगे?'

'फिर बोला!' बनमाली ने डाँटा।

'बात तो जनक ने ठीक कही,' बटोले ने कहा।

'नहीं दूँगा इस्तीफा, बस? यही चाहते हैं न सब लोग?' बनमाली ने सोचा कि सहकारी में अभी तो लाभ है। कोई चाहते हों या न चाहते हों, उस समय बनमाली नहीं चाहता था कि छोड़ूँ।

लोगों ने मुश्किल से हँसी रोकी।

'अब एक बात और रह गई है,' सनेही ने कहा, 'खाद के ढेर अलग-अलग न लगाकर गाँव के बाहर एक बड़े गड्ढे में रखते जाना चाहिए। किसका कितना खाद-कूड़ा गड्ढे में पड़ा, इसका हिसाब मंत्री रखेंगे। उसी हिसाब पर जितना दाम तय हो, खादवालों को चुका दिया जाया करेगा।'

'जो अपनी अलग खेती करते हैं वे क्या करेंगे?' छदामी ने पूछा।

'वे अपना अलग रखें। गाँव में रखने से बीमारी फैलेगी, बाहर कहीं जगह ढूँढ़ लें, नहीं तो पंचायत में मुकद्दमा भुगतें।' बटोले ने उत्तर दिया।

बहुमत से यह बात भी मान ली गई। फिर पदाधिकारियों का चुनाव हुआ। पदाधिकारी वे ही रहे जो पहले थे। देशराज और बनमाली के लिए सनेही ने अनुरोध किया था जो स्वीकृत तो हो गया, परंतु कुछ अरुचि के साथ। बैठक समाप्त हो गई। □

सनेही और टहल को एकांत का अवसर मिला।

'दादा, आप आज बहुत सँभाल ले गए। कुछ लोग सहकारी खेती को चौपट करने की ठानकर आए थे, जैसे बनमाली।'

'मेरे भीतर एक विश्वास काम कर रहा है कि अध्यात्मवाद और भौतिकवाद को जोड़नेवाली एक मजबूत कड़ी सहकारिता ही है। यथार्थ के सिंहासन पर आदर्श की मूर्ति का स्थापन। परंतु टहल, मुझ अकेले का विश्वास कर ही क्या सकता है यदि तुम्हारा बल मुझे प्राप्त न हो?'

'दादा, ऐसी बात न कहो, मेरी आँखें तो अब खुल रही हैं।'

'तो घर चलो। खाने को अच्छा मिल गया तो और भी खुल जाएँगी।'

'भाभी न देंगी तो उससे लड़ पड़ूँगा।'

'तुम्हें तो लड़ने के लिए कुछ चाहिए, फिर वह कहीं भी मिले,' सनेही ने कहा और हँस पड़ा।

: ६१ :

नाहरगढ़ के संगीत-समारोह का अंतिम दिन आ गया। छः दिन बड़ी धूमधाम रही। सभी ने अपनी-अपनी कला की पराकाष्ठा का प्रदर्शन किया। बाहर से अनेक श्रेणियों के दर्शक आए थे। उस दिन तो भीड़ बहुत बढ़ गई थी।

कलाकारों की सराहना के साथ बाघराज की वाह-वाह भी बहुत हो रही थी। जगनू ने मन में कहा, 'इस रँगीली फिल्मी पल्टन की कवायद-परेड खूब रही!'

'राजा गए तो इनके साथ कला भी बिदा ले जाएगी।' कई साँस भर-भर के कह रहे थे।

थोड़े-से ऐसे थे जो बेबूझ पहेली-सी कह रहे थे, 'राजाओं की बंदगी छोड़कर कला अब जनता से हाथ मिलाने आ रही है।'

अंजना ने अंतिम प्रदर्शन के लिए एक कठोर परीक्षा रखी। उसने कार्यक्रम में रखा कि एक सीमित समय के भीतर गायिकाएँ आठ राग-रागिनियों की रागमाला गाएँ और नर्तकियाँ आठ प्रकार के नृत्यों को एक क्रम में गूँथकर नाचें।

जिन्होंने यह कर दिखाया, उनको अलग पारितोषिक दिए जाने की घोषणा की गई। अंत में अंजना के हाथों बीस हजार रुपए के पुरस्कार वितरित किए गए।

दूसरे दिन भीड़ छँट गई। कलाकारों को विश्राम के लिए रोक लिया गया। तय हुआ कि दिन में आराम कर लेने के बाद रात में कलाकार बाघराज की मोटर, ट्रक और एक कार से चले जावें और थोड़ी देर सुहाना में देशराज के घर ठहरते हुए दूसरे दिन की गाड़ी से अपने-अपने घर।

सूर्यास्त के उपरांत बाघराज ने देशराज को पच्चीस हजार रुपए के नोट सँभलवा दिए।

'उन दो पेटियों के माल का दाम चुक गया और आगे का काम चलाने के लिए कुछ पेशगी आपके पास पहुँच गई।' बाघराज ने कहा।

देशराज ने जी भरकर धन्यवाद दिया और सुहाना जाने की तैयारी में लग गया।

'मैं जरा राजा साहब के पास हो आऊँ; कुछ और हो सके तो झपट लाऊँ। पिछला नुकसान पूरा करने के लिए और भी तो चाहिए। आखिर दो पेटियों का माल तो उन्हीं की गलती से खोया।' कहकर अंजना हँसती हुई चली गई।

बाघराज से बिदा लेने के लिए कलावंतियाँ कमरे में थीं। अंजना ने द्वार पर आते ही झिझक व्यक्त की। बाघराज ने उसे सम्मान के साथ भीतर बुला लिया और उन सबको

बिदा दे दी। रात हो गई थी। कमरे में हंडे का प्रकाश कर दिया गया था। वे दोनों अकेले रह गए।

बाघराज ने अंजना के चेहरे पर इतनी मृदुल मुसकान और मदीली चितवन पहले कभी नहीं देखी थी।

अंजना ने जरा-से काँपते कोमल स्वर में कहा, 'मेरा मन नहीं चाहता कि चली जाऊँ। यहाँ आते ही स्वस्थ हो गई। लगता है जैसे कभी बीमार थी ही नहीं। बहुत समय बाद आ पाई। देखूँ कब लौट पाती हूँ।'

'आपने कहा था कि सुहाना में चार-छः दिन ठहरकर लौट पड़ूँगी। चाहता तो मैं भी हूँ कि आप बनी रहें। शिकार खिलाऊँ, घुमाऊँ-फिराऊँ आपको।'

'क्या करूँ, बस नहीं चलता। वे चार-छः दिन सुहाना में कैसे कटेंगे, कह नहीं सकती।' अंजना ने आह छोड़ी और द्वार की तरफ ताका—कोई सुन तो नहीं रहा है, कोई आ तो नहीं रहा है। बाघराज की पीठ द्वार की ओर थी। अंजना के स्वर और भाव ने उसे हिला दिया। यह मुझसे प्रेम करने लगी है, नहीं तो इतना सकपकाती क्यों? उसी क्षण उसे कालीसिंह का वाक्य याद आया—बड़ी खतरनाक औरत है! उँह! कालीसिंह तो बिना सींग-पूँछ का जानवर है!! बाघराज ने अंजना की आँखों से आँखें मिलाईं। उनमें मदीलापन था या जल भर आया था? नीची पड़ गईं। क्या कोई अभिनय है? स्थिरता के साथ देखने का प्रयत्न किया। अंजना के होंठों पर एक सूक्ष्म स्पंदन था।

बाघराज ने अंजना की आँखों में और होंठों पर जो कुछ देखा, वह उसके शब्दों से कहीं ज्यादा था।

बाघराज के गले में कंप आया, 'अंजना देवी, मैं अपने मन की आपसे क्या कहूँ। आज न जाने क्या से क्या हो गया है।'

'महाराज! मेरे महाराज!!' अंजना के मुँह से निकला और वह उठकर दरवाजे तक गई। किसी को भी वहाँ न देखकर उसने पीछे से बाघराज के गले में हाथ डाल दिए। यह अभिनय नहीं है—मन में बिजली-सी कौंधी और बाघराज ने बैठे-बैठे ही अपने दोनों हाथ पीछे की तरफ बढ़ाकर उसे समेट लिया।

कुछ क्षण उपरांत अंजना ने कहा, 'आपने अपने जज साहब को, समारोह के जज को कुछ नहीं दिया! मैं और कुछ नहीं चाहती, केवल यहाँ स्थान चाहती हूँ,' और उसने बाघराज की छाती पर अपनी एक गदेली पसार दी।

'वह तो आपका हो ही गया है, और जो कुछ यहाँ है, उसे आप अपना समझिए।'

उसी समय देशराज कमरे के दरवाजे तक आया और छिपकर खड़ा हो गया। अंजना को आहट मिली और थोड़ी-सी परछाईं दिखाई पड़ी। अंजना हटने को हुई, परंतु बाघराज के हाथ ढीले नहीं पड़े। अंजना ने पीछे मुड़कर देखा। हटने की धीरे-धीरे,

परंतु दृढ़तापूर्वक कोशिश करती हुई अंजना कुछ ऊँचे स्वर में बोली, 'तो संगीत-समारोह के जज साहब को आपने जो कुछ देने का वचन दिया है, उसे भूल मत जाइएगा।' संयत करने पर भी गला अब भी थोड़ा-सा काँप रहा था।

बाघराज ने अपने हाथ खींच लिए। अंजना अलग हो गई।

बाघराज उल्लास में आ गया, 'कह तो दिया—'

देशराज ने दाँत पीसे और तुरंत चला गया।

'कोई आया था!' अंजना घबराकर बोली।

'देखूँ,' बाघराज भी भयभीत हो गया। उठकर बाहर ताका-झाँका, परंतु वहाँ किसी को न पाया।

'होगा, मुझे परवाह नहीं है,' अंजना ने दृढ़ता दिखाने का प्रयास किया, 'अब मैं चलूँ, कहीं कोई और न आ जाए। चार-छः दिन में तो लौट ही पड़ना है।' अंजना चलने को हुई।

'क्या बतलाऊँ; इतने दिन बाद आज हम दोनों एक-दूसरे के सामने खुले। खैर, चार-छः दिन की तो बात ही है। तब तक घड़ियाँ गिनूँगा। जब आप आवें, तब यहाँ का सब कुछ अपना समझें।'

फिर एक क्षण ठहरकर बोला, 'मैं देशराजजी से एकाध दिन रुक जाने के लिए कहूँ?'

'नहीं, अब जाने दीजिए।'

बाघराज ने कुछ व्यथित होकर बिदा किया।

अंजना जब देशराज के पास पहुँची, वह तैयार होकर बैठा सिगरिट पी रहा था।

'बड़ी देर लगा दी!' कुछ अनमने स्वर में देशराज ने कहा।

'तुम कहीं गए थे क्या?' अंजना ने प्रश्न किया और उसका उत्तर पाने की प्रतीक्षा न करके तुरंत बोली, 'नाटक रचते-रचते देर लग ही गई।'

'कैसा?'

'अजी कुछ विलक्षण-सा। बड़ा कंजूस है। पर मैंने पिघला लिया। एकाध दिन के लिए ठहर जाओ तो खासी अच्छी रकम लेकर चलें।'

देशराज के कलेजे में छुरी-सी छिद गई। 'एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। देखना है कि सुहाना में अन्न-वन्न का क्या हुआ। समिति की बैठक में क्या तय हुआ।'

उसकी अन्यमनस्कता और रुखाई से अंजना ने ताड़ लिया कि बहुत करके यही बाघराज के कमरे तक गया था।

हँसकर बोली, 'समय नहीं है, नहीं तो सुनाती कि मैंने बाघराज को किस अभिनय से सीधा किया। अब जो चाहो उससे कराना और लेना।'

देशराज ने रीती आँखों उसकी ओर देखा।

'घर चलकर ब्योरेवार सुनाऊँगी, हँस पड़ोगे।' अंजना ने उसके गले में हाथ डाल दिए। जैसे वहाँ हाथ रखे थी!

देशराज का मन कुछ स्थिर हुआ।

'जगनू को सामान उठाने के लिए बुलाया है। वह आता ही होगा।' उसने कहा।

'मैं सामान रखवा दूँगी, तब तक बाघराज से बिदा ले आओ।'

देशराज बिदा लेने चला गया।

: ६२ :

आगतों की भीड़ को बिदा करते समय बाघराज की अस्थिरता छलकी जा रही थी। किसी ने उसे व्याकुलता समझी, किसी ने वियोग का कष्ट। अंजना ने उसमें अपना प्रभाव देखा और वह किसी बड़े जुआरी की तरह भारी दाँव के जीत लेने की कतर-ब्योंत करने लगी। देशराज ने उसमें मूर्ख का अगौरव अवगत किया। बाघराज को हंडों की रोशनी लगी जैसे काँप रही हो और हंडे झूल रहे हों। मोटरों ने भर्र-भर्र की, अपने लैंप जगाए और चल दीं। बाघराज ने अपने खास ड्राइवर को तुरंत बुलाया।

'सुहाना जाने के लिए एक कच्ची रास्ता भी है न जो आठ मील जाकर पक्की सड़क में मिल गया है?'

'हाँ सरकार।'

'तुरंत कच्ची रास्ता से जाकर पक्की सड़क पर दो-तीन मील चलकर कालीसिंह को मेरा संदेशा दो कि अंजना देवी को न छुए, उन पर छाया भी न पड़ने पावे। आगेवाली मोटर में गई हैं।'

'पर सरकार, कच्ची रास्ता तो बहुत ऊँची-नीची है, खाई जैसी लीकोंवाली।'

'तो पक्की सड़क से ही जाओ, उन मोटरों से आगे निकलकर मेरी बात का भुगतान करो।'

'और अगर मोटरें भी तेजी के साथ जाती हुईं तो सरकार–'

'अबे गधे, जाता है या नहीं यहाँ से? कच्ची रास्ता से निकल जा। मैं शिकार के लिए कच्ची से कई बार गया हूँ।'

'सरकार, ट्रक की ऊँचाई कच्ची को भुगत लेती है, पर यह खासगत मोटर तो नीची है।'

'कमबख्त जा यहाँ से! कर जल्दी जो मैंने कहा है!'

ड्राइवर चला गया। उस दिनवाली बात का स्मरण हो आया जब वह दीवार से चिपका हुआ कालीसिंह और बाघराज की बातचीत सुन रहा था; तो यह थी वह खुसुर-फुसुर जो मेरे कान में नहीं पड़ पाई थी! उस शैतान औरत ने महाराज पर उल्लू की

लकड़ी फेरी और मुझे गालियाँ दिलवाईं! खैर, मैं तो नमक की पालूँगा ही।

झल्लाहट में ड्राइवर ने गाड़ीखाने से मोटर निकाली और तेजी के साथ चल दिया। उसे अपने आगे सड़क की मोड़ों पर मोटरों के लैंपों की झाईं पड़ जाती थी। अभी निकालता हूँ इनसे आगे अपनी गाड़ी। उसने गति और भी बढ़ाई। यकायक चक्के से आवाज निकली—फस्स! फु-ऊ-ऊ!! गति धीमी पड़ गई और गाड़ी ऐंड़ी-बेंड़ी चलने लगी। ड्राइवर ने साध लिया, नहीं तो सड़क किनारे के एक पेड़ से टकरा जाती। रोककर देखा तो एक पहिया बिलकुल बैठ गया था; उसमें बैल के नाल का टूटा टुकड़ा धँस गया था। ड्राइवर उस चक्के को निकालकर दूसरा चढ़ाने की धुन में लग गया। वे मोटरें तेजी के साथ बढ़ती चली जा रही थीं। सबसे आगे देशराज की थी।

बारहवें मील पर पहुँचकर उन मोटरों को यकायक रुक जाना पड़ा। सड़क पर बड़े-बड़े पत्थर रखे हुए थे। मोटरें कतराकर भी नहीं निकल सकती थीं।

जैसे ही मोटरें रुकीं, सड़क किनारे के निकटवर्ती पेड़ों की आड़ से मोटर के लैंपों पर पत्थर बरस पड़े। लैंप टूट गए। रोशनी गुल, पीछे की मोटर ट्रक की केवल एक बत्ती जगमगा रही थी। धाँय! बंदूक की आवाज के साथ कानी मोटर ट्रक अंधी हो गई। पेड़ों की आड़ से डाकुओं ने निकलकर मोटर-यात्रियों की तूप-ताप शुरू कर दी। सबसे पहले आक्रमण देशराज की मोटर पर हुआ। देशराज ने उतरकर लिपट-झिपट की, परंतु लातों-घूँसों और डंडों की मार से गिर गया। अंजना की थराई-बिनती व्यर्थ हुई, अन्य कलावंतियों की भी। जिन्होंने जरा-सा भी प्रतिकार किया, वे पिट गईं। देशराज के पच्चीस हजार रुपए, अंजना के गहने, कलावंतियों के पुरस्कारों के सारे रुपए और गाँठ के रुपए-पैसे तथा गहने भी लूट लिए गए। साज-सिंगार के कपड़ों के बक्स तक डाकू उठा ले गए। यह सब नरक-लीला पाव घंटे के भीतर ही घट गई।

आध घंटे बाद जब बाघराज का ड्राइवर मोटर लेकर आया तब उसने अपनी गाड़ी के तेज उजाले में बत्तियों के टूटे काँच, सड़क पर छोटे-बड़े पत्थर देखे। देशराज अपनी मोटर की बगल में सड़क पर बेहोश पड़ा हुआ था। उसके सिर से खून निकल रहा था, अंजना सिसक रही थी। अन्य स्त्रियों में कोई बिलख-बिलखकर रो रही थी, कोई अचेत पड़ी थी। उनके साजिंदे और मोटरों के ड्राइवर बिना पिटे-कुटे ही अधमरे से जान पड़ रहे थे।

बाघराज का यह ड्राइवर हक्का-बक्का-सा रह गया। पहली भावना जो उसके मन में उठी वह थी लौटकर भाग जाने और बाघराज को समाचार देने की। परंतु उसे अन्य ड्राइवरों, जगनू, साजिंदों और रोती-बिलखती स्त्रियों की करुण पुकारों को मानना पड़ा—खास तौर से अंजना की पुकारों को। देशराज को मोटर में रख लिया गया। जगनू मोटर चलाने के लिए जा बैठा। बत्तियाँ सब गाड़ियों की असमर्थ हो गई थीं। उजेला

केवल उस मोटर में था जो ड्राइवर नाहरगढ़ से अभी लाया था। सड़क के पत्थर हटा दिए गए। आगे-आगे बत्तियोंवाली मोटर और पीछे-पीछे वे अंधी मोटरें धीरे-धीरे सुहाना की ओर चलीं।

: ६३ :

रविवार का दिन था। सवेरे ही टहल सनेही के घर पहुँचा।

'दादा, स्कूल में लड़के बढ़ गए हैं। छोटी-छोटी दस्तकारियाँ सीखने की कक्षाएँ खोल दी हैं, कुछ नए कमरों के बनाने की जरूरत पड़ गई है। ईंट-पत्थर का प्रबंध कर लिया है। लकड़ी-खपड़ों का भी हो ही जाएगा। हम और हमारे विद्यार्थी कमरे बनाएँगे। आप आशीर्वाद देने चलिए।' टहल ने कहा।

'इनसे तो वाद-विवाद माँगा करो,' राजदुलारी हँसी।

'मेरे और टहल के बीच में अब शायद ही कोई मतभेद रहा हो। यदि कोई होगा भी तो तुम्हारी पकौड़ियाँ तो हैं मतभेद मिटाने के लिए।' सनेही ने कहा।

'अभी खिलाऊँ?' राजदुलारी ने पूछा।

'अभी नहीं भाभी, दोपहर को आकर पकौड़ियों के साथ कुछ और भी लूँगा। दादा उद्घाटन कर देंगे। नींव खुदाई का काम शुरू हो जाएगा, मैं लकड़ी की खोज में निकल जाऊँगा। फिर दोपहर तक आ जाऊँगा, तब तक दादा मरीजों से निबट लेंगे।' टहल ने उत्तर दिया।

'लकड़ी मैं तुम्हें दिलवा दूँगा,' सनेही ने कहा, 'देशराज ने पारसाल जो लट्ठे कटवाए थे, उनके आँगन में पड़े हुए हैं। यदि कभी वहाँ रंग-मंच बना तो कुछ उसमें काम आ जाएँगे, बाकी स्कूल के कमरों के लिए।'

'रंगरेलियों के लिए निकल गया है उस चुड़ैल को लेकर। जो कभी नहीं सुधर सकता, उसे तुम समझते हो कि सुधार लोगे। उसका तो नाश अवश्यंभावी है। वह लकड़ी नहीं देगा। व्यर्थ ही हेटी कराओगे।' राजदुलारी बोली।

'अब मैं तुमसे विवाद करूँगा। जिमींदारी एक न सुधरने योग्य परंपरा थी, उसका उन्मूलन हो गया; परंतु व्यक्ति सुधरेंगे और बने रहेंगे।'

बाहर से किसी ने बुलाया।

'तो दादा पहले हमारा उद्घाटन,' कहता हुआ टहल उसके साथ बाहर आया। माल विभाग का वही निम्न-कर्मचारी खड़ा था। उसने नमस्ते की। सनेही ने शिष्टाचार के साथ भीतर बुला लिया। टहल को बैठना पड़ा।

कर्मचारी ने कहा, 'सूखी बैटरी का रेडियो सैट आपकी समिति को दिया गया है। आपके घर भेज दूँ डॉक्टर साहब?

'किसी के भी घर नहीं। स्कूल में लगा दिया जावेगा। ये बैठे हैं बाँगुर्दन समिति के मंत्री। इन्हीं के हवाले कर देना।'

'भेजा तो गया है सुहाना समिति के लिए।'

'कोई भेद नहीं, दोनों एक हैं। मेरी जिम्मेदारी पर लगा दीजिए। देशराज या कोई भी आक्षेप नहीं करेगा।'

'बनमाली साहब तो करेंगे।'

'भुगत लूँगा। आप चिंता न करें।'

'अच्छी बात है, शहद की मक्खियाँ पालने के लिए बक्स आए हैं। उन्हें कहाँ रखवा दूँ?'

'बनमाली रखेंगे एकाध?'

'इनकार कर दिया है। कहते थे, यह इल्लत नहीं पालता।'

'मैं रखवा दूँगा। नाम बतला दूँगा आपको। और कुछ?'

'आप शायद जल्दी में हैं?'

'जी हाँ।'

'तो भी थोड़ा-सा समय दीजिए। मुझसे पूछा गया है कि सुहाना और बाँगुर्दन में खजूर के कितने पेड़ हैं? पटवारी को मालूम नहीं। आपको सब पते हैं। मुझे गिनती की रिपोर्ट आज ही करनी है।'

'इतनी जल्दी!'

'यह सरकार ही ऐसी है। कभी नीम के पेड़ गिनवाती है, तो कभी खजूर के! किसी दिन करोंदी के काँटे गिनवाने का आदेश देगी!! हम लोग तो परेशान हैं। कोई भी काम नहीं कर पाते।'

'पटवारी को ले जाइए और गिन डालिए।'

'अंदाज से बतला दीजिए, वैसे तो पंद्रह दिन में गिनती न हो सकेगी।'

'हुकुम कब मिला था?'

'एक हुकुम है कि जिसकी बात करूँ?'

'मेरे तो अनुमान में तीन-साढ़े तीन हजार खजूर होंगे।'

'तो लिख दूँगा, तीन हजार पाँच सौ बयालीस हैं! हुकुम मिले पंद्रह-बीस रोज हो गए; लेकिन चकबंदी, गाँव-गाँव रेडियो सैटों का बाँटना, मधुमक्खियों के बक्स वगैरह-वगैरह के मारे हैरान रहा। अब एक प्रार्थना और, फिर बस : राघवन साहब आप दोनों सज्जनों की बहुत मानते हैं। मेरी तरक्की की बात उनके कानों में डाल दीजिएगा। मैं और कुछ नहीं चाहता आपसे।'

टहल झल्ला पड़ा, 'ये कहें या न कहें, मैं कह दूँगा कि आप सरीखे कर्मचारी सरकारी

योजनाओं में सुखों लगाया करते हैं!'

सामने से जगनू हाँफता हुआ दौड़ा आया।

'राजा साहब का सिर फट गया है! डाकुओं ने लूटा-मारा!!'

'क्या?' उन लोगों के मुँह से निकला।

जगनू ने संक्षेप में दुर्घटना का समाचार सुनाया।

'आओ टहल,' सनेही ने कहा और इलाज का सामान लेकर जगनू के साथ चला गया।

हवेली के आँगन में मोटरें खड़ी थीं। चौकी की पुलिस आ गई थी। और बाहर गाँव के लोगों की भीड़।

ड्राइवरों को हिदायत थी कि टस-से-मस न हों। उधर थाना और सदर सूचना भेज दी गई थी।

सनेही ने देशराज का उपचार किया और उन स्त्रियों का भी जिनमें से किसी का गला दबोचा गया था, किसी का हाथ मरोड़ा गया था, किसी का कुछ और किसी का कुछ। देशराज के एक बड़ी चोट सिर में तो थी ही, और भी बहुत-सी अंग-अंग पर थीं।

बाघराज की खासगती मोटर के ड्राइवर ने पुलिस से प्रार्थना की, 'दो गाड़ियाँ वे हैं और एक राजा देशराज की। उनसे मेहमान रेलवे स्टेशन तक पहुँच जाएँगे। मुझे नाहक रोक रखा है। महाराजा साहब नाहरगढ़ मेरे लिए परेशान होंगे।'

'क्यों?' पुलिस के चीफ ने पूछा।

'क्योंकि वहाँ कोई दूसरी अच्छी गाड़ी नहीं है, शायद कहीं जाना चाहें। इसके अलावा उन्हें इस डाके की कोई खबर नहीं।'

'तुम इन गाड़ियों के पीछे-पीछे आए ही क्यों? डाकुओं से जरूर तुम्हारा कोई वास्ता है।'

'मेरा!'

'जो कुछ भी हो। सदर से बड़े पुलिस अफसर और मैजिस्ट्रेट आ रहे हैं। उनके आने पर ही छुटकारा पा सकोगे। तब तक इधर-उधर मत हिलना।'

ड्राइवर सकपकाकर रह गया। सोच-विचार में डूबने-उतराने लगा। निकटवर्ती थाने का दरोगा कुछ सिपाहियों को लेकर आ गया और उसने ड्राइवर को हिरासत में ले लिया।

उपचार करते और देशराज को होश में लाते-लाते सनेही को तीन घंटे लग गए। टहल वहाँ से चला गया था।

होश आते ही देशराज के मुँह से निकला, 'बाघराज बेईमान।'

दरोगा ने सनेही से अनुरोध किया, 'इनका अंतिम बयान लिख लीजिए, कहीं मर

न जावें।'

अंजना रोने लगी।

'अंजना! अमरबेल—' कहकर देशराज फिर अचेत हो गया।

'अभी ठहरिए,' सनेही ने दरोगा से कहा, 'ये जिएँगे। बयान कराने की आतुरता मत कीजिए।'

थोड़ी देर पीछे सदर से मैजिस्ट्रेट और पुलिस के बड़े अफसर आ गए। मोटरों की फूटी बत्तियों की जाँच आते ही की गई। मैजिस्ट्रेट ने किलपती हुई स्त्रियों का बयान लिया और जगनू का भी। जगनू ने बताया कि बाघराज का खासगती ड्राइवर डाका पड़ने के थोड़ी ही देर बाद आ गया था। उस ड्राइवर का भी बयान लिया गया। उसने असली बात के छिपाने का थोड़ा-सा ही प्रयत्न कर पाया। फिर अपने आने के कारण की सारी कहानी कह दी। 'अब मारो चाहे पालो, मेरा कोई दोष नहीं।' उसने अंत में कहा। पुलिस अफसर ने फस्स हुए ट्यूब-टायर की जाँच की।

देशराज को पूरा चेत आ गया। उसको मालूम हो गया कि रुपए, गहने, कपड़े सब लूट लिए गए। ड्राइवर को पीछे-पीछे से भेजे जाने की बात भी उसे बताई गई। अंजना का वह अंतिम अभिनय, जो उसने पिछली रात बाघराज के साथ किया था, आँखों के सामने ऐसे आ खड़ा हुआ जैसे उसी क्षण हो रहा हो। पेटियाँ डकार गया! रुपए और गहने लुटवा लिए!! बिचारे मेहमानों को भी न छोड़ा!!! पिछली दो पेटियों को भी इसी ने खाया!!!!

मैजिस्ट्रेट ने देशराज का बयान लिया। उसने घटना का सविस्तार वर्णन, जब तक कि पिटकर अचेत नहीं हो गया था, किया। उसने यह भी कह डाला कि बाघराज के महल में अवैध अफीम की पेटियाँ रखी हुई हैं!

बयानों की समाप्ति पर मैजिस्ट्रेट ने सनेही से पूछा, 'इनके प्राण संकट में हों तो सदर अस्पताल में भिजवा दिया जाए?'

सनेही ने आश्वासन दिया, 'प्राण संकट में नहीं हैं। यहीं अच्छे हो जाएँगे।'

उन दो मोटरों के ड्राइवरों और कलाकारों को वहीं रोककर पुलिस और मैजिस्ट्रेट अपनी मोटरों में नाहरगढ़ चले गए। बाघराज की खासगती मोटर वहीं छोड़ दी गई, ड्राइवर को साथ ले गए। जगनू को भी साथ कर लिया।

सनेही देशराज को सांत्वना देकर सीधा स्कूल चला गया। टहल और लड़के तुरंत आ गए। नए कमरों के बनाने का उद्घाटन किया गया। विद्यार्थी और अन्य उपस्थित डाकेवाली घटना का वर्णन सुनना चाहते थे। सनेही ने कहा, 'वह पीछे, पहले कुछ और सुनो और गाँठ में बाँध लो।' उसने जो कुछ कहा, उसका सार यह था कि मन के भीतर छाई अमरबेल मुश्किल से मुरझाती है, अभय हो जाओ तो कोई बेल कुछ नहीं कर

सकती, अभय होने के लिए घृणा और ईर्ष्या का त्याग, लोभ में कमी, ईश्वर में विश्वास बहुत जरूरी है; हिम्मत के साथ कठिनाइयों का मुकाबला करना, उन पर खेल-कूद के जरिए हँसना और मंजिल की तरफ दृढ़ता के साथ बढ़े चले जाना ही जीवन है, और यह जीवन तभी सफल समझा जावे जब कदम बढ़ाने के लिए प्रेरणा त्याग और तपस्या से मिले; इसी क्रिया के द्वारा भीतरवाली अमरबेल मुरझा जाएगी।

किस-किसने उसकी बात को गाँठ में बाँधा, सनेही को मालूम नहीं हो सका; परंतु उसने देखा कि टहल ध्यानमग्न है और उसका ध्यान उस समय भी नहीं उचटा जब लोगों ने डाके की दुर्घटना का ब्योरा सुनने की माँग की। सनेही संक्षेप में सुनाकर कुछ मिनिट नींव खोदने में लग गया। फिर भोजन करने घर चला गया।

बड़ी आयु के विद्यार्थी नींव खोदने लगे और छोटी आयुवाले खुदी हुई मिट्टी तसलों में ढो-ढोकर एक तरफ रखने लगे। छोटे-छोटे सुंदर बालकों के गालों और बाँहों पर धूल पसीने में रमकर बैठने लगी। कौन कितना काम कर सकता है, इसकी उनमें होड़-सी लग गई। सभी चपलता के साथ काम कर रहे थे—और, बड़े बातूनी। बातों का साथ उनकी हँसी और मुसकानें दे रही थीं। टहल को लगा, भौतिकवाद और अध्यात्म का शायद यहाँ भी संयोग है। उसने विद्यार्थियों से कहा, 'तुम्हारे काम की खबर दूर-दूर फैल रही है। गरमी की छुट्टियों में बाहर से विद्यार्थी तुम्हारी सहायता के लिए आवेंगे।'

जनक बोला, 'वाह मास्टर साहब, हम अपना काम उन्हें नहीं छीनने देंगे!'

: ६४ :

उसी दिन के प्रातःकाल के पहले ही कालीसिंह और उसके गिरोहियों ने चोर खिड़की से प्रवेश किया। बाघराज जाग रहा था। रात वैसे ही बीती थी।

कालीसिंह ने हर्ष के साथ सूचना दी, 'काम बावन तोले पाव रत्ती बना! रुपए, गहने सब हाथ लग गए!! पता नहीं आगे की मोटर में कौन था, उस पर कसके मार पड़ी।'

'ऐं!' बाघराज थोड़ी देर अवाक् रहा।

कालीसिंह ने कहा, 'किसी ने पहचान नहीं पाया। मोटरों की बत्तियाँ पहले ही तोड़ डाली थीं। बत्तियों का थोड़ा-सा नुकसान हो गया सो कोई बात नहीं।'

'आगेवाली मोटर का कौन-सा यात्री पीटा गया?'

'मालूम नहीं। कोई पुरुष पिटा। बेहोश होकर गिर पड़ा था। कुछ साथी आगे थे, मैं बीच में था, उन्होंने उसे पहचान नहीं पाया।'

'उसमें देशराज था। शायद उसका ड्राइवर जगनुआ पिटा हो। सब रुपए हाथ लग गए?'

'सब। एक पैसा भी कम नहीं।'

'हमारी खास गाड़ी मिली थी जो मैंने उन लोगों के पीछे-पीछे दौड़वाई थी?'

'नहीं सरकार, हमें कोई गाड़ी नहीं मिली।'

'ड्राइवर के हाथ एक संदेशा भेजा था।'

'न कोई ड्राइवर मिला और न कोई संदेशा। हम तो काम पूरा करके सीधे जंगल पहाड़ों में जा पहुँचे और रात-भर चलते-जागते आ रहे हैं। क्या संदेशा भेजा था सरकार ने?'

'यह कि अंजना को न छुआ जावे।'

'तो उसके गहने उतारने के सिवाय और किसी ने कुछ नहीं किया। हम लोग स्त्रियों को न छूने की सौगंध खाए हुए हैं, सो सरकार को अच्छी तरह मालूम है।'

'खैर, सामान उस कोठे में रख दो और आराम कर लो। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में अब तक जागता रहा हूँ। मैं भी सोऊँगा।'

'जो हुकुम।' बताए हुए कोठे में लूटा हुआ सामान बंद करके रख लिया गया। वे सब थके-माँदे, अलसाए हुए थे।

सोने के लिए जाते समय कालीसिंह कह गया, 'अब हम सबके पास इतना पैसा हो गया है कि आगे से यह काम बंद कर देने की सोच रहा हूँ। केवल इस चोट का बदला चुकाना है, सो बैसाख-जेठ में देखूँगा।'

'हूँ।' करके बाघराज जा लेटा और सो गया। कालीसिंह और उसके साथी भी सो गए।

दोपहर तक वे सब सोते रहे। फिर नहाने-धोने के बाद भोजन किया और थकावट दूर करने के लिए लेट गए। दिन में वैसे भी बाहर निकलने में उस दिन खुटका था। तीसरे पहर मोटरों की आवाज सुनाई पड़ी जो महल के सामने आ खड़ी हुई थीं। उन्होंने समझा कि मिहमानों को रेलवे स्टेशन पहुँचाने के बाद गाड़ियाँ लौट आई हैं। परंतु जरा धकधक हुई—टूटी-फूटी बत्तियों और डाके के समाचार ने लोगों का कुतूहल उकसाया होगा। वे सब चुपचाप जहाँ के तहाँ पड़े रहे।

मोटरों में हथियारबंद पुलिस आई थी। महल का घेरा डाल लिया गया। बाघराज को तुरंत बुलाया गया। बाघराज फक् रह गया।

मैजिस्ट्रेट ने शिष्टता के साथ कहा, 'मेरा एक कष्टदायक कर्तव्य यहाँ पुलिस को ले आया है, राजा साहब।'

'अ···अ···अ यहाँ तो कोई नहीं साहब—' बाघराज की घिघ्घी बँध गई।

'सुहाना के बड़े आदमी देशराज ने बताया है कि आपके महल में गैरकानूनी अफीम की पेटियाँ रखी हैं,' मैजिस्ट्रेट ने आरंभ किया।

'वो···ओ···ओ झूठ कहता है। बदमाश है।' बाघराज जोर से बोला।

'उन्होंने अपना ड्राइवर जगनू हमारे साथ भेजा है। वह पता बतलाएगा। आपके ड्राइवर ने भी कुछ कहा है। पुलिस की हिरासत में बाहर खड़ा है।'

बाघराज बगलें झाँकने लगा।

मैजिस्ट्रेट कड़ा पड़ गया, 'देखिए राजा साहब, हमारे साथ बहुत काफी हथियारबंद पुलिस है। जरा-सी भी गड़बड़ की तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जावेंगे। अभी खैरियत है। अगर देशराज की बतलाई बात झूठ निकली तो आपका अफीम के मामलों में कुछ नहीं बिगड़ेगा। मैं खाना-तलाशी लूँगा।'

बाघराज विवश हो गया।

खाना-तलाशी की कार्यवाही आरंभ कर दी गई।

कालीसिंह को मालूम हो गया। उसने दाँत पीसकर दूसरी सौगंध खाई—टहल और देशराज के साथ बाँगुर्दन और सुहाना—दोनों गाँवों को राख कर दूँगा। वह अपने साथियों समेत चोर दरवाजे से निकल भागा। दोनों ओर से बंदूकें चलीं, परंतु कोई घायल नहीं हुआ। कालीसिंह गिरोह समेत निकलकर जंगल में विलीन हो गया।

'राजा साहब, ये लोग कौन थे?' मैजिस्ट्रेट कड़का। बाघराज कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे सका। खाना-तलाशी में अफीम की दो पेटियाँ मिलीं और एक कोठे में से रात की लूट का सारा माल।

बाघराज को गिरफ्तार करके पुलिस संध्या के पहले सुहाना आ गई। कलावंतियों ने अपने-अपने गहने और कपड़े पहचाने। अंजना ने अपने।

बाघराज फूट पड़ा, 'अफीम की पेटियाँ देशराज लाकर रख गया था मेरे फँसाने के लिए।'

'और इन बेचारियों के गहने-कपड़े कौन रख गया आपके महल में? ड्राइवर को किसने भेजा था कालीसिंह को संदेशा देने के लिए? देशराज के रुपए किसने लुटवाए? क्या संगीत-सम्मेलन इन्हीं सब बातों के लिए नहीं किया गया था?' प्रश्न पर प्रश्न किए गए।

'देशराज अपने साथ इतने रुपए नाहरगढ़ लाता ही क्यों?' बाघराज ने फटे हुए स्वर में कहा।

'रईस जो ठहरे! हो जाते फिदा किसी कलावंती अप्सरा पर तो बरसा देते। मन न भरा तो लौटा लाए,' पुलिस अफसर बोला, 'पर यह वे जानें।'

बाघराज और उसके खासगती ड्राइवर को पुलिस कैद कर ले गई। अंजना, जगनू और कलावंतियों को कानूनी कार्यवाही के लिए साथ ले लिया। बत्तियोंवाली मोटरें और बाघराज की वह मोटर भी यात्रा और उस कार्यवाही के लिए काम में लाई गईं।

सिर के घाव के सिवाय देशराज की अन्य चोटें दो-तीन दिन में अच्छी हो गईं। सनेही

ने बतलाया कि वह घाव भी अच्छा हो जाएगा, परंतु समय लेगा।

अंजना और जगनू बयान लिखवाकर सदर से लौट आए। बाघराज का ड्राइवर सरकारी गवाह हो गया। अदालत मुकद्दमे को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, परंतु देर करनी पड़ी।

देशराज ने अंजना से कहा, 'मैं अपना जीवन अब नए सिरे से आरंभ करूँगा। तुम भी कुछ विचार करो।'

'हाय, मैं कहीं की न रही!' अंजना रोने लगी।

यह भी क्या कोई अभिनय है? देशराज ने निर्भयता के साथ सोचा। बाघराज के साथ किया गया कांड फिर आँखों में घूम गया।

'तुम कुछ दिनों अपने घर लखनऊ जाकर रहो।'

'घर पर है ही क्या?'

'जितने रुपए चाहिए हों, ले जाओ। उस काम पर से चित्त बिलकुल हटा लेना। मैं तो खेती-बाड़ी से अपना निरवाह करूँगा। काफी है।'

थोड़ी-सी फुसफुसाहट के बाद अंजना ने रुपए ले लिए और यह कहकर चली गई कि मुकद्दमे की पेशी हो जाने पर सदर से सुहाना आऊँगी। जगनू उसे रेलवे स्टेशन पर पहुँचा आया।

: ६५ :

बाँगुर्दन और सुहाना के विद्यार्थियों ने गरमी की छुट्टी आते ही स्कूल के कमरे बनाने का काम तेज कर दिया। देशराज ने सबकी सब लकड़ी दे दी थी। खपड़ों का भी प्रबंध हो गया। दस-पाँच दिन में यह काम समाप्त कि फिर कोई दूसरा ले लेंगे।

एक दिन सवेरे घाटीवाली बगल में कुछ दबाए घर से निकली। मंटू छाया में अपने चबूतरे पर उदास बैठा था।

घाटीवाली रुक गई। बोली, 'कैसे बैठे हो भैया? हरको कहाँ गई?'

'जरा-सा बैठ जाओ माँजी तो कहूँ।'

'सनेहीलाल के घर जा रही थी; खड़े-खड़े ही सुने लेती हूँ।'

परंतु मंटू पीढ़ा ले आया। उसके आग्रह पर चबूतरे पर बैठ गई।

मंटू ने दूसरे सिरे से बात उठाई, 'नाहरगढ़ के राजा को गैर-कानूनी अफीम रखने के जुरम में लंबी सजा हो गई है और कालीसिंह डाकू के पकड़े जाने पर डाकों का भी मुकद्दमा चलेगा। फिर होगा डामर।'

'कल ही सुन लिया था, जब देशराज गवाही देकर सदर से लौटे। जो जैसा करता है, वैसा पाता है।'

'पर माताजी, सच्ची बात तो यह है कि अफीम देशराज ही रख आए थे। डाके भी इन्होंने ही डलवाए हैं। दुनिया-भर कह रही है। धरनीधर सेठ तो चौराहे पर खड़े होकर कह रहे हैं; पर कैसा अंधेर है कि बच गए।'

'तो क्या तुम इसी कारण उदास बैठे हो?'

'अरे नहीं माताजी! हमें क्या करना है। मैं दमरू की कह रहा हूँ। टहलबाबू और डॉक्टर साहब के जोर लगाने से वह बिरादरी में मिला लिए गए हैं, और मुझे भी उजर नहीं था, सो तो ठीक हुआ, पर आदमी का कतल करके इतना सस्ता छूटा! इसी का अचंभा है।'

घाटीवाली अकुला उठी–

'घाम हो रही है, मैं अब चलूँ।'

'तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ माँजी, आधी घड़ी और–'

'तो कहो न, क्या बात है?'

'हरको अब मेरे हाथ की नहीं रही। अभी-अभी रोकते-रोकते कहीं चली गई है। कहीं बिठलाने की बात करता हूँ तो बक उठती है। जान पड़ता है कि वह दमरू के घर बैठना चाहती है।'

'कैसे जाना?' घाटीवाली ने धक्का-सा खाकर पूछा।

'दमरू कहता था कि हमारा घर बसा दो तो मेरी लड़ाई हो पड़ी। जब हरको ने सुना तो वह भी मुझसे जूझने को हो गई। आप उसे समझा दो तो मेरी बात रह जाएगी।'

घाटीवाली उद्विग्न हो गई।

'क्या हरको दमरू के घर बैठना चाहती है? उसने कुछ कहा?'

'उसने तो कुछ नहीं कहा। पर दमरू ने क्यों कहा? कुछ बात तो होगी।'

घाटीवाली को चैन मिला।

'वह और कहीं बैठ जावे तो?'

'आपके पाँव पड़ूँ माँजी, ऐसा हो जाए तो मेरा भार हलका हो और बदनामी से बचूँ।'

'अच्छा, देखूँगी।' कहकर घाटीवाली चली गई।

मार्ग स्वच्छ, गंदे पानी को सोखने के लिए पानी सोखे गड्ढे, मोड़ों पर लैंप लगे खंबे, बच्चे नए जाँघिए और अद्धे कुर्ते पहने कहीं कबड्डी, कहीं गिल्ली-डंडा खेलते हुए, कहीं छोटे-छोटे पतले डंडों की बंदूकें बनाए कवायद-परेड की नकल करते मोदमग्न थे। जगह-जगह घरों पर शहद की मक्खियाँ गुन-गुन करती हुई इधर से उधर उड़कर ऊँचाई पर रखे मधुमक्खी बक्सों में लगे छत्तों में शहद भर रही थीं। किसी-किसी ने बिना एक मक्खी की भी जान लिए बक्स में से शहद निकाल ली थी और खरीदार को अच्छे भाव बेच रहा था। [illegible] पेड़ के नीचे गाय के बछड़े कूद-फाँद कर रहे थे। उनके

कंधे कनौटे इतने सुंदर कि घाटीवाली ने उन्हें चूम लेना चाहा। ये बछड़े सरकारी साँड़ के जाये थे जो पशुओं की नसल सुधारने के लिए दिया गया था। आगे चली तो बटोले का मकान मिला। उसकी घरवाली और वह कलवाले करघे से कपड़ा बुनने में लगे हुए थे। घाटीवाली को देखकर उन्होंने हाथ थाम लिए और उसे प्रणाम किया। घाटीवाली ने असीस दी—'खूब फूलो फलो बेटा।'

'माँजी, बिजली आ जावे तो आपके चरणों की कृपा से मिलवालों का मुकाबला कर डालें।'

घाटीवाली सुहाना की ओर बढ़ी। टहल का स्कूल मिला। बड़ी आयु के विद्यार्थी दो कारीगरों की सहायता से कमरे उठाने में लगे थे और कुछ खजूर का गुड़ बनाने पर जुटे थे। 'माताजी नमस्ते!' लड़के घाटीवाली को देखते ही चिल्ला पड़े। टहल वहाँ नहीं था।

'माताजी, हमारा बनाया थोड़ा-सा गुड़ ले जाइए।' स्कूल में लगा रेडियो बज रहा था। बच्चों की पुकार घाटीवाली को रेडियो-गायन की एक मनोहर तान-सी जान पड़ी। उसने बच्चों का बनाया थोड़ा-सा गुड़ ले लिया।

गाँव के बाहरी भाग में घाटीवाली को दिखाई पड़ा कि घरों के सामने बेड़ों में खाद-कूड़े के ढेर नहीं हैं—सब सार्वजनिक गड्ढे में पहुँच गए थे! और कुएँ पर अधिकांश स्त्रियाँ गाँव की ही बनी खादी के गहरे लाल रंग के रँगे कपड़े पहने चुहल करती हुई पानी भर रही हैं और उनके साथ बाल-बच्चे साफ-सुथरे कपड़े पहने हाल की बनी रोटी खाते हँस रहे हैं। घाटीवाली ने हुलसाकर सोचा, 'चिरजीवी रहें मेरे दोनों बेटे, जिनकी मिहनत का यह फल है।'

स्त्रियों ने टोका, 'कहाँ जा रही हो माँजी, सवेरे-सवेरे?'

'सनेहीलाल के घर।' घाटीवाली ने उत्तर दिया।

'डॉक्टरनी तो रात में पढ़ाती हैं, माँजी।'

'मैं पढ़ने नहीं जा रही हूँ, बहू,' हँसी और चल दी।

सुहाना में पहुँची तो पहले विक्रम का घर बेड़ा मिला। बेड़े में खाद का ढेर लगा हुआ था। दुर्गंध के मारे घाटीवाली ने आँचल से नाक दबा ली और वहाँ से जल्दी निकल गई। 'इसकी अकल नहीं कोई ठिकाने लगाता।' उसके मन में खीझ उठी।

सनेही का मुहल्ला शुरू होते ही फिर वैसी ही, बाँगुर्दन की जैसी स्वच्छता। सनेही के घर के ऊपर और आसपास के घरों पर शहद की मक्खियाँ मंद-मंद तानें-सी ले रही थीं। बैठक में सनेही और टहल बातें कर रहे थे। सनेही ने आदरपूर्वक नमस्ते की। घाटीवाली असीस देकर भीतर चली गई।

राजदुलारी साग-भाजी काट-कतर रही थी। उसने हाथ पोंछकर पैर छुए और आसन दिया। घाटीवाली ने आशीर्वाद बरसाए और राजदुलारी को खजूर का

गुड़ दिया।

'आज तो माँजी, सवेरे-सवेरे मुँह मीठा किया तो कोई बड़ा शुभ समाचार देने आई हो; और, इस पोटली में क्या लाई हो?'

घाटीवाली ने बटोले के हाथ की बुनी, बढ़िया सूत की, रंगीन साड़ी निकाली और हँसकर कहा, 'लो बेटी।'

'मैं तो ऐसी रंगीन साड़ी पहनती नहीं,' राजदुलारी के होंठों तक आया।

'टहल भैया के ब्याह पर पहनूँगी या दुलहिन को पहनाऊँगी।' उसने कहा।

बैठक से टहल का स्वर सुनाई पड़ा 'हम लोग जिस ढंग से समाज का निर्माण करना चाहते हैं उसकी कोई सही तसवीर सामने नहीं है। हमारे लिए लोकतंत्र का मतलब है—योजनाविहीन अकर्मण्यता। तसवीर की अस्पष्ट रेखाएँ मात्र हैं, न उसमें ब्यौरा है और न रंग हैं।'

फिर सनेही का—'नक्शों के अनुसार मकान बनाए जा सकते हैं, मशीनें तैयार की जा सकती हैं, परंतु मानव के काम-काज समय-समय पर सहसा आ खड़ी होनेवाली समस्याओं के अनुकूल होकर ही चलते हैं। कोरे नक्शों में बढ़ाई हुई और बढ़ती हुई उलझनों और पेचीदगियों के मारे सभ्यताएँ इसलिए गिर जाती हैं कि उन नक्शों को सार रूप में बदलने और सुधारनेवाले ऐसे नर-नारी काफी संख्या में उत्पन्न नहीं होते जिनके दिल और दिमाग ऊँचे दरजे के हों। कामचलाऊ प्रवृत्ति यदि अधिकांश नर-नारियों का निरंतर स्वभाव बन जावे तो योजनाओं की तसवीर की अरूपता और अस्पष्टता कोई बड़ी बाधा नहीं डाल सकती।'

फिर कुछ नहीं सुनाई पड़ा।

'ये दोनों फिर लड़ गए।' घाटीवाली ने कहा।

'अभी लड़ तो नहीं रहे हैं; आगे जो कुछ हो।' राजदुलारी हँसी।

'टहल के न पैर में बेड़ी है और न जबान पर कड़ी। मैं तो हैरान हूँ, बहूजी।'

'तो डाल दीजिए न पैरों में बेड़ी; जबान पर कड़ी अपने आप पड़ जाएगी,' और उसे कुछ आभास हुआ।

'व्यक्ति और समाज में कौन बड़ा?' टहल का प्रश्न सुनाई पड़ा।

सनेही का उत्तर, 'व्यक्तियों, खासतौर से बड़े व्यक्तियों का ही समूह तो समाज को बनाता है। वे समाज के पराग हैं।'

'वाह दादा! यह तो गड़बड़ की बात रही।'

'... मैं यह कहता हूँ कि व्यक्ति और समाज एक-दूसरे की अमरबेल न बन पावें।'

फिर आवाज धीमी पड़ गई।

राजदुलारी ने मुसकराकर कहा, 'अब यह कौन लड़ रहा है, माँजी?'

घाटीवाली हँसकर बोली, 'जिसके पैरों में सोने की बेड़ी पड़ी है और जिसकी जीभ से मोती झरते रहते हैं। पर इस टहल को क्या कहूँ?'

'स्वतंत्रता और समानता का समन्वय सहकारी सिद्धांत कर सकता है,' फिर सनेही का स्वर।

'यह तो मैं मानने लगा हूँ दादा सोलह आने, और जो कुछ आपने कहा उसे भी मान गया। अब एक आप मेरी मान लीजिए। यह कि सहकारी समिति से बनमाली और विक्रम को निकाल दीजिए। बनमाली काम नहीं करता, मुफ्त के पैसे खा रहा है; विक्रम के ऐब किसी से छिपे नहीं हैं। सहकारी समिति के फैसलों को ये कोई नहीं मानते। दोनों खाद के ढेर अपने-अपने बेड़ों में रखे हुए हैं।'

'एक बात टहल ने अकल की कही,' घाटीवाली बोली। यह न सुनाई पड़ सका कि सनेही ने क्या कहा। फिर टहल और सनेही धीमे स्वर में बात करने लगे।

घाटीवाली ने एक क्षण ठहरकर कहा, 'टहल पहले से बदल तो बहुत गया है। अकेले में बैठकर कुछ ध्यान भी करने लगा है।'

'रात में पढ़ाते भी हैं। हरको पढ़ने आती है या बंद कर दिया?' राजदुलारी ने आँख गड़ाकर पूछा।

घाटीवाली ने थोड़ा-सा सकुचकर उत्तर दिया, 'आती तो है। क्या कहूँ बहूजी। कुछ स्त्रियाँ ऐसी बातें कर उठी हैं कि कान नहीं दिया जाता। और वह विधवा है।'

'तो क्या हुआ माँजी? चलन चल गया है। जोड़ी अच्छी रहेगी। मुझे तो बड़ी खुशी होगी।'

'जैसी जानो। तुम सब जहाँ ले चलो, चलूँगी।'

'तब फिर यह साड़ी हरकुँवरि को और मेरी तरफ से कुछ ब्याज पर ब्याज।'

'वाह! यह तो मैं तुम्हारे लिए लाई थी।'

'सो माँजी, गुड़ से मेरा मुँह तो मीठा हो गया।'

राजदुलारी ने सोचा, घाटीवाली यही चर्चा करने आई है।

सनेही के पास कुछ मरीज आ गए। टहल भीतर चला गया।

'हो गई लड़ाई खतम?' राजदुलारी ने कहा।

'यह लीजिए! मैं क्या लड़ रहा था? भाभी को लड़ाई-लड़ाई ही दिखलाई पड़ती है।'

'मुझको कुछ और भी दिखलाई पड़ता है। लड़ो मत, हरको भजो, हरको!' राजदुलारी के स्वर में जो व्यंग्य था वह उसकी बात से भी बढ़कर था।

घाटीवाली ने पीठ फेर ली। टहल के चेहरे पर लाज का रंग दौड़ गया। उसने लाज को छिपाने के लिए चालाकी की, 'भजन-वजन पीछे, भाभी, कुछ खाने को पहले।' मुसकराया, पर मुसकान ने उसकी चालाकी को चुरा लिया।

साड़ी को हाथ में लेकर राजदुलारी ने घाटीवाली से पूछा, 'तो उस शुभ अवसर के लिए बक्स में बंद करके रख लूँ इसे?'

'मैं दादा से शिकायत करूँगा कि भाभी भूखे का पेट बातों से भरना चाहती हैं,' कहकर टहल चला गया।

'समझ गई माँजी? मुहूर्त शोधिए अब।'

'हरकुँअरि के भाई से तो पुछवा लो, बेटी। आदमी उलटा-पुलटा-सा है कुछ।'

'टहल भैया के दादा सीधा कर लेंगे।'

'हाँ, हो तो जाएगा।'

: ६६ :

गरमी बढ़ती गई। लू सपाटे भरती रही। पर लोगों को नहीं मालूम पड़ी। जेठ का महीना समाप्त हो गया। असाढ़ लग गया। धूल और बादलों की धुंध आकाश में छाने लगी। जानवरों को पानी पीने के लिए नहर में था। नई नसल के बछड़े-बछियाँ नहर के किनारों पर चलते-फिरते फूलों जैसे लग रहे थे। पुराने नसल के साँड़ और बछड़े खस्सी मशीन द्वारा खस्सी कर दिए गए थे। वे भी नहर के किनारे की घास चरके पुष्ट दिखाई पड़ते थे। नहर और नहर की नालियों के निकटवर्ती खेत जोत डाले गए और उनमें नहर का पानी देकर सूरत के कपास का बीज बो दिया गया। पहले ही बो दिया जाना चाहिए था, परंतु बनमाली के बहकाने के कारण देर लग गई—'यहाँ यह बीज नहीं पनप सकता। पीछे सिर पटक-पटककर रोओगे।' कुछ दिन बाद किसानों की समझ में आया कि फसल पर जब कपास आएगी तो एक एकड़ में पचास मन तक होगी! ऐसे उत्साह के सामने किसान के लिए कहाँ की गरमी और कहाँ की लू! पानी समय पर बरसे या न बरसे, अब तो—'सिचाई की खेती और बंदूक हथियार, इनसे हारा करतार! और, अगसर खेती अगसर मार, घाघ कहें ये कबहुँ न हार!!'

हम कठिनाइयों से लड़ जाएँगे। किसानों के भीतर का ओज जाग पड़ा। फिर भी उन्होंने घमंड को स्थान नहीं दिया। कहते थे, 'हम रामायण बाँचेंगे और सुनेंगे। राम को सुमिरेंगे और देवी की पूजा करेंगे, जिनकी कृपा से कठिनाइयों से लड़ने का साधन हाथ लगा।'

सहकारी कृषि समितियों पर भूमिहीन मजदूरों की श्रद्धा बढ़ गई। कुछ भूमिधर निकल भागे तो बहुत-से उनमें बने रहे। विक्रम को सुहाना समिति से निकाल दिया गया और कुछ दिन बाद बनमाली को भी, क्योंकि उसके बहकाने के कारण कपास का बीज कुछ विलंब से बोया जा सका था, और वह सहकारी कार्यों को सदा कोई-न-कोई अड़ंगा दिया करता था।

□

अन्य सहकारी खेतों में सार्वजनिक सहकारी गड्ढे से खाद डाला गया। दो ढोरों पीछे एक गाड़ी का कूता लगाया गया और उसी हिसाब से दाम चुका दिया गया।

नहर की जो नालियाँ कट-फट गई थीं या पुर गई थीं, उनकी मरम्मत कर ली गई। बहुत काम हुआ फिर भी बहुत-सा बाकी था; जैसे बचे हुए भरकों का पूरना, बाँगुर्दन और सुहाना के बीचवाले नाले पर आने-जाने के लिए पुलिया का बनाना, जो भरी बरसात में भी काम दे सके, शिक्षा और सफाई, मलेरिया, चेचक, मोतीझरा, कफज्वर इत्यादि का नियंत्रण, स्वरक्षा और मनोरंजन के साधनों का संचय, हरिजनों का उत्थान, आध्यात्मिक तत्त्वों का प्रसार, जीवन के ऊँचे स्तर का ग्रहण, जीवन-बीमा इत्यादि। जीवन का नया ओज हाथ में आ गया था, इसलिए कार्यकर्ताओं को ये सब संभव दिखाई पड़ने लगे थे।

□

आधा असाढ़ बीत गया, बादल मँडराते तो रहे पर बरसे नहीं। किसान का जी छोटा पड़ने लगा, परंतु वह घबराया नहीं।

उन्हीं दिनों गाँव पंचायत का चुनाव हुआ। बनमाली और धरनीधर हार गए। उन्हें एक नई उपाधि मिली—रँगे सियार हैं ये। छदामी और उसके सहवर्गियों ने वोट नहीं दिया।

छदामी ने बनमाली से कहा था, 'रुक्का लिखवा लिया था अब वोट लेने आ गए।'

'चोरी की बात कह दूँगा।'

'तो रुपया नहीं दूँगा, वोट तो किसी हालत में भी नहीं मिलने के।'

सनेही सरपंच चुना गया। टहल, मंटू, छदामी, बटोले और देशराज चुनाव में सफल हुए। देशराज को सनेही की सहायता मिली।

'युगों की प्राप्त पद-प्रतिष्ठा ने इन्हें जो संबल दिया है उसने भेद पैदा किए, और वे अभी बने हैं। मानसिक ऊँचाई और निचाई के अंतर तो सदा ही बने रहेंगे। देशराज में परिवर्तन भी बहुत आ गया है, उसे मिलाए रखने में समाज को लाभ है,'—सनेही ने बटोले, टहल, छदामी इत्यादि को समझा लिया था।

□

बनमाली ने अपने निकाले जाने पर ऊधम मचाया। कहीं शिकायती तार दिए, कहीं रजिस्ट्री चिट्ठियाँ—समिति की दशा बहुत खराब हो रही है! रुपए-पैसे पानी की तरह बहाए जा रहे हैं!! हिसाब का कुछ ठीक नहीं!!! मनमानी बरती जा रही है, इत्यादि!!!!

राघवन आया। हिसाब देखा-परखा गया। सब ठीक। समितियों की एक बैठक हुई।

राघवन ने कहा, 'बनमाली सरीखे लोगों का सहकारी समिति में न रखा जाना ही

अच्छा।' फिर उसने एक गाँव का नाम लिया जिसमें सहकारी समिति ही टूट गई थी। राघवन ने उसके टूट जाने का कारण बताया, 'सहकारी कृषि समिति को जो भूमि लगाई गई उसका अधिकांश पुराने जिमींदारों की परती थी। सड़ी बछिया बाम्हन को! परती को रियायती दर पर ट्रैक्टरों से तुड़वाना था, असल में इसलिए सहकारी समिति का ढोंग रचा गया था। दमड़ी की बुलबुल टका रँगाई! जैसे ही काम बना, समिति तुड़वा ली गई। अन्य मेंबर उन स्वार्थियों के दबाव और चकमों में थे, हमारी एक भी न चली। बड़ी बात है कि बनमाली सरीखे लोगों की लीला यहाँ न चल सकी।'

टहल बोला, 'राघवन साहब, हमारे दादा बहुत उदार हैं, इसलिए बनमाली और विक्रम को अभी तक निभाते आए।'

'सुधार की मशीन को सुथरी हालत में रखने के लिए जरूरी है कि उस पर जंग न चढ़ने पावे, नहीं तो वह बिगड़ जाएगी। समाज की इस मशीन के घिसे पुरजों को हटाकर नए लगाना अनिवार्य है। मुस्तैदी के साथ देखभाल करनी उतनी ही जरूरी—अपनी आलोचना उसका ओंघन और भीतर का संवेग उसका तेल है।'

टहल को सनेही की कही हुई बात का स्मरण हो आया।

मंत्री का चुनाव होना था। सनेही ने छदामी का नाम लिया। टहल उछल पड़ा। परंतु छदामी पढ़ा-लिखा न था। उसने इनकार कर दिया।

गद्गद स्वर में बोला, 'बनमाली ने दो पूले की चोरी लगाकर मुझसे रुक्का लिखवा लिया था। पढ़ा न लिखा, आपके किस काम का? हाँ, यदि आप सबकी आज्ञा हो तो मेरे बड़े लड़के सुन्नू को कर दो। वह मिडिल पास है।'

सनेही के प्रस्ताव पर सुन्नू को मंत्री बना लिया गया।

मंटू ने सोचा—यह रही बनमाली के गाल पर करारी चपत।

'व्यक्तिगत खेती से सहकारी कृषि समिति को हानि पहुँचने का डर लगा रहता है', प्रसंग पर बात उठी।

काँपते स्वर में देशराज ने कहा, 'छोटे-छोटे निजी खेतों से भले ही नुकसान होता हो, पर मेरा तो बड़ा फार्म है जिसमें मशीनों से काम लूँगा। फिर भी यदि सब भाइयों को अखरता हो तो अपने फार्म को सहकारी में लगाए देता हूँ।'

उसके स्वर-कंप में सनेही को किसी सच्चे कष्ट का आभास मिला। बोला, 'नहीं, आप अपना फार्म अलग रखिए। बड़े-बड़े निजी फार्मों की एक ही सार्थकता है। वह है उनको सुधरे हुए उन्नत रूप में निरंतर रखकर अधिकाधिक अन्न का उपजाना। छोटे और बिखरे हुए खेत अवश्य सहकारी में आ जाने चाहिए।'

सनेही की बात मान ली गई। देशराज ने अपने ऐसे खेत सहकारी समिति में सहर्ष लगा दिए। छदामी भी राजी हो गया। अब ऐसे बहुत थोड़े लोग बचे जिनके निजी

खेतीवाले छोटे-छोटे खेत थे। उनको नहीं छेड़ा गया।

'किसी दिन झख मारकर सहकारी में मिला देंगे,' मंटू ने बटोले के कान में कहा।

छोटे पैमाने पर चलनेवाले धंधे बढ़ाने और उनका संगठन संचालन सहकारी रूप में करने की चर्चा हुई, जिससे मजदूर कभी बेकार न रहने पावें।

'होना चाहिए। सहकारी धंधे और सहकारी कृषि की तो जोड़ी है। इसकी भी समिति बना डालेंगे। एक-एक मंजिल पूरी करते जावें। मुझे एक कविता याद आ गई—' और राघवन ने हिंदी-उर्दू की एक खिचड़ी सुनाई—

'हमारा यह जीवन निरंतर सफर है,
जो मंजिल पै पहुँचे तो मंजिल बढ़ा दी।'

राघवन की बात लोगों को बहुत पसंद आई। तालियाँ पीटने लगे। टहल बोला, 'आज एक बात तय हो जानी चाहिए: लोग समिति को छोड़ न सकें और कभी छोड़ें तो अपने खेत वापस न ले सकें।'

सनेही का और बहुतों का समर्थन मिला।

राघवन ने कहा, 'है तो अच्छा। कानून की कुछ बाधाएँ अवश्य हैं।'

सनेही ने टोका, 'आप ही ने एक दिन यह सुझाव दिया था।'

'मैं अब भी कहता हूँ,' राघवन उमंग में भर गया, 'विविध प्रकार की समितियाँ बननी चाहिए। आप लोग निश्चय कर लें तो कानून सीधा हो जाएगा। बाप-बेटे और भाई-भाई के हिस्सा बाँट होने के समय एक खास रकबे से कम का बँटवारा कानून स्वीकृत नहीं करता। उस रकबे को बेचकर कीमत बाँटी जा सकती है। विरासत और वसीयत का भी यही पहलू है। इसलिए क्यों न समिति में लगाए गए खेतों का मूल्य आँक लिया जाए और उस मूल्य के हिस्से बना लिए जावें? ये बाँटे या बेचे जा सकेंगे। जो लोग समिति को छोड़ देना चाहें, वे अपने हिस्सों का रुपया ले लें या हिस्सों को बेच दें, जिमीन समिति की ही बनी रहेगी।' एक क्षण सोचकर बोला, 'सरकारी फार्म से जुती-जुताई, सुधरी-सुधराई भूमि दोनों समितियों को मिलेगी। वह किसी की भी व्यक्तिगत न होगी। उस भूमि की पैदावार का मुनाफा तो अपने हिस्से की कीमत के अनुसार ही बँटेगा।

'इसके द्वारा क्रम-क्रम से तिनके का सही बाँट होने लगेगा और जिमीन को वापस न लेने की भी परंपरा बन जाएगी।'

टहल ने अनुरोध किया, 'तो उस परंपरा की बुनियाद आज ही क्यों न डाल दी जाए?'

'जरूर। बनमाली और विक्रम को जिमीन न लौटाई जावे।' बटोले ने जोर लगाया।

सनेही ने निषेध किया, 'यह नियम इतना कड़ा न बनाया जाए कि निकाले गए व्यक्ति पर दुहरी मार पड़े।'

टहल ने अनुमोदन किया। सनेही प्रसन्न हुआ। आगे के लिए नियम बना लिया गया, उसमें लचीलापन रखा गया।

टहल ने प्रस्ताव किया, 'कम-से-कम कुछ जानवर जरूर सहकारी कृषि समिति के होने चाहिए।'

बटोले ने तुरंत इनकार किया, 'मैं अपने बकरी-बकरे तो नहीं लगाऊँगा।'

'क्यों? क्या रखवाला खा जाएगा?' राघवन ने हँसकर प्रश्न किया।

'क्या ठीक। खाने-उड़ानेवालों की कमी नहीं है।' बटोले ने कहा। लोग हँस पड़े।

मंटू धीरे से बोला, 'विक्रम कर सकता है।' पर उसकी बात हँसी में समा गई।

जो जितने दे सके उतने समिति को सौंप दे; एक चरवाहा रखवाला नियुक्त किया जावे और इन ढोरों के लिए घर और छायावान बनाए जावें—यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

बटोले ने कहा, 'मैं अपने बैल नहीं दूँगा। हाँ, समिति किराया देकर काम में लाती रहे।'

'बैल रखो, गाएँ, भैंसें, बकरे, बकरी, यहाँ तक कि हाथी-ऊँट बाँधो, कोई नहीं रोकता। बाग-बगीचे लगाओ तो और भी अच्छा,' राघवन हँसा।

बटोले को स्मरण हो आया, बोला, 'मैंने तो अपनी सब जिमीन समिति को लगा दी।'

'बेड़ा तो होगा?' राघवन ने पूछा।

टहल ने सांत्वना दी, 'बाग-बगीचे के लिए जितनी भूमि चाहोगे, समिति लौटा देगी।'

बटोले को संतोष हो गया।

राघवन ने समिति के लिए बीज गोदाम, सुधारे हुए निरोग बीज, नए प्रकार के हल-बखर और फसलों के हेर-फेर की बात कही। 'फसलों का हेर-फेर कागजों में लिखी सलाह को न मानकर प्रकृति के इशारों पर चलता है, जिन्हें किसान का अनुभव और विवेक जानता है। बीज गोदाम के लिए अगले साल गुंजाइश कर लेंगे। समिति के भवन में अभी तो जगह है। सुधरे हुए बीज का हम सदा स्वागत करेंगे। नए हल-बखर, जिन्हें हमारे बैल सह सकें, जरूर भेजिए। फिर वे यहीं बनने लगेंगे। जब बड़े बैलों की नसल बन जाएगी तब बड़े हल-बखर काम में ले आवेंगे। नमूने सामने रहेंगे ही।' सनेही ने कहा।

कार्य की समाप्ति पर देशराज ने अनुरोध किया, 'अब रामायण का पाठ होना चाहिए।'

सबको अच्छा लगा। टहल ने सोचा—देशराज और रामायण पाठ! पर हाँ, आज रामायण पाठ का दिन भी तो है।

रामायण का पाठ गायन-वादन के साथ हुआ।

□

दूसरे दिन जब टहल और सनेही अकेले में मिले, टहल ने कहा, 'दादा, देशराज में क्या सचमुच परिवर्तन हो गया है?'

'स्वाभाविक है। मनुष्य को सत्ता भ्रष्ट कर देती है, अनियंत्रित सत्ता निस्सीम दर्जे की भ्रष्टता पर पहुँचा देती है। किसी ने ठीक ही कहा है। देशराज की सत्ता कम हो गई, उधर चोटें खाईं, इसलिए सुधार की ओर बढ़ रहा है।' सनेही ने उत्तर दिया।

फिर सनेही ने दूसरे विषय की बात छेड़ी, 'विवाह संबंध के लिए मैंने मंटू से बात की थी। मैंने साफ कह दिया कि यदि कुल के हठ और चक्कर में पड़े तो लड़की हाथ की नहीं रहेगी, न मालूम क्या कर डाले। वह मान गया है।'

टहल चुप रहा।

□

विद्यार्थियों की छुट्टियाँ समाप्त नहीं हुई थीं। बाहर से भी कुछ विद्यार्थियों का जत्था साइकलों पर आया। थोड़े से भरके पुरने को रह गए थे; उनकी पुराई में इन विद्यार्थियों ने सहयोग दिया। भोजन की व्यवस्था साथ कर लाए थे। चलने के समय मजूरी लेने के लिए उनसे कहा गया, क्योंकि सनेही और टहल भी मुफ्त सेवा में विश्वास नहीं करते थे।

विद्यार्थियों ने कहा, 'हम जो हर्ष और प्रेरणा यहाँ से लिए जा रहे हैं वही हमारी मजूरी है। हम लोग बारी-बारी से समय-समय पर, अनेक गाँवों में जाएँगे। वहाँ देखेंगे कि लोग इसी तरह सिर उठाकर चलने लगे हैं या नहीं, जैसा कि यहाँ की जनता को आपने समर्थ कर दिया है।'

: ६७ :

थोड़ा-सा पानी बरस गया था। उतने से ही मिट्टी में से गंधें-सुगंधें निकल पड़ीं। हल-बखर चल उठे।

चौथा पहर लग गया था। पूर्व-उत्तर के कोने पर धूमरे बादल छाए हुए थे। पश्चिम से सूर्य की किरणें बरसे हुए पानी से धरती को फुला रही थीं। पूर्व की ठंडी हवा के कारण किरणों की तेजी नहीं आँस रही थी।

दमरू बटोले के उस खेत में बखर चला रहा था जो जंगल के निकट था और जिसे बटोले ने अपने अन्य खेतों के साथ समिति में लगा दिया था। जंगल के एक कोने से आगे-आगे विक्रम के ढोर निकले और पीछे से वह। दोनों में रामराम हुई। विक्रम दमरू के पास आ गया। ढोर जंगल किनारे की हरियाली पर मुँह डालने लगे।

'बीड़ी पी लो दमरू। यह हत्यारा काम तो पीठ पर चढ़ा ही रहेगा।'

दमरू ने बखर खड़ा कर दिया। दोनों बीड़ी पीने लगे।

'बटोला ने तुम्हें तिहाई बटिया पर रखा है! मैंने जब सुना तो आग लग गई,' विक्रम ने कहा।

'थोड़ी-सी जिमीन से गुजर नहीं दिखलाई पड़ी तो करनी पड़ी। मुकद्दमे में इतना खर्च हो गया और उन दिनों में घर ऐसा उखड़ा कि जिसका ठिकाना नहीं। इसलिए मानना पड़ा। मंटू को अधबटिया पर रखा है! बहिन जो टहल के घर जा रही है!!'

'गगरी में अनाज गँवार का राज! सिर पर धरती उठा रखी है टहल और मंटुआ ने।'

'बेईमान हैं। मैंने कहा था मंटुआ से कि मेरे साथ कर दे हरकुरिया को तो मैं उसे ऐसे लगा जैसे करघई करोंदी का काँटा हूँ। मैं जानता कि कुछ अनहोनी सोच रखी है तो उस पर थूकता भी नहीं।'

'अरे भैया, सब एक से एक बढ़कर हैं। ये कापटी-सोसटी की नई बला ले आए हैं गाँव में! धरम-करम को डुबाने की ठान ली है इन्होंने!!'

'सो तो साफ ही दिखाई पड़ रहा है। तभी तो मैं उनकी किसी भी बैठक में नहीं बोला,' दमरू ने कहा।

'यह तो कुछ दिनों में टूट जाएगी। किसी के साथ कोई जबरदस्ती, किसी के साथ कोई। हमारी सोंझ में आ जाना, जब चाहो तब। मैं कापटी को पहले ही छोड़ चुका था। किसी बैठक में नहीं गया तो उन्होंने निकालने का स्वाँग कर डाला! भैया, अपना घूरा सोने की खान कहलाता है। इसे उन्हें नहीं दिया तो पाजीपन पर उतर आए। बिचारे बनमाली की कितनी बेइज्जती की—छदमियाँ के छोकरे को उनकी जगह मंत्री बना दिया! और उस देशराज को तो देखो! भारी बेईमान निकला!! मैंने कितनी निभाई, लेकिन कितना अधर्मी है!!! महाराज बाघराज को भी फँसा दिया!!!! क्या करना है, अपने काम से काम। जो जैसा करेगा सो पाएगा।'

'सो तो है ही।'

'असल में भैया, ये सब मेरे ढोरों पर जलते हैं। आगे जब नई नसल के पैदा होंगे, हजार-हजार पाँच-पाँच सौ में बेचूँगा एक-एक जोड़ी; तब तो भुनकर खाक ही हो जावेंगे। उनकी सोसटी में बना रहता तो कुछ-न-कुछ ढोर दे देने पड़ते। अच्छा हुआ किसी तरह पीछा तो छूटा। तुम भी कुछ ढोर रखो। अधिया-बटिया पर रखना चाहो तो थोड़े-से दे दूँगा।'

'देखूँगा। एक दिन करना ही पड़ेगा।'

'तो सोसटी को लात मार देना। बनमाली की हमारी तुम्हारी और थोड़े से अपने मनवाली जैसों की एक जमात बन जावे तो न कापटी कुछ कर सकेगी और न सोसटी।

मैं तुम्हारा घर बसाने की भी फिकर कर दूँगा।' विक्रम अपने ढोरों को लेकर चला गया।

दमरू ने फिर बखर नहीं चलाया। छाया में बैठकर संकल्प-विकल्प करता रहा। जब सूर्यास्त में थोड़ी देर रह गई, बैल-बखर लेकर बाँगुर्दन चला गया।

जब वह आया, गाँव में लटोरेसिंह गले में बिगुल डाले कवायद-परेड करा रहा था। सूर्यास्त होते ही उसने बंद करने की बिगुल बजाई। काम बंद हुआ। बंदूकें यथास्थान रख दी गईं। सनेही को बंदूक का लाइसेन्स मिल गया था। वह अपनी लेकर सुहाना चला गया। थोड़ी देर में रामायण का पाठ होना था।

आठ बजे रात के सब इकट्ठे हो गए। घंटे-डेढ़ घंटे में पाठ हो गया। उस रात सनेही और गानेवाले इस सोरठे पर बहुत रीझे—

मूक होइ बाचाल, पंगु चढइ गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।

□

रात दूसरे पहर में रम चुकी थी। ठंडी हवा के मंद झोंके पेड़ों को मानो गहरी नींद लेने के लिए सहला रहे थे। नहर का पानी कल-कल करके झींगुरों की चींचीं को ताल-सी दे रहा था। स्तब्धता का रंग गहरा होता जा रहा था।

जंगल की एक कोर में से पंद्रह-सोलह हथियारबंद व्यक्ति धीरे-धीरे निकले और सावधानी के साथ नहर के किनारे चलने लगे। उनके पैरों की आहट नहर की कल-कल को चुनौती देने लगी। थोड़ी दूर चलकर वे सुहाना-बाँगुर्दन की दिशा में मुड़ गए और एक जगह पहुँचकर कुछ खुसफुस करने लगे।

□

रामायण पाठ के उपरांत सनेही घर जा लेटा। सोचने लगा—समाज की आर्थिक प्रगति का शासन वैज्ञानिक योजनाएँ करें और दोनों को प्राणशक्ति अध्यात्म दे तो समाज का निरंतर कल्याण होता रहे। स्वतंत्रता और अनुशासन का साथ तभी बन सकता है। समाज में सुगंधि और दुर्गंधि के सभी तत्त्व मिश्रित होकर चलते रहते हैं। यदि सुगंधि प्रबलतर हो तो दुर्गंधि छिप जाती है। परंतु युगों से होता आ रहा है यही कि कभी वह बढ़ जाती है और कभी यह। तो सुगंधि कैसे अधिक मात्रा में सदा बनी रहे? यदि जाग्रत व्यक्ति में वह प्रार्थना बनी रहे—मन की खोई हुई शक्ति और शुचिता, उसकी तेजस्विता और प्रेरणा, हमारे पास फिर लौटें —आ न एतु मनः पुनः—तो वह सुगंधि सदा व्यक्ति और समाज में प्रबलता के साथ बसी रहेगी। उसके मुँह से वह मंत्र निकला—आ न एतु मनः पुनः—और उसे नींद आ गई। राजदुलारी ने नहीं सुना। वह पहले ही सो गई थी।

□

उन हथियारबंद व्यक्तियों में से चार ने पुलिस चौकी को घेर लिया, कुछ सुहाना में फैल गए और उतने ही बाँगुर्दन में। सुहाना के गिरोह में से दो देशराज की हवेली के दरवाजे पर जा छिपे। बाहर की साँकल चढ़ा दी। पुलिस चौकी के घेरनेवालों ने पहले धायँ-धायँ की। सिपाही जाग पड़े, हथियारों के लिए दौड़ पड़े। फिर घेरनेवालों ने दूसरी बाढ़ दागी। सिपाहियों ने किवाड़ बंद कर लिए, बाहर न निकल सके।

तुरंत ही बाँगुर्दन में बंदूकें चलीं। टहल और बटोले के मकान घेर लिए गए थे। बंदूकें वहीं चली थीं। टहल जाग पड़ा। वह खपरैल पर नहीं गया। पौर के दरवाजे की साँस से बंदूक चलाने लगा। समझ गया था कि घेरनेवाले कौन होंगे।

लटोरेसिंह ने एकत्र हो जाने के संकेत की अपने घर से बिगुल फूँकी। रक्षादल के लोग सचेत हो गए।

'धायँ!' टहल की बंदूक से गोली छूटकर एक घेरनेवाले पर पड़ी और वह चीखकर धराशायी हो गया। उसके साथी भागे। टहल ने किवाड़ खोलकर आड़ ली और फिर धाड़! यह गोली भी न चूकी। दूसरा चीखकर गिरा और कराहने लगा। बाकी गिरोह सुहाना की ओर भागा। रक्षादल के लोग इकट्ठे हो गए। टहल ने भागनेवाले आक्रमणकारियों की दिशा बताई। नियम-संयम और चतुरता के साथ लटोरेसिंह ने संचालन किया। धीरे से बोला—

'हम इन सब डाकुओं को मारेगा और पकड़ेगा। चलो।'

उन दोनों घायलों के हथियार और कारतूस अधिकार में कर लिए गए और रक्षकदलवालों को दे दिए गए। बाँगुर्दन की नाकेबंदी करके रक्षकदल का एक बड़ा अंग सुहाना की ओर चला, क्योंकि वहाँ से बंदूकों के चलने की आवाजें आ रही थीं। लटोरेसिंह ने मोरचे बाँध दिए।

□

बंदूकों की आवाज पर राजदुलारी और सनेही जाग पड़े। देशराज की हवेली और चौकी पर चलनेवाली धायँ-धायँ आक्रमणकारियों के निकट होने की बात बतला रही थी और बाँगुर्दन में चलनेवाली आक्रमणकारियों के वहाँ होने की। तो अब की बार दो-तीन पर लक्ष्य है: देशराज, टहल और बटोले; लूटमार और बदला लेने, दोनों की प्रेरणा है। उसने तुरंत कपड़े पहने और बंदूक ली और कारतूस कसे। बाँगुर्दन से बिगुल का निमंत्रण सुनाई पड़ा।

'अकेले कहाँ जाते हो?' राजदुलारी ने घबराकर कहा, 'मैं भी चलूँगी।'

सनेही बोला, 'अभी नहीं। जब सीख लो, तब। स्त्रियों को भी सिखलाया जाएगा।'

सनेही चला गया।

बाहर निकलकर वह तय नहीं कर पा रहा था कि कहाँ जाऊँ कि देशराज की हवेली

से आग लगने की लौ दिखाई पड़ी। वह उसी दिशा में बढ़ा। हूँ! देशराज को जलाना चाहते हैं!!

'धायँ,' उसके सिर पर से गोली सनसन्नाती निकल गई। वह तुरंत लेट गया। हवेली का फाटक थोड़ी दूर था। मार्ग में कोई मोड़ नहीं थी।

हवेली पर से चारों दिशाओं में गोली चलने लगी। ये गोलियाँ डाकुओं की हैं, क्योंकि देशराज के पास तो बंदूक है नहीं—सनेही सड़क के किनारे-किनारे लेटे-लेटे ही आगे बढ़ा। चार आक्रमणकारी सामने की दिशा से भागते हुए आए और हवेली के फाटक में घुसने को हुए। सनेही ने बंदूक चलाई। छर्रे का कारतूस था। दो गिर पड़े। दो पीछे लौट पड़ने को हुए थे कि सनेही ने फिर बंदूक चलाई। वे दोनों लड़खड़ाकर गिरे। सनेही आगे खिसका और फाटक की एक कोर पर पहुँच गया। हवेली के ऊपर से बंदूक चल रही थी और ज्वाला बराबर बढ़ रही थीं। सनेही धीरे-धीरे फाटक में से हवेली के आँगन में पेट के बल रेंगते-रेंगते पहुँचा। उसे घायल आक्रमणकारियों की चीत्कार तो नहीं सुनाई पड़ी, पर हवेली में से देशराज की आवाज पहचान में आ गई—'मुझे बचाओ! मुझे बचाओ!!' कुछ दूरी पर फिर बिगुल का शब्द हुआ और बंदूकों की बाढ़ दगी। सनेही को हवेली के एक सिरे पर आग के प्रकाश में कोई दिखाई पड़ा। उसने निशाना बाँधा था कि पीछे से पैरों की आहट मिली। बंदूक चलाई, पर हाथ हिल गया और निशाना चूक गया। पैरों की आहट लौट गई। 'धायँ'! हवेली के उस सिरे से हुआ और सनेही के मुँह से आह निकली। बंदूक हाथ से छूटकर गिर पड़ी। वह छटपटाने लगा।

हवेली के बाहर बंदूकों पर बंदूकें चलीं। गोलियाँ हवेली पर पड़ रही थीं जैसे हवेली की तरफ घेरा बढ़ता चला आ रहा हो। हवेली के उस सिरे से भी बाढ़ें दग रही थीं। थोड़ी देर बाद गाँव से बाहर बंदूकों के चलने का शब्द हुआ और क्षण-क्षण में दूर होता चला गया।

यकायक हवेली के सिरे से चलनेवाली बंदूक का चलना बंद हो गया और बंदूक आँगन में आ गिरी।

'वह मारा है!' मार्ग से कोई बोला।

फिर बंदूकों का चलना बंद हो गया। पुलिस के सिपाही बंदूकें ताने हुए हवेली के आँगन में आ गए। जो चार घायल फाटक के बाहर पड़े कराह रहे थे उनको कुछ सिपाही भीतर घसीट लाए। हथियार उनके पहले ही कब्जे में कर लिए गए थे।

सिपाहियों ने आग के उजाले में देखा कि सनेही का हाथ छाती पर है और खून की धार बह रही है। उसे उठाकर चबूतरे पर लिटा दिया और हवेली के दरवाजे की बाहरी साँकल खोल दी जो आक्रमणकारियों ने चढ़ा दी थी। उसी समय सनेही के घर की दिशा से टहल [illegible] साथी आ गए। सनेही की दशा देखकर वह चीखकर गिर

पड़ा–'दादा! दादा!!'

किवाड़ खोलकर देशराज निकल आया। उसकी बुरी हालत थी। लोग हवेली की आग को बुझाने पर जुट पड़े। बनमाली भी आ गया और आग बुझाने में लग गया। जो लोग हवेली के उस सिरे पर चढ़कर आग बुझा रहे थे, जहाँ से एक आक्रमणकारी कुछ समय पहले बंदूक दाग रहा था, वे यकायक चिल्लाए–'यह एक घायल जल रहा है!' उसे खींचकर निकाला गया और आँगन में लाया गया। उसके एक कंधे को फोड़कर गोली पार हो गई थी और टाँगें अधजली हो गई थीं, परंतु उसमें अभी दम बाकी थी। आग का नियंत्रण हो गया। बिलकुल नहीं बुझी थी, परंतु उजेला नहीं रहा था। लालटेनें आ गईं।

लटोरेसिंह और उसके कुछ संगियों के साथ राजदुलारी आ गई। सनेही के पैरों पर गिरकर रोने लगी। टहल को चेत आ गया। सिसककर बोला, 'भाभी माँ! मेरी माँ!!'

लटोरेसिंह ने कहा, 'पाँच को मार दिया पर बाकी साला निकल भागा।'

सनेही को ध्यान के साथ देखा गया।

टहल चिल्लाया, 'भाभी, दादा को बचाओ! रोओ मत। साँस ले रहे हैं। दवा का बंदोबस्त करो।' राजदुलारी जनक और कुछ बंदूकवालों के साथ घर चली गई और मरहम-पट्टी और दवाएँ लेकर आ गई। उसी ने उपचार किया।

□

प्रातःकाल के पहले ही हवेली के आँगन में बहुत से लोग आ गए। घाटीवाली और हरको राजदुलारी के पास पहुँच गईं और रो पड़ीं। सनेही की गदेली के पीछे गोली पड़कर पार हो गई थी। छाती पर और उसके अन्य अंगों पर जो रक्त फैला था वह गदेली का ही था। राजदुलारी आँखें मूँदे हुए, होंठों से कुछ बिरबिराती हुई चुप बैठी थी।

'ओं··· आ न ए तु म नः पुनः' सनेही के मुँह से धीरे-धीरे निकला। राजदुलारी ने ऊपर की ओर अपने हाथ बाँधकर आँखें खोलीं। आँसुओं की धार बह पड़ी। हरको और घाटीवाली का रोना बंद हो गया और वे भी हाथ जोड़कर किसी से कुछ प्रार्थना कर उठीं।

पुलिस के सिपाहियों की आँखों में आँसू आ गए। सनेही को होश आ रहा था।

'डॉक्टर साहब बच गया। भगवान् की मर्जी,' लटोरेसिंह ने कहा।

फिर और प्रकाश हुआ। वह अधजला घायल अंत के क्षणों में था। उसे कोई नहीं पहचान पा रहा था। देशराज हिम्मत करके पास गया।

'कालीसिंह है यह! कालीसिंह,' वह यकायक बोला और फिर सँभला, 'या शायद कोई और हो। पर इसके माथे से लेकर कान तक [illegible] जो चिह्न है उससे जान पड़ता है कि बाँगुर्दन में खपड़ों की चोट खाया वही होगा यह!'

लोगों ने उसकी असंगत बात पर ध्यान नहीं दिया। सबने विश्वास कर लिया कि कालीसिंह ही है, वही इतना भयंकर दुस्साहस कर सकता था।

'बाघराज का बदला चुकाने मेरे ऊपर कालीसिंह ही आ सकता था।' देशराज बोला।

'और मुझसे और बटोले से बदला लेने के लिए भी।' सनेही की ओर देखते हुए टहल ने कहा।

पुलिस ने तुरंत सदर के लिए रिपोर्ट भेजी।

'बाँगुर्दन से समाचार आया कि टहल के मकान के पास दो डाकू मरे पड़े हैं।'

'कुछ को हमारा ज्वानों ने मार बिछाया है, देखता है, वे कहाँ गए।' कहता हुआ लटोरेंसिंह चला गया।

चार घायल डाकू आँगन में सिसक रहे थे।

'इनको और खतम कर दें तो पूरे एक दर्जन डाकुओं के मार मिटाने का पुण्य मिल जाएगा।' जनक चिल्लाया।

सनेही को चेत आ गया था। कराहते हुए स्वर में बोला, 'घायलों को मत मारो। पानी··· पानी·· पानी।'

सनेही को पानी पिलाया गया।

पानी पीने पर उसके मुँह से निकला,–'घायलों की म···रह···म···'··· और वह फिर अचेत हो गया।

राजदुलारी ने फिर आँखें मूँदकर हाथ जोड़े।

पुलिस ने जनक और उसके मित्रों को, जो घायल डाकुओं को मार डालना चाहते थे, मना कर दिया, 'कानून के खिलाफ है।'

उस अधजले घायल का देहांत हो गया। हवेली की आग बुझा ली गई।

सनेही को फिर चेत आने लगा। उसे उठाकर हवेली के भीतर लिटा दिया गया।

सनेही ने मुरझाई हुई-सी राजदुलारी से कहा, 'घायलों की पट्टी,' और कराहा।

'करती हूँ,' कहकर राजदुलारी चली गई और बहुत शीघ्र लौट आई। उनकी मरहम-पट्टी करके सनेही के पास जा बैठी। घाटीवाली और हरको वहीं आ गईं। सनेही पूरे चेत में आ गया।

□

दस-ग्यारह बजे के लगभग सदर से सिविल सर्जन, पुलिस और मैजिस्ट्रेट आ गए।

सनेही कराह रहा था। सिविल सर्जन ने सुई द्वारा दवा दी और पट्टी बदलकर मरहम- पट्टी की। सनेही को नींद आने लगी।

सिविल सर्जन ने कहा, 'इनके लिए कोई खतरा नहीं, आप लोग जरा भी चिंता न

करें। थोड़ी देर में इन्हें सदर अस्पताल ले जाऊँगा।'

फिर बोला, 'डॉक्टर सनेहीलाल हमारे पेशे के गौरव और समाज के फूल हैं।'

पुलिस ने घटना-स्थल का निरीक्षण किया। देशराज ने पिछले वर्ष जो लकड़ी कटवाई थी, उसमें के दो-तीन शहतीर आँगन के एक कोने में पड़े रह गए थे। वे हवेली की दीवार से टिके पाए गए, जैसे नसेनी बनाई गई हो। इन्हीं की सहायता से डाकू हवेली पर चढ़े होंगे, पुलिस ने निष्कर्ष निकाला।

पुलिस अफसर कालीसिंह का फोटो साथ ले आया था जो उसके दफ्तर में था। उसकी आकृति से फोटो को मिलाकर बोला, 'यह कालीसिंह ही है। कोई शक नहीं।'

मैजिस्ट्रेट ने कहा, 'एक भयंकर गिरोह खतम हुआ। तीन मारे गए, चार घायल हुए जो मरे के बराबर हैं, क्योंकि बच जाने पर भी फाँसी या जनम कैद होगी। जो भाग निकले हैं, वे कभी सिर नहीं उठाएँगे—किसी दिन पकड़े भी जावें। घायल हो गए होंगे, तो सड़-सड़कर मरेंगे।'

जाब्ते की खानापूरी करने के बाद लाशों और घायलों को लेकर एक पुलिस लॉरी सदर चली गई। अन्य मोटरों से सनेही, राजदुलारी, घाटीवाली और टहल गए।

गाँववाले सनेही और रक्षकदल की शूरवीरी पर मुग्ध हो गए और सनेही के शीघ्र स्वस्थ हो जाने के लिए भगवान् से प्रार्थना करने लगे।

□

जब सब चले गए और केवल कुंजीलाल कारिंदा रह गया, देशराज को ऐसा लगा जैसे हवेली खाने के लिए मुँहबाए हो, फाटक टूटा हुआ, हवेली का एक सिरा जला। ऊपर की ओर आँखें कीं, बरगद के पेड़ पर अमरबेल छाई हुई थी। गरदन नीची कर ली। सरूप चेहरे की बड़ी-बड़ी आँखों के नीचे स्याही ज्यादा गहरी हो गई थी, गड्ढे ऐसे कि मानो एक हफ्ते से न सोया हो।

कारिंदे ने कहा, 'मालिक, भगवान् की कृपा से फिर सब ज्यों-का-त्यों हो जाएगा। बड़े भाग्य की बात तो यह रही कि आपका बाल बाँका नहीं हुआ।'

'हूँ।' देशराज की आँखों के सामने गत हानियों के ताँतों के चित्र खिच गए—वे पेटियाँ गईं, दो अपने इन्हीं हाथों सौंप आया था, पच्चीस हजार छिन गए, अंजना का जेवर लुट गया, हथियार जब्त और पुलिस निगरानी ऊपर से! अब और क्या होगा? इससे तो कालीसिंह को पहले ही पकड़ा देता तो पाँच हजार रुपए इनाम के मिल जाते, हथियार बने रहते और यह सब कुछ न होता। परंतु होनहार—अब?

कुछ क्षण बाद कारिंदा बोला, 'मालिक, अपना फार्म बहुत बड़ा है, उस पर चित्त देंगे। सब कुछ बन जाएगा।'

'हाँ···आँ ठीक है।'

और अंजना? फिर आ जाएगी। बाघराज के साथ उसने क्या कोरा अभिनय किया था? ऐसा अभिनय पहले तो कभी नहीं किया, रुपए कमाने के लिए? बाघराज के पास से जब मेरे सामने आई तब उसके चेहरे पर घबराहट की एक भी शिकन न थी। तो मेरे साथ जो कुछ होता रहा है वह भी क्या केवल अभिनय का ताँता ही नहीं था? रुपए कमाने के लिए?

उसकी आँख आँगन में पड़े रक्त पर गई। ओफ! ये सब वे थे जो मुझे मिला करते थे!! और मुझे खाक में मिला देने के लिए चढ़ दौड़े!!!

फाटक से डाकिया आकर एक लिफाफा दे गया। अंजना का पत्र था। उसमें लिखा था—'......परेशानी की कोई बात नहीं। हिम्मत मत हारना। अपना काम फिर चमकेगा, दिन में उसकी कतर-ब्योंत में लगी रहती हूँ, रात में केवल आप ही दिखलाई पड़ते हैं,—आपकी वही...अमरबेल।'

देशराज की भौंहें सिकुड़ गईं। चिट्ठी फाड़कर फेंक दी। कागज-कलम मँगवाकर उसने तुरंत उत्तर लिखा—

'...सिवाय खेती के और कुछ नहीं करूँगा; कुछ कर भी नहीं सकता हूँ। आपका...वही।'

न तो अंजना ने अपने पत्र में नाम लिखा था और न देशराज ने लिखा।

कारिंदे से कहा, 'बरगद पर छाई अमरबेल को इसी समय छिन्न-भिन्न करके अलग करवा दो; बरगद की कुछ डालों को तो यह चाट गई है, किसी दिन सारे पेड़ को चाट जावेगी, तब कहीं खुद खतम होगी।'

कारिंदे ने नौकरों को बुलाकर बरगद पर छाई अमरबेल को नष्ट करवा दिया। उसकी समझ में नहीं आया। सोचा, दु:ख के मारे पागलपन-सा सवार हो रहा है।

एक अंजना है, एक राजदुलारी! आकाश-पाताल का अंतर!! देशराज की आँखों में चित्र घूम रहे थे।

कारिंदे ने डरते-डरते कहा, 'मालिक, रात-भर के जागे हैं। नहा-धो लें और कुछ खा-पीकर सो जावें।

'हाँ।'

'एक विनती करूँ?'

'हाँ।'

'जल्दी में कोई काम न करिएगा। हुकुम हो तो फार्म पर चला जाऊँ? मशीनें चलवानी हैं।'

'हाँ, जाओ।'

'और एक विनती, फार्म को सहकारी समिति में मत लगाइएगा। कुछ ठीक नहीं कि

सहकारी का कब क्या हो जाए। अपनी सो अपनी—'

देशराज ने ऊपर की ओर देखा। अमरबेल मिटा दी गई थी। उसे सूनापन मालूम हुआ, मन के भीतर से किसी ने जोर मारा। कारिंदे को टोककर बोला, 'ठीक कहते हो। सहकारी को जो खेत दे दिए हैं उतने काफी हैं। फार्म निजी खेती के लिए ही रहेगा।'

□

सनेही को अच्छे होने में थोड़े ही दिन लगे।

सेवा-शुश्रूषा प्रचुर मात्रा में की गई थी।

गाँव लौटने के पहले सनेही ने टहल से कहा, 'अब पढ़ोगे वह पुस्तक?'

राजदुलारी वहीं थी।

'दादा, वह तो क्या, जो कुछ बतलाएँगे सभी पढ़ूँगा और करूँगा?'

'उसकी आलोचना का सार तो मैंने तुम्हें सुना ही दिया था? पढ़ोगे उसे?'

'मैं तो छुऊँगा भी नहीं।'

'ऐसी आलोचना की एक-एक मूर्ति बनाकर कॉलेजों में रख दी जाए तो कैसा रहे?—उसकी आकृति खा-चबा जानेवाली; कोई चबा जाने को न मिले तो अपना ही हाथ चबा उठे।'

'ग्रंथकारों का भी कुछ दोष है दादा।'

'जरूर है। खासतौर से उनका जो व्यापक घृणा का प्रचार करते-करते स्वयं अपने से घृणा करने लगते होंगे।'

'अब लड़ बैठो तुम दोनों; न लड़ो तो मैं लड़ा दूँगी,' राजदुलारी ने मुसकराकर कहा।

'मैं आपसे लड़ा करूँगा, भाभी, आपसे। न कुछ खिलाओ न पिलाओ!'

'खिलाऊँगी-पिलाऊँगी तुम्हें पेट-भर, जब हरको भजने लगोगे।'

सनेही ने मुँह फेर लिया।

टहल ने उँगली के संकेत से वर्जित किया।

: ६८ :

पानी बरसा और बरसता रहा। सनेही इत्यादि घर आ गए। सनेही की गदेली में गोली के छेद का निशान बन गया, पर जैसा कि उसने एक दिन राजदुलारी से कहा था, मन के भीतर के तो बहुत से छेद पुर गए हैं।

कालींसिह के पकड़ने या मारने पर जो पाँच हजार रुपया का सरकारी इनाम घोषित था वह सनेही इत्यादि के कहने पर और पदाधिकारियों के न्याय के अनुसार भी, सुहाना और बाँगुर्दन की समितियों को दिया गया। इनाम का रुपया रक्षित कोष में रख दिया गया। लगभग घर-घर बंदूकों के लाइसेन्स दे दिए गए।

'ये दोनों गाँव जीवटवाले व्यक्तियों के हैं। इनका निर्देशन ठीक-ठाक होता रहे तो अन्य गाँवों के लिए ये आदर्श बन जाएँगे।' पदाधिकारियों के मत में बैठा।

□

सलूनों का दिन था। राखी बँध गई। जवारे निकले। दोनों गाँवों का जुलूस बना। बाँगुर्दन के तालाब पर जाना था। सनेही उत्साह के साथ जुलूस में शामिल हुआ। स्त्रियों में घाटीवाली, हरको और राजदुलारी भी थीं। गायन-वादन के साथ जुलूस सुहाना के बाहर होने को हुआ।

टहल ने एक जगह कूड़ा-कचड़ा पड़ा देखकर कहा, 'हम अपनी गरीबी को रोया करते हैं। पर इस कूड़े-कचड़े को हटाने और बीमारियों को रोकने के लिए सरकारी सहायता लेते हुए कौन-सा खर्च होता है?'

जिन लोगों ने अपने बेड़ों के खाद सार्वजनिक गड्ढे में डाल दिए थे उन्होंने उन ढेरों की भूमि पर लौकी, तोरई इत्यादि बो दी थीं। तोरई की बेलों पर सोने के रंगवाले फूल छा गए थे। सनेही को भासा कि सोना चला जाय तो रंज दे जाता है और वे सुनहले फूल चले जाने के बाद पाचक-पोषक फल देते हैं—ये उस सोने से बड़े हैं।'

जुलूस बाँगुर्दन में पहुँचा।

गायन-वादन के बीच-बीच में नारे लग रहे थे—

'जीवन के स्तर को ऊँचा उठावेंगे।'

'हल की नोक से धरती की छाती पर अपनी उपज का हुक्म लिख दो!'

'हम सदा कुछ-न-कुछ काम करते रहेंगे!'

'समानी युषा सह वो अन्न भागा—अन्न-जल के साधनों पर हमारा समान अधिकार हो!'

'सह नौ भुनक्तु—साथ मिलकर भोगें!'

'यह जीवन हमारा निरंतर सफर है, जो मंजिल पर पहुँचे तो मंजिल बढ़ा दी!'

जुलूस में बनमाली, विक्रम और दमरू भी थे—छिपे लुके-लुके से शरमाए-शरमाए-से। होंठ हिला रहे थे, कहते कुछ न थे।

जुलूस बाँगुर्दन के बाहर हो गया। बदली छाई हुई थी। चारों तरफ ऐसी हरियाली जैसे जिमीन को नई जवानी मिल गई हो। जुलूस उमंगों पर था। थोड़ी देर बाद तालाब पर पहुँच गया। मरम्मत किया तालाब जल से भर गया था।

प्राचीन खंडहरों की मूर्तियाँ मुसकराती लग रही थीं।

कुछ लोग पूजा करने लगे, कोई भुंजरियाँ खोंटने लगे। बातें भी चल रही थीं। मंटू चुप था। कोई नारियल फोड़ने लगा, कोई कुछ करने लगा, कोई कुछ। देशराज के मन में उठा—'ये सब खेत, तालाब मेरे थे और यह सारी रय्यत भी।' मुँह से आह निकली।

सनेही टहल के पास जा खड़ा हुआ। जनक उसके निकट था। जरा हटकर घाटीवाली के साथ हरको थी।

'बहुत समय से एक बात मन में चक्कर काट रही थी,' —सनेही ने टहल से कहा, 'आज पक्की हो गई। अध्यात्म के विकास के लिए विज्ञान की सहायता अत्यंत आवश्यक है, अनिवार्य है।'

टहल उमंग के साथ बोला, 'और विज्ञान को अध्यात्म के निदर्शन की।'

जनक ने एक ही क्षण में सनेही और टहल की ओर देखा और उन दोनों के वाक्यों को मन-ही-मन रटने लगा—याद हो जाएँगे तो किसी दिन समझने की भी कोशिश करूँगा।

घाटीवाली के जरा निकट जाकर सनेही ने मोदमग्न जनता पर आँख पसारी और सबका ध्यान आकृष्ट किया—'अब एक बड़ा काम!'

लोग उसके निकट आ गए।

सनेही ने हरको का हाथ पकड़कर टहल के हाथ में दे दिया।

'सब लोग कहो—आ न एतु मनः पुनः—मन की खोई हुई शक्ति और शुचिता, उसकी तेजस्विता और प्रेरणा, हमारे पास फिर लौटकर आवें।'

लोगों ने दुहराया। टहल ने भी। पर उसे बोलते समय जान पड़ा कि उसके कानों में किसी दूसरे के शब्द पड़ रहे हैं। अपने और हरको के हाथों को जोड़ते समय उसे सनेही की गदेली के छेद में ऐसा लगा जैसे वहाँ कोई प्रकाशपुंज हो!

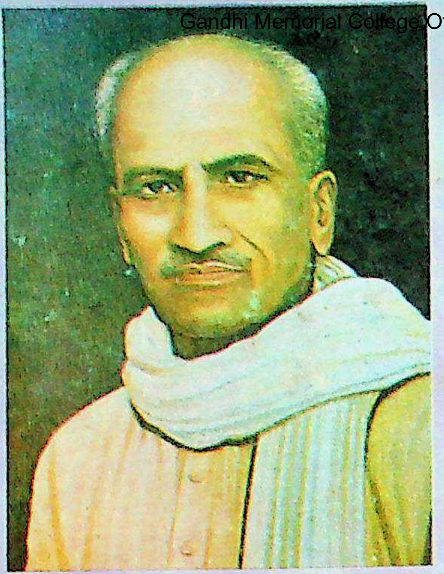
सनेही ने गाया—

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिवर गहन;
जासु कृपा सो दयाल, द्रवउ सकल कलिमल दहन।

और फिर सब एक साथ बोले—

'आ न एतु मनः पुनः'।

□□□



मूर्द्धन्य उपन्यासकार श्री वृंदावनलाल वर्मा का जन्म ९ जनवरी, १८८९ को मऊरानीपुर (झाँसी) में एक कुलीन श्रीवास्तव कायस्थ परिवार में हुआ था। इतिहास के प्रति वर्माजी की रुचि बाल्यकाल से ही थी। अत: उन्होंने कानून की उच्च शिक्षा के साथ-साथ इतिहास, राजनीति, दर्शन, मनोविज्ञान, संगीत, मूर्तिकला तथा वास्तुकला का गहन अध्ययन किया।

ऐतिहासिक उपन्यासों के कारण वर्माजी को सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई। उन्होंने अपने उपन्यासों में इस तथ्य को झुठला दिया कि 'ऐतिहासिक उपन्यास में या तो इतिहास मर जाता है या उपन्यास', बल्कि उन्होंने इतिहास और उपन्यास दोनों को एक नई दृष्टि प्रदान की।

आपकी साहित्य सेवा के लिए भारत सरकार ने आपको 'पद्म भूषण' की उपाधि से विभूषित किया, आगरा विश्वविद्यालय ने डी.लिट्. की मानद् उपाधि प्रदान की। उन्हें 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार' से भी सम्मानित किया गया तथा 'झाँसी की रानी' पर भारत सरकार ने दो हजार रुपए का पुरस्कार प्रदान किया। इनके अतिरिक्त उनकी विभिन्न कृतियों के लिए विभिन्न संस्थाओं ने भी उन्हें सम्मानित व पुरस्कृत किया।

वर्माजी के अधिकांश उपन्यासों का प्रमुख प्रांतीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी, रूसी तथा चैक भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। आपके उपन्यास 'झाँसी की रा... ...रानी' का फिल्मांकन भी हो चुका है।